श्री पं० जुगलकिशोर जी [illegible]

भारतीय ज्ञानपीठ काशी,

की ओर से

सादर [illegible]

शेर-ओ-शायरी

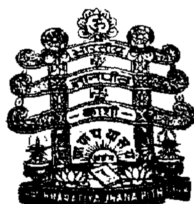
[उर्दूके सर्वोत्तम अशआर और नज़्म]

प्राचीन और वर्त्तमान उर्दू-कवियोंमें सर्वप्रधान
लोकप्रिय ३१ कलाकारोंके मर्मस्पर्शी
पद्योंका संकलन और उर्दू कविताकी
गति-विधिका आलोचनात्मक
परिचय

प्रस्तावना-लेखक

महापण्डित श्री० राहुल सांकृत्यायन

सभापति, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग



भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

निकला हूँ साथ लेके शकिस्ता किताबे दिल।
हर-हर वरक़ में शरहे तमन्ना लिये हुए ।।

ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला, हिन्दी-ग्रन्थाङ्क—५

शेर-ओ-शायरी

अयोध्याप्रसाद गोयलीय

ग्रन्थमाला-सम्पादक और नियामक
श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन, एम० ए०

प्रथम संस्करण एक हजार
आश्विन, वीर निर्वाण सं० २४७४
अक्तूबर, १९४८

मूल्य आठ रुपए

प्रकाशक
मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस

मुद्रक
जे० के० शर्मा
लॉ जर्नल प्रेस, इलाहाबाद

सस्नेह भेंट

प्रिय सुमत बाबू !

यूँ तो न जाने कितने मुशायरे देखे थे, परन्तु १५ जून १९३३ का वह दिन कितना सुखद और भव्य था, जब हम दोनों एक साथ प्रथम बार गाज़ियाबाद मुशायरेमें गये थे। मुशायरेमें जाते समय तो यूँ ही इत्त-फ़ाक़िया साथ हो लिये थे, परन्तु वहाँसे लौटे तो दोनों अभिन्न हृदय मित्र बनकर। उन ३-४ घण्टोंमें इतने शीघ्र कैसे हमने एक-दूसरेको पहचान लिया, कैसे बिना प्रयासके आत्मीय बन गये, स्मरण करके आश्चर्य होता है।

उस दिनके बाद कितने मुशायरे और कवि-सम्मेलन साथ-साथ देखे, और दिखाये; साहित्यिक उत्सवोंमें गये, और लोगोंको अपने यहाँ बुलाया, कुछ याद है ?

तब तुम बी० ए०के विद्यार्थी थे और अब ९-१० वर्षसे मजिस्ट्रेट। परन्तु साहित्यिक अभिरुचि वही बनी हुई है। कॉलेजमें रहे तो वहाँ मुशायरों, कविसम्मेलनों, और साहित्यिक गोष्ठियोंकी धूम मचा दी। मजिस्ट्रेट हुए तो उस रुचिमें और भी चार चाँद लग गये—रौनक़े बज़्मे अदब बन गये।

इस पुस्तकमें सैकड़ों ऐसे शेर हैं जो हम दोनोंने झूम-झूम कर सुने हैं, पढ़े हैं, पचासों शेर समय-समय पर अपने पत्रोंमें लिखे हैं। जिस शेरो-शायरीकी वजहसे हम दोनों आत्मीय बने, उस शेरो-शायरीको इस रूपमें भेंट करते हुए मुझे अपार हर्ष हो रहा है।

अपने बड़े भाईकी इस भेंटको तुम किस आदर और चावसे लोगे, और उपयोग करोगे, यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ। यह जवाहरपारे योग्य पारखीके हाथमें दे रहा हूँ। इस सूझसे मुझे अत्यन्त सन्तोष मिल रहा है।

"कि जौहर हूँ और जौहरी चाहता हूँ।"

—गोयलीय

विषय-सूची

पृष्ठ

पृष्ठ

१०—मधुर प्रवाह

प्रस्तावना

"शेरोशायरी"के छः सौ पृष्ठोंमें गोयलीयजीने उर्दू कविताके विकास और उसके चोटीके कवियोंका काव्य-परिचय दिया। यह एक कवि-हृदय साहित्य-पारखीके आधे जीवनके परिश्रम और साधनाका फल है। हिन्दीको ऐसे ग्रन्थोंकी कितनी आवश्यकता है, इसे कहनेकी आवश्यकता नहीं। जितना जल्दी हो सके, हमें उर्दूके सारे महान् कवियों-को नागरी अक्षरोंमें प्रकाशित कर देना है। गोयलीयजीका यह ग्रन्थ हिन्दीके उस कार्यकी भूमिका है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन शीघ्र ही उर्दूके एक दर्जन श्रेष्ठ कवियोंके परिचय-ग्रन्थ निकालनेकी इच्छा रखता है, फिर हमें उनकी पूरी ग्रन्थावलियोंको नागरी अक्षरोंमें लाना है। हमारे **महाप्रदेशने** संस्कृतनिष्ठ हिन्दीको अपनी राज-भाषा स्वीकृत किया है, किन्तु उसका यह अर्थ नहीं, कि हमारे महाप्रदेश (युक्तप्रदेश, बिहार, महाकोसल, विन्ध्यप्रदेश, मालवसंघ, राजस्थानसंघ, मत्स्यसंघ, हिमाचलप्रदेश, पूर्व-पंजाब और फुलकिया संघ)की सन्तानोंने अपनी प्रतिभाका जो चमत्कार साहित्यके किसी भी क्षेत्रमें दिखलाया है, उसे अपनी वस्तुके तौरपर प्ररक्षित करना हिन्दीभाषियोंका कर्त्तव्य नहीं है। जिस तरह भाषाकी कठिनाई होनेपर भी सरह, स्वयंभू, पुष्पदन्त, अब्दुर्रहमान आदि अपभ्रंश कवियोंको हिन्दीकाव्य-प्रेमियोंसे सुपरिचित कराना हमारा कर्त्तव्य है; उसी तरह उर्दूके महाकवियोंकी कृतियोंसे काव्यरसिकोंको वञ्चित नहीं होने देना चाहिये। व्यक्तिके लिये भी बीस-पच्चीस साल अधिक नहीं होते, जातिके लिये तो वह मिनट-सेकेन्डके बराबर हैं। १९७०-७५ ई० तक अरबी अक्षरोंमें उर्दू-कविता पढ़नेवाले बहुत कम ही आदमी हमारे यहाँ मिल पायेंगे। आजतक दुर्राष्ट्रीय भावनाओंके कारण हिन्दी-मुसल्मानोंकी विचारधारा चाहे कैसी ही रही हो, किन्तु अब वह हिन्दीमें वही स्थान लेने जा रहे हैं, जो उनके पूर्वजों जायसी, रहीम आदिने लिया था, और जो उनके सहधर्मियोंने बंग-साहित्यमें ले रखा है। हिन्दीको एक संप्रदाय-विशेषकी भाषा माननेवाले गलतीपर हैं। समय दूर नहीं है, जब

हिन्दीमें भी नजरुल्इस्लाम-परम्परा चलेगी। मुसल्मान बन्धुओंकी प्रतिभा, जो उर्दूके क्षेत्रमें अपना चमत्कार दिखलाती थी, अब वह हिन्दीकी होने जा रही है। इसीलिये मैं हिन्दीवालोंसे ज़ोर देकर कहना चाहता हूँ, कि कमसे कम आप अपने साहित्य-क्षेत्रमें सांप्रदायिक संकीर्णताको स्थान न दें।

उर्दूकी सत्कविता हमारे लिये इतिहासके विस्मृत पृष्ठ न बनेगी, न वैसा होना चाहिये। ऐसा करनेके लिये अत्यावश्यक है, कि वह नागरी वेश-भूषामें हमारे सामने आ जाय। "शेरोशायरी"के पढ़नेवालोंके लिये यह कहनेकी आवश्यकता नहीं, कि मीर-दर्द-नज़ीरने काव्यगगनमें कितनी उड़ान की, ज़ौक़-ग़ालिब-मोमिनने अपने ध्वन्यालोकोंसे काव्य-जगतको कितना आलोकित किया, दाग़-हाली-अकबरने कविता-सुन्दरी-को कितने अलंकारोंसे अलंकृत किया और चकबस्त-जोश-साग़रने देशके तरुणोंको कितनी अन्तःप्रेरणा दी।

अधिकांश उर्दू कवियोंने जहाँतक हो सका, अपनी कविताको विदेशी साँचेमें ढालना चाहा। कोई बुरी बात नहीं थी, यदि वह अरबी छन्दोंका भी उपयोग करते, किन्तु हिन्दीके छन्दोंका सर्वथा बायकाट करना कभी उचित नहीं था। पहिली अवस्थामें हिन्दी छन्दशास्त्र और समृद्ध होता, किंतु दूसरी बातने कवियोंके पैरको उनकी जन्म-भूमिसे उखाड़ दिया। आख़िर हिन्दीसंगीतको मुसल्मान संगीतकारोंकी देन कम नहीं है। उत्तरी भारतमें पिछले चार सौ वर्षोंसे प्रचलित संगीत, वही संगीत नहीं है, जो कि मुसल्मानों के आनेके पहिले भारतमें प्रचलित था। लेकिन संगीत-क्षेत्रमें मुस्लिम कलावन्तोंने बायकाटकी नीति नहीं अपनाई। उन्होंने संपूर्ण भारतीय संगीतको अपनाया और उसमें अरबी, ईरानी और उज़बेकी संगीतका पुट देकर उसे और समृद्ध किया। इसी तरह वीणा और मृदंगको उन्होंने जला नहीं दिया, बल्कि साथ-साथ उनसे सितार और तबलेकी सृष्टि कर भारतीय वाद्य-यन्त्रोंमें कुछ सुन्दर यन्त्रों-की वृद्धि की। उपमा, अलंकरण और उपजीव्य कथानकमें भी उर्दू कवियोंने स्वदेशी बायकाट और विदेशी स्वीकारकी नीतिको बड़ी कठो-रतासे अपनाया। यदि अपने देशके कृतित्वके साथ-साथ बाहरी वस्तुएँ

भी ली जातीं, तो वह हमारी दृष्टिको विशाल करनेमें सहायक होतीं। मैं यहाँ शिकायतोंका लेखा प्रस्तुत करनेके लिये इन बातोंको नहीं कह रहा हूँ। छन्द, काव्यशैली, दृष्टान्त, और काव्योपजीव्य कथानकसे परिचित होनेपर सहृदय व्यक्तिके लिये काव्यरसका आस्वादन करना सरल हो जाता है। उर्दू-कवितासे प्रथम परिचय प्राप्त करनेवालोंके लिये इन बातोंका जानना अत्यावश्यक है। गोयलीयजी जैसे उर्दू-कविताके मर्मज्ञ-का ही यह काम था, जो कि इतने संक्षेपमें उन्होंने उर्दू "छन्द और कविता"-का चतुर्मुखीन परिचय कराया।

"वली"ने उत्तरीय भारतके मुसल्मान कवियोंका मुँह फ़ारसीकी तरफ़से हटाकर उर्दूकी ओर मोड़ा था। गोयलीयजीने अपने संग्रहमें "मीर" (१७०९-१८०९)से लेकर अभी भी हमारे बीचमें वर्त्तमान उर्दूके श्रेष्ठ कवियों और उनकी कविताके विकासको लिया है, किन्तु यह काव्य-धारा न "मीर"से आरम्भ होती है, न "वली" (१७०० ई०)से ही। वह उससे भी पहिले "दकनी" कवियों तक पहुँचती है। दकनी कवि और उनकी कृतियाँ उर्दूमें भी बहुत कम प्रकाशित हुई हैं, हिन्दीके लिये तो वह सर्वथा अपरिचित हैं। उर्दूमें उनके काव्य इसीलिये सर्वप्रिय नहीं हो सके, कि वह हिन्दी-शब्दोंका सर्वथा बायकाट नहीं करते थे, और उन शब्दोंको अरबी अक्षरोंमें शुद्धतापूर्वक लिखा-पढ़ा नहीं जा सकता था। "दकनी" काव्योंमेंसे अत्यधिकने अभी छापेका मुँह नहीं देखा, वह अब भी हैदराबादके कुछ पुस्तकालयोंकी आलमारियोंमें बन्द हैं। हमें कामना करनी चाहिये, कि निज़ामकी धर्मान्धताकी अग्निमें निज़ामकी भाँति उनकी भी भेंट न चढ़ जाये। हमारे "अंग्रेज मित्र" तो समस्या-को खटाईमें ही नहीं रखना बल्कि उसे और भीषण बनाना चाहते रहे। यह जनतंत्रताके दावेदार हैदराबादकी ८७% जनताके अस्तित्वसे इन्कार कर रहे थे, किन्तु हमने समस्याको पाँच दिनमें हल करके छोड़ा। आगे यही करना है, कि आजके निज़ाम हटाये जायें और हैदराबादमें ज़बर्दस्ती मिलाये आन्ध्र, कर्नाटक और महाराष्ट्रके भागोंको अपने अपने प्रदेशोंमें लौटनेके लिये स्वतंत्रता मिले। निज़ामके क़ैदखानेमें

बन्द जनताको जिस तरह मुक्त किया गया है, उसी तरह हैदराबादकी आलमारियोंमें बन्द "दकनी" कविताको भी प्रकाशमें लाना है। इस कामके लिये गोयलीयजीसे बढ़कर योग्य पुरुष मिलना मुश्किल क्या असम्भव है। वही ऐसे व्यक्ति हैं, जिनकी उर्दू-हिन्दीके साहित्यमें सर्वतो-मुखीन प्रवृत्ति है, वही अरबी लिपि द्वारा विकृत किये गये तत्सम, तद्भव शब्दोंकी परख करके उन्हें असली रूपमें ला सकते हैं। भार बहुत बड़ा है, इसमें सन्देह नहीं; किन्तु गोयलीयजीके कन्धे इसके लिये समर्थ हैं। हमें आशा है कि वह हिन्दीको निराश नहीं करेंगे और "दकनी कवि और उनकी कविता"का परिचय हिन्दी पाठकोंको उनसे मिलके रहेगा।

गोयलीयजीके संग्रहकी पंक्ति-पंक्तिसे उनकी अन्तर्दृष्टि और गम्भीर अध्ययनका परिचय मिलता है। मैं तो समझता हूँ, इस विषयपर ऐसा ग्रन्थ वही लिख सकते थे। उनके बारेमें मेरे एक मित्रने अपने पत्रमें लिखा है "गोयलीयजी (समाज और साहित्यकी) गतिविधिमें गत पच्चीस वर्षोंसे भाग ले रहे हैं। उनके सीनेकी आग आज भी उसी तरह गरम है। समाज, देश, धर्म और साहित्यसेवाकी दीवानगी आज भी बदस्तूर क़ायम है। जेल भी हो आये हैं। सादा मिज़ाज, स्पष्ट और कठोर (उनकी विशेषता) है। वे धर्मशास्त्र, हिन्दी, उर्दू और इतिहासके अच्छे पंडित हैं। 'कथा कहानी', 'राजपूतानेके जैनवीर', 'मौर्यसाम्राज्य'-का इतिहास आदि इनके मशहूर ग्रन्थ हैं। 'दास' उपनामसे इनकी लिखी हुई हिन्दी-उर्दू कविताओंका संग्रह प्रकाशित हो चुका है। उर्दू शायरीसे उनकी ख़ास दिलचस्पी है। (उन्होंने) सामाजिक जागृतिके क्षेत्रमें कार्यकर्त्ताओंको जोशीले गाने और उत्साहप्रद कवितायें तथा युवकोंकी भावनाओंको सिंहनादका स्वर दिया। (वह हैं) पुरुषार्थके पुतले, असांप्रदायिक दृष्टिवादी, सदा जवान।"

लेखककी असांप्रदायिक दृष्टि और दूसरे गुण उनकी कृतिमें प्रतिबिंबित हैं। उनकी सदा जवानीसे हम 'दकनी' कविता-संग्रहकी आशा रखते हैं।

प्रयाग
१७-९-४८

राहुल सांकृत्यायन

एक नज़र

'शेरोशायरी' के ६२० पृष्ठों और १० परिच्छेदों में उर्दू के ३१ श्रेष्ठ कवियोंके सर्वोत्तम काव्यांशोंका संकलन और तत्सम्बन्धी साहित्यिक अध्ययनका सार है। इसके अतिरिक्त प्रसंगवश तथा संकलनको व्यापक बनानेके लिए लगभग १५० कवियोंके काव्यांशोंके उद्धरण दिये गए हैं। पुस्तकमें कुल मिलाकर लगभग डेढ़ हज़ार शेर (अशआर) और १६० नज़्में तथा गीत होंगे—सब अपनी जगह पर चुस्त, फड़कते हुए और नमूने के! जैसा कि महापंडित राहुल सांकृत्यायनने अपनी प्रस्तावनामें लिखा है—"यह एक कवि-हृदय साहित्य-पारखीके आधे जीवन-के परिश्रम और साधनाका फल है। गोयलीयजीके संग्रहकी पंक्ति-पंक्तिसे उनकी अन्तर्दृष्टि और गम्भीर अध्ययनका परिचय मिलता है"। हमारा विश्वास है कि उर्दू साहित्यकी गतिविधिका अनुभवपूर्ण दिग्दर्शन करानेवाली और नामी कवियोंकी चुनी हुई काव्य-वाणीका इतना सुन्दर, प्रामाणिक और व्यापक संग्रह प्रस्तुत करनेवाली इस जोड़-की कोई दूसरी पुस्तक हिन्दीमें अभी तक प्रकाशित नहीं हुई।

'शेरोशायरी'की कल्पना इसके निर्माता, श्री अयोध्याप्रसाद 'गोयलीय'के मनमें आजसे १८ वर्ष पूर्व उदित हुई जब कि वह राष्ट्रीय आन्दोलनके 'सरगर्म कार्यकर्त्ता'के रूपमें देहलीकी सैण्ट्रल जेलमें अन्य स्थानीय नेताओं और बन्दी मित्रोंके साथ साहित्यचर्चा किया करते थे। उस समय तक गोयलीयजी सफल लेखक, प्रभावशाली वक्ता और उर्दू काव्यके प्रामाणिक अध्येताके रूपमें ख्याति पा चुके थे। यह हिन्दीके अनेक स्थानीय पत्रोंके लिए नियमित रूपसे उर्दूके शेरोंका संकलन किया करते थे और 'मधु-संचय', 'चयनिका' तथा महफ़िल आदि स्तम्भोंका सम्पादन किया करते थे। तबसे अबतक श्री गोयलीयजी-

का अध्ययन जारी रहा और उसके साथ-साथ 'शेरोशायरी'का पुलिन्दा बढ़ता गया। सन् १६४४ में जब देशकी समस्याओंने नया रूप धारण किया और जब आज़ादीकी मंज़िल क़रीब आती हुई दिखाई दी, तब देशके नेताओंका ध्यान देशकी जनता के साहित्यिक मेलजोल और हिन्दी-उर्दूकी समस्याके समाधानकी ओर गया। उस समय अनेक मित्रोंने श्री गोयलीयजीसे अनुरोध किया कि वह 'शेरोशायरी'को जल्दी पूरा कर लें। परिस्थितियोंका तक़ाज़ा था कि ऐसी पुस्तक शीघ्र प्रकाशमें आ जाये। सोचा गया कि सारे संग्रहको कई जिल्दोंमें प्रकाशित कर दिया जाये, पर काग़ज़ और छपाईकी समस्या आड़े आई। तब निश्चय किया गया कि लेखक सारी सामग्री के आधार पर एक संकलन तय्यार कर दें जो तात्कालिक समस्या की पूर्त्ति तो कर ही दे, पर चीज़ ऐसी बन जाये कि एक ओर तो वह उर्दूके साहित्यिक अध्ययनके लिए प्रमाणिक, सर्वांगीण पृष्ठभूमि देने और दूसरी ओर सामान्य पाठकों की सुविधाके लिए उर्दूके सब रंगके और सब मुख्य कवियोंके बेहतरीन चुने हुए शेरोंका संग्रह प्रस्तुत कर दे।

इस प्रकारका संकलन कितना कष्ट-साध्य है इसे साहित्यकोंमें भी केवल भुक्तभोगी ही जान सकेंगे। जो साहित्य पिछले ३०० वर्षोंमें बादशाहों और नवाबोंकी छत्रछायामें पनपा, जो साहित्य नये साम्राज्यों और सामाजिक संस्थाओंके ध्वंस और निर्माणके दौरसे गुज़रा और जिस साहित्यके हृदय, आत्मा, परिधान, अलंकार और उद्देश्य में युगान्तकारी परिवर्त्तन हुए—और फिर भी जिसका तारतम्य शताब्दियोंकी घनी तहोंको पार कर आजके अनेक ग़ज़ल-गो शायरोंकी कवितामें गुँथा हुआ है—उसके युग-निर्माता और युग-पोषक कवियोंको छाँटना और छोड़ना और छाँटे हुए कवियोंके दीवानों और संग्रहोंमेंसे अमुक शेरको रखना और अमुकको रद करना बड़ा टेढ़ा और, यदि कहूँ तो, संकलनकर्त्ताकी साहित्यिक ख्यातिको ख़तरेमें डाल देनेवाला काम है।

निःसन्देह श्री गोयलीयजीने इस कामको अधिकसे अधिक सफलताके साथ निभाया है। आज जब यह किताब छपकर तय्यार है तो हम

सन् १६४५ से १६४८ में आ पहुँचे हैं। कलतक जो 'इन्क़लाब' महज़ एक ख़याल था और जिसकी ज़िन्दाबादीकी सदा हम पुरजोश जुलूसोंमें महज़ नारोंके रूपमें लगाते थे, आज वह इन्क़लाब मुजस्सिम और साकार हमारे सामने है। अभी कितने इन्क़लाब आस्मानसे झाँक रहे हैं—

"आँख जो कुछ देखती है, लब पै आ सकता नहीं।
महवे-हैरत हूँ कि दुनिया क्यासे क्या हो जायेगी।"

—इक़बाल

कल जिस 'शेरोशायरी'की आवश्यकता राजनैतिक आन्दोलनकी सहकारिताके लिए थी, आज हम उसका मूल्य अपने स्वतंत्र और विशाल देशकी गत तीन शताब्दियोंके उर्दूके साहित्यिक उत्तराधिकारके रूपमें आँकेंगे। देशके बँटवारेके बाद जो मुसलमान भाई आज हिन्दुस्तानमें रह गए हैं वह ख़ालिस हिन्दुस्तानी ही बनकर रहेंगे, उनके लिए अब कोई दूसरा रास्ता नहीं। कवि और साहित्यकार सदा ही सब वर्गोंमें होते हैं जो अपनी साहित्यिक परम्पराको नई परिस्थितियोंके अनुरूप विकसित करते हैं। क्या हिन्दुस्तानी मुसलमान शायर चुप होकर बैठ जायेगा, इसलिए कि हिन्दुस्तानकी राष्ट्रभाषा हिन्दी है? मुसलमानके लिए हिन्दी 'हौआ' नहीं है—या यों कहें कि मुसलमान 'आदम'के लिए हिन्दी ही 'हौआ' होगी। हिन्दी आख़िर ख़ुसरो, जायसी, रसखान और रहीमकी भाषा है; हिन्दीने नज़ीरके कलामको चमकाया और हफ़ीज़ जालन्धरी, साग़िर निज़ामी और अख़्तर शीरानीके गीतोंको मधुर बनाया। हिन्दीकी जादूभरी छैनीसे 'फ़िराक़' गोरखपुरी और दूसरे कवि उर्दूका नया दिलकश बुत तराश रहे हैं। आख़िर लिपिका भेद दो चार सालमें जब मिट जायेगा, तो उर्दू और हिन्दीमें कोई फ़र्क़ न रह जायेगा, हिन्दू और मुसलमान सबकी राष्ट्रीयभाषा एक होगी। तब 'शेरोशायरी' राष्ट्रके परम्परागत साहित्यके अंग-विशेषकी झाँकी और अध्ययनके लिए अत्यन्त उपयोगी परिचयात्मक पुस्तक प्रमाणित ही होगी।

'शेरोशायरी'की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह उर्दू साहित्यसे

सर्वथा अपरिचित व्यक्तिको भी उस साहित्यकी पृष्ठभूमि, उसके अलंकरण, उपमाओं, काव्य-प्रसंगों, किंवदन्तियों और कवियोंकी कलात्मक सृष्टिसे सुबोधशैलीमें परिचित करा देती है। पुस्तकके पहले ११४ पृष्ठ—'उद्गम' और 'तरंग' शीर्षक परिच्छेद—इस दृष्टिसे बहुत महत्वपूर्ण हैं, जिनमें 'गुलशन', 'मैखाना', 'इश्क़' और 'सहरा' के अन्तर्गत उर्दू कविताके सारे उपकरणों, उपमाओं, तरकीबों और महावरोंको विस्तारसे समझाया है। हिन्दीके पाठक जिन प्रचलित उर्दू शब्दोंको ग़लत बोलते हैं और जिनके कारण प्रायः उपहास-पस्त बन जाते हैं, उन लगभग १५० शब्दोंकी सूची भी इस अध्यायमें दे दी है।

कवियोंके परिचयका 'उद्घाटन' मीर मुहम्मद तक़ी 'मीर' (सन् १७०६-१८०६ ई० तक) से किया है, क्योंकि उर्दू कविता अपने वर्त्तमान निखरे रूपमें यहींसे या इसी कालसे प्रारम्भ होती है। 'वली' और उनके समकालीन अन्य शायर भी युगप्रवर्त्तकोंमें हैं, किन्तु 'मीर' उस निखरे हुए युगके सर्वश्रेष्ठ ग़ज़ल-गो कवि माने गए हैं। 'वली'से पहले उर्दू कविताका विकास दक्षिणमें जिस रूपमें हुआ था, वह प्रायः 'स्वदेशी' उर्दू थी, अर्थात् उसमें हिन्दीके शब्दों और प्रान्तीय तरकीबों और मुहावरोंकी प्रधानता थी। वह कहलाती भी 'हिन्दी' या 'हिन्दवी' थी। किन्तु उत्तरके शाही दरबारोंमें जहाँ अरबी और फ़ारसीको संस्कृति और उत्कृष्ट सामाजिक स्थितिकी भाषा माना जाता था, इस 'हिन्दी'-को अरबी और फ़ारसीके साँचेमें ढाला जाने लगा और इस तरह एक ऐसी काव्य-शैलीको जन्म दिया गया जिसमें अरबी और फ़ारसी भाषा-के शब्दों और उस साहित्यकी कल्पनाओं, कवि-पद्धतियों, छन्दों और अलंकारोंको आरोपित किया गया।

अपने वैभवकी स्थितिमें उर्दू कविता बहुत कुछ हिन्दीकी रीति-कालीन शृंगारिक कविताके ढंगकी चीज़ है। दोनों रीतिकालीन कवि-ताओंका लालन-पालन राजदरबारोंमें हुआ, दोनोंने पुरुषार्थकी अपेक्षा प्रेम और विरहके श्वास-निःश्वासोंको प्रतिध्वनित किया और दोनों-ने अपने निश्चित उपकरणोंको नये अलंकारोंसे चमत्कृत किया। यदि

उर्दूकी कविता अश्लील है तो इस प्रकारकी हिंदी कवितामें कम अश्लीलता न पाइयेगा—हाँ, हिन्दी कविताके शृंगारका रूप स्वाभाविक और परिधान परिष्कृत है। उर्दू कविताका यह रीतिकालीन युग महान साहित्यिक कलाकारोंका युग है। 'मीर'की कविताकी दर्दीली पैनी धार, जौक़की सुघराई, ग़ालिबकी दार्शनिक गहराई और कल्पनाकी उड़ान, मोमिनकी सादा बयानीका चमत्कार और दाग़की भाषा-माधुरीके दर्शन इसी युगकी कवितामें मिलते हैं। इनके शेरकी ख़ूबीका क्या कहना! शेरके बँधे छंदमें, नपे-तुले शब्दोंमें वह बात और वह चमत्कार पैदा करते हैं कि आदमी सकतेमें आ जाये। बिहारीके दोहोंकी तरह, "देखतमें छोटे लगें घाव करें गंभीर"।

डालमियानगर में अपनी तरहकी एक छोटी-सी संगत है। कभी यह 'साहित्य-गोष्ठी' हो जाती है, और कभी 'बज़्मेअदब'। इस अदबी बज़्म के 'पीरेमुग़ाँ' है गोयलीयजी और 'रिन्दों' में शामिल हैं डालमिया-नगर की बड़ी से बड़ी हस्तियाँ (जिसमें ज्ञानपीठ के संस्थापक और अध्यक्षा भी शामिल हैं)। ग़ालिब, दाग़, इक़बाल और अकबरके एक एक शेर-पर हम लोग मुद्दतों अश-अश किए हैं और दुहराते-तिहराते रहे हैं। इस संकलनमें इस तरहके सैकड़ों शेर हैं। कुछेक शेरोंके अर्थकी गहराई, शब्दोंकी सुघराई और आशयका चमत्कार, इसी पुस्तकमें आप देखेंगे :—

ग़ालिब— **'कोई मेरे दिलसे पूछे तेरे तीरे नीम-कशको।**
ये ख़लिश कहाँसे होती, जो जिगरके पार होता॥

× × ×

मैं और बज़्मेमयसे[1] यूँ तिश्नाकाम[2] आऊँ।
गर मैंने तौबा[3] की थी, साक़ीको क्या हुआ था?

× × ×

---

[1] मधुशालासे; [2] प्यास लिये हुए; [3] शराब न पीनेकी प्रतिज्ञा।

चलता हूँ थोड़ी दूर हर इक तेज़-रौके[1] साथ।
पहचानता नहीं हूँ अभी राहबरको[2] मैं॥

× × ×

न लुटता दिनको तो कब रातको यूँ बेख़बर सोता।
रहा खटका न चोरीका दुआ देता हूँ रहज़नको[3]॥

× × ×

मोमिन— माँगा करेंगे अबसे दुआ हिज्रेयारकी[4]।
आख़िर तो दुश्मनी है असरको दुआके साथ॥

× × ×

अकबर— हरचन्द बगोला मुज़तिर[5] है, इक जोश तो उसके अन्दर है।
इक वज्द[6] तो है, इक रक़्स[7] तो है, बेचैन सही, बरबाद सही॥

× × ×

कह गए हैं ख़ूब भाई घूरन।
दुनिया रोटी है और मज़हब चूरन॥

इक़बाल— ख़ुदी[8] को कर बुलन्द इतना कि हर तक़दीरसे पहले।
ख़ुदा बन्देसे ख़ुद पूछे, बता तेरी रज़ा[9] क्या है॥

उर्दू कविताके जो दो कलाकार सदा अमर रहेंगे, वह हैं ग़ालिब और इक़बाल। 'शेरोशायरी'में दोनोंकी कविताओंका संकलन विशेष रुचिके साथ किया गया है, और व्याख्यामें परिश्रम किया गया है। हमारा ख़याल है कि इक़बालका मर्तबा आनेवाली पीढ़ियोंकी निगाहमें ग़ालिबसे भी ऊँचा होगा। प्रस्तुत संकलनमें लेखकने इक़बालके जीवनको तीन दौरोंमें विभक्त करके, हर दौरकी नुमाइन्दा कविताओंके उद्धरण दिए हैं। प्रारंभमें इक़बालने भारतके राष्ट्रीय आन्दोलनको अपने व्यक्तित्वका समर्थन और अपनी वाणीका बल दिया।

---

[1] तेज़ चलनेवालेके; [2] नेताको; [3] चोरको; [4] प्रेयसीके विरहकी; [5] परेशान; [6] तन्मयता; [7] नृत्य; [8] अपनी आत्माको; [9] सम्मति, अभिलाषा।

'सारे जहाँसे अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा'—इक़बालका ही दिया हुआ राष्ट्रीय गीत है। इक़बालने ही आत्मविभोर होकर पुकारा था—

"ख़ाके वतनका मुझको हर ज़र्रा देवता है।"

बादमें वही इक़बाल फ़िर्क़ापरस्त बन गए और उन्होंने नई प्रार्थना ईजाद की :—

"यारब ! दिले मुस्लिमको वोह ज़िन्दा तमन्ना दे।
जो क़ल्बको[1] गरमा दे, जो रूहको[2] तड़पा दे।"

इन शब्दोंकी ओर ध्यान दीजिए। इक़बालने मुसल्मानोंके लिए एक 'तमन्ना' माँगी—एक चाह, एक ख़याल, एक उद्देश्य—जिसके पीछे वह दीवाने हो सकें, जिसके लिए उनके कलेजेमें गरमी आ सके और जो उनकी आत्मामें उस उद्देश्यकी प्राप्तिके लिए एक तड़प पैदा कर दे।

आखिर पाकिस्तान इस 'ज़िन्दा तमन्ना'की शक्लमें सामने आया। पाकिस्तानकी खाली खाली कल्पनामें इक़बालने ही रूह फूँकी।

हमारी पीढ़ी इस इतिहासके इतने निकट है कि हम संभवतया पाकिस्तानकी मूल भावनाओंका सही-सही अन्दाज़ा नहीं लगा सकते। इक़बालकी कविताओंका संकलन हमारे सामने है। उनका एक शेर है :—

"बनायें क्या समझकर शाख़ेगुलपर आशियाँ[3] अपना ?
चमनमें आह ! क्या रहना, जो हो बे-आबरू रहना ?"

(पृष्ठ २७७)

यह पहले दौर का शेर है। इसका अर्थ गम्भीर है।

इक़बाल मुसल्मानोंके लिए इस युगके पैग़म्बरसे कम नहीं। अगर इक़बाल दूर तक भविष्यमें झाँक सकते थे और उन्होंने पेशीनगोई की है, तो हमें और भी देखना चाहिए कि उन्होंने क्या कहा है। इसी संग्रहके चन्द और शेर मुलाहिज़ा हों। 'ज़िन्दा तमन्ना'को इक़बालने और आगे बढ़ाया और कहा था :—

---

[1] अपनी आत्माको; [2] हृदयको, आत्माको; [3] घोंसला।

"कैफ़ियत बाक़ी पुराने कोहो[1]-सहरामें नहीं।
है जुनूँ[2] तेरा नया, पैदा नया वीराना कर॥"

(पृष्ठ २८६)

और सुनिये :—

"मुझे रोकेगा तू ऐ नाख़ुदा[3] क्या ग़र्क़ होनेसे ?
कि जिनको डूबना हो, डूब जाते हैं सफ़ीनोंमें[4]॥"

(पृष्ठ २८१)

× × ×

तुम्हारी तहज़ीब अपने ख़ंजरसे आपही ख़ुदकशी करेगी।
जो शाख़े नाज़ुकपे आशियाना बनेगा, ना पाएदार होगा॥

(पृष्ठ २८३)

और फिर 'शिकवे' का आख़िरी बन्द :—

बुत[5] सनमख़ानोंमें[6] कहते हैं, "मुसलमान गए"।
है ख़ुशी उनको कि काबेके निगहबान[7] गए॥
मंज़िलेदहरसे[8] ऊँटोंके, हदीख़्वान गए।
अपनी बग़लोंमें दबाये हुए क़ुरआन गए॥
ख़न्दाज़न[9] कुफ़्र[10] है, अहसास तुझे है कि नहीं।
अपनी तौहीदका कुछ पास तुझे है कि नहीं !

काश ! इक़बाल बादकी सियासतको शायरीसे दूर रखते ! वह अमर तो हैं ही; उन्हें सब पूजते भी।

इस संग्रहकी एक और विशेषता है कि इसमें उर्दू कविताके वर्त्तमान प्रगतिशील युगका उचित प्रतिनिधित्व किया गया है। आजके माहौल, आजके ज़माने और वातावरणमें उर्दू कविताने जो उन्नति की है, हिन्दी-के बहुत कम साहित्यिकोंको इस बात का सही-सही अन्दाज़ा है। अभी

---

[1] पर्वतों-जंगलोंमें; [2] उन्माद, उमंग; [3] नाविक; [4] नौकाओंमें; [5] हिन्दू देवी-देवता; [6] मन्दिरोंमें; [7] पहरेदार, रक्षक; [8] काबेके मार्गसे; [9] मुस्करा रहे हैं; [10] ग़ैरमुस्लिम, हिन्दू।

तक हिन्दीके ९० प्रतिशत पाठक उर्दूको महज़ 'हुस्नोइश्क़' और 'गुलो-बुलबुल'की शायरी समझते हैं। वर्त्तमान नवयुवक कवियोंमें, विशेषकर फ़ैज़, मजाज़, जज़्बी, साहिर और फ़िराक़ने आज उर्दू शायरीको किसी भी भाषाके तरक़्क़ीपसन्द युग-साहित्यके हमपल्ले ला बिठाया है। आजका उर्दू कवि युगका और जनताकी आवाज़का प्रतिनिधि है। उसने आदमीको खुद्दारी और आत्मगौरव दिया है। वह भगवानसे भी आदर माँगता है :—

हश्र[1]में भी खुस[2]रवाना, शानसे जायेंगे हम।
और अगर पुर्सिश[3] न होगी तो पलट आयेंगे हम॥

—जोश (पृष्ठ ३४३)

सजदे करूँ, सवाल करूँ, इल्तजा करूँ।
यूँ दे तो कायनात मेरे कामकी नहीं॥
वो खुद अता करे तो जहन्नुम भी है बहिश्त।
माँगी हुई निजात मेरे कामकी नहीं॥

—सीमाब (पृष्ठ ३७३)

आज भी उर्दू शायरीमें मोहब्बतका चर्चा है, मगर यह अब अकेले भोगनेकी चीज़ नहीं रही :—

अपनी हस्तीका सफ़ीना[4] सूयेतूफ़ाँ[5] कर लें।
हम मोहब्बतको शरीकेग़मे-इन्साँ कर लें॥

—मौज (पृष्ठ ४८५)

आजका इन्सान इश्क़की महफ़िलमें न शमाकी तरह जलता है, न परवानेकी तरह फुँकता है। उसे मुहब्बतकी नाकामीका डर नहीं, वह सरेतूफ़ान ज़िन्दगीकी मौजोंपर अठखेलियाँ करता हुआ चलता है :—

मुझको कहने दो कि मैं आज भी जी सकता हूँ।
इश्क़ नाकाम सही, ज़िन्दगी नाकाम नहीं॥

—साहिर (पृष्ठ ५२७)

---

[1] प्रलयवाले दिन ईश्वरके समक्ष; [2] बादशाही; [3] आवभगत; [4] नाव; [5] तूफ़ानकी ओर।

दरियाकी ज़िन्दगीपर, सदक़े हज़ार जानें।
मुझको नहीं गवारा, साहिलको[1] मौत मरना ॥
—जिगर (पृष्ठ ५८६)

आधुनिक प्रगतिशील कविताके अन्य विषयोंपर मसलन मज़दूर किसानोंकी तबाही, देशभक्ति, मानवप्रेम, जागरण, आत्मगौरव आदिपर उर्दूमें जो लिखा गया है उसके अनेक सुन्दर उदाहरण इस संकलनमें यथास्थान दिए गए हैं।

श्री गोयलीयजीके इस संग्रहमें जहाँ अध्ययनकी गहराई, अनुभवकी परिपक्वता और साहित्यकी सच्ची परखकी ख़ूबियाँ हैं, वहाँ उनकी निराली टकसाली शैलीका चमत्कार भी कम आकर्षक नहीं। उनके कुछ परिचय देखिए :—

मयख़ाना—

झिझकिये नहीं, जब आ ही गये तो खुलकर बैठिये। यहाँ ऊँच-नीचका भेद-भाव नहीं। ज़ाहिद, नासेह, शेख़, और वाइज़की परवा न कीजिये। वे तो यहाँ ख़ुद ही चोरी-चुपके आते हैं, और जल्दीसे दुम दबाकर भाग जाते हैं। यह बुज़ुर्ग तो पीरेमुग़ाँ हैं। इनकी कृपादृष्टि तो ग़रीब-अमीर सबपर यकसाँ रहती है। ये जो सुराही लिये आ रहे हैं, यही साक़ी हैं। उधर वे रिन्द बैठे हुए हैं। उनके हाथोंमें साग़िर और पैमाने हैं जिनमें सुर्ख़ मय भरी हुई है। इधर ये शराबसे भरे हुए खुम और कूज़े रखे हुए हैं। जब उमरख़य्याम और हाफ़िज़ ज़िन्दा थे, यहाँ रोज़ आते थे।

नज़ीर—

....नज़ीर ने अज़ान भी दी, और शंख भी फूंका। तसबीह भी ली और जनेऊ भी पहना। मुहर्रममें रोये तो होलीमें भड़ुवे भी बने। रमज़ानमें रोज़े रखे और सलूनोंपर राखी बाँधनेको मचल पड़े। शब्बरात-पर महताबियाँ छोड़ीं तो दीवालीपर दीप सँजोये। नबी, रसूल, वली, पीर, पैग़म्बरके लिए जी भरकर लिखा, तो कृष्ण महादेव, नरसी, भैरो

---

[1] किनारा (भावार्थ सुख शान्तिसे अकर्मण्योंकी तरह)।

और नानकपर भी श्रद्धाञ्जलि चढ़ाई। गुलोबुलबुलपर कहा तो आम और कोयलको पहले याद रखा। पर्देके साथ बसन्ती साड़ी भी याद रही। और तो और, गर्मी, बरसात और सर्दीपर भी लिखा। बच्चोंके लिए रीछका बच्चा, कौआ और हिरन, गिलहरीका बच्चा, तरबूज़, पतंगबाज़ी, बुलबुलोंकी लड़ाई, ककड़ी, तैराकी, तिलके लड्डूपर लिखने बैठे तो बच्चे बन गये। हरएक बालक गली-कूचोंमें गाता फिर रहा है। जवानों और बुड्ढोंको नसीहत देने बैठे तो लोग वज्दमें आ गये। मानों क़ुरान, हदीस, वेद, गीता, उपनिषद्, पुराण सब घोलकर पी जानेवाला कोई सिद्ध पुरुष बोल रहा है।

हफ़ीज़—"मिसरी जैसी भाषा, कन्यासी अछूती कल्पना और कृष्णकन्हाई-की बाँसुरीसे निकले हुएसे मादक गीत आनन्दविभोर कर देनेके लिए काफ़ी हैं" (पृष्ठ ४२८)

जिगर—"मालूम होता है अल्लाहमियाँ जब अपने बन्दोंको हुस्न तक़सीम कर रहे थे, तब हज़रते जिगर कौसरपर बैठे पी रहे थे। उन्हें जिगर-की यह मस्ती और बेपरवाही शायद पसन्द न आई और कुढ़कर हुस्नके एवज़ इश्क़ अता फ़रमाया ताकि जिगर उम्रभर जलते और बुझते रहें" (पृष्ठ ५७८)

इस प्रकारका हर परिचय अपने आपमें एक कविता है। इन्हें पढ़कर और गोयलीयजीके परिश्रमके सफल परिणामको देखकर उनके सम्बन्धमें कहनेको जी चाहता है :—

बड़ी मुश्किलसे होता है चमनमें दीदावर पैदा।

(?——

यह बात नहीं कि पुस्तकमें छोटी-मोटी ख़ामियाँ नहीं रह गई हैं। कोई भी 'संकलन' निर्दोष नहीं हो सकता। जो दोष रह गये हैं, लेखक उनको जानता है और उनके बारेमें उसकी अपनी सफ़ाई भी है। पर, रुचिके प्रश्नपर या साधनोंकी सीमितताके आधारपर सफ़ाईका प्रश्न उठता ही नहीं। संकलनमें जो सावधानी बरती गई है, बाज़ वक़्त एक-एक शेरके इन्तख़ाबमें जो लम्बी बहसें झेलनी पड़ी हैं और हर ज़ौक़ (रुचि)

और हर स्तरके पाठकोंका ध्यान रखनेमें लेखकको जब-जब जी मसोसकर रह जाना पड़ा है, वह दास्तान मुझे मालूम है। इसीलिए मैं जानता हूँ कि यह संकलन कितना सुन्दर और कितना रंगीन है।

"दास्ताँ उनकी अदाओंकी है रंगीं, लेकिन।
उसमें कुछ खूनेतमन्ना भी है शामिल अपना॥"

—असरार

भारतीय ज्ञानपीठ, इस संकलनको बहुत प्रसन्नताके साथ पाठकोंके हाथोंमें समर्पित करता है। हमारा यह सौभाग्य है कि इस संकलनकी प्रस्तावना अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त, धुरंधर विद्वान और अनथक पुरुषार्थी महापंडित राहुल सांकृत्यायनने लिखनेकी कृपा की है। वह हिन्दी साहित्य सम्मेलनके सभापति भी हैं। इस संग्रहकी प्रामाणिकता, राष्ट्रीय साहित्यकी समृद्धि और मूल्यांकनके लिए इस संग्रहकी उपयोगिता तथा लेखककी अद्वितीय सफलताके सम्बन्धमें श्री राहुलजीने प्रस्तावनामें जो कहा है वह ज्ञानपीठके प्रकाशनके लिए गौरवकी बात है। हम महापंडित राहुलजीके प्रति हृदयसे आभारी हैं।

इस संग्रहमें गोयलीयजीने इस बातका ध्यान रखा है कि पुस्तक सब प्रकारसे प्रामाणिक और सर्वोपयोगी हो। यह पुस्तक साहित्यके विद्यार्थियोंके लिए, परीक्षालयों और पुस्तकालयोंके लिए, व्याख्याताओं, लेखकों और पत्रकारोंके लिए विशेष रूपसे उपयोगी है। सामान्य पाठकके लिए इसे अधिकसे अधिक सुबोध बनानेका प्रयत्न किया गया है। पुस्तक आपके लिए है, यदि आप आगे बढ़कर इसे लेनेका कष्ट करें :—

"ये बज़्मे मय है, याँ कोताह दस्तीमें है महरूमी।
जो बढ़कर खुद उठा ले हाथमें, मीना उसीका है॥"

डालमियानगर
३० सितम्बर १९४८

लक्ष्मीचन्द्र जैन
सम्पादक
लोकोदय ग्रंथमाला

दो शब्द

जनवरी १९४४ में मेरे परमहितैषी सहृदय दानवीर सेठ शान्ति-प्रसादजीकी अभिलाषा हुई कि उर्दूके कुछ सुभाषित उनकी डायरीमें नोट करा दिए जाएँ। परन्तु डायरीमें नोट करनेका उनके पास समय ही कहाँ था? अतः बात आई-गई हुई। किन्तु उनकी यह अभिलाषा मुझे भा गई। वही प्रेरणा आज इस रूपमें प्रस्तुत है।

भारतीय ज्ञानपीठके हिन्दी-विभागके सुयोग्य विद्वान सम्पादक प्रियवर बाबू लक्ष्मीचन्द्रजी एम० ए०के साथ प्रातःकालीन सैरमें शेरो-शायरीकी पुरलुत्फ़ चर्चाएँ रही हैं। पुस्तकका इतना मौजूँ नाम भी उन्होंने ही सुझाया है। जब लिखने-पढ़नेसे मन ऊब गया है, तब उन्हींके प्रेमाग्रहों ने लिखनेको बाध्य किया है। और अब वही इसे अपनी ग्रन्थ-मालामें प्रकाशित कर रहे हैं। यदि उनका आग्रह न होता, और ज्ञानपीठकी अध्यक्षा स्नेहमयी श्रीमती रमारानी जैनने प्रकाशनकी अनुमति न दी होती, तो मेरी पुस्तक इस काग़ज़ और प्रेसके अकालमें कौन छापता?

"ऊँचे-ऊँचे मुजरिमोंकी पूछ होगी हश्रमें।
कौन पूछेगा मुझे मैं किन गुनहगारोंमें हूँ॥"

श्री पं० देवीशरणजी पाण्डेय शास्त्री और श्री पं० रामाधारजी दुबे 'साहित्य-भूषण'ने सुवाच्य अक्षरोंमें मेरे हस्त-लेखकी प्रतिलिपि करके खोये जानेके भयसे मुझे मुक्त किया है, और कम्पोज़िङ्गमें सुविधा पहुँचाई है। अनुक्रमणिका और विषय-सूची बनानेमें भी सहायता दी है। दुबेजीने फ़ाइनल प्रूफ़ देखनेमें भी मुझे पूर्ण सहयोग दिया है।

श्री कुलभूषण जैन 'कौसर'ने 'ग़ालिब', 'साक़िब', 'फ़ानी', 'असग़र' के कलाम-चयनमें सहायता दी है। पढ़ते-लिखते जब थक गया हूँ, तो कई लेख उन्होंने स्वयं पढ़कर सुनाए हैं। श्री मृगांककुमार राय एम० ए०, बी० एल०, श्री श्यामलाल बी० ए०, एल-एल० बी०, और प्रिय बन्धु नेमिचन्द्र जैन एम० एस-सी०ने निरन्तर प्रेरणा देकर पुस्तक समाप्त करने और प्रेसमें देनेको बाध्य किया है।

लेबर वेलफेयर सेण्टरके उत्साही और परिश्रमी पुस्तकालयाध्यक्ष बाबू रामप्रसादसिंह अध्ययनके लिये यथावश्यक ग्रन्थ देते रहे हैं।

धन्यवाद देने और आभार माननेका साहस मुझमें नहीं है। मैं तो अपने आकुल मनको भुलाये रखनेके लिये पढ़ने-लिखनेमें खोया रहा हूँ। यदि मैंने यह प्रयास न किया होता तो :—

"मेरी नाज़ुक तबीयत पर यह दुनियाँ बार हो जाती।"

अतः पुस्तक उपादेय बन पड़ी हो, तो उसका श्रेय मेरे इन आत्मीय बन्धुओं, हितैषी मित्रों, और प्रिय सहयोगियोंको है। भूलों और त्रुटियों-की ज़िम्मेवारीसे मैं चाहूँ तो भी बरी नहीं हो सकता।

पहाड़ीधीरज, देहली
वर्त्तमान
डालमियानगर, (बिहार)

अयोध्याप्रसाद गोयलीय
२६ सितम्बर, १९४८

उद्गम

: १ :

[उर्दू-शायरीका संक्षिप्त परिचय]

उर्दू-शायरीका परिचय

राष्ट्रीय भाषाके जनक—अमीर ख़ुसरोको हिन्दी-साहित्यिक हिन्दी-कविताका और उर्दू-अदीब उर्दू-शायरीका जनक मानते हैं। ख़ुसरोसे पूर्व हिन्दू कवि संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, ब्रज या प्रान्तीय भाषाओंमें और मुस्लिम कवि अरबी-फ़ारसीमें रचना किया करते थे। आवश्यकता एक ऐसी भाषा की थी, जो समूचे राष्ट्रकी भाषा कहलाई जा सके और जिसमें हिन्दू-मुसलमान समान रूपसे अपने भाव व्यक्त कर सकें।

अमीर ख़ुसरो यद्यपि फ़ारसीके ख्याति-प्राप्त कवि थे, परन्तु उन्होंने इस आवश्यकताको अनुभव करते हुए कुछ इस तरहकी कविताएँ लिखीं जो संस्कृत या फ़ारसी मिश्रित न होकर सर्वसाधारणके समझने योग्य सार्वजनिक प्रचलित शब्दोंमें थीं।[1]

ख़ुसरोने जिस राष्ट्र-भाषाको जन्म दिया, उसका उन्होंने स्वयं हिन्दी या हिन्दवी नाम रखा। ख्याति-प्राप्त आलोचक साहित्याचार्य

---

[1] **अमीर ख़ुसरो**—(जन्म सन् १२५३, मृत्यु सन् १३२५ ई०)

इन्होंने ग़यासुद्दीनके शासनकालसे मुहम्मद तुग़लक़के शासन तक ११ बादशाहोंके दरबार देखे थे। इनकी कविताके नमूने :—

चकवा चकवी दो जनें इन मत मारो कोय।
यह मारे करतारके रैन-बिछोवा होय॥
गोरी सोवे सेजपर मुखपर डाले केस।
चल ख़ुसरू घर आपने रैन भई चहुँ देस॥
ख़ुसरो रैन सुहागकी, जागी पीके संग।
तन मेरो; मन पीउको दोऊ भये इकरंग॥

पं० पद्मसिंहजी शर्मा लिखते हैं—"हिन्दी नामकी सृष्टी हिन्दुओंने नहीं की और न उन्होंने इसका प्रचार ही किया है। हिन्दू लेखकों ने इसके लिए प्रायः सर्वत्र भाषाका प्रयोग किया है। भाषाके लिए हिन्दी शब्दके सर्वप्रथम नामकरणका सारा श्रेय मुसलमान लेखकों और कवियोंको ही दिया जा सकता है। 'उर्दूए क़दीम' 'तारीख़े नस्रे उर्दू' 'पंजाबमें उर्दू' इत्यादि ग्रन्थोंके विद्वान लेखकोंने बड़ी खोजके साथ यह साबित कर दिया है कि उर्दूका सबसे पुराना नाम हिन्दी ही है। अमीर ख़ुसरोकी खालिक़बारी (हिन्दी-उर्दूके सबसे पुराने कोष) में सब जगह हिन्दी या हिन्दवी आया है। उसमें 'उर्दू' 'रेख़्ता' या और किसी नामका कहीं भी उल्लेख नहीं है। खालिक़बारीमें १२ बार हिन्दी और ५५ बार हिन्दवी शब्दका प्रयोग हुआ है। हिन्दीका अर्थ है हिन्दकी भाषा और हिन्दवीसे मतलब है हिन्दुओं या हिन्दुस्तानियोंकी भाषा।....कविवर सौदाके उस्ताद शाहहातमने भी १७५० ईस्वीमें 'हिन्दवी' या 'हिन्दी भाषा' हिन्दुस्तानकी भाषाके अर्थमें इस्तेमाल किया है।"[1]

हिन्दी : हिन्दवी

उर्दूके आदि कवि—अमीर ख़ुसरोने जिस राष्ट्र-भाषाको जन्म दिया; उसका लालन पालन कबीर[2],

---

[1] हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी पृ० १८।

[2] **कबीर**—(जन्म सन् १३९१ मृत्यु १५१८ ई०)

ये जातिके जुलाहे थे और उच्चकोटिके सन्त और सुधारक थे। इनकी कविताएँ प्रेम, भक्ति, वैराग्य और नीति-सम्बन्धी बड़ी मर्मस्पर्शिनी हैं। कविताका नमूना :—

जा घट प्रेम न संचरे सो घट जान मसान।
जैसे खाल लुहारकी, साँस लेत बिन प्रान॥

जायसी,[1] रहीम,[2] वग़ैरहने इस तरह किया कि उसे सभीने

प्रेम छिपाया ना छिपै, जाघट परघट होय।
जो पै मुख बोले नहीं, नैन देत हैं रोय॥
आजा प्यारे नैनमें, पलक ढांप तोय लूं।
ना मैं देखूं औरको, ना तोय देखन दूं॥
प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा-परजा जिहि रुचै, सीस देइ ले जाय॥
प्रेम-प्रेम सब कोइ कहै, प्रेम न चीन्हे कोय।
आठ पहर भीनो रहै, प्रेम कहावे सोय॥
प्रेम-पियाला जो पिये, सीस दच्छिना देय।
लोभी सीस न दे सके, नाम प्रेमका लेय॥
कबिरा खड़े बजारमें, लिये लुकाटी हाथ।
जो घर फूंके आपनो, चले हमारे साथ॥

[1] **मलिक मुहम्मद जायसी**—(कविता-काल सन् १५१८से १५४३ ई० तक)

पद्मावत इन्हींकी प्रसिद्ध रचना है। १४ कृतियाँ आपकी लिखी मिलती हैं।

हाड़ भये सब कांकरी, नसें भई सब तांत।
रोम-रोमसे धुनि उठे, कहूँ विरह किह भांत॥

[2] **अब्दुल रहीम खानखाना**—(जन्म सन् १५५३ कविता-काल १५८३)

रहीम बैरमखाँके पुत्र और अकबर बादशाहके नवरत्नोंमेंसे एक थे। ये अकबरके समस्त दलके सेनापति और मंत्री थे। बड़े भद्र और दानी थे। कहा जाता है कि गंग कविको एक ही छन्दके बनानेपर ३६ लाख रुपये इन्होंने उसे पुरस्कार-स्वरूप दिये थे। गंग कवि बड़े स्वच्छन्द प्रकृतिके

अपना समझकर अपनाया। परन्तु ४०० वर्षके बाद यानी सत्रहवीं सदीमें राष्ट्रीय भाषाको विदेशी रूप दिया जाने लगा। यानी

थे। पर इनकी गुण-ग्राहकतापर रीझकर उन्होंने इनका काफ़ी गुण-गान किया। रहीम इतने निरभिमानी और विनयशील थे कि गंगके पूछनेपर :—

सीखे कहाँ नवाबजू! ऐसी दैनी दैन।
ज्यों-ज्यों कर ऊँचे करो, त्यों-त्यों नीचे नैन॥

सकुचाते हुए उत्तर दिया :—

देनहार कोऊ और है, भेजत सो दिन-रैन।
लोग भरम हमपर धरें, याते नीचे नैन॥

इनके एक दर्जनके क़रीब ग्रन्थ पाये जाते हैं। इनकी कविता का नमूना—

थोरो किए बड़ेनको, बड़ी बड़ाई होय।
ज्यों रहीम हनुमंतको, गिरिधर कहे न कोय॥
खैर, खून, खाँसी, खुसी, बैर, प्रीति, मधुपान।
रहिमन दाबे ना दबै, जानत सकल जहान॥
रहिमन चाक कुम्हारको, माँगे दिया न देइ।
छेदमें डंडा डारिकै, चाहै नाद लइ लेइ॥
फरजी साह न ह्वै सकै, गति-टेढ़ी तासीर।
रहिमन सूधी चालते, प्यादो होत वजीर॥
जेहि अंचल दीपक दुरयो, हन्यो सो ताही गात।
रहिमन कुसमयके परे, मित्र शत्रु ह्वै जात॥
उरग, तुरंग, नारी, नृपति, नीच जात, हथियार।
रहिमन इन्हें सँभारिये, पलटत लगे न बार॥

अमीर खुसरोकी निर्विकार भाषा रूपी बालिकाको 'वली'ने अरबी-फ़ारसी शब्दों और भावोंके वस्त्रोंमें लपेट दिया। इसीलिये 'वली' उर्दूके आदि कवि माने जाते हैं। किन्तु वलीके जीवनकालमें इस अभारतीय भाषाका नाम उर्दूकी बजाय 'रेख़्ता' शब्द प्रचलित था। वलीका समय ई० स० १६६८से १७४४ तक माना गया है। हिन्दी-हिन्दवीके बजाय भाषाके लिये 'रेख़्ता' शब्दका प्रयोग सबसे पहले 'सादी' दक्खनीके कलाममें मिलता है। शाह मुबारिक, आबरू, मीर, सौदा, ग़ालिब, जुरअत और क़ायमने भी अपनी कवितामें 'रेख़्ता' शब्दका ही प्रयोग किया है।[1]

रेख़्ता

तुर्की भाषामें 'उर्दू' लश्कर (छावनी)को कहते हैं। प्रारम्भमें मुग़ल और तुर्क बादशाह छावनीमें रहा करते थे। उनका दरबार और रनवास सब लश्करोंमें ही होता था। इस विशेषताके कारण वहाँकी मिली-जुली भाषा—लश्करी या उर्दू ज़बान भी कहलाने लगी। दिल्लीमें लाल क़िलेके सामने शाही छावनी थी, उसका नाम उर्दूका बाज़ार पड़ गया, जो आजकल भी प्रचलित है। फ़ौजमें हर प्रान्त, हर मज़हब और हर जातिके लोग रहते थे, इसलिए उनकी उस मिली-जुली खिचड़ी भाषाको लोग लश्करी या उर्दू ज़बान कहने लगे। नवाब शुजाउद्दौला और आसफ़ुद्दौलाके शासनकाल (१७९७ ई०)में सैयद अताहुसेन 'तहसीन,'ने 'चहारदरवेश'का तर्जुमा किया था। उसमें उन्होंने अपनी ज़बानके लिए—'रेख़्ता', 'हिन्दी' और 'ज़बान उर्दू-ए-मोअल्ला'—

उर्दू

बसि कुसंग चाहत कुसल, यह रहीम जिय सोस।
महिमा घटी समुद्रकी, रावन बस्यो परोस॥

[1] हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी पृ० १९-२२।

इन तीन नामोंका प्रयोग एक ही प्रसंग और एक ही पृष्ठमें साथ-साथ किया है। केवल 'उर्दू' शब्द उनकी किताबमें कहीं नहीं पाया जाता। यदि उर्दू शब्द उस युगमें व्यापक और रूढ़ हो गया होता तो 'तहसीन' साहब इन तीन शब्दोंके झमेलेमें न पड़कर केवल उर्दू शब्दसे काम चला लेते। इससे मालूम होता है कि उर्दू शब्दका प्रयोग इस कालमें अच्छी तरहसे नहीं हुआ था। अलबत्ता इस समयको उर्दू शब्दके प्रचारका आरम्भकाल कहा जा सकता है। इसके बाद शनैः-शनैः यह शब्द भाषाके अर्थमें प्रयुक्त होने लगा।[1]

उर्दू-पद्य—का प्रारम्भ ग़ज़लसे हुआ। फिर धीरे-धीरे क़सीदे, मसनवी, मर्सिया, नज़्म, गीत, सॉनेट (१४ पंक्तिका लघु छन्द), आज़ाद नज़्म (मुक्ति छन्द) भी लिखे जाने लगे। उर्दू-ग़ज़लमें १९ बहरें (छन्द) होती हैं।

ग़ज़ल—का अर्थ है इश्क़िया अशआर कहना, औरतोंका वर्णन करना। यानी वह कविता जिसमें :—

वस्ल	=	मिलन
फ़िराक़	=	विरह
इश्क़	=	प्रेम
इश्तयाक़	=	चाहत
हसरत	=	कामना, आशा
यास	=	निराशा—

का वर्णन हो। ग़ज़लको हिन्दीमें शृंगारिक कविता कहा जा सकता था, यदि ग़ज़लमें एकाकी होनेका दोष न होता। हिन्दी शृंगारिक कविताके प्रेमी और प्रेमपात्र दोनों समान रूपसे प्रेम अथवा विरह-ज्वालामें सुलगते रहते हैं। उर्दू-ग़ज़लमें केवल पुरुष इश्क़ो-हिज्रके

---

[1] हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी, पृ० २५-२८।

सदमे उठाता रहता है। स्त्रीको इस ओर लेशमात्र भी लगाव नहीं होता।

उर्दू-ग़ज़लका आशिक़ ठीक उन दिलफेंक छोकरोंकी तरह होता है, जो कॉलेजकी छोकरियों, राह चलती युवतियों, पास-पड़ोसकी बहू-बेटियों, सीनेमाएक्ट्रेसों पर दिल दे बैठते हैं; और उन बेचारियोंको पता भी नहीं होता कि हमपर कितने कामुक छोकरे दिल निछावर किये बैठे हैं। जब यही इकतरफ़ा इश्क़ बढ़ने लगता है तो जुनूँ (उन्माद-पागलपन)की शक्ल अख़्तियार कर लेता है। राह चलते हुए आवाज़ें कसना, कुचेष्टायें करना, पत्र लिखना, मित्रोंमें उसके सौन्दर्य और नख-शिखका वर्णन करना, अपनी इस इकतरफ़ा मुहब्बतको उसकी लापरवाही, बेवफ़ाई समझना, उसे प्राप्त करनेके हथकण्डे तलाश करना, उसके वास्तविक प्रेमी या पतिको उदू (प्रतिद्वन्द्वी) समझकर उसकी बर्बादीके उपाय सोचना; अपनी कामुकताके कारण ऐसी हरकतें करना जिससे अपने और उसके कुटुम्ब दोनों बदनाम होकर, परेशानियोंमें मुब्तिला हो जाएँ, यही ग़ज़लमें वर्णित आशिक़का काम है।

उर्दूके प्रसिद्ध आलोचक डा० अन्दलीब शादानी एम० ए०, पी-एच० डी० का कथन है कि—"जो आशिक़ और माशूक़ दोनोंके दिलोंमें यकसाँ सुलग रही हो, उसीको मुहब्बत कहा जा सकता है। इकतर्फ़ा मुहब्बत जुनूँ है, मुहब्बत नहीं।"[1] और इस दुतर्फ़ा मुहब्बतका वास्तविक आनन्द तभी आता या आ सकता है, जब कि इसका प्रारम्भ स्त्रीकी ओरसे हुआ हो। क्योंकि यदि स्त्री प्रेम करती है तो वह सैकड़ों उपायों द्वारा प्रेम ज़ाहिर करके प्रेमपात्रको अपनी ओर आकर्षित कर सकती है। मिलनका कोई न कोई मार्ग खोज निकालती है; और यदि

---

[1] आजकल-उर्दू (१५ अप्रैल १९४६) पृ० ११-१२में प्रकाशित जनाब अताउल्लाह पालवीके लेखसे।

पुरुष इस रोगमें पहले फँसता है, तो वह तिल-तिलकर घुटता है, उसे सफलता बहुत कम प्राप्त होती है।[1]

उर्दू-ग़ज़लमें माशूक़ (प्रेमपात्र) तीन रूपमें दिखाई देता है। :—

(१) स्त्री, (२) संदिग्ध, स्त्री है या पुरुष, (३) स्पष्टतया पुरुष।

१—जिन अशआरमें माशूक़का स्त्रित्व प्रकट हो, ऐसे शेर बहुत कम हैं।

२—कुछ अशआर ऐसे हैं, जिनसे स्पष्ट प्रकट नहीं होता कि माशूक़ स्त्री है या पुरुष।

३—सबसे अधिक संख्या ऐसे अशआरकी है, जिसमें माशूक़ साफ़ सरीहन मर्द नजर आता है।

हिन्दी शायरीमें भी माशूक़ (प्रेमपात्र) मर्द ही नज़र आता है। किन्तु ग़ज़ल और शृंगारिक कवितामें बहुत बड़ा अन्तर ये है कि हिन्दी कवितामें वर्णित आशिक़ स्त्री और माशूक़ पुरुष होता है। ग़ज़लमें आशिक़ स्त्री न होकर पुरुष होता है, और माशूक़ भी अक्सर पुरुष। स्त्रीकी ओरसे पुरुषके लिए या पुरुषकी ओरसे स्त्रीके लिए प्रेम होना तो स्वाभाविक है; किन्तु पुरुषकी ओरसे पुरुषके लिए कामवासनाकी इच्छा 'अमरद[2]-परस्ती' (अप्राकृतिक व्यभिचार) है। और उसपर भी तुर्रा यह कि यह अप्राकृतिक प्रेम भी दुतर्फ़ा न होकर इकतर्फ़ा होता है। उर्दू-ग़ज़लका माशूक़ अपने आशिक़से घृणा और उपेक्षा रखता है। आशिक़के अस्तित्वको अपने लिए अनिष्टकर समझता है।[3]

उर्दू शायरीका जन्म भारतकी अधःमुखी दशामें हुआ। इसलिए

---

[1] आजकल-उर्दू (१५ अप्रैल १९४६) पृ० ११-१२में प्रकाशित जनाब अताउल्लाह पालवीके लेखका भावानुवाद।

[2] अमरद—जिसकी मूँछ न निकली हों—लौंडा, नौ उम्र।

[3] आजकल-उर्दू (१५ अप्रैल १९४६) पृ० ११-१२ में प्रकाशित जनाब अताउल्लाह पालवीके लेखका भावानुवाद।

इसमें उस समयके सभी—विलासिता, अकर्मण्यता, कायरता, प्रतिद्वन्द्विता आदि—अवगुण प्रवेश कर गए। बादशाहों, नवाबोंका कुपित होना—उनके आश्रित शायर, उसे माशूक़का रूठना तसव्वुर करके झूठा आत्मसंतोष करते रहे। राजनैतिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय होनेके कारण शाही दरबारोंमें किसीकी भी स्थिति स्थायी नहीं थी। हर एक एकदूसरेको नीचा दिखाने और मिटानेमें लगा रहता था। एक दूसरेके ख़िलाफ़ षड्यन्त्र रचता रहता था। बादशाह, नवाब और रईस हियेके अन्धे और कानके कच्चे होते थे। इनके यहाँ अक्सर निरपराध सज़ा और धूर्त्त तथा गुनहगार पुरस्कार पाते थे। जो भी कूटनीति, धूर्त्तता, जालसाज़ी, षड्यन्त्र और चापलूसीमें उस्ताद होता वही शाही दरबारोंमें इज़्ज़त पाता, और जो इन हुनरोंमें दक्ष न होता, वह ज़लील और रुसवा होता। यहाँ तक कि दरबारसे निकाल दिया जाता। इस दरबारको शायरोंने 'महफ़िले माशूक़' और बेइज़्ज़तीसे निकलवानेवाले मुँह लगे मुसाहबोंको उदू (प्रतिद्वन्द्वी) कहकर दिलकी जलन बुझानेका प्रयास किया है:—

तेरी महफ़िल से उठाता ग़ैर मुझको क्या मजाल।
देखता था मैं कि तूने ही इशारा कर दिया॥

—'हसरत' मोहानी

इस तरहके माशूक़ जो महफ़िलसे निकाल देनेका इशारा कर दें और ग़ैर (प्रतिद्वन्द्वी) तत्काल निकाल दें; बादशाहों, नवाबों, रईसों या चरित्र-भ्रष्ट ज़नाने छोकरोंके सिवा कोई और नहीं हो सकता। किसी सद्गृहस्थकी कन्या या स्त्री इस्लामी दुनियामें ऐसी नहीं हुई जो अनेक आशिक़ोंके झुण्डमें बैठकर बेहयाईको भी हया आ जानेवाली इस तरहकी हरकत करे। इतना गया-गुज़रा जीवन और व्यवहार वेश्याका भी नहीं होता। वह पैसेके लिए अनेक पुरुषोंके समक्ष गाती, नाचती और परिहास करती है, सभीको भरमाती है। किसीको भी महफ़िलसे उठनेका विचार

तक नहीं लाने देती । जो पैसा नहीं दे पाता, उससे उपेक्षा कर लेती है और वह स्वयं ही फिर नहीं आता । यदि कोई बेहया आया भी तो चुपचाप बूढ़ी नायिका न आनेके लिए संकेत कर देती है और कह देती है "हुज़ूर ! इस पापी पेटके लिए हम अस्मत-फ़रोशी जैसा गुनाह करती हैं । अगर उसीको कुछ न मिला तब बताइए यूँ गुज़र कब तक होगी ?" भरी महफ़िलमें जिससे तय हो जाता है उसे लेकर वेश्या स्वयं ही महफ़िलसे उठकर अपने दूसरे कमरेमें चली जाती है और बाक़ी तमाशबीन नाच-गाना सुनकर यथास्थान चले जाते हैं । ऐसे हरजाई और उदूकी कल्पना तो शाही दरबारों और वहाँके कुचक्रियोंपर ही सही फ़िट होती है ।

ग़ज़लमें कमसे कम १ मतला ३ शेर और १ मक़ता आवश्यक समझा जाता है । मतला ग़ज़ल के प्रारम्भमें होता है । इसके दोनों मिसरे (चरण) क़ाफ़िया रदीफ़से संयुक्त होते हैं :—

मतला

कमर बाँधे हुए चलनेको याँ सब यार बैठे हैं ।
बहुत आगे गये बाक़ी जो हैं तैयार बैठे हैं ।।

यह मतला है क्योंकि इसके ऊले (पहले) मिसरेमें **यार** और सानी (द्वितीय)में **तैयार** क़ाफ़िये हैं । और दोनों मिसरोंमें **बैठे** हैं रदीफ़ मौजूद है । **क़ाफ़ियेको** तुक कहा जा सकता है । यार, तैयार, बेज़ार, दो चार, नाचार, इस ग़ज़लमें क़ाफ़िये हैं । **रदीफ़** क़ाफ़ियेके बाद रहती है और यह ज्यों की त्यों रहती है, क़ाफ़ियेकी तरह बदलती नहीं । इस ग़ज़लमें बैठे हैं रदीफ़ है ।

शेरमें भी मिसरे दो ही होते हैं । पहले मिसरेमें क़ाफ़िया और रदीफ़ न होकर केवल दूसरे चरणमें होते हैं :—

शेर

न छेड़ ऐ निगहते बादे बहारी ! राह लग अपनी ।
तुझे अठखेलियाँ सूझी हैं, हम बेज़ार बैठे हैं ।।

मक्ता

ग़ज़लमें शायरका तख़ल्लुस (उपनाम) जिस शेरमें हो उसे मक़्ता कहते हैं। मतले और शेर तो ग़ज़लमें अधिक लिखे जाते हैं परन्तु मक़्ता हर ग़ज़लमें एक ही होता है और वह ग़ज़लके अन्तमें रहता है :—

भला गर्दिश फ़लककी चैन देती है किसे 'इन्शा' ?
ग़नीमत है कि हम-सूरत यहाँ दो चार बैठे हैं ॥

यह मक़्ता है क्योंकि इसमें 'इन्शा' शायरका नाम आया है।

रेख़्ती

ग़ज़लमें प्रेमका इज़हार अक्सर पुरुषकी ओरसे होता है। कुछ लोगोंने औरतोंके जज़्बात (भावों)को ग़ज़लमें समोनेका असफल प्रयत्न किया। वे भाषा तो ज़नानी लिख सके, परन्तु भाव स्त्रियोचित न ला सके, और उसमें ऐसी हास्यास्पद कविता की, कि वह उर्दू-साहित्यका कलंक बनकर रह गई। इसी अश्लील ज़नानी कविताको रेख़्ती कहते थे।[1]

---

[1] हिन्दी कवितामें स्त्रियोचित भावोंके मर्मस्पर्शी स्थलोंसे प्रभावित होकर जनाब अताउल्लाह पालवी फ़र्माते हैं। :—

"हिन्दी शायरीको दुनियाकी तमाम ज़बानोंकी शायरीमें महमूद और मुमताज़ (श्लाध्य और श्रेष्ठ) दर्जा मिलनेकी महज वजह यह थी कि वह अपने जज़्बोअसर (भावव्यक्त करने और मर्मस्थलको छूने)में सारी दुनियाकी शायरीसे यगाना (अनुपम, बेजोड़) और मुनफ़रद (निराली) थी। और इसका सबब सिर्फ़ यह था कि हिन्दीमें जज़्बाते मुहब्बत (प्रेम-भाव) औरतकी तरफ़से और औरतकी ज़बानसे अदा होते थे। और इसमें मुख़ातिब माशूक़ (यानी हिन्दी कवितामें वर्णित प्रेम-पात्र) मर्द बल्कि शौहर हुआ करता था। जिस वजहसे वह 'मुहब्बत' एक तरफ़ तो फ़ितरी (स्वाभाविक) तसलीम की जाती थी और दूसरी जानिब इकतर्फ़ा होनेके इल्ज़ामसे भी बरी थी।

हिन्दी-हिन्दवी शब्दके बाद और उर्दू शब्द रूढ़ होनेसे पूर्व भाषाके लिए 'रेख़्ता' शब्द व्यवहृत होता था। चूँकि उन दिनों गद्यकी अपेक्षा पद्य ही अधिक लिखा जाता था, इसलिए 'रेख़्ता' शब्द पद्यके लिए रूढ़ हो गया था। बादमें यही रेख़्ता शब्द 'उर्दू-ग़ज़ल'में परिवर्त्तित हो गया। रेख़्तामें पुरुषोंके प्रेम, विरह आदिका वर्णन रहता था, अतः

बिला शुबह जज़्बाती हैसियत (भावमय होने)से हिन्दीके यह अशआर हद दर्जेके चुटीले अलबेले और रसीले होते थे। और इस वजह से उनको जो दर्जा दुनियाकी शायरीमें मिला वह इसके मुस्तहक़ (अधिकारी) थे। (आजकल-उर्दू १५ अप्रैल १९४६, पृ० ११)

उर्दू-अदीब 'बट' साहब लिखते हैं :—

'हिन्दी ज़बानमें तरन्नुम[१] और मौसीक़ी[२] इस क़दर है कि किसी दूसरी ज़बानको मयस्सर नहीं। हिन्दीका शायर मामूलीसे मामूली बातको भी निहायत ही पुरलुत्फ़ अन्दाज़में बयान करता है। मुख़्तसिर अल्फ़ाज़में बहुतसे मतालिब अदा किये जा सकते हैं। डाक्टर अज़ीमके नज़दीक तो "भाषाकी शायरी हुस्नो इश्क़, फ़लसफ़ा[३], और ख़ुद्दारी,[४] मनाज़िरे[५] क़ुदरतकी मुसव्वरी,[६] विरोग[७]मौसीक़ी, और दर्दोग़मकी एक दिलगुदाज़[८] तसवीर है।" शम्स उलउल्मा मौलाना मुहम्मद हुसैन आज़ाद ने तो यहाँ तक कह दिया कि—"सादगी, इज़हार और असलियतको उर्दू दाँ भाषासे सीखें। जज़्बातकी सादगी शायरीकी हक़ीक़ी रूह[९] है और इसमें हिन्दी शायरीको कोई ज़बान नहीं पहुँच सकती।"[१०]

---

[१] गाना, गीत; [२] संगीत; [३] दर्शन; [४] स्वाभिमान; [५] प्राकृतिक दृश्य; [६] कला; [७] विरह-संगीत; [८] हृदयको द्रवित करनेवाली; [९] आत्मा।

[१०] हिन्दीके मुसलमान शायर, पृ० १५।

स्त्रियोचित भाव-भाषावाली कविताको 'रेख्ती' नाम दिया गया। हमने ऐसी कुरुचिपूर्ण कविताको प्रस्तुत पुस्तकमें स्थान नहीं दिया है। नमूना देते हुए भी जी खराब होता है :—

बस घर तो छुट चुके हैं, कहाँ तक करूँ ख़सम।
किस जा बिठाये देखिये, अब आस्माँ मुझे॥

—नाज़नीन

क़सीदा—जिसमें १५से अधिक चरण हों और जिसमें किसीकी प्रशंसा आदि की गई हो, उसे क़सीदा कहते हैं। बादशाहोंके आश्रयमें रहनेवाले कवियोंको—जन्मगाँठ, विजयोत्सव, तथा अनेक खुशीके अवसरोंपर बादशाहों, नवाबोंकी प्रशंसात्मक कविता करनी पड़ती थी, उसीको क़सीदा कहते थे। जो कवि क़सीदा लिखनेमें जितना निपुण होता था, वह उतनी ही अधिक प्रतिष्ठा पाता था। यहाँ तक क़सीदा न लिख सकनेवाला कवि, कवि ही नहीं समझा जाता था। क़सीदा लिखनेमें 'सौदा,' 'इन्शाँ,' और 'ज़ौक़' काफ़ी सिद्धहस्त हुए हैं। हमें प्रशंसात्मक चापलूसी कवितासे नफ़रत है। अतः प्रस्तुत पुस्तकमें क़सीदेका उल्लेख नहीं हुआ है।

मसनवी—उस कविताको कहते हैं जिसमें दो चरण एक साथ रहते हैं, और दोनोंमें तुकान्त मिलाया जाता है। किसीकी जीवनी या कल्पित कथा मसनवीमें होती है। उर्दूमें पं० दयाशंकर 'नसीम' और 'मीरहसन'-की मसनवी काफ़ी प्रसिद्ध हैं। एक ज़माना हुआ जब इन दोनों मसनवियोंके पक्ष-विपक्षमें आलोचनाओंकी एक बाढ़-सी आगई थी, और उर्दू-दुनियामें काफ़ी कटुता उत्पन्न हो गई थी। मसनवी लिखनेका रिवाज अब प्रायः बन्द-सा हो गया है। वर्त्तमानमें इस तरहका उल्लेख जिस ढंगसे किया जाता है, उसकी झाँकी **नवप्रभात** परिच्छेदसे मिलने लगेगी।

मर्सिया—रंजोग़मका वर्णन, मृत्यु सम्बन्धी उल्लेख जिस कवितामें हो उसे मर्सिया कहते हैं। विशेषतया हज़रतअलीके पुत्रोंकी शहादत

(वीर-गति) सम्बन्धी जो कविताएँ लिखी जाती हैं, उन्हें मर्सिया कहते हैं। मर्सियोंमें युद्धका ओजस्वी वर्णन, शहीदोंकी वीरताका रोमांचकारी गुणगान, करबला (जहाँ यह युद्ध हुआ उस युद्धस्थल)का करुण चित्र होता है। मर्सियोंके 'अनीस' और 'दबीर' श्रेष्ठ कवि हुए हैं। मर्सिये केवल एक सम्प्रदाय (मुसलमानोंमें 'शिया' फ़िरक़े)से सम्बन्ध रखते हैं। सार्वजनिक हित और रुचिसे नहीं, इसलिए प्रस्तुत पुस्तकमें इनका उल्लेख नहीं किया है।

नात—नातका अर्थ है प्रशंसा या ख़ूबी बयान करना। मुसलमान कट्टर मज़हबी होते हैं। इसलिए प्रारम्भसे ही प्रेम-विरह-वर्णनकी तरह धार्मिक-उल्लेख भी ग़ज़लोंमें होने लगा; हज़रत मुहम्मदकी प्रशंसा, ईश्वर-भक्ति या इस्लामका गुण-गान जिन ग़ज़लोंमें होता है वे नातिया ग़ज़ल कहलाती हैं। यूँ तो हर शायर अपने दीवानके प्रारम्भमें मंगलाचरणस्वरूप नातिया ग़ज़ल लिखते ही थे; परन्तु बहुतसे कट्टरपन्थी केवल नातिया ग़ज़ल ही लिखते थे। यह रंग 'अमीर मीनाई' तक रहा। सम्भवतः 'अज़ीज़' लखनवीका 'गुलक़दा' पहला दीवान है, जो नातिया ग़ज़लसे क़तई मुक्त है।

तसव्वुफ़—तसव्वुफ़का अर्थ है सब कामनाओंसे रहित होना और सब वस्तुओंमें ईश्वरका अस्तित्व समझना। यह सूफ़ियोंका सिद्धान्त है। सूफ़ी दिव्य प्रेमके भिक्षुक हैं। न इन्हें कुफ़से मतलब है न ईमानसे। क्योंकि यह दोनोंको ढोंग मानते हैं। वे सब बन्धनोंको तोड़कर अपने प्रियतम 'ईश्वर'की खोजमें ही तन्मय रहना चाहते हैं। सूफ़ीके निकट हिन्दू-मुसलिम, जाति-पाँतिका कोई मूल्य नहीं। सत्यकी खोज, ईश्वर-प्रेम संसारसे विराग उसका ध्येय है। ईश्वर उसका माशूक़, भक्ति उसकी शराब, और जहाँ बैठकर ईश्वरसे वह साक्षात्कार कर सके, वह उसका मयख़ाना, अथवा सराय है। धीरे-धीरे इस सूफ़ी सिद्धान्तका प्रसार बढ़ने लगा। यहाँ तक कि उर्दू-शायरोंने इसे इस तरह अपना लिया कि, वह

उर्दू-शायरीमें घुल-मिलकर इस्लामी सिद्धान्त-सा मालूम होने लगा। हालाँ कि सूफ़ी और मुस्लिम दर्शन में बहुत बड़ा अन्तर है। मज़हबी विश्वासों के प्रति विद्रोह, मज़हबी लोगों—नासेह, शेख़, ज़ाहिद—के प्रति उपहास की भावना, यह सब उर्दू-शायरी को सूफ़ी-सिद्धान्त की देन है।

सूफ़ी-दर्शन की झलक प्रस्तुत पुस्तक में यत्र-तत्र दिखाई देगी। यहाँ हम केवल फ़ारसी के अमर कवि 'हाफ़िज़' की अन्तिम अभिलाषा का उल्लेख किये देते हैं। इससे सूफ़ी-सिद्धान्त सरलतासे समझमें आ सकता है :—

"यदि अधिक मदिरा-पान से ही मेरी मृत्यु हो तो मुझे मेरी समाधि तक एक शराबी के ही भेषमें लाना। जहाँ चारों ओर अंगूर की बेल हों, और जो किसी सराय के बग़ल में हो, वहाँ मेरी क़ब्र बनाना। मेरी लाश को उसी सराय के पानी से स्नान कराना और शराबियों के कन्धे पर ही मेरी अर्थी ले जाना। मेरी मट्टी को लाल मदिरा से नम किया जाय और मेरे शोक में वही तीन तारों वाली सितार बजाई जाय। यही मेरी अन्तिम इच्छा—वसीयत है"[1]

रुबाई—ग़ज़लके प्रत्येक शेरमें पृथक-पृथक भाव रहते हैं। यदि-दो शेरों में एक ही भाव आये तो उसे रुबाई कहते हैं। और रुबाई की बहरें ग़ज़लों से जुदा होती है। फ़ारसी में उमरख़य्यामने इतनी मन-मोहक रुबाइयात लिखी हैं कि उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति मिल चुकी है। हज़ारों भिन्न-भिन्न भाषाओंमें सुन्दरसे सुन्दर संस्करण निकल रहे हैं। बतौर बानगी—

माओ मैओ माशूक़ दरीं कुंजे ख़राब।
जानो दिलो जामो जामा दर रहने शराब॥

---

[1] ईरानके सूफ़ी कवि, पृ० ३१७

फ़ारिग़ ज़े उमीदे रहमतो बीमे अज़ाब।
आज़ाद ज़े ख़ाकओ बादो ज़े आतिशो आब॥

(इस सुनसान बीहड़में—मैं हूँ, मदिरा है और मेरी प्यारी है। प्राणोंको, दिलको, प्यालेको तथा वस्त्रोंको मदिराके लिये गिरवी रख दिया है। न तो यही कहता हूँ कि 'हे भगवन्! कृपाकर' और न उसके क्रोधका ही भय है। मैं इस समय जल, वायु, अग्नि और मिट्टी इत्यादि चारों भूतों से पृथक हूँ।)

हर दिल कि दरूने ओ मोहब्बत बसिरिश्त।
गर साकिने मस्जिदस्त वर अहले कुनिश्त॥
दर दफ़्तरे इश्क़ नामे हर कसके नविश्त।
आज़ाद ज़े दोज़ख़स्त वो फ़ारिग़ ज़े बहिश्त॥

(जिस हृदयमें प्रेमकी लगन लग गई, वह चाहे मस्जिदमें निवास करता हो, चाहे बुतख़ाने (मन्दिर)में, जिस किसीका भी नाम प्रेमियोंकी सूचीमें आगया, उसको न तो नरककी ही चिन्ता है और न स्वर्गकी इच्छा[१])

उर्दूमें 'जोश'की रुबाइयाँ काफ़ी लोक-प्रिय हैं। इसी पुस्तकके **'जागरण'** परिच्छेदमें उनकी झलक मिलेगी।

तारीख़—किसीके जन्म, या मृत्युपर या अन्य स्मरण योग्य अवसरपर जो शेर कहा जाता है उसे तारीख़ कहते हैं। उसमें ऐसे शब्दोंका प्रयोग किया जाता है जो भावसूचक भी हों और घटनाके वर्षका भी परिचायक हों। उर्दूके अक्षरोंके साथ गिनतीके अंक नियत हैं उन्हींको जोड़नेसे सन्-संवत् मालूम हो जाता है। मुसलमानोंमें जन्म और मृत्युपर तारीख़ कहनेका बहुत चलन है। जितनी अधिक जिसकी ख्याति होती है, उतनी

---

[१] ईरानके सूफ़ी कवि, पृ० ५३

ही अधिक संख्यामें लोग उसकी तारीख़ लिखते हैं। यहाँ तक कि बहुतसे तो अपने बच्चोंका नाम ही तारीख़ी रखते हैं। मरनेका तारीख़ी शेर क़ब्रपर लिख दिया जाता है। उर्दूके प्रसिद्ध कवि पं० बृजनारायण 'चकबस्त'के स्वर्गवासपर लोगोंने काफ़ी तारीख़ें कहीं। एक साहबने उनके ही एक मृत्यु सम्बन्धी मिसरेपर तारीख़ कहके कमाल कर दिया :—

उनके ही मिसरेमें तारीख़ है हमराह 'अज़ा'।
"मौत क्या है, इन्हीं अजज़ाका परेशाँ होना"॥

नज़्म—नज़्मका अर्थ है मोतियों आदिको तागेमें पिरोना। नज़्मके बानी 'नजीर', 'हाली' और 'आज़ाद' माने गये हैं। ग़ज़लमें समूचे भावको एक ही शेरमें लाना पड़ता है, और इस तरह पूरी ग़ज़लके लिये अनेक विचारों और कल्पनाओंकी आवश्यकता रहती थी। जहाँ हज़ारों शायर हों वहाँ नित नये विचार सूझना असम्भव है। हिर-फिरकर शब्दोंकी कतरब्योंतमें उन्हीं पुराने विचारोंसे शायरीको जीवित नहीं रखा जा सकता था। दूसरे, ग़ज़लमें क़ाफ़िया, रदीफ़ और व्याकरण आदिके ऐसे बन्धन थे कि उसके सहारे इस इन्क़लाबी युगके साथ चलना क़तई नामुमकिन था। किसी घटनाको धाराप्रवाह कहनेकी ग़ज़लमें गुंजाइश न थी। इसीलिये नज़्मका आविर्भाव हुआ। धीरे-धीरे नज़्मोंमें भी अनेक तरहके विकास हुए। अब तो १४ लाइनके लघु छन्दोंमें, मुक्ति छन्दोंमें, गीतोंमें उर्दू-शायर अपने भाव नज़्म करने (पिरोने) लगे हैं। प्रस्तुत पुस्तकमें **'नवप्रभात'** परिच्छेदसे इस तरहकी झाँकी मिलती है।

१५ अक्तूबर १९४६

ख़ुदा से जुदा

[भ्रामक शब्द]

नुक्तेके हेर फेरसे उर्दूमें ख़ुदासे जुदा पढ़ लिया जाता है। बक़ौल अकबर इलाहाबादी तनिक-सी भूलसे—"कौंसिलोंमें सीट चाहिए" के बजाय "घोसलोंमें बीट चाहिए" बन जाता है। भाषाकी अनभिज्ञतासे ऐसी मोटी और भद्दी भूल हो जाती है कि बाज़ दफ़ा बड़ी मुँहकी खानी पड़ती है। सन् ३४ या ३५का मेरे सामनेका वाक़या है, देहलीके मिशन कॉलेजमें बड़े जोशो-ख़रोशके साथ मुशायरेकी तैयारियाँ हुई थीं। हॉल खचाखच भरा हुआ था। नियत समयसे कुछ विलम्ब हुआ तो जनता तालियाँ पीटने लगी। तब आवेशमें मुशायरेके संयोजक बोले—"आप लोग ताम्मुल कीजिए अभी डाक्टर. . . .साहबके अहतलाममें मुशायरा शुरू होनेवाला है। लोगोंने सुना तो मारे क़हक़होंके आस्मान सरपर उठा लिया। चारों तरफ़से आवाजें कसी जाने लगीं। संयोजक साहब भुनभुनाते हुए स्टेजसे खिसक लिये। तब मेरे ही सामने मेरे एक मित्रने उनसे कहा कि "भाईजान! आप अहतमाम (प्रबन्ध) के बजाय अहतलाम (स्वप्नदोष) कह गये थे। जनता तालियाँ न पीटे तो क्या करे?"

अतः हम यहाँ पाठकोंकी जानकारीके लिए थोड़ेसे ऐसे शब्द दे रहे हैं जिनके तनिकसे हेर-फेरसे अर्थका अनर्थ हो जाता है। आशा है पाठक इससे लाभ उठाएँगे।

अजल	=	मृत्यु
अज़ल	=	अनादिकाल
अमीन	=	क़ुर्की और नाप करनेवाला सरकारी कर्मचारी

आमीन	=	ख़ुदा करे ऐसा ही हो
अर्ज	=	सम्मान, ओहदा
अर्ज़	=	निवेदन, पृथ्वी
अर्श	=	आठवाँ स्वर्ग जहाँ ख़ुदा रहता है
असरार	=	रहस्य, गुप्त बात
इसरार	=	आग्रह, हठ
आज़ा	=	शरीरके अंग और जोड़
आजा	=	आओ
अहतमाम	=	प्रयत्न, व्यवस्था, देखरेख
अहतलाम	=	स्वप्नदोष
कमर	=	पीठ
क़मर	=	चाँद
कर्ज	=	गेंडा
क़र्ज़	=	ऋण
कारी	=	जो अपना काम ठीक तरह से कर दिखावे, घातक, जैसे कारी-तीर
क़ारी	=	क़ुरान पढ़नेवाला
काश	=	ईश्वर करे, ऐसा हो जाय
क़ाश	=	फल आदिका कटा हुआ लम्बा टुकड़ा, फाँक
गल्ला	=	पशुओंका समूह, झुण्ड
ग़ल्ला	=	अनाज
गार	=	करनेवाला
ग़ार	=	गहरा, गड्ढा
गुल	=	फूल, दीपककी बत्तीके ऊपरका जला हुआ अंश
ग़ुल	=	शोर, धूमधाम

गोर	=	क़ब्र, समाधि
ग़ोर	=	कन्धारके पास एक देशका नाम
ग़ौर	=	सोच विचार, ध्यान
चर्ख़	=	आस्मान
चरखा	=	सूत कातनेवाला यंत्र
जंग	=	लड़ाई
ज़ंग	=	लोहेपर लगनेवाला मोर्चा
जद	=	दादा, नाना
ज़द	=	चोट, लक्ष्य
जफ़र	=	यंत्र और तावीज़ें आदि बनानेकी कला
ज़फ़र	=	विजय
ज़बर	=	बलवान
जब्र	=	अत्याचार, दबाव
ज़बान	=	जीभ
जवान	=	युवक
जर	=	खींचना
ज़र	=	धन
जरी	=	वीर
ज़री	=	सोनेके तारों आदिसे बना हुआ काम
जलील	=	बड़ा, प्रतिष्ठित
ज़लील	=	तुच्छ, अपमानित
जानी	=	जानसे सम्बन्ध रखनेवाला, जैसे जानी-दुश्मन
ज़ानी	=	व्यभिचारी
जारी	=	बहता हुआ, प्रवाहित
ज़ारी	=	रोना,-धोना
जिन	=	भूत-प्रेत

ज़िना	=	व्यभिचार
जिरह	=	हुज्जत, बहस
ज़िरह	=	कवच
जिला	=	चमक, दमक
ज़िला	=	डिस्ट्रिक्ट
ज़ियाँ	=	हानि, घाटा
ज़िया	=	प्रकाश
जीना	=	जीवित रहना
ज़ीना	=	सीढ़ी
जू	=	नदी, जलाशय, रखनेवाला
ज़ू	=	चमक
जेब	=	खीसा, पाकेट
ज़ेब	=	उपयुक्त, शोभा
जेल	=	कारागृह
ज़ैल	=	नीचेका भाग, दामन
ज़ोर	=	बल
जौर	=	अत्याचार
जौक़	=	सेना, भीड़
ज़ौक़	=	शौक़, सुखपूर्वक
जौज़	=	अखरोट, जायफल, नारियल
ज़ौज	=	पति, जोड़ा
जौज़ा	=	मिथुन राशि
ज़ौजा	=	पत्नी
ज़ोफ़	=	दुर्बलता, मूर्च्छा
जौफ़	=	खाली जगह, उदर
तसव्वुर	=	किसीका मनमें चित्र खींचना

तबस्सुर	=	ध्यानपूर्वक देखना
तेज	=	ओज, दीप्ति, (यह शब्द हिन्दी है)
तेज़	=	फुर्तीला, तीक्ष्ण
दरबान	=	पहरेदार
दरमान	=	इलाज
नाज	=	अन्न
नाज़	=	अभिमान, नख़रा
वरक़	=	पृष्ट, सफ़ा, (दोनों ओरका)
बर्क़	=	बिजली
शफ़ा	=	तन्दुरुस्ती
सफ़ा	=	स्वच्छ
शफ़ी	=	सिफ़ारिश करनेवाला
सफ़ी	=	पवित्र
शर	=	शरारत
सर	=	सिर
शाकी	=	शिकायत करनेवाला
साक़ी	=	शराब तक़सीम करनेवाला
शान	=	तड़क-भड़क
सान	=	धार, समान
शमा	=	चिराग़
समा	=	आकाश
शायाँ	=	उपयुक्त
शाया	=	प्रकाशित
शारअ्	=	आम सड़क
शारह	=	टीकाकार
शाल	=	दुशाला

साल	=	वर्ष
शाही	=	बादशाहोंका-सा
शाहीं	=	बाज पक्षी
शबाब	=	सौन्दर्य
सवाब	=	पुण्य
संग	=	पत्थर
सग	=	कुत्ता
सख़ी	=	दानी
सखी	=	सहेली
शहर	=	बड़ा नगर
सहर	=	प्रातःकाल
सहरा	=	जंगल
सेहरा	=	दूल्हाके मुँहपर फूलों या मोतियोंकी जो झालर डाली जाती है
सेहर	=	जादू
साई	=	प्रयत्न करनेवाला
साईं	=	फ़क़ीर
साकित	=	मौन
साक़ित	=	त्यक्त, निरर्थक
साकिन	=	निवासी
साक़िन	=	वह दुश्चरित्रा स्त्री जो भंग और हुक़्क़ा पिलाकर जीविका-उपार्जन करे
साज	=	सागूनका दरख़्त, तीतरकी तरह एक पक्षी
साज़	=	सजावटका सामान, बाजे वग़ैरह
हज़्म	=	मोटाई
हज्म	=	पेटमें पचा हुआ

हव्वा = आदमकी स्त्री

हब्बा = अल्प अंश

इसके अतिरिक्त कुछ शब्द ऐसे हैं, जिनका अक्सर अशुद्ध उच्चारण होता है, जैसे कि—

शुद्ध	अशुद्ध
ज़ुकाम	जुखाम
फ़सील (क़िलेकी प्राचीर)	सफील
सबील-(प्याऊ)	सलीब, सफील
ख़ालिस	निख़ालिस
लुत्फ़	लुफ़्त
लफ़्ज़	लब्ज़
रौनक़	रवन्नक़
हैरान	हरियान
दरअसल	दरअसलमें
रईस	रहीस
साईस	सहीस
सानी	शानी
मलबा	अमला
मज़ा	मजा
ज़ुल्म	जुलम
जलवा	जलवा
चादर	चद्दर
नुसख़ा	नुस्सा

२० अक्तूबर १९४६

तरंग





: २ :

[उर्दू-शायरीका मर्म]

[उर्दू-शायरीका मर्म]

कवि या लेखक जो कुछ लिखता है उसे हर जगह उसका निजी विचार या आप-बीती समझ लेना बहुत बड़ी भूल है। लेखक या कवि अपने चारों ओर जो कुछ देखता है, सुनता है, अनुभव करता है, या ज़रूरत महसूस करता है, उसे अपने रंगमें चित्रित कर देता है। यदि उसी चित्र-को कलाकारका चित्र समझ लिया जाय तो इससे अधिक कलाकारका और क्या अपमान होगा?

इसी तरहकी समझसे तंग आकर प्रसिद्ध हास्य-लेखक मिर्ज़ा अज़ीमबेग चग़ताईने उर्दू-साहित्यके आलोचक डा० अन्दलीब शादानी एम० ए० पी०-एच०-डी०को ९ अक्तूबर १९४०के पत्रमें लिखा था :—

. . . . "मैं अफ़साने लिखता हूँ। कोई गुज़रा हुआ वाक़िया आँखोंसे देखा या सुना उठाकर लिख दिया। ख़्वाह वह अपनी मर्ज़ीके सख़्त ख़िलाफ़ ही क्यों न हो। मसलन मेरे नाविल 'कोलतार'के बाब 'आलूके भुरतेकी हीरोइन'। मैं ऐसी गधी औरतको ५ जूते मारने लायक़ समझता हूँ और हज़रत नक़्क़ाद (आलोचक) फ़र्माते हैं कि मैं तालीम देता हूँ कि औरत ऐसी ही हो। हालाँकि बस चले तो तालीम दूँ कि मार ५ जूते। ख़्वाजा हसन निज़ामी इस कोलतारके बाब 'अंजामे नफ़रत'को पढ़कर अख़बारमें तनक़ीद (समालोचना) करते हैं कि अज़ीमबेगने नसीहत दी है कि औरतें अकेली सफ़र न करें। हालाँकि मेरा दस्तूर और अमल यह है कि मैं जवान लड़कीको तनहा अलीगढ़से जोधपुर बुलाता और भेजता हूँ। और सख़्त हिदायत करता हूँ कि ऐसा ही करो। मुसीबत या आफ़त आये तो आने दो।

जब कुछ अपने कने रखते थे, तब भी खर्च था लड़कोंका।
अब जो फ़क़ीर हुए फिरते हैं, मीर उन्हींकी बदौलत है ॥[1]

मालूम नहीं आप इस शेरको 'मीर'के हस्बहाल क्यों समझते हैं ? इसमें आपको वह लानत क्यों नहीं दिखाई देती जो शायर पब्लिकपर भेज रहा है ? बिल्कुल इसी तरह शौकत थानवीने लखनऊके जोरुओंके गुलामोंपर चोट की तो एक साहबने इसको शौकतके हस्बहाल कह दिया है। आप लिखते हैं "शौकत अपनी बेगमकी जूतियाँ खाते रहते हैं।"[2]

उर्दू-शायर विशेषकर ग़ज़ल-गो-शायर गुल-ओ-बुलबुल, साक़ी-ओ-शराब, हुस्न-ओ-इश्क़के ज़रिये दार्शनिक, तात्त्विक, आध्यात्मिक, राजनैतिक बातें बड़े-बड़े मार्केकी इस खूबीसे कह देते हैं कि दिलमें घर कर जायँ और कानोंको पता तक न लगे।

ग़ज़ल-गो-शायरोंमें बहुतसे अपने निजी जीवनमें अत्यन्त धार्मिक और सदाचारी रहे, मगर वे धार्मिकों और पारसाओंका उपहास हमेशा करते रहे। 'ज़ौक़' ऐसे ही सदाचारियोंमेंसे एक थे।

'दाग़' और 'रियाज़' खैराबादीने कभी शराब छुई भी नहीं। मगर इनके कलामको देखकर किसीको विश्वास ही नहीं होता कि ये भी अछूते बचे होंगे। उन्होंने स्वयं अपने जीवनमें यह भेद किसीको न बताया क्योंकि वह जानते थे कि किसीको भी यक़ीन न आयेगा।

'असग़र' गौण्डवी जैसे भद्र व्यक्ति जिनके सायेमें आकर मशहूर रिन्द 'जिगर' मुरादाबादी भी तौबा कर लेते थे; हुस्नो-इश्क़, साक़ी-

---

[1] इसी मज़मूनका मीर साहबका एक शेर ये भी है :—

'मीर' क्या सादा हैं बीमार हुए जिसके सबब।
उसी अत्तारके लौण्डेसे दवा लेते हैं ॥

[2] 'शायर' मार्च १९४५, पृ० ३२-३३

ओ-शराबपर उम्र भर लिखते रहे; क्योंकि ग़ज़लका क्षेत्र ही ये है। कोई कितना ही कल्पनाकी उड़ान ले अन्तमें उतरना उसे इसी क्षेत्रमें होगा। बक़ौल ग़ालिब :—

बनती नहीं है बादा-ओ-साग़र कहे बग़ैर।

उर्दू-शायरीमें कुछ पारिभाषिक शब्द ऐसे हैं जो बार-बार प्रयुक्त होते हैं और जिनको समझे बिना शायरीका मर्म समझमें नहीं आता। इन्हीं पारिभाषिक शब्दोंका प्रयोग करके उर्दू-शायर मनकी तरंगमें सब कुछ कह जाते हैं। अतः पुस्तक प्रारम्भ करनेसे पूर्व उनको जान लेना आवश्यक है। सुविधाके लिये हमने ऐसे शब्दोंको चार—**गुलशन, मयख़ाना, इश्क़** और **सहरा**—शीर्षकोंमें विभक्त कर दिया है। और इन शीर्षकोंमें अधिकतर हमने उन शायरोंका कलाम दिया है, जिनको हम ३१ शायरोंकी निश्चित संख्याकी क़ैदके कारण प्रस्तुत पुस्तकमें नहीं दे सके हैं। हालाँ कि सौदा, आतिश, नासिख़, नसीम, रियाज़, साइल, बेख़ुद, आग़ा शाइर, कैफ़ी, साहिर, माइल, जलील, अज़ीज़, सफ़ी, ज़रीफ़नूह, आरज़ू, दिल, अहसन, माहरहरवी, आदि जैसे बाकमाल उस्ताद और रविश सद्दीक़ी, बिस्मिल इलाहाबादी, बहज़ाद लखनवी, पं० हरिश्चन्द्र अख़्तर, त्रिलोकचन्द महरूम आदि जैसे लोकप्रिय कलाकारोंका पुस्तकमें उल्लेख न करना बड़ी भारी धृष्टता है। हम इनमेंसे कितने ही जीवित शायरोंको मुशायरोंमें बार-बार सुनकर भी नहीं अघाये हैं। मगर संकलनकी कोई तो निश्चित संख्या रखनी ही थी। अतः इच्छा होते हुए भी चुना हुआ बहुतसा कलाम मजबूरन छोड़ना पड़ा। इन शीर्षकोंमें उक्त शायरोंके १-१; २-२ शेर देनेका लोभ हम संवरण नहीं कर सके हैं। इसीलिए यह अध्याय आवश्यकतासे अधिक लम्बा हो गया है। पुस्तकमें उल्लिखित ३१ शायरोंका कोई शेर—प्रसंगवश इस परिच्छेदमें वही दिया गया है जो प्रायः अन्यत्र नहीं लिखा गया है।

गुलशन=पुष्प वाटिका

गुल	=	फूल, बुलबुलका प्रेम-पात्र ।
बुलबुल	=	मधुर बोलनेवाला सुन्दर पक्षी, गुलपर आसक्त ।
आशियाँ	=	घोंसला ।
क़फ़स	=	पिंजरा ।
बाग़बाँ	=	बाग़का रक्षक, व्यवस्थापक ।
गुलचीं	=	फूल तोड़नेवाला ।
सैयाद	=	अहेरी, शिकारी ।

इस गुलशनकी आड़में उर्दू-शायरोंने बड़े-बड़े मर्मस्पर्शी तीर छोड़े हैं; और इस खूबीसे कि हज़ारोंका खून हो जाय, मगर दामनपर दाग़ तक न आने पाये। शोषकों और पीड़िकोंके भयसे वास्तविक बात कहना, शोषितों और पीड़ितोंको उनके कर्त्तव्यका ज्ञान कराना, जब असम्भव हो जाता है; तब कवि ऐसी सांकेतिक भाषामें अपने उद्‌गार प्रकट करता है कि उसका मूल उद्देश्य भी पूरा हो जाय और अत्याचारीको आभास भी न मिलने पाये। क्योंकि आभास होनेसे वह सावधान होकर और भी अधिक वेगसे अत्याचार करने लगता है। गुलशनमें इसी तरहके राजनैतिक दाव देखनेको मिलते हैं। दरअसल :—

चमन	=	वतन, देश ।
गुल	=	परतन्त्र मनुष्यका प्रेम-पात्र, देश, धन ।
बुलबुल	=	परतन्त्र मनुष्य ।
आशियाँ	=	परतन्त्र मनुष्यका घर ।
क़फ़स	=	कारागृह ।
बाग़बाँ	=	देश-रक्षक, नेता ।

गुलचीं = अर्थ-लोलुप, देश-शत्रु ।
सैयाद = अधीन करनेवाला विदेशी विजेता ।

इन रूपकोंको ध्यानमें रखते हुए आइए, गुलशनकी सैर कीजिए ।

चमन

देश जब समृद्धिशाली था, सुख-वैभवका सब सामान था, तब भी हमें हमारा देश प्रिय था । और आज यह उजाड़ दिया गया है, तब भी हमारे दिलों में वही प्यार है । हम उसके बाह्य रंग-रूप पर मोहित नहीं, हमें तो जन्मजात उससे दिली मुहब्बत है ।

बूए[1]ख़िज़ाँसे मस्त हैं, याद हमें बहार क्या ?
हम तो चमन परस्त हैं, फूल कहाँके ख़ार[2] क्या ??

—फ़ानी बदायूनी

देशकी आन्तरिक स्थिति इतनी विषाक्त हो चुकी है कि कारागृहमें पड़े हुए लोग भी यहाँकी हालतको देखकर कराह उठते हैं :—

नहीं मालूम किस हालतमें हूँ मैं बाग़े आलममें ।
क़फ़स[3] वाले भी मुझको देखकर फ़रियाद करते हैं ।।

—साक़िब लखनवी

ऐसे भी लोग हैं जो विदेशी बन्धनको ज़ेवरकी तरह अपना लेते हैं । विदेशोंमें ही रहकर गुलामीको ही अपने वतनपर तरजीह देते हैं :—

ख़ुदफ़रामोश[4] क़फ़समें हैं, चमन याद नहीं ।
ग़ैर[5] के हो गये ऐसे कि वतन याद नहीं ।।

—साक़िब लखनवी

---

[1] पतझड़की गन्ध; [2] काँटे; [3] पिंजरा, कारागृह; [4] अपनेको भूले हुए; [5] शत्रु ।

गुल

जब देशमें कोई उत्साहवर्द्धक और गुणज्ञ नहीं होता तो गुणी यूँ ही अविकसित दशामें मुर्झा जाते हैं। उन्हें अपने कमालात दिखानेका अवसर ही नहीं मिल पाता है :—

हज़ारो साल नर्गिस[1] अपनी बेनूरी[2] पै रोती है।
बड़ी मुश्किलसे होता है चमनमें दीदावर[3] पैदा॥

—इक़बाल

जिस देशमें पारखी नहीं, वहाँ नररत्न उत्पन्न होने बन्द हो जाते हैं। विकसित होने—कुछ कर गुज़रनेका अवसर ही विचारोंको नहीं मिल पाता :—

कोई इन फूलोंकी क़िस्मत देखना।
ज़िन्दगी काँटोंमें पलकर रह गई॥

—अर्शी भोपाली

गुञ्चोंके मुस्कराने पै कहते हैं हँसके फूल—
"अपना करो ख़याल हमारी तो कट गई"॥

—शाद अज़ीमाबादी

भिन्न-भिन्न पहलुओंपर कतिपय अशआर :—

शाख़ोंसे बर्गे गुल नहीं झड़ते हैं बाग़में।
ज़ेवर उतर रहा है उरूसेबहार[4]का॥

—अमीर मीनाई

---

[1] एक फूल जिसकी उपमा उर्दू-शायर सुन्दर आँखके लिए देते हैं।
[2] बेक़दरी।
[3] देखनेवाला, मूल्य समझनेवाला।
[4] बहाररूपी दुल्हन।

सुबहको राजे[1] गुलो शबनम खुला।
हँसनेवाले रात भर रोते रहे॥
—साक़िब लखनवी

रफ़ीक़ों[2]से रक़ीब[3] अच्छे जो जलकर नाम लेते हैं।
गुलोंसे ख़ार[4] बेहतर हैं जो दामन थाम लेते हैं॥
—अज्ञात

बूये गुल फूलोंमें रहती थी, मगर रह न सकी।
मैं तो काँटोंमें रहा और परेशाँ न हुआ॥
—साक़िब लखनवी

बुलबुल

इसे गुलदम और अन्दलीब भी कहते हैं। यह फूलोंका प्रेमी होता है। फूलोंका तनिक-सा भी अनिष्ट इसे मृत्युसे अधिक वेदना पहुँचाता है। गुलके किंचित मात्र कुम्हलानेसे यह बेचैन हो उठता है। भला ऐसा कौन देश-प्रेमी होगा जिसे अपने देशकी वस्तु-क्षतिसे आघात न पहुँचे? इसी प्रेमको किस खूबीसे अमीर मीनाई साहब बयान करते हैं :—

झाड़ती है कौनसे गुलकी नजर?
बुलबुलें फिरती[5] हैं क्यों तिनके लिये?

उसके प्रेम-पात्रसे कोई अन्य प्रेम करने लगे यह भी उसे बर्दाश्त नहीं :—

फट पड़ा एक आस्माँ बुलबुलके दिलपर रातको।
रख दिया फूलों पै मुँह शबनम[6]ने जिस दम प्यारसे॥
—साक़िब लखनवी

---

[1] भेद; [2] मित्रों; [3] शत्रु; प्रतिस्पर्द्धी; [4] काँटे; [5] कुछ लोग बुलबुलको पुलिंग और कुछ स्त्रीलिंग लिखते हैं; [6] ओस।

फूलोंके नष्ट होनेपर बुलबुल सुध-बुध भूले बैठा है। मारे सन्तापके वह जान न दे-दे, अपने कर्तव्यको न भूल बैठे, इसी ख़यालसे रिन्द साहब फ़रमाते हैं :—

आ अन्दलीब[1]! मिलके करें आहो-ज़ारियाँ[2]।
तू हाय गुल पुकार, मैं चिल्लाऊँ हाय दिल॥

शायद रोनेसे दिल हलका हो जाये और सुध-बुध आ जाये।

आशियाँ

देशकी आन्तरिक स्थिति इतनी विषाक्त हो चुकी है कि—

दिल घुट रहा है आपसे आप आशियानेमें।
अच्छी नहीं चमनकी हवा इस ज़मानेमें॥

—साक़िब लखनवी

चार दिनके सुखमें भी आगेका ख़तरा दिखाई देता था। क्या ख़ूब फ़र्माया है :—

चार दिनकी इस बुलन्दीमें भी थी पस्ती निहाँ।
आशियानेसे नज़र आता था घर सैयादका॥

—साक़िब लखनवी

परतन्त्रताके सुनहरे कटघरेसे अपनी घास-फूसकी झोपड़ी भी प्रिय मालूम होती है :—

क़फ़स[3]की तीलियाँ अच्छी हैं तिनकोंसे नशे[4]मनके।
यह सब कुछ है मगर सैयाद! दिलपर क्या इजारा है?
क़फ़स-ओ-आशियाँका फ़र्क़ ऐ सैयाद! सुन मुझसे।
यह तेरी दस्तकारी है, उसे मैंने बनाया है॥

—साक़िब लखनवी

---

[1] बुलबुल; [2] रोना-चिल्लाना; [3] पिंजरा; [4] घर, घोंसला।

पराये क़ब्ज़ेमें होनेसे तो घरका विध्वंस होना अच्छा :—

जब मैं नहीं तो बाग़में इसका मुक़ाम क्यों ?
अच्छा हुआ कि लग गई आग आशियानेमें ॥

—साक़िब लखनवी

हमारे घरपर और अधिक सितम न ढाये गये, इसका कारण कुछ और है, शत्रुका दयाभाव नहीं। अब हममें भी अत्याचारोंको रोकनेकी, नष्ट करनेकी शक्ति आगई है; इसीलिए शत्रु छेड़ते हुए झिझकता है :—

गिरी न बर्क़[1] कुछ, इस ख़ौफ़से मेरे होते।
तड़पके आग बुझा दूँ न आशियानेकी ॥

—फ़ानी बदायूनी

और देखिये :—

इक मेरा आशियाँ है कि जलकर है बेनिशाँ।
इक तूर है कि जबसे जला नाम हो गया ॥

—साक़िब लखनवी

गुलशनसे उठके मेरा मकाँ दिलमें आ गया।
इक दाग़ बन गया है नशेमन जला हुआ ॥

—साक़िब लखनवी

बहारोंमें यह होश ही कब रहा था।
कि जलती है क्या शै[2], कहाँ आशियाँ है ॥

—मदहोश ग्वालियरी

उस साल फ़स्ले गुलमें उजड़ा था बनते-बनते।
रहता तो आशियाँको अब एक साल होता ॥

—आसी लखनवी

---

[1] बिजली; [2] चीज़।

तामीरे[1]आशियाँसे मैंने यह राज़[2] पाया।
अहलेनवा[3]के हक़में बिजली है आशियाना॥
—इक़बाल

क़फ़स=पिंजरा, कारागृह

हम कारागृहमें जानबूझकर आये हैं, और अपने मनसे चुपचाप सब सहन कर रहे हैं। तेरा किसी तरह दिल न दुखे, इसी हमारे विचार (आन्दोलन)ने हमें मजबूर कर दिया है। तू अपने बाहु-बलपर अधिक न इतरा :—

दरेक़फ़स[4] न खुला, क़द्रेसब्र[5]कर सैयाद!
तड़पते हम तो पहाड़ोंमें रास्ता करते॥

कारागृहमें बन्द हैं फिर भी घरका प्यार बना हुआ है :—

होगये बरसों कि आँखोंकी खटक जाती नहीं।
जब कोई तिनका उड़ा, घर अपना याद आया मुझे॥
—साक़िब लखनवी

वतनके लिए जेल जाएँ और अपने ही लोग हँसी उड़ाएँ, यानी हमारी गुलामी दूसरोंके लिए तमाशा है :—

क़ैदेग़म भी दिल लगी है हँसनेवालोंके लिये।
अन्दलीब आकर क़फ़समें इक तमाशा हो गई॥

चन्द और नमूने :—

गुलशन बहारपर था नशेमन बना लिया।
मैं क्यों हुआ असीर[6] मेरा क्या क़ुसूर था?

---

[1] घोंसलेका निर्माण; [2] भेद; [3] मधुर स्वरवाला; [4] पिंजरेका दर्वाज़ा; [5] सन्तोषका आदर कर; [6] गिरफ़्तार।

मेरी क़ैदका दिलशिकन[1] माजरा[2] था।
बहार आई थी, आशियाँ बन चुका था॥
आफ़तेदहर[3]को क्या ख़ुफ़्ता-ओ[4]बेदार[5]से काम ?
क़ैद होनेसे न समझो कि मैं हुश्यार न था॥

—साक़िब लखनवी

हमीं नावाक़िफ़े रस्मेचमन थे ऐ क़फ़सवालो !
फ़लकसे अहद ले लेते तो फ़िक्रे आशियाँ करते॥

—आसी लखनवी

बाग़बाँ

बाग़की रक्षा करनेवाला और गुलोंको सींचनेवाला। यह बुलबुलका एक तरहसे तरफ़दार समझा जाता है। किन्तु जब कभी यह फूलोंके तोड़ने आदिका काम करता है, तो बुलबुल इसे भी अपना शत्रु समझ लेती है। फूल तोड़ना तो दरकिनार, इसकी बे-पर्वाहीसे भी अगर गुलशनका कुछ नुक़सान होने लगता है तो वह भी बुलबुलको बर्दाश्त नहीं होता:—

दस्तेगुलचीं क़त्ले आमे लालओ गुल मी कुनद।
बाग़बाँ दर सहने गुलशन, मस्ते ख़्वाब उफ़तादाअस्त॥

(बुलबुल मन ही मनमें कुढ़ती हुई कह रही है—गुलचींके हाथसे बाग़ क़त्ले आम हो रहा है और बाग़बाँ फिर भी गुलशनमें मीठी नींद सो रहा है।)

निशाने बर्गेगुल[6] तक भी, न छोड़ इस बाग़में गुलचीं !
तेरी क़िस्मतसे रज़्मआराइयाँ[7] हैं बाग़बानोंमें।

—इक़बाल

---

[1] दिल तोड़नेवाला; [2] दृश्य; [3] सांसारिक आपदाओं; [4] सोये हुओं; [5] जागे हुओं; [6] फूलकी पँखुड़ी; [7] लड़ाई-झगड़े।

सैयाद तो है ही ज़ालिम, इसलिए बुलबुलको इसकी विशेष शिकायत नहीं होती, क्योंकि सैयाद तो उसका शत्रु है ही, किन्तु जब बाग़वाँ (रक्षक) जिससे कभी सताये जानेका ख़याल भी नहीं होता—बुलबुलके प्रति दुर्व्यवहार करता है तब बुलबुलके रंजोग़मकी कोई सीमा नहीं रहती। रक्षक ही भक्षक बन जाएँ, अपने ही पराये हो जाएँ, तब दिलोंपर क्या गुज़रती है, मुलाहिज़ा फ़रमाइए :—

बाग़बाँने आग दी जब, आशियानेको मेरे।
जिनपै तकिया था, वही पत्ते हवा देने लगे॥

—साक़िब लखनवी

बुलबुल कहती है—"बाग़के रक्षकने ही जब मेरे आशियानेको आग लगाई तब औरोंके ज़ुल्मोसितमको क्या कहूँ? जिन पत्तोंपर मेरा तकिया था वह पत्ते ही उड़-उड़कर आगको भड़कानेमें सहायता देने लगे।"

इस शेरमें उक्त मनोभावको व्यक्त करते हुए कविने इक सीधी-साधी बात रखकर शेरको ख़ूब चमकाया है। आग लगानेपर पत्ते उड़ने ही लगते हैं, मानों वह आगको भड़कानेके लिए ही ऐसा करनेको कटिबद्ध होते हैं। जब मुसीबत आती है तब अपने भी पराये हो जाते हैं। जिनसे बहुत कुछ आशाएँ होती हैं, वह भी अनिष्ट करनेपर उतारू हो जाते हैं। ऐसे ही भावोंको लेकर उर्दूके कवियोंने अपनी भावुकताका परिचय दिया है। प्रसंगवश कुछ अशआर दिये जाते हैं :—

बहुत उम्मीद थी जिनसे, हुए वह महर्बां क़ातिल।
हमारे क़त्ल करनेको बने ख़ुद पासबाँ[1] क़ातिल॥

---

[1] रक्षक।

होता नहीं है कोई बुरे वक़्तमें शरीक।
पत्ते भी भागते हैं ख़िज़ाँ[1]में शजर[2]से दूर॥

—अज्ञात्

सियह[3] बख़्तीमें कब कोई किसीका साथ देता है।
कि तारीकी[4]में साया भी, जुदा रहता है इन्साँसे॥

—नासिख़

कौन होता है बुरे वक़्तकी हालतका शरीक।
मरते दम आँखको देखा है कि फिर जाती है॥

—अज्ञात्

दोस्तोंसे इसक़दर सदमे उठाये जानपर।
दिलसे दुश्मनकी अदावतका गिला[5] जाता रहा॥

—आतिश

यह ग़म नहीं है वह जिसे कोई बटा सके।
ग़मख़्वारी[6] अपनी रहने दे ऐ ग़मगुसार[7]! बस!!
वे ग़ैर दुश्मनीका हमारी ख़याल छोड़।
याँ दुश्मनीके वास्ते काफ़ी है यार बस॥

—हाली

गुलचीं=फूल चुननेवाला

यह बुलबुलको क़तई पसन्द नहीं, क्योंकि यह उसके माशूक़ों (गुलों)को नष्ट करता है। इसके इस व्यवहारसे बुलबुलको मर्मान्तिक पीड़ा होती है।

---

[1]पतझड़; [2]पेड़; [3]दुर्दिन; [4]अँधेरे; [5]शिकायत; [6]हमदर्दी; [7]हमदर्द।

वाए[1] क़िस्मत ! कि चमनमें हूँ, मगर शाद[2] नहीं।
जौरे गुलचीं मुझे क्या कम है, जो सैयाद नहीं ॥

—रहमत अजकावली

सैयाद

ये हज़रत बुलबुलको उसके आशियाँसे छुड़ाकर क़फ़स में बन्द किये रहते हैं। बुलबुलको सताना ही इनका ध्येय है। यह गुलशन उजाड़ते हैं, आशियाँको आग लगाते हैं, बुलबुलको जैसे भी बने व्यथा पहुँचाते रहते हैं। क़फ़समें बन्द बुलबुल परतन्त्रता के बन्धनसे घबराकर सैयादके आगे गिड़गिड़ाते हुए कहता है :—

आज़ाद मुझको कर दे, ओ क़ैद करनेवाले।
मैं बेज़बाँ हूँ क़ैदी, तू छोड़कर दुआ ले ॥

—इक़बाल

स्वतंत्रताकी चाहमें उसे यह भी ध्यान नहीं रहा कि स्वतन्त्रता माँगेसे नहीं मिलती वह तो छीनी जाती है :—

बना लेता है मौजेख़ूने[3] दिलसे इक चमन अपना।
वह पाबन्देक़फ़स[4] जो फ़ितरतन[5] आज़ाद होता है ॥

—असग़र गोण्डवी

जो स्वतंत्रताको जन्मसिद्ध अधिकार समझते हैं, वह कारागृहमें बन्द होते हुए भी अपने रक्तसे सींचकर सब कुछ कर गुज़रते हैं। रोते और गिड़गिड़ाते तो वही हैं जिन्हें स्वतंत्रताकी भूख नहीं लगी :—

---

[1] हाय; [2] ख़ुश; [3] रक्तकी लहरें; [4] क़ैदी; [5] जन्मतः, स्वभावतः।

यह सब नाआश्नाये[1] लज्ज़ते[2] परवाज़ हैं शायद ।
असीरों[3] में अभीतक शिकवये[4] सैयाद होता है ।।

—असग़र गोण्डवी

परवश पंछी जब विवश हो जाता है, अत्याचार सहन करते-करते जब तंग आ जाता है और उनके निराकरणका कोई उपाय नहीं सूझता है, तब उसका भी मन होता है कि अत्याचारीको भी कुछ हाथ लग जाएँ; ताकि वह अब अधिक अत्याचार न कर सके । वर्षोंकी मनोकामना और परिश्रमके बाद साधन भी जुटे, मगर बेसूद :—

बर्क़[5] गिरनेको गिरी लेकिन ज़रा बचकर गिरी ।
आँच तक आने न पाई ख़ानये[6] सैयाद पर ।।

—बर्क़

हायरे दुर्भाग्य ! शत्रुपर बिजली तो गिरी, मगर तनिक हट कर गिरी, उसे आँचतक न आने पाई । तनिक-सा भी झुलस जाता तो कुछ तो आत्म-सन्तोष होता । वर्षोंके प्रयत्न इस तरह धूलमें मिलते देख शोषित और पीड़ितको कितनी वेदना होती है, व्यक्त नहीं की जा सकती ।*

शत्रु परस्पर लड़ाई-झगड़ेमें लिप्त हो जाएँ, यह संवाद भी पराधीनोंके लिए आह्लादकारक है । क्योंकि इससे शत्रुओंमें निर्बलता आयेगी और इससे स्वतन्त्र होनेका अवसर मिल सकता है :—

---

[1] अनभिज्ञ; [2] उड़नेके आनन्दसे; [3] क़ैदियों; [4] शिकायत; [5] बिजली; [6] सैयादके घर पर ।

*अमर शहीद भगतसिंहने जब साइमन कमीशनपर बम फेंका था और निशाना ख़ता हो गया था, उन्हीं दिनों किसी ग़ज़लमें उक्त शेर पढ़ा था ।

सुनते हैं गुलचोंसे झगड़ा हो गया सैयादका।
हमसफ़ीरो[1] आज मौक़ा है मुबारिकबादका।

—दाग़

किसी भी जातिका बलिदान व्यर्थ नहीं जाता। वह बलिदान तो वतन रूपी चमनको सींचनेमें खाद और पानीका काम देता है :—

चमन सैयादने सींचा यहाँ तक खूने बुलबुलसे।
कि आखिर रंग बनकर फूट निकला आरिज़े[2]गुलसे॥

—अज्ञात

चन्द और नमूने :—

न तड़पनेकी इजाजत है न फ़रियादकी है।
घुटके मर जाऊँ, यह मर्ज़ी मेरे सैयादकी है॥

—शाद

गले पै छुरी क्यों नहीं फेर देते।
असीरोंको बेबालों-पर करनेवाले॥

—यगाना चंगेज़ी

यहाँ कोताहिये[3] जौक़ेअमल[4] है खुद गिरफ़्तारी।
जहाँ बाज़ू सिमटते हैं वहीं सैयाद होता है॥

—असग़र गोण्डवी

कल बहुत नाज़ाँ[5] उरूजेबख़्त[6] पर सैयाद था।
बात इतनी थी कि मैं था क़ैद, वह आज़ाद था॥

——साक़िब लखनवी

---

[1] एक ही प्रकारकी बोली बोलनेवाले, साथी; [2] फूलोंके कपोलोंसे; [3] कमी; [4] कर्तव्यका चाव; [5] अभिमानी; [6] भाग्यकी बढ़ौती।

मैं तो था मजबूर रहनेपर कि था पाबन्दे इश्क़ ।
कोई पूछे बाग़में क्या काम था सैयादका ?

—साक़िब लखनवी

मेरे सैयादकी तालीमकी है धूम गुलशनमें ।
यहाँ जो आज फँसता है वो कल सैयाद होता है ।।

—अकबर इलाहाबादी

मयख़ाना=मधुशाला

झिझकिये नहीं, जब आ ही गये तो खुलकर बैठिये। यहाँ ऊँच-नीचका भेद-भाव नहीं। ज़ाहिद,[1] नासेह,[2] शेख़,[3] और वाइज़[4] की परवा न कीजिये। वे तो यहाँ ख़ुद ही चोरी-चुपके आते हैं, और जल्दीसे दुम दबाकर भाग जाते हैं। यह बुज़ुर्ग तो पीरेमुग़ाँ[5] हैं। इनकी कृपादृष्टि तो ग़रीब-अमीर सबपर यकसाँ रहती है। ये जो सुराही लिये आ रहे हैं, यही साक़ी[6] हैं। उधर वे रिन्द[7] बैठे हुए हैं। उनके हाथोंमें साग़िर[8] और पैमाने[9] हैं जिनमें सुर्ख़ मय भरी हुई है। इधर ये शराब से भरे हुए ख़ुम[10] और कूज़े[11] रखे हुए हैं। जब उमरख़य्याम और हाफ़िज़ जिन्दा थे, यहाँ रोज़ आते थे। यहाँके बारेमें जो उन्होंने लिखा है, वह देखिये दीवारोंपर चारों तरफ़ सोनेके पानीसे अंकित है :—

१—एक प्रभातकालमें मेरे मदिरा-गृहसे एक आवाज़ मेरे कानोंमें पड़ी कि "ऐ मेरे मतवाले मदिरा-प्रेमी! उठ-बैठ, आ जीवन-प्याला भर जानेसे पहले ही हम उस ईश्वरके प्रेमरूपी प्यालेका पान करें। मृत्यु होनेसे पहले ही उससे लगन लगा लें!"

२—प्रणयकी मदिरा हमें बहुत लाभ पहुँचाती है। उससे हमारे शरीर तथा प्राणोंको शक्ति प्राप्त होती है। उसके पीनेसे रहस्योंका पता लग जाता है। बस मैं उस मदिराका केवल एक घूँट चाहता हूँ।

---

[1] सब दुष्कर्मोंसे बचकर ईश्वरका उपासक; [2] उपदेशक; [3] इस्लाम धर्मका आचार्य; [4] धर्मोपदेशक; [5] मधुशाला-संचालक; [6] मदिरा वितरक, प्रेयसी; [7] शराबी; [8-9] शराब पीनेके पात्र; [10-11] शराबके मटके—घड़े।

उसके उपरान्त न तो मुझे संसार अथवा जीवनकी ही चिन्ता रहेगी, और न मृत्युकी।

४—प्रणयीको समस्त दिन प्रणयमें ही मतवाला रहना चाहिए। उसे पागल, व्याकुल होकर भटकते रहना चाहिए। होशमें प्रत्येक वस्तु-की चिन्ता घेरे रहती है; परन्तु मतवाला हो जानेपर सभी वस्तुओंका ध्यान मस्तिष्कसे दूर हो जाता है। यदि किसी वस्तुका ध्यान रहता है तो उसीका, जिसने मतवाला बना दिया है।

२०—उस प्रणयके मदिरागृहकी सूचीमें सबसे पहले मेरा ही नाम है। मस्ती और मदिरा मेरे ही हिस्सेमें आ पड़ी हैं। शराब विक्रेताओंके इस घरमें जो कुछ हूँ मैं ही हूँ। मैं ही शरीर और मैं ही प्राण हूँ! इन समस्त संसारकी सूरतोंमें केवल मैं ही मैं हूँ।

५२—यदि किसी पहाड़को मदिरा पिला दो तो वह भी हिलने लगे। इसलिए जो उसे बुरा बतलाता है वह स्वयं बुरा है। मुझे मदिरा पीनेसे क्यों रोकते हो? यह तो ऐसी वस्तु है जिसके द्वारा ईश्वरसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त होता है।[1]

—उमर खैय्याम

"यह नेकी, सच्चाई और पवित्रताका मार्ग तुम्हारे लिए ही मुबारिक रहे, मैं मदिरागृह, जनेऊ और मन्दिर तक पहुँचनेवाला मार्ग हूँ।"

"ऐ पवित्र हृदय साधु! मुझे मदिरा-पानसे न रोक। जिस समय मैं उत्पन्न हुआ था, उस समय स्रष्टाने मेरी मिट्टीको मदिरासे ही गूँधा था।"

"चाहे जितना भी पवित्र मनुष्य क्यों न हो, लेकिन तबतक वह स्वर्गमें

---

[1] उमरखैयामकी फ़ारसी रुबाइयोंका अनुवाद 'ईरानके सूफ़ी कवि', पृ० ५२-६४से।

नहीं जा सकता जबतक कि मेरे समान वह अपने वस्त्रोंको शराबख़ानेमें शराबके लिए रेहन नहीं कर देता।"

"काबेमें और शराबख़ानेमें कोई अन्तर नहीं है। जिस तरफ़ भी तुम्हारी दृष्टि जाएगी वह (प्यारा) ईश्वर सामने आ जायगा।"[1]

—हाफ़िज़

जी, अब आप समझे इस जगहका महत्व ! ये रिन्द (भक्त) अपने माशूक़ (ईश्वर)के वस्ल (दर्शन)के लिए मदिरा-पान (भक्ति-उपासना) करके बेसुध (तन्मय) रहते हैं। इन्हें दीवानी दुनिया दीवाना समझती है। परन्तु ये लोग इसी दीवानगीमें वोह-वोह पतेकी बात कहते हैं कि अच्छे-अच्छे तत्ववेत्ता बग़लें झाँकने लगते हैं। 'रिन्द' तो ज़ाहिद, नासेह और शेख़की परछाँईंसे भी दूर रहना चाहते हैं, क्योंकि उनका विश्वास है कि ये धर्मके ठेकेदार अक्सर ढोंगी और धूर्त होते हैं। इनके और मयख़ानेके बारेमें हज़ारों लोगोंने अपनी-अपनी राय भेजी हैं। वे सब इस बड़े पोथेमें दर्ज हैं। हाँ, हाँ, शौक़से पढ़ सकते हैं :—

शराब—

यह क्या मज़ाक़ फ़रिश्तोंको आज सूझा है।
ख़ुदाके सामने ले आये हैं पिलाके मुझे॥

—रियाज़ ख़ैराबादी

जिनको पीनेका तरीक़ा न सलीक़ा मालूम।
जाके कौसर[2] पै यकायक वोह पियेंगे कैसे ?

—अज्ञात

---

[1] हाफ़िज़के कलामका अनुवाद, 'ईरानके सूफ़ी कवि', पृ० ३२३-२१से।
[2] बहिश्तकी वह नहर जिसमें शराब बहती है।

यहाँ क़िसानये बैरो[1] हरम[2] नहीं 'असग़र'।
यह मैकदा[3] है यहाँ बेख़ुदीका आलम है ॥

—असग़र गोण्डवी

हंगामा है क्या बरपा, थोड़ी-सी जो पी ली है।
डाका तो नहीं मारा, चोरी तो नहीं की है ॥

—अकबर इलाहाबादी

सदसाला[4] दौरेचर्ख़[5] था साग़िरका एक दौर।
निकले जो मैकदे[6]से तो दुनिया बदल गई ॥

× × ×

यह काली-काली बोतलें जो हैं शराबकी।
रातें हैं उनमें बन्द हमारे शबाब[7]की ॥

× × ×

मय[8] छीन कर किसी से जो पीते तो थी ख़ता।
जब दाम देके पी तो, गुनह क्या किसी का था ?

—रियाज़ ख़ैराबादी

पीता नहीं शराब कभी बेवज़ू किये।
क़ालिब[9]में मेरे रूह[10] किसी पारसा[11]की है ॥

—आबरू

सोनेवालोंको क्या ख़बर ऐ रिन्द[12]!
क्या हुआ एक शबमें, क्या न हुआ ?

—साक़िब लखनवी

---

[1] मन्दिर; [2] मस्जिद; [3] शराबघर; [4] सौ वर्ष, एक सदी; [5] आसमानका दौर; [6] शराबख़ाने; [7] यौवन, सौन्दर्य; [8] शराब; [9] शरीर; [10] आत्मा; [11] पवित्रात्मा; [12] शराबी।

रोज पीते हैं सुबूही भी अदा करके नमाज ।
फ़र्क़ आजाय तो पाबन्दिये औक़ात ही क्या ?

—दाग़

अजाँ हो रही है पिला जल्द साक़ी ।
इबादत करूँ आज मख़मूर होकर ॥

—अज्ञात्

दिनमें चर्चे[1] ख़ुल्दके शबमें मये कौसरके ख़्वाब ।
हम हरममें आरहे मयख़ाना वीराँ देखकर ॥

—रियाज ख़ैराबादी

जाहिद—

जाहिदको डेढ़ ईंटकी मस्जिद पै ये ग़रूर ।
वह भी ख़ुदाके फ़ज़लसे[2] घरका मकाँ नहीं ॥

—अज्ञात्

हुआ है चार सिजदोंपर यह दावा जाहिदो तुमको ।
ख़ुदाने क्या तुम्हारे हाथ जन्नत बेच डाली है ?

—दाग़

लुत्फ़ेमय तुझसे क्या कहूँ जाहिद !
हाय, कमबख़्त ! तूने पी ही नहीं ॥

—दाग़

है नमाज उन जाहिदोंकी जौफ़ेइमाँ[3] की दलील ।
सामने अल्लाहके जाते हैं उठते-बैठते ॥

—अमीर मीनाई

---

[1]जन्नत; [2]कृपा से; [3]ईमानकी कमजोरी ।

क़दम रखना सम्हलकर महफ़िले रिन्दाँमें ऐ ज़ाहिद !
यहाँ पगड़ी उछलती है, इसे मयख़ाना कहते हैं ॥

—अज्ञात्

बोतल खुली जो हज़रते ज़ाहिदके वास्ते।
मारे ख़ुशीके काग भी दो गज़ उछल गया ॥

—क़ैसर देहलवी

नासेह—

मस्जिदमें बुलाता है हमें नासहे नाफ़हम[1]।
होता अगर कुछ होश तो मयख़ाने न जाते ॥

—दाग़

हज़रते नासह गर आएँ दीदओ दिल फ़र्शे राह।
कोई मुझ को यह तो समझादे वोह समझायेंगे क्या ?

—ग़ालिब

शेख़—

बाक़ी है मनमें शेख़के हसरत गुनाहकी।
काला करेगा मुँह भी जो दाढ़ी सियाहकी ॥

—ज़ौक़

शेख़ने मस्जिद बना मिसमार बुतख़ाना किया।
तब तो यक सूरत भी थी अब साफ़ वीराना किया ॥

—नसीम

सिधारें शेख़ काबेको हम इँगलिस्तान देखेंगे।
वह देखें घर ख़ुदाका हम ख़ुदाकी शान देखेंगे ॥

---

[1] बेअक़्ल।

तुम नाक चढ़ाते हो मेरी बात पै ऐ शेख़ !
खोचूँगा किसी रोज़ में अब कान तुम्हारे ॥

× × ×

ख़िलाफ़े शरअ़ कभी शेख़ थूकता भी नहीं।
मगर अन्धेरे उजालेमें चूकता भी नहीं॥

—अकबर इलाहाबादी

ऐ शेख़ ! गो नहीं हैं कोई ज़ीशऊर[1] हम।
इतना तो जानते हैं कि तुम बेशऊर हो ॥

—जोश मलसियानी

दहर[2]को तहक़ीर[3]कर इतनी न ऐ शेख़ेहरम[4] !
आज काबा बन गया कलतक यही बुतख़ाना था ॥

—अमीर मीनाई

शेख़ हो या बिरहमन, माबूद[5] है सबका वही।
एक है दोनोंकी मंजिल, फेर है कुछ राहका ॥

—अज्ञात्

लड़ते हैं जाके बाहर यह शेख़ और बिरहमन।
पीते हैं मयकदे[6]में साग़र बदल-बदलकर ॥

—पं० जिनेश्वरदास जैन, माइल, देहलवी

वाइज़—

फ़र्क़ क्या वाइज़ो आशिक़में बताएँ तुमको ?
उसकी हुज्जत में कटी इसकी मुहब्बत में कटी ॥

—अकबर इलाहाबादी

---

[1] अक़्लमन्द; [2] मन्दिर; [3] अपमान; [4] मस्जिद का आचार्य्य; [5] ईश्वर; [6] शराबख़ाने।

दरे[1]मयख़ाना चौपट है, तहज्जुद[2]को हुई चोरी।
निरे टूटे हुए शीशे, फ़क़त झूठे पियाले हैं॥
गुमाँ किसपर करें मयकश, इधर वाइज़ उधर सूफ़ी।
ख़ुदा रक्खे मुहल्लेमें सभी अल्लाहवाले हैं॥
—नवाब साइल देहलवी

हमें तो हज़रते वाइज़की ज़िदने पिलवाई।
यहाँ इरादये नोशे मुदाम किसका था?
—दाग़

मजलिसे वाज़ तो तादेर रहेगी क़ायम।
यह है मयख़ाना अभी पोके चले आते हैं॥
—सम्भवतः क़ायम चाँदपुरीका शेर है।

छिपाकर बहुत पी है मस्जिदमें वाइज़।
यह ज़र्फ़े वज़ू सब खँगाले हुए हैं॥
—रियाज़ ख़ैराबादी

बिरहमन—

बिरहमन नालयेनाक़ूस[3] मस्जिद तक भी पहुँचा दे।
बुरा क्या है मुअज़्ज़न[4] भी अगर बेदार[5] हो जाये॥
—हफ़ीज़ जालन्धरी

---

[1] दरवाज़ा; [2] रात्रिका पिछला पहर, वह नमाज़ जो आधी-रातके बाद पढ़ी जाती है; [3] शंखकी आवाज़; [4] अज़ान देनेवाला; [5] सचेत, आगरूक।

इश्क़=प्रेम, आसक्ति

देखिये, इस मकतब (स्कूल) में तनिक सोच-समझकर क़दम रखिये, ऐसा न हो कि फिर आपको पछताना पड़े । क्योंकि :—

मकतबे इश्क़का दुनियामें निराला है सबक़ ।
उसको छुट्टी न मिली, जिसको सबक़ याद हुआ ।।

जी हाँ ! इस मकतबका उसूल दूसरे मकतबोंसे बिल्कुल अनोखा है । अन्य सब मकतबोंमें सबक़ याद होनेपर छुट्टी मिल जाती है; और यहाँ जिसने एक बार सबक़ याद कर लिया, उसे फिर जीते जी कभी छुट्टी नहीं मिली ।

हाँ, हाँ, शौक़से इस कूचेकी सैर कीजिये, आपको रोकता कौन है ? और चेहरेपर जबतक दो चुल्लू खून है, जेबमें बाप-दादोंका कमाया हुआ रुपया है, तब आप किसीका कहना मानेंगे भी क्यों ? आपकी आँखें साफ़ कह रही हैं :—

नासहा ! मतकर नसीहत, दिल मेरा घबराय है ।
वह मुझे लगता है दुश्मन, जो मुझे समझाय है ।।

भला मुझे क्या ग़रज़ पड़ी है साहब ! जो मैं आपको समझाकर मुफ्तमें दुश्मनी मोल लूँ !

इस कूचेमें मकतबे इश्क़ दो हैं । १—हक़ीक़ी इश्क़ (ईश्वरीय प्रेम), २—मजाज़ी इश्क़ (सांसारिक प्रेम) ।

बहुत बेहतर, आप दोनोंकी ही सैर कीजिये । मगर मेरी नाक़िस रायमें पहले वहाँ फँसे हुए तालिबेइल्मों (विद्यार्थियों)की हालत देख लीजिये, फिर अपने बारेमें कोई फ़ैसला कीजिये ।

हक़ीक़ी इश्क़

हाँ, हाँ, यही सामनेवाला मकतबे-इश्क़े हक़ीक़ी है। और वह देखिये सब बाआवाज़ बुलन्द क्या फ़र्मा रहे हैं :—

मोमिन—

असरे़ग़म ! ज़रा बता देना।
वोह बहुत पूछते हैं, "क्या है इश्क़" ?

शेफ़्ता—

शायद इसीका नाम मुहब्बत है 'शेफ़्ता'।
इक आग-सी है सीनेके अन्दर लगी हुई॥

बेख़ुद देहलवी—

इस इश्क़को आशिक़ीके मज़े हमसे पूछिये।
दौलत मिटाई, रंज सहे, खो दिया शबाब॥

आतिश—

ख़ुदा याद आगया मुझको, बुतों[1]की बेनियाज़ी[2]से।
मिला बामे हक़ीक़त ज़ीनये इश्क़े मजाज़ीमें॥

शाकिर मेरठी—

शौक़े नज़्ज़ारा था जब तक, आँख थी सूरत परस्त।
बन्द जब रहने लगी, पाए हक़ीक़तके मज़े॥

माइल देहलवी—

अपनी तो आशिक़ीका क़िस्सा ये मुख़्तसिर है।
हम जा मिले ख़ुदासे, दिलबर बदल-बदलकर॥

---

[1] पत्थर-हृदय, प्रेम-पात्र, मूर्त्ति; [2] उपेक्षा।

अज्ञात्—

हक़ीक़ी इश्क़को इश्क़े मजाज़ी पहली मंज़िल है।
चलो सूये ख़ुदा ऐ ज़ाहिदो! कूएबुताँ[1] होकर॥

अकबर मेरठी—

क्यों न हो इश्क़े मजाज़ीसे हक़ीक़ीको फ़रोग़[2]?
बन गया काबा वहाँ पहले जहाँ बुतख़ाना था॥

अज्ञात्—

खो गये जब तेरा मकाँ देखा।
मिट गये जब तेरा निशाँ देखा॥

× × ×

दुनियासे हाथ धोके चलें कूए यारमें।
जाइज़ नहीं तवाफ़ेहरम[3] बेवज़ू किये॥

ग़ालिब—

ईमाँ मुझे रोके है, तो खींचे है मुझे कुफ़्र।
काबा मेरे पीछे है, कलीसा मेरे आगे॥

अमीर मीनाई—

बड़ी पेच दर पेच थी राहे दहर।
ख़ुदा हमको लाया, ख़ुदा ले गया॥

---

[1] शायरका तात्पर्य है—मन्दिरोंकी उपासना करते हुए ख़ुदाकी तरफ़ चलो, यानी साकार ईश्वर-पूजा करते-करते निराकार ईश्वर तक पहुँच जाओ।

[2] प्रकाश; [3] मक्के या मस्जिदकी प्रदक्षिणा।

मजरूह—

क्या हमारी नमाज़, क्या रोज़ा ?
बख़्श देनेके सौ बहाने हैं ॥

बहज़ाद लखनवी—

तेरी ज़िक्रने तेरी फ़िक्रने, तेरी यादने वोह मज़ा दिया ।
कि जहाँ मिला कोई नक़्शेपा[1] वहीं हमने सरको झुका दिया ॥

जिगर मुरादाबादी—

रूबरूए दोस्त हंगामे सलाम आ ही गया ।
रुख़सत ऐ दैरो हरम ! दिलका मुक़ाम आ ही गया ॥

आग़ाशायर देहलवी—

तुम्हारा ही बुतख़ाना, काबा तुम्हारा ।
है दोनों घरोंमें उजाला तुम्हारा ॥

अज़ीज़ लखनवी—

तेरे करम[2] में कमी कुछ नहीं, करीम[3] है तू ।
क़ुसूर मेरा है, झूठा उम्मीदवार हूँ मैं ॥

साक़िब—

पर्दा हुआ कि जल्वये वहदतनुमाँ[4] हुआ ।
ग़शने ख़बर न दी मुझे कब सामना हुआ ॥

अलम मुज़फ़्फ़रनगरी—

आये थे तजस्सुस[5] में उसकी, जाते हैं उसीको ढूँढ़ेंगे ।
इस आरज़ी आने-जानेको फिर मरना-जीना क्या कहिये ॥

---

[1] चरण-चिन्ह; [2] कृपा; [3] दातार; [4] ईश्वरका प्रकाश;
[5] तलाश ।

न हुआ सकूँ[1] मयस्सर मुझे बहरेजिन्दगी[2] में।
किसी मौज[3] ने डुबोया किसी मौजने उभारा॥

जी, क्या फ़र्माया आपने ?—"पहले मकतबे इश्क़े मजाज़ी में जाना था, यहाँ आकर तो नाहक़ समय बर्बाद किया।" क्या ख़ूब ! कूचये इश्क़की भी सैर करना चाहते हैं, और घड़ीकी सूईपर भी नज़र जमाये हुए हैं। मालूम होता है आप चिड़ियाघर देखनेके ख़यालमें भूलसे इधर आ निकले हैं। बक़ौल अकबर :—

मग़रबी[4] ज़ौक़[5] है और वज़ह[6]की पाबन्दी भी।
ऊँटपर चढ़के थियेटरको चले हैं हज़रत॥

बस साहब, आपने कर ली इस कूचेकी सैर। लीजिये हम आपको 'मकतबे इश्क़े मजाज़ी' की वार्षिक रिपोर्ट दिये देते हैं। इसे आप निहायत इत्मीनानके साथ पलंगपर लेट-लेटकर पढ़िये और स्वप्नमें आशिक़ बनकर वस्ल और हिज्रका लुत्फ़ उठाइये। आपका इस कूचेसे परिचय भी हो जायगा और किसी क़िस्मकी आँच भी न आयेगी।

---

[1] सुख-शान्ति; [2] जीवन रूपी लहरों; [3] लहर; [4] पश्चिमी; [5] रुचि; [6] आन, टेक।

मजाज़ी इश्क़=सांसारिक प्रेम

काबा भी हम गये न गया पर बुतोंका इश्क़ ।
इस दर्दकी खुदाके भी, घरमें दवा नहीं ॥

—यक़ीन सरहदी

दर्दसे वाक़िफ़ न थे ग़मसे शनासाई न थी ।
हाय ! क्या दिन थे तबीयत जब कहीं आई न थी ॥

—जलील

जवानीकी दुआ लड़कोंको नाहक़ लोग देते हैं ।
यही लड़के मिटाते हैं, जवानीको जवाँ होकर ॥

—अकबर इलाहाबादी

जज्बयेइश्क़[1] सलामत है तो इन्शाअल्लाह ।
कच्चे धागेमें चले आएँगे सरकार बँधे ॥

—अज्ञात्

इश्क़की जिसपर इनायत होगई ।
होश जाइल,[2] अक़्ल रुख़सत होगई ॥

—अज्ञात्

कभी हर्फ़े मुहब्बत ता-ब-लब आया था चुपके-से ।
इसीने रफ़्ता-रफ़्ता तूल खींचा दास्ताँ होकर ॥

—रियाज़ ख़ैराबादी

---

[1] प्रेम-लगन; [2] नष्ट ।

किया यह मुहब्बतने क्या अन्दर-अन्दर।
कि दिल कुछ-का-कुछ बन गया अन्दर-अन्दर॥
हँसी बनके होंटोंसे खेला किया ग़म।
मगर दिल मसलता रहा अन्दर-अन्दर॥

—आरज़ू लखनवी

जो राहेइश्क़[1]में क़दम रक्खें।
वोह नशेबो-फ़राज़[2] क्या जानें?

—दाग़

ज़रासी इक निगाहे इश्क़में आँखोंसे गिरता हूँ।
बहुत आसान है इन्सानका बेकार हो जाना॥

—साक़िब लखनवी

दुनियामें जो आकर न करे इश्क़ बुतोंका।
नज़दीक हमारे है, यहाँका न वहाँका॥

—अमीन अज़ीमाबादी

रखते ही पाँव लुट गये बाज़ारे इश्क़में।
बैठे न दिलको बेचनेवाले दुकानपर॥

—साक़िब लखनवी

इश्क़की दो चार राहें हों तो दिलको ढूँढ़ लूँ।
मुझको क्या मालूम, किस कूचेमें मरकर रह गया?

—साक़िब लखनवी

सीनेसे चर्ख़ेपीर[3] लगाये है चाँदको।
कुछ इश्क़ मुनहसिर नहीं बूढ़े-जवानपर॥

—जलील

---

[1]प्रेम-मार्ग; [2]ऊँच-नीच; [3]प्राचीन आकाश।

जिन्दोंमें अब शुमार नहीं हज़रते 'अज़ीज़'।
कहते थे आपसे कि मुहब्बत न कीजिये ॥
—अज़ीज़ लखनवी

मैं तेरी यादमें हूँ ओ काफ़िर !
मस्जिदोंमें नमाज़ होती है ॥
—मदहोश ग्वालियरी

अब मुहब्बत ही मुहब्बत है न हम हैं और न तुम ।
जिसके आगे कुछ नहीं है वह मुक़ाम आ ही गया ॥

× × ×

अज़लके दिनसे हैं अहलेमुहब्बत नौहा ख़्वाँ अब तक ।
मगर अपनी जगहपर हैं ज़मीनो आस्माँ अब तक ॥
—आसी लखनवी

आशिक़=प्रेमी, आसक्त

मकतबे इश्क़े मजाज़ीके पासशुदा स्नातक न कहलाकर आशिक़ कहलाते हैं। यदि आपको कोई आदमी तालिबे वस्लो दीदार,[1] हिज्र[2] में बेचैन, रोते-बिसूरते, कमज़ोर, बदगुमान[3] हासिद,[4] आवारा, नाकारा, दीवाना, फटेहाल, मौतका इच्छुक दिखाई दे तो उसे बेखटके आशिक़ समझ लीजिये और उससे नौ हाथ दूर रहिये। अन्यथा जो अपने कपड़ोंकी धज्जियाँ किये फिरता है, उसे दूसरोंके कपड़े फाड़ते देर न लगेगी।

आदमका जिस्म जब कि अनासिर[5] से मिल बना।
जितनी बची थी आग सो आशिक़का दिल बना॥

—सौदा

जो दानिशमन्द हैं वोह यूँ दुआ देते हैं लड़कोंको।
न हो मक्कार पीरी[6] में, न हो आशिक़ जवाँ होकर॥

—अकबर इलाहाबादी

मुसीबत और लम्बी जिन्दगानी।
बुज़ुर्गोंको दुआ ने मार डाला॥

—मुज़तर ख़ैराबादी

---

[1] मिलन और दर्शनोंका अभिलाषी;

[2] विरह;

[3] जिसके मनमें किसीकी ओर सन्देह उत्पन्न हुआ हो;

[4] ईर्ष्यालु; [5] पंचतत्त्व; [6] वृद्धावस्था।

मेरी तिफ्ली[1]में शानेइश्क़बाजी आशकारा थी।
अगर बचपनमें खेला खेल तो आँखें लड़ानेका॥
—क़ैसर देहलवी

अज़ल[2]से हुस्नपरस्ती लिखी थी क़िस्मतमें।
मेरा मिज़ाज लड़कपनसे आशिक़ाना था॥
—रहमत

पैदा हुए तो हाथ जिगरपर धरे हुए।
क्या जानें हम हैं कबसे किसीपर मरे हुए॥
—बेनज़ीरशाह वारसी

हाँ, आपको देखा था मुहब्बतसे हमींने।
जी, सारे ज़मानेके गुनहगार हमीं हैं॥
—अहसान दानिश

बहुत दिलचस्प है अपनी कहानी।
कहो तो हम सुनाएँ कुछ कहींसे॥
—अज्ञात्

ख़ुलूसे इश्क़ न जोशेअमल न दर्देवतन।
यह ज़िन्दगी है ख़ुदाया कि ज़िन्दगीका कफ़न॥
—जिगर मुरादाबादी

अपनी हालतका ख़ुद अहसास नहीं है मुझको।
मैंने औरोंसे सुना है कि परीशाँ हूँ मैं॥
ग़मोंपर ग़म फटे पड़ते हैं ऐय्यामे जवानीमें।
इज़ाफ़े हो रहे हैं वाक़ियाते ज़िन्दगानीमें॥
—आसी लखनवी

[1] बचपन; [2] अनादिकाल।

शहीदे मुहब्बत न काफ़िर ना ग़ाज़ी।
मुहब्बतकी रस्में न तुर्की न ताज़ी॥
वह कुछ और शै है मुहब्बत नहीं है।
सिखाती है जो ग़ज़नवीको अयाज़ी[1]॥

—इक़बाल

वस्ल-ओ-दीदार की ख्वाहिश (मिलन और दर्शनकी अभिलाषा)

ठहरजा ऐ क़ज़ा[2]! आता है वोह मेरी अयादत[3] को।
दमे आख़िर तो मिल लेने दे, मुझको उस सितमगरसे॥

—हमदम अकबराबादी

किस वक़्त आप मेरी अयादतको आए हैं।
जब सुन चुके गलेसे उतरती दवा नहीं॥

—मुज़्तर लखनवी

तुम न आओगे तो क्या, मौत भी आनेकी नहीं।
रास्ते रोक दिये होंगे, क़ज़ाके तुमने?

—तनहा

वह झरोखेसे जो देखें तो मैं इतना पूछूँ—
"बिस्तर अपना पसेदीवार करूँ या न करूँ?"
तू भी उस शोख़से वाक़िफ़ है बता कुछ तो 'निज़ाम'।
मुझसे दिल माँगे तो इन्कार करूँ या न करूँ?

—निज़ाम

---

[1]अयाज एक कमसिन छोकरा था जिसपर महमूद ग़जनवी आशिक़ था। यहाँ अयाज़ी से तात्पर्य्य लौंडेबाज़ी से है।

[2] मृत्यु; [3] हाल पूछने।

उम्रेदराज़ माँगकर लाया था चार रोज़।
दो आरज़ूमें कट गये, दो इन्तज़ारमें॥
—अज्ञात

बातें ख़याले यारमें करता हूँ इस तरह।
समझे कोई कि आठ पहर हूँ नमाज़में॥
—जलील

दर्वाज़े पै उस बुतके सौबार हमें जाना।
अपना तो यही काबा, अपना तो यही हज है॥
—आग़ा शाइर देहलवी

ऐसा भी इत्तफ़ाक़ मुझे बारहा हुआ।
उनसे मिला हूँ उनका पता पूछता हुआ॥
—आसी लखनवी

रहा ख़्वाबमें उनसे शब भर विसाल।
मेरे बख़्त जागे मैं सोया किया॥
—अमीर मीनाई

फ़ुरक़त (विरह)—

दुआए मर्ग[1] फ़ुरक़तमें जो माँगी।
मुहल्लेवाले चिल्लाये कि "आये"॥
—अमीर मीनाई

यूँ शबे हिज्र[2]में करते हैं ग़लत ग़म अपना।
मुर्दा ख़ुद बनते हैं, ख़ुद करते हैं मातम अपना॥
—अमीर मीनाई

---

[1] मृत्यु; [2] विरह।

एवज़ ले लिया हिज्रका मैंने मरके।
वोह तुरबत[1] पै रोते थे मैं सो रहा था॥
—साक़िब लखनवी

उनके देखेसे जो आ जाती है मुँहपर रौनक़।
वह समझते हैं कि बीमारका हाल अच्छा है॥
—ग़ालिब

यहाँ तक आतिशे फ़ुर्क़त ने तेरी मुझको फूँका है।
रगेजाँ जलती रहती है, चिराग़ेदिलमें बत्ती-सी॥
—अज्ञात

शबे हिजराँको सख़्ती हो तो हो लेकिन यह क्या कम है।
कि लबपर रातभर रह-रहके तेरा नाम आयेगा॥
—शाद अज़ीमाबादी

उस कूचेकी हवा थी कि मेरी ही आह थी।
कोई तो दिलकी आगपर पंखा-सा झल गया॥
—मोमिन

अब इस फ़िक्रमें रातदिन कट रहे हैं।
तुझे भूल जाएँ कि ख़ुदको भुला दें॥

थी जो कलतक कश्तिये उम्मीदको थामे हुए।
रुख़ बदलकर आज वोह भी मौजे तूफ़ाँ होगई॥
—शफ़क़ टोंकी

[1] क़ब्र।

यह आधीरातको उनका पयाम आया है—
"हम आज आ नहीं सकते, अब इन्तज़ार न हो" ॥

—रियाज़ ख़ैराबादी

आलमे सोज़ो साज़में वस्लसे बढ़के है फ़िराक़ ।
वस्लमें मर्गे आरज़ू ! हिज्रमें लज़्ज़ते तलब ॥

—इक़बाल

रोना-विसूरना (जब वस्ल न हुआ तो रोने पै उतर आये)

बनावट समझते हैं रोनेको मेरे ।
मुझे तो है ऐ जान ! रोना इसीका ॥

—अज्ञात

हँसनेवाला नहीं है रोने पर ।
हमको ग़ुरबत[1] वतनसे बेहतर है ॥

—आतिश

समुन्दर कर दिया नाम उसका, नाहक़ सबने कह-कहकर ।
हुए थे जमा कुछ आँसू, मेरी आँखोंसे बह-बहकर ॥

—सौदा

पूछते क्या हाल हो, मुझ ख़ानुमां बरबादका ?
मशग़ला है आहका, अब शग़्ल है फ़रियादका ॥

—ज़िया

कहींसे ढूँढ़कर ला दे हमें भी ऐ गुलेतर !
वोह ज़िन्दगी जो गुज़र जाए मुसकरानेमें ॥

—आसी लखनवी

---

[1] विदेशका वास, भ्रमण ।

ज़ाँदगी (निर्बलता) रोते-रोते और विरहका ग़म सहते-सहते इतने निर्बल हो गये हैं कि :—

क्या देखता है हाथ मेरा, छोड़ दे तबीब[1]।
याँ जान ही बदनमें नहीं, नब्ज़ क्या चले ?

—ज़ौक़

मर गया बीमारे ग़म करवट जो बदली जोफ़[2] से।
आलमेहस्ती[3] में आख़िर इनक़लाब आही गया ॥

—महशर लखनवी

दिल टूटनेसे थोड़ी-सी तकलीफ़ तो हुई।
लेकिन तमाम उम्रको आराम हो गया ॥

—सफ़ी लखनवी

कुछ सम्हल जाता अगर करवट बदल जाते मेरी।
यह मुझे दुश्वार था, उनके लिये मुश्किल न था ॥

—साक़िब लखनवी

अल्लाहरे ज़ोरे मजबूरी ख़ुद मुझको हैरत होती है।
जो बार उठाना पड़ता है क्योंकर वह उठाया जाता है ॥

यह भी है तमाशा उल्फ़तका, जो बात है वह नादानी है।
मंज़ूर नहीं है रब्त जिन्हें, रब्त उनसे बढ़ाया जाता है ॥

—वहशत कलकतवी

हमारे शीशये दिलको सम्हलकर हाथमें लेना।
नज़ाकत इसमें इतनी है नज़रसे जब गिरा टूटा ॥

—अज्ञात्

---

[1] चिकित्सक; [2] कमजोरी; [3] जीवन-संसार।

साँस आहिस्ता लीजियो 'बीमार'।
टूट जाये न आबला दिलका॥

—बीमार

उसके चक्करमें दुबारा तो मैं आनेका नहीं।
ढूँढ़ती फिरती है क्यों गर्दिशे दौराँ[1] मुझको॥

नाकामे तमन्ना हूँ मैं उस अश्ककी मानिन्द।
गिरते हुए आशिक़की जो आँखोंमें रुका हो॥

मेरे दिलकी तड़पने जान तक छोड़ी न क़ालिबमें।
बुझा डाला चिराग़े उम्र इस पंखेने हिल-हिलके॥

—लम्भूराम 'जोश'

मसरूफ़ कर लिया मुझे उसके ख़यालने।
जा ऐ अजल! कि मरनेकी फ़ुरसत नहीं मुझे॥

—जलील

ग़श उन्हें देखके आया तो मेरा बस क्या था?
मुझसे सम्हला गया जबतक तो सम्हलता ही गया॥

—साक़िब लखनवी

फोड़ा था दिल न था यह मुएपर ख़लल गया।
जब ठेस साँसकी लगी दम ही निकल गया॥

—मोमिन

न पूछो कुछ मेरा अहवाल मेरी जाँ मुझसे।
यह देख लो कि मुझे ताक़ते बयान नहीं॥

अब यह सूरत है कि ऐ परदानशीं!
तुझसे अहबाब छुपाते हैं मुझे॥

—मोमिन

---

[1] संसारकी मुसीबत।

बदगुमानी=अविश्वास

उर्दू-शायरीमें माशूक़ हरजाई (असती) माना गया है। वह आशिक़से चोरी-छिपके तो दूसरेसे प्रेम करता ही है, कभी-कभी आशिक़के सामने भी नहीं चूकता। मुसलमानोंमें एक दूसरेसे जुदा होते समय 'खुदा हाफ़िज़' (अब खुदा ही तुम्हारा रक्षक है) कहनेका रिवाज है। एक आशिक़ साहब अपने माशूक़के सौन्दर्य और हरजाईपनसे इतने शंकित हैं कि 'खुदा हाफ़िज़' भी बिदाके वक़्त इस भयसे न कहा कि कहीं खुदाका ही दिल न मचल जाय!

बवक़्ते अलविदा उस दिलरुबाको।
न सौंपा बदगुमानीसे खुदाको॥

एक साहब अपने माशूक़के पास पत्र तो भिजवाते हैं, मगर क़ासिद को इस भय से कि कहीं वोह ही इस पर हाथ न धर दे उसका पता नहीं बतलाते :—

क़ासिदोंके पाँव तोड़े बदगुमानीने मेरी।
ख़त दिया लेकिन न बतलाया निशाने कूएदोस्त॥

—आतिश

उदू (प्रेममें प्रतिद्वन्द्वी)

दुश्मनको मेरी गोर पै लाना नहीं अच्छा।
मुर्देको मुसलमाँके जलाना नहीं अच्छा॥

—महमूद

उदू भी वाये क़िस्मत बज़्मे मातममें हैं साथ उनके।
हमारे फूलोंमें कम्बख़्त इक काँटा भी शामिल है॥

—अमीर मीनाई

मर्गे दुश्मनका जियादा तुमसे है मुझको मलाल।
दुश्मनीका लुत्फ़, शिकवेका मजा जाता रहा॥

—दाग़

तुम्हें चाहूँ तुम्हारे चाहनेवालोंको भी चाहूँ।
मेरा दिल फेरदो मुझसे यह झगड़ा हो नहीं सकता॥

—दाग़

आँखें बिछायें हम तो उदूकी भी राहमें।
पर क्या करें कि तुम हो हमारी निगाहमें॥

—अज्ञात्

बुलाया जो दावतमें ग़ैरोंको तुमने।
मुझे पेश्तर अपने घर देख लेना॥

—दाग़

दरबान—ये दिल-फेंक आशिक़ घरमें न घुस आयें इस भयसे माशूक़ दरबान रखता है :—

दरबाँको यह मजाल कि यूँ रोक ले हमें।
हमने तुम्हारा पास, तुम्हारा अदब किया॥

—बेख़ुद देहलवी

याँ आनेसे किस वास्ते जलता है हमारे।
आशिक़ तो नहीं है कहीं दरबान तुम्हारा?

—तसकीन देहलवी

चले आओ जब चाहो दिलमें हमारे।
न दर है, न दरबान, उजड़ा मकाँ है॥

—मुग़ल जान तस्नीम

तुम्हारे दर पै जो दरबाँने आस्तीं पकड़ी।
बरंगे नक़्शेक़दम हमने भी ज़मीं पकड़ी॥

—दिल अज़ीमाबादी

ग़ैरको आने न दूँ तुमको कहीं जाने न दूँ।
काश! मिल जाये तुम्हारे दरकी दरबानी मुझे॥

—हैरत बदायूनी

ख़ुशामद इस क़दरकी हो गया बदनाम आलममें।
ज़माना जानता है मुझको ये आशिक़ है दरबाँका॥

—दाग़

मना मुझको ही किया, रातको मुझसे ही कहा।
मैं गदा[1] बनके गया दर पै वोह दरबाँ समझा॥

—दाग़

क़ासिद=पत्रवाहक आशिक़ पत्रों द्वारा इश्क़का इज़हार करते हैं:—

हरजाईपनसे उसके ठिकाने नहीं है दिल।
फिरता ख़राब होगा मेरा नामाबर कहीं॥

—मुश्ताक़ देहलवी

क़ासिद! चला तो है ख़बरे यारके लिये।
इतना रहे ख़याल कि आँखोंमें जान है॥

—अज्ञात

आजतक लाया न नामेका जवाब।
नामाबर हमको मिला क्या लाजवाब॥

—हाफ़िज़ जौनपुरी

---

[1] भिक्षुक।

दोस्तके धोखेमें उसने दे दिया दुश्मनको ख़त।
नामाबर ऐसा मेरा आँखोंका अन्धा हो गया॥
—बेख़ुद देहलवी

लिक्खो सलाम ग़ैरके ख़तमें ग़ुलामको।
बन्देका बस सलाम है ऐसे सलामको॥
—मोमिन

बहकी-बहकी आके बातें कर रहा है मुझसे वोह।
नामाबर आता है उनका क्या कहीं पीकर शराब॥
—ज़ाकिर देहलवी

क़ासिदके आते-आते ख़त इक और लिख रखूँ।
मैं जानता हूँ जो वोह लिखेंगे जवाबमें॥
—ग़ालिब

बदख़त बताके कर दिया उस सब्ज़ ख़तने चाक।
ख़तको ख़ता नहीं, मेरा लिक्खा ख़राब है॥
—अकबर मेरठी

बरसोंसे कानमें है क़लम इस उम्मीदपर।
लिखवायें मुझसे ख़त मेरे ख़तके जवाबमें॥
—अज्ञात्

पुर्जे उड़ाके ख़तके यह इक पुर्ज़ा लिख दिया।
लो, अपने एक ख़तके यह सौ ख़त जवाबमें॥
—बिस्मिल देहलवी

नामाबर! ख़त पै मेरी आँख भी रखकर लेजा।
क्या गया तू जो, यही देखनेवाली न गई॥
—अज्ञात्

दिल चाहता है अपना कि क़ासिद ! बजाय मुहर ।
आँख अपनी हो लिफ़ाफ़ये ख़त पै लगी हुई[1] ॥

नामेको पढ़ना मेरे ज़रा देखभालकर ।
काग़ज़ पै रख दिया है कलेजा निकालकर ॥

—अज्ञात्

नामेके पेचको ज़रा आहिस्ता खोलना ।
लिपटा हुआ किसीका कहीं इसमें दिल न हो ॥

—अज्ञात्

कैसा जवाब हज़रते दिल देखिये ज़रा ।
पैग़ाम्बरके हाथमें टुकड़े ज़ुबाँके हैं ॥

—दाग़

दीवानगी=आवारगी जब वस्ल नसीब नहीं हुआ तो मारे सदमोंके आशिक़ दीवाना हो जाता है :—

सौदाइयोंसे इश्क़में करते हैं मशविरे ।
जैसे हैं आप, वैसे हमारे मुशीर[2] हैं ॥

—रिन्द

होश ही मुझको न था जब पहलुओंमें लूट थी ।
मुझको क्या मालूम, क्या जाता रहा, क्या रह गया ॥

—साक़िब लखनवी

---

[1] कागा नैन निकार दूँ, पिया पास ले जाय ।
पहले दरस दिखायके पाछे लीजो खाय ॥
कागा सब तन खाइयो चुन चुन खइयो मास ।
द्वै नैना मत खाइयो, पिया मिलनकी आस ॥

[2] मशवरा देनेवाला, सलाहकार ।

सहरा[1]-सहरा जंगल-जंगल मारे-मारे फिरते हैं।
आहू[2] वहशी[3] जानके हमको साथ हमारे फिरते हैं॥

—इमदाद इमाम असर

हम उसी जिन्दगी पै मरते हैं, जो यहाँ चैनसे बसर न हुई।
दिलने दुनिया नई बना डाली, और हमें आजतक ख़बर न हुई॥

—अज़ीज़ लखनवी

निकम्मा हो गया हूँ इस क़दर मसरूफ़े ग़म होकर।
मेरे ऐमालकेकातिब[4] भी अब बेकार बैठे हैं॥

—जोश मलसियानी

मृत्यु की इच्छा—जब वस्ल न हुआ और विरहमें सूखकर काँटा हो गये तो मृत्युकी इच्छा करने लगे :—

देख लीजे चलके अपने चाहनेवालेकी नाश[5]।
आप फ़रमाते थे ऐसेको क़ज़ा आती नहीं॥

—क़ैसर देहलवी

उनकी गलीमें जिस दम मेरा गया जनाज़ा।
हसरतसे देखते थे पर्दा उठा-उठाकर॥

—अज्ञात्

दफ़नाना देख-भालके हसरत भरेकी लाश।
लिपटी हुई कफ़नमें कोई आरज़ू न हो॥

—अज्ञात्

---

[1] जंगल, वन; [2] हिरन; [3] पागल; [4] भाग्यलेख लिखनेवाले; [5] लाश।

ख़बर उनको हुई होगी, अजब क्या वे चले आएँ ।
जनाज़ा ले चलो सूएमज़ार आहिस्ता-आहिस्ता ॥

—अज्ञात्

लहद[1] में क्यों न जाऊँ मुँह छिपाये ।
भरी महफ़िलसे उठवाया गया हूँ ॥

—शाद

कोई कन्धा तक नहीं देता हमारी नाशको ।
हम ख़ुदाके घर भी अपने पाँवसे जायेंगे क्या ?

—अज्ञात्

रास आया है मुझे वहशतमें मर जाना मेरा ।
वह मुझे रोये यह कहकर "हाय ! परवाना मेरा" ॥

—रसा रामपुरी

रो रहे हैं दोस्त मेरी लाशपर बेअख़्तियार ।
यह नहीं दरियाफ़्त करते "किसने इसकी जान ली" ॥

—अकबर इलाहाबादी

नज़अ[2] में यारसे पैमानेवफ़ा[3] करते हैं ।
उस दग़ाबाज़से हम आज दग़ा करते हैं ॥

—रियाज़ ख़ैराबादी

यह कहकर क़ब्रपर फिर याद अपनी कर गये ताज़ा ।
"अरे ओ मरनेवाले ! अब मुझे दिलसे भुला देना" ॥

—अज़ीज़ लखनवी

---

[1] क़ब्र; [2] मृत्युके समय अन्तिम श्वास तोड़ना;
[3] वायदा पूरा करनेकी बात ।

न जाना कि दुनियासे जाता है कोई।
बहुत देर की महर्बां आते-आते ॥

—दाग़

शहीदेग़मकी लाशपर न सर झुकाके रोइये।
वह आँसुओंका क्या करे? जो मुँह लहूसे धो चुका ॥

—अज्ञात्

वादा किया था फिर भी न आये मज़ारपर।
हमने तो जान दी थी, इसी एतबारपर ॥

—अज़ीज़ लखनवी

वो आये हैं पशेमाँ[1] लाशपर अब।
तुझे ऐ जिन्दगी लाऊँ कहाँसे?

—मोमिन

ख़ुद्दारी=स्वाभिमान—

ऐ 'दाग़' अपनी वज़ह हमेशा यही रही।
कोई खिंचा, खिंचे, कोई हमसे मिला, मिले ॥

—दाग़

शामिल हो जिसमें रंज वोह राहत न कर क़ुबूल।
दोज़ख़के मुत्तसिल[2] हो तो जन्नत न कर क़ुबूल ॥

ग़ैरत नहीं रही तो है बेकार जिन्दगी।
फैलाके हाथ ज़र्फ़े नदामत न कर क़ुबूल ॥

—अदब

---

[1] शर्मिन्दा; [2] नज़दीक।

हैं कामयाब वही इस जहाने फ़ानीमें।
जो बेनियाज़े तमन्ना हैं ज़िन्दगानीमें॥

—अलम मुज़फ़्फ़रनगरी

अकबरने सुना है अहलेग़ैरतसे यही—
"जीना ज़िल्लतसे हो तो, मरना अच्छा॥"

—अकबर इलाहाबादी

कुछ हम खिचे-खिचे रहे कुछ तुम खिचे-खिचे।
इस कशमकशमें टूट गया रिश्ता चाहका॥

—अज्ञात्

यह गवारा न किया दिलने को माँगूँ तो मिले।
वर्ना साक़ीको पिलानेमें कुछ इनकार न था॥

—साक़िब लखनवी

पेशे अरबाबे[१] करम हाथ वह क्या फैलाता।
जिसको तिनकेका भी अहसान गवारा न हुआ॥

—साक़िब लखनवी

जिसने कुछ एहसाँ किया इक बोझ हमपर रख दिया।
सरसे तिनका क्या उतारा, सरपै छप्पर रख दिया॥

—अज्ञात्

रूठकर बैठे हो उनसे किस तवक़्क़ायर 'निज़ाम'!
होशमें आओ, वोह आएँगे मनानेके लिये?

—निज़ाम शाह

---

[१] कृपालुओंके आगे।

हश्र[1]—जब इस दुनियामें अभिलाषा पूरी न हुई तो प्रलय (क़यामत)के बाद हश्रमें फ़रियाद की :—

ऊँचे-ऊँचे मुजरिमोंकी पूछ होगी हश्रमें।
कौन पूछेगा मुझे में किन गुनहगारोंमें हूँ ?

—अज्ञात्

मेरी रुसवाईका हाल ऐ दावरेमहशर[2]! न पूछ।
मैं भरी महफ़िलमें यह क़िस्सा सुना सकता नहीं॥

—जोश मलसियानी

वह दुनिया थी जहाँ तुम बन्द रखते थे ज़बाँ मेरी।
ये महशर[3] है यहाँ सुननी पड़ेगी दास्ताँ मेरी॥

—अज्ञात्

महशरमें कोई पूछनेवाला तो मिल गया।
रहमत[4] बढ़ी है मुझको गुनहगार देखकर॥

—साक़िब लखनवी

सवाब[5] कहते हैं किसे दिखादे हश्रमें मुझे।
करीम! पहली जिन्दगी तो कट गई अज़ाब[6]में॥

—साक़िब लखनवी

---

[1] क़यामत—जब कि सब मुर्दे खड़े होंगे और उनके शुभ-अशुभ कर्मोंका हिसाब (चेकिंग ?) होगा; [2]स्वर्गका न्यायाधीश; [3]मुसलमानी धर्मके अनुसार वह अन्तिम दिन जिसमें ईश्वर सब प्राणियोंका न्याय करेगा। [4]दया; [5]पुण्य; [6]विपदाओं।

माशूक़=प्रेमपात्र

ग़ज़लके माशूक़की ख़ूबियाँ :—

रूपकी खान, प्रारम्भमें कमसिन, शर्मीला, नाज़ुक, फिर धीरे-धीरे शोख़, बेअदब, बेवफ़ा, ज़ालिम, बेमुरव्वत, वायदाफ़रामोश, बुत[1], काफ़िर, क़ातिल, हरजाई,[2] पर्देदार।

रूप=शोख़ी, अदा

तुम्हारा हुस्न,[3] हुस्नेमाहेअनवरसे[4] दुबाला है।
यह कोई हुस्नमें है हुस्न जो बढ़ता हो घटता हो?

—क़ैसर देहलवी

हुस्नका इन्साफ़ है अहले नज़रके सामने।
आज ले बैठे हैं उनको हम क़मर[5] के सामने॥

—तस्लीम

दरियाए हुस्न और भी दो हाथ बढ़ गया।
अँगड़ाई उसने नशेमें ली जब उठाके हाथ॥

—नासिख़

अँगड़ाई भी वह लेने न पाये उठाके हाथ।
देखा जो मुझको छोड़ दिये मुस्कराके हाथ॥

—निज़ाम रामपुरी

---

[1] पत्थर-हृदय; [2] छिनाल; [3] रूप; [4] चन्द्रमा के रूप से; [5] चन्द्रमा।

क्या कहूँ इस सफ़ाए-आरिज़[1] को।
वाँ निगहका क़दम रपटता है॥
—सौदा

थी सलसलाहट ऐसी ही कुछ नर्म गातमें।
जब वाँ निगहका ध्यान पड़ा झट रपट गई॥
—इन्शा

कमसिन—

यही दिन थे सौ-सौ तरह तुम सँवरते।
जवानी तो आई सँवरना न आया॥
—रियाज़ ख़ैराबादी

अभी कमसिन हो, नादाँ हो, कहीं खो दोगे दिल मेरा।
तुम्हारे ही लिये रक्खा है ले लेना जवाँ होकर॥
—अज्ञात

शर्मीला—

दिलमें तुम, आँखोंमें तुम, छिपते हो फिर किस वास्ते?
तुमको शर्म आती नहीं आशिक़से शरमाते हुए!
—आज़ाद

मिलाकर ख़ाकमें भी हाय! शर्म उनकी नहीं जाती।
निगह नीची किये वे सामने मदफ़नके बैठे हैं॥
—असीर लखनवी

उन्हींसे फिर आख़िरको खुल खेलते हैं।
वो करते हैं जिनसे हिजाब अव्वल-अव्वल॥
—दाग़

[1] कपोल।

शर्ममें भरे हैं तेरी परले सिरेकी शोख़ियाँ।
आँख नीची करके बुरक़ा रुख़से ऊँचा कर दिया॥

—अज्ञात्

बताओ तो नीची नज़र आज क्यों है ?
यह क्यों बार पड़ता है ओछा तुम्हारा ?
मनाएँ तो अब जान देकर मनाएँ।
क़यामत है यह रूठ जाना तुम्हारा॥

—आग़ाशाइर देहलवी

है वस्लकी शब तुमको अफ़सोस हिजाब इतना।
किस शरअ़में जाइज़ है ख़िलवतमें हया करना ?

—नसीम

आपकी प्यारी हया पामाल होकर रह गई।
और चलिये नाज़से जोबनपै इतराते हुए॥

—जलील

नाज़ुक—

यही बातें हैं जिनको याद तड़पा देती है दिलको।
मेरा अँगड़ाइयाँ लेना और उस ज़ालिमका डर जाना॥

—अकबर इलाहाबादी

कौन कहता है ज़बाँ यारकी तुतलाती है।
कसरतेनाज़[1]से ओठोंपै गिरह आती है॥

—अज्ञात्

---

[1] नज़ाकतके कारण।

शानोंपै[1] जुल्फ़, जुल्फ़में दिल, दिलमें हसरतें[2]।
इतना तो बोझ सरपै, नज़ाकत कहाँ रही?

—अज्ञात्

क्या नज़ाकत है कि आरिज़[3] उनके नीले पड़गये।
मैंने तो बोसा[4] लिया था ख़्वाबमें तसवीरका॥

—अज्ञात्

बड़े गुस्ताख़ हैं झुककर तेरा मुँह चूम लेते हैं।
बहुत-सा तूने ज़ालिम गेसुओं[5] को सर चढ़ाया है॥

—अज्ञात्

यूँ नज़ाकतसे गराँ[6] सुर्मा है चश्मेयारको।
जिस तरह हो रात भारी मर्दुमे बीमारको॥

—नासिख़

सँभालें बारे-ज़ेवर क्या, तेरा नाज़ुक बदन प्यारी।
कजी रफ़्तारकी कहती है बारे हुस्न है भारी॥

—देवीप्रसाद 'प्रीतम'

सीधे स्वाभाव चल भी नहीं सकते अब तो वह।
कैफ़े-शबाब भी उन्हें एक बार हो गया॥

—आरिफ़ हस्वी

नाज़ुक है न खिंचवाऊँगा तस्वीर मैं उसकी।
चेहरा न कहीं अक्सके बदलेमें उतर आये॥

—अर्शद देहलवी

---

[1] कन्धों; [2] इच्छाएँ; [3] कपोल; [4] चुम्बन; [5] केश; [6] बोझल।

कसरते सजदासे वह नक़्शे क़दम।
कहीं पामाले सर न हो जाये ॥
—मोमिन

शोख़—

या रब ! दिलोंकी ख़ैर वह कहता है दिलफ़रेब—
"देखें तो कोई देखे हमें और न आये दिल।"
—अज्ञात्

अभी कफ़न मुर्दे फाड़ डालें, अभी मज़ारोंसे सर निकालें।
अभी जो महशरकी चलके चालें, ज़रा क़यामत बपा करो तुम ॥
—क़दर बिलगिरामी

मौतसे बदतर बुढ़ापा आयगा।
जानसे अच्छी जवानी जायगी ॥
—दाग़

मस्जिदमें उसने हमको आँखें दिखाके मारा।
काफ़िरकी देखो शोख़ी, घरमें ख़ुदाके मारा ॥
—ज़ौक़

आप ही तो बन सँवरकर कर दिया बेख़ुद हमें।
पूछना फिर, उसपै बन-बनके तुम्हें क्या हो गया ?
—तोला बदायूनी

यह शोख़ी है नई, यह शर्म, दुनियासे निराली है।
मिलाकरके आँख कहते हैं, "इधर देखे तो अन्धा हो" ॥
—बेख़ुद देहलवी

आप ही ज़ोर करें आप ही पूछें मुझसे—
"यह तो फ़रमाइये, है आज तबीयत कैसी ?" ॥
—दाग़

कहा जो मैंने कि "दिल चाहता है प्यार करूँ" ।
तो मुस्कराके वह कहने लगे कि "प्यारके बाद" ?

—अकबर इलाहाबादी

जो कहा मैंने कि "प्यार आता है मुझको तुमपर" ।
हँसके कहने लगे "और आपको आता क्या है" ?

—अकबर इलाहाबादी

साथ शोख़ीके कुछ हिजाब भी है ।
इस अदाका कोई जवाब भी है ?

—दाग़

वही है इक निगाहेनाज लेकिन अपने मौक़ेपर ।
कभी नश्तर, कभी नाविक,कभी तलवार होती है ॥

—नूह नारवी

तिर्छी नजरोंसे न देखो आशिक़े दिलगीरको ।
कैसे तीरन्दाज़ हो, सीधा तो कर लो तीरको ॥

—ख़्वाजा वज़ीर

यह भी इक बात है अदावतकी ।
रोजा रक्खा जो हमने दावतकी ॥

—अमीर मीनाई

मुझीको सब यह कहते हैं, कि रख नीची नजर अपनी ।
कोई उनको नहीं कहता, न निकलो यूँ अयाँ होकर ॥

—अकबर इलाहाबादी

चोट देकर आजमाते हो दिले आशिक़का सब्र ।
काम शीशेसे नहीं लेता कोई फ़ौलादका ॥

अन्दाज अपना देखते हैं आइनेमें वोह।
और यह भी देखते हैं, कोई देखता न हो॥

—निजाम

मुझको सुना-सुनाके वोह कहना किसीका हाय!
"जिससे कि जोमें रंज हो उससे कलाम क्या?"

—निजाम

यूं वोह उठ जाएँ सम्भाले हुए दामन अपना।
और मेरे हाथ दुपट्टेका न आँचल आये॥

—अज्ञात्

मेरी रगेगुलू है कि इक शाहराह है।
खंजर चले, छुरी चले, तेग़ेरवाँ चले॥

—जलील

यह अपने चाहनेवालोंसे आपका बरताव।
यहाँतक आती है आवाज लनतरानीकी॥
जो बचपना है तो मेरी तरफ़से फेर लो मुंह।
यह कोई खेल नहीं, मौत है जवानीकी॥

—जावेद लखनवी

यह क़ब्लअज़मर्ग वावेला, यह बेबाकी तबीयतकी।
अभी जिन्दा हूँ मैं, लेकिन उन्हें है फ़िक्र तुरबतकी॥
न खटका उसको दोज़ख़से न ख़्वाहिश उसको जन्नतकी।
खुदा रक्खे अलग दुनियासे, है दुनिया मुहब्बतकी॥
तुम्हारी खुशख़रामी सैकड़ों फ़ितने उठाती है।
क़यामत कह दिया उसको तो मैंने क्या क़यामत की?

"बगोले किस तरह उठते हैं उठकर फैल जाते हैं।"
यह कह-कहकर उड़ाई खाक उसने मेरी तुरबतकी ॥
ज़मानेमें हज़ारों नाम किसको याद रहते हैं।
बना लें आप इक फ़ेहरिस्त अरबाबे मुहब्बतकी ॥

—नूह नारवी

ख़्वाबमें उनको किसीने रात छेड़ा है ज़रूर।
देखते हैं ग़ौरसे मुझको बुलाके सामने ॥

—अज्ञात

बेअदब=उद्दण्ड—

और चल फिर ले ज़रा तन-तनके ऐ बाँके जवाँ !
चार दिनके बाद फिर टेढ़ी कमर हो जायगी ॥

—अज्ञात

उनकी ज़बान चलती है तलवारकी तरह !
और हम अदबसे चुप हैं, गुनहगारकी तरह ॥

—हुक्म मदरासी

तेरे सवालपै चुप हैं, इसे ग़नीमत जान।
कहीं जवाब न दे दे कि "मैं नहीं सुनता" ॥

—शाद

बेवफ़ा=कृतघ्न—

हम भी कुछ ख़ुश नहीं वफ़ा करके।
तुमने अच्छा किया निबाह न की ॥

—मोमिन

ज़ालिम—

मैंने कहा जो उससे ठुकराके चल न ज़ालिम !
हैरतमें आके बोला "क्या आप जी रहे हैं" ?

—अकबर इलाहाबादी

किस-किस तरह सताते हैं, ये बुत हमें 'निज़ाम'।
हम ऐसे हैं कि जैसे किसीका ख़ुदा न हो ॥

—निज़ाम रामपुरी

सितमगारोंको तालीमें उन्हें दी हैं ये कह-कहकर—
"कि रोता जिस किसीको देख लेना, मुस्करा देना" ॥

—साइल देहलवी

निकला ग़ुबार दिलसे, सफ़ाई तो हो गई।
अच्छा हुआ जो ख़ाक में तुमने मिला दिया ॥

—बर्क़ लखनवी

ज़ालिम हमारी आजकी यह बात याद रख।
"इतना भी दिलजलोंका सताना भला नहीं ॥"

—बहर

सितमकी कामयाबीपर मुबारिकबाद देता हूँ।
यह उनकी बदगुमानी है, कि फ़रियादी समझते हैं ॥

—अकबर इलाहाबादी

ज़ालिम ! तू मेरी सादादिलीपर तो रहम कर।
रूठा था आप तुझसे मैं और आप मन गया ॥

—क़ायम चाँदपुरी

बेमुरव्वत--

हज़ार बार रखा उसने हाथ सीनेपर।
कि मेरे दमके निकलनेका ऐतबार न था।।

--जावेद लखनवी

वायदा फ़रामोश--

साफ़ कह दीजिये "वायदा ही किया था किसने ?"
उज़्र क्या चाहिये, झूठोंको मुकरनेके लिये ?

--साक़िब लखनवी

मैंने कहा कि दावये उल्फ़त, मगर ग़लत।
कहने लगे कि "हाँ ग़लत और किस क़दर ग़लत" ।।

--नाज़िम

बुत--

तामीर जब कि ख़ानये काबा की हो चुकी।
जो संग[1] बच रहा था सो उस बुतका दिल बना।।

--अज्ञात्

क़ातिल--

हमींको क़त्ल करते हैं, हमींसे पूछते हैं वोह--
"शहीदेनाज़ बतलाओ मेरी तलवार कैसी है ?"

--अज्ञात्

बवक़्ते क़त्ल मक़तलमें कोई हमदम न था अपना।
निगह कुछ देरतक लड़ती रही शमशीरे क़ातिलसे।।

--हफ़ीज़ जालन्धरी

---

[1] पत्थर।

हरजाई—

गिरे होते उलझ कर आस्तां से।
चले आते हो घबराये कहाँ से ?

—दाग़

आये भी लोग बैठे भी उठ भी खड़े हुए।
मैं जा ही देखता तेरी महफ़िलमें रह गया ॥

—आतिश

ग़ैरसे मिलना तुम्हारा सुनके गो हम चुप रहे।
पर सुना होगा कि तुमको इक जहाँ ने क्या कहा ?

—क़ाइम चाँदपुरी

ग़ैरके हमराह वोह आता है मैं हैरान हूँ।
किसके इस्तक़बालको जी तनसे मेरा जाए है ॥

जाँ न खा, वस्लेउदू सच ही सही पर क्या करूँ ?
जब गिला करता हूँ हमदम ! वह क़सम खा जाए है ॥

—मोमिन

पर्देदार—

नक़ाब डालके, मुंहपर वह बाग़में आये।
कि छनके निकहतेगुल[1] भी दिमाग़में आये ॥

—साबित लखनवी

सबब खुला यह हमें, उनके मुँह छिपानेका।
उड़ा न ले कोई अन्दाज़ मुस्करानेका ॥

—दाग़

---

[1] फूलकी सुगन्ध ।

पर्देकी और कुछ वजह अहले जहाँ नहीं।
दुनियाको मुँह दिखानेके क़ाबिल नहीं रहे॥

—अज्ञात्

नक़ाब कहती है "मैं परदये क़यामत हूँ।
अगर यक़ीन न हो देख लो उठाके मुझे॥"

—जलील

आँखें बचाके आँखोंके परदेमें आके बैठ।
मैं भी यह चाहता हूँ, तू परदानशीं रहे॥

—नौशा आज़मगढ़ी

आप परदेमें छुपे बैठे हैं, किस दिनके लिये ?
रूबरू अब आइये दुनिया बड़ी मुश्किलमें है॥

—बिस्मिल इलाहाबादी

शमा[1]—परवाना[2]

अब तक तो हज़रते इन्सानके इश्क़का तमाशा देखा, अब तनिक शमा परवानेका इश्क़ भी देखिये :—

शबे विसाल है बुझवा दो इन चिराग़ोंको।
ख़ुशीकी बज़्ममें क्या काम जलनेवालोंका ?

—दाग़

जो जलना ही क़िस्मतमें था, शमअ् होते।
तो पूछे तो जाते किसी अंजुमनमें॥

—सफ़ी लखनवी

---

[1] चराग़; [2] पतंगा।

घूरते हैं सैकड़ों परवाने उरियाँ देखकर।
मारे ग़ैरतके गड़ी जाती है महफ़िलमें शमा॥

—अज्ञात्

आया है हमको हाथ यह मजमूँ चराग़से।
रोशन उसीका नाम रहे जो जलाये दिल॥

—असीर

उम्रभर जलता रहा दिल और ख़ामोशीके साथ।
शमअ़को एक रातकी सोज़े दिलीपर नाज़ था॥

—साक़िब लखनवी

ज़रा देख परवाने करवट बदलकर।
सती हो गई शमअ़ महफ़िलमें जलकर॥

—साक़िब लखनवी

रोनेसे हया शमअ़की ज़ाहिर हो तो क्योंकर?
उरियाँ है मगर बीचमें महफ़िलके खड़ी है॥

—साक़िब लखनवी

दौरे फ़लक था जिसको बुझानेकी फ़िक्रमें।
वह शमअ़ रात सुबहसे पहले ही जल गई॥

—साक़िब लखनवी

अरे ओ जलनेवाले! काश जलना ही तुझे आता।
यह जलना कोई जलना है, कि रह जाए धुआँ होकर॥

—यगाना चंगेज़ी

आहसे दिलका दाग़ जलता है।
यह हवामें चराग़ जलता है॥

ख़ुद-बख़ुद दिलका दाग़ जलता है ।
बे जलाए चराग़ जलता है ॥

ख़ानए दिलमें दाग़ जलता है ।
बन्द घरमें चराग़ जलता है ॥

दाग़े दिल काम आया मरनेपर ।
क़ब्रमें यह चराग़ जलता है ॥

बेकसी है ग़ज़बकी मदफ़नपर ।
झिलमिलाकर चराग़ जलता है ॥

शामसे सुबह तक शबे फ़ुरक़त ।
साथ मेरे चराग़ जलता है ॥

मर रहे हैं पतङ्गे जल-जलकर ।
इसी ग़ममें चराग़ जलता है ॥

आहे मज़लूम गुल करेगी उसे ।
ज़ुल्मका कब-चराग़ जलता है ?

—बिस्मिल इलाहाबादी

सहरा=जंगल

जब इश्क़ जवान हो जाता है और हुस्न क़यामत ढाने लगता है तो आशिक़ अपने माशूक़की बेवफ़ाई और बेएतनाईसे तंग आकर घर छोड़ने-पर मजबूर हो जाता है, और प्रेमोन्मत्त अवस्थामें जंगलोंकी ख़ाक छानने लगता है :—

इश्क़का मन्सब लिखा जिस दिन मेरी तक़दीरमें।
आहकी नक़दी मिली, सहरा मिला जागीरमें॥

—अज्ञात्

इन सहराओंमें न जाने कितने असफल प्रेमियोंने अपनी जवानियाँ बखेरी हैं, यहाँ केवल २-४ प्रेमी-प्रेमिकाओं, तत्सम्बन्धी और जंगलोंमें विचरनेवाले व्यक्तियोंका परिचय दिया जाता है :—

आदम—मुसलमानी धर्मके प्रथम पैग़म्बर जो मनुष्य-मात्रके आदि पुरुष माने जाते हैं।

हव्वा—आदमकी पत्नी जो मनुष्यमात्रकी माता मानी जाती हैं।

मुसलमानी धर्मके अनुसार खुदाने इन दोनोंको माता-पिताके संयोग बिना बनाया था। निर्विकार होनेके कारण ये दोनों जन्नतमें नग्न रहते थे और फल-फूल खाते थे। खुदाने गेहूँ खानेका इन्हें निषेध किया था, परन्तु ये शैतानके बहकावेमें आकर भूल कर बैठे। गेहूँ खाते ही इन्हें वासना सम्बन्धी ज्ञान हो गया, तब तत्काल इन्होंने अपने गुह्य-अंग पत्तोंसे ढक लिये। खुदाको इनकी हरकतका पता चला, तो उसने इन्हें जन्नतसे निकाल दिया, फिर इन्हींके संयोगसे मनुष्यकी सृष्टि हुई।

निकलना खुल्दसे आदमका सुनते आये थे लेकिन।
बहुत बे-आबरू होकर तेरे कूचेसे हम निकले॥

—ग़ालिब

शैतान—मनुष्योंको बहकाकर कुमार्ग-रत और ईश्वर-विमुख करता रहता है। यह पहले ख़ुदाका बहुत बड़ा उपासक था। जब ख़ुदाने आदम बनाया तो, सब फ़रिश्तोंको उसने सजदा करनेका हुक्म दिया। अन्य फ़रिश्तोंने तो हुक्मकी तामील की, मगर इसने यह कहकर मना कर दिया कि—"जब मैं लाखों बरस ख़ुदाको सजदा करता रहा हूँ, तो एक मिट्टीसे बने मामूली पुतलेको मैं सजदा नहीं कर सकता।" ख़ुदाने अपने आदेशकी अवहेलना करनेके कारण इसे शैतान कहकर जन्नतसे बाहर कर दिया। तबसे यह हज़रत प्रतिहिंसाकी भावनाको लिये सारे संसारमें घूम-घूमकर मनुष्योंको कुमार्ग-रत और ईश्वर-विमुख करते फिरते हैं।

ख़िज़्र—एक प्रसिद्ध पैग़म्बर जो जल और स्थल-मार्गमें भूले-भटकोंको राह बतलाते रहते हैं :—

कामिलको जो पूछो तो नहीं ख़िज़्र भी कामिल।
जीना उसे आता है तो मरना नहीं आता॥

—जोश मलसियानी

ईसा—ईसाई धर्मके प्रवर्त्तक माने जाते हैं। ये बड़े दयालु और दीन-बन्धु थे। लोगोंका विश्वास है कि यह रोगियोंको स्वास्थ्य और मृतकोंको जीवनदान करते थे।

मसीहा तू ठोकर लगाये चलाजा।
मैं मरता रहूँ तू जिलाये चलाजा॥

लैला-मजनूँ—मजनूँका वास्तविक नाम क़ैस था। यह अरबके नज्द नामक प्रान्तका रहनेवाला और लैला नामक एक अरब युवतीपर आसक्त था। इसकी आसक्तिका यह हाल था, कि एक रोज़ क़ैसके

पिता इसे लैलाके पिताके पास इस ख़यालसे ले गये कि इसकी हालतपर तरस खाकर शायद वह इससे लैलाका विवाह कर दे। क़ैस सजीला और रूपवान युवक था। लैलाका पिता स्वीकृति देना ही चाहता था कि भाग्यकी बात, लैलाका कुत्ता वहाँ आ निकला। क़ैसको जब यह मालूम हुआ कि यह लैलाका कुत्ता है तो वह बेअख़्तियार उससे लिपटकर प्यार करने लगा। क़ैसके इस भावावेशको उन्माद समझकर लैलाके पिताने उसे घरसे निकाल दिया। लैलाके मिलनका जब कोई उपाय नहीं रहा, तब प्रेमोन्मत्त क़ैस जंगलोंमें निकल गया और वहाँ जीवन-पर्यन्त भटकता फिरा। उसने इतने कष्ट उठाये कि उसके प्रेमकी चर्चा समूचे अरबमें फैल गई। इसके प्रेम-आकर्षणसे खिंचकर लैला भी इसे खोजनेपर मजबूर हो गई। वह अपनी ऊँटनीपर सवार होकर क़ैसको जंगल-जंगल खोजती फिरी, परन्तु मिलन न हो सका। क़ैसका फूल-सा शरीर विरह-तापसे सूखकर काँटा हो गया, लेकिन वह अविरामगतिसे प्रेम-मार्गमें चलता ही रहा। उसे यह सोचकर आत्म-सन्तोष होता था :—

आ रहेगा दश्त[1]में लैला तेरे नाक़े[2]के काम।
हो गया मजनूँ जो काँटा सूखकर अच्छा हुआ॥

—ज़ौक़

मजनूँ विरह-ताप सहन करते-करते इतना क्षीण और अशक्त हो गया कि हवाके झोंकेसे वह पेड़से जा टकराया। तभी उसके कानमें लैलाके पुकारनेकी आवाज़ आई। लेकिन बेसूद! अब न मजनूँमें प्रत्युत्तर देनेकी शक्ति रह गई थी और न हिलने-डुलनेकी ताक़त। जीवनभरके घोर तपश्चर्याके फलस्वरूप लैला उसको पुकार रही है, पर हायरी असमर्थता! वह अपनी प्रेयसीको न तो पुकारकर अपने झाड़में

---

[1] मार्ग में, जंगल में; [2] ऊँटनीके।

उलझे रहनेका समाचार दे सकता है, और न उसके पास तक आ ही सकता है :—

आती है सदायेजरसे[1] नाक़येलैला[2]।
सदहैफ़ कि मजनूँका क़दम उठ नहीं सकता ॥

—ज़ौक़

ज़ुलेखा और यूसुफ़—यूसुफ़ हज़रत याक़ूबके पुत्र और मुसलमानोंके एक पैग़म्बर थे। मुसलमानी धर्मके अनुसार संसारका तीन चौथाई सौन्दर्य ख़ुदाने इनको दिया था। इनके भाइयोंने ईर्ष्या-वश इन्हें मिस्रके सौदागरके हाथ बेच डाला था। मिस्रके बादशाहकी रूपवती मलका ज़ुलेखा इनपर आसक्त हो गई थी। इन दोनोंको अपने जीवनमें काफ़ी कष्ट झेलने पड़े थे :—

किसीकी कुछ नहीं चलती कि जब तक़दीर फिरती है।
ज़ुलेखा हर गली, कूचेमें बेतौक़ीर फिरती है ॥

—अज्ञात्

शीरीं-फ़रहाद—फ़रहाद एक चीनी शिल्पकार था, जो ईरानकी रूप-लावण्यवती शीरींपर आसक्त था। शीरीं भी फ़रहादको हृदयसे चाहती थी। ईरानका बादशाह ख़ुसरो भी शीरींको चाहता था। अतः वह शीरींको बलात् अपने महलमें ले गया। ख़ुसरो शीरींके तनपर तो क़ब्ज़ा कर सका, पर मनपर अधिकार न जमा सका। शीरींके मनमें तो फ़रहाद समाया हुआ था, वह कैसे और किसको उसमें आने देती? अन्तमें खीझकर बादशाहने शीरींसे कहा कि—"यदि प्रेम-परीक्षामें फ़रहाद उत्तीर्ण निकले तो मैं तुझे उसके सुपुर्द कर सकता हूँ।" 'बादशाहकी

---

[1] घंटीकी आवाज़; [2] लैलाकी ऊँटनी।

अभिलाषानुसार परीक्षास्वरूप फ़रहादने पहाड़ोंको काटकर महल तक नहर निकाल दी। परन्तु छली बादशाहने शीरीं लौटानेके बजाय शीरींकी मृत्युकी झूठी खबर फ़रहादके पास पहुँचवा दी। खबर सुनते ही बेचारे फ़रहादने अपने हाथका तेशा पत्थरमें मारनेके बजाय अपने सरमें मार लिया और खुदकी निकाली हुई नहरमें गिरकर दम दे दिया।

३ नवम्बर १९४६ ई०

उद्घाटन

: ३ :

उर्दू-शायरीका विकास, उसके पोषक,
ग़ज़लके बादशाह

उद्‌घाटन

अमीर खुसरोकी राष्ट्र-भाषा 'हिन्दी-हिन्दवी'का भारतीय वेश 'वली'[1] को पसन्द न आया। उन्होंने अरबी-फ़ारसी मिश्रित जिस भाषाकी बुनियाद डाली, वह प्रारम्भमें 'रेख़्ता' और आगे चलकर सन् १७६७के लगभग 'उर्दू' कहलाई। अठारहवीं शताब्दी 'रेख़्ता' या उर्दू-शायरीकी उन्नतिका सबसे बड़ा युग है। इस युगमें उर्दू-शायरी शैशवको पारकर उस अवस्थामें पहुँच गई थी कि उसके रूप और उभारको देखकर बरबस मुँहसे निकल पड़ता था :—

उर्दू-शायरीका विकास

---

[1] वली—इनकी उपाधि वलीअल्लाह, शम्सउद्दीन नाम और उपनाम वली था। औरंगाबादके रहनेवाले थे। ये दो बार दिल्ली गये। प्रथम औरंगज़ेबके शासनकाल १७०० ईस्वीमें और द्वितीय मुहम्मदशाह के शासनकाल १७२४ ईस्वीमें। प्रथम यात्रामें शाह अल्लाह गुलशनसे इनका परिचय हुआ, जो प्रतिष्ठित वयोवृद्ध शायर थे। वलीसे (हिंदी बाहुल्य) शेर सुनकर इन्होंने कहा कि "मज़ामीने फ़ारसी क्यों नहीं रेख़्तेमें इस्तेमाल करते?" दूसरी बार दिल्लीकी यात्रामें वली अपना कलाम रेख़्ता भी साथ ले गये, जिसकी वहाँ बहुत ख्याति हुई। इसके बाद वली पुन: औरंगाबाद आये और वहीं इन्तक़ाल किया। वलीके कलामके अध्ययनसे मालूम होता है कि प्रारम्भमें वे हिन्दीके शब्द और दक्षणी मुहावरे अधिक प्रयोगमें लाते थे, किन्तु दिल्ली यात्राके बाद उनके कलाममें उत्तरोत्तर फ़ारसी शब्द और मुहावरे बढ़ते गये और हिन्दी शब्द बहिष्कृत होते गये। प्रारम्भिक उनकी ग़ज़लकी ज़बान यह थी:—

जवानी आयगी जब देखना क़हरे ख़ुदा होगा ॥

यह 'मीर' और 'सौदा' जैसे बाकमाल उस्तादोंका युग था। इनसे पूर्व—वली, आबरू, नाजी, यकरंग, हातिम, आरज़ू और फ़ुगाँ वग़ैरह

तेरे बिन मुझको ऐ साजन, तो घर और बार क्या करना ?
अगर तू ना इछे मुझ कन तो यह संसार क्या करना ?

इस शेर में प्रायः सभी शब्द हिन्दी हैं और ज़बान-मुहावरे दक्षनी हैं। १७०० ईस्वी के बाद शाहआलम के प्रोत्साहन पर वलीने फ़ारसी तरकीबों का प्रयोग भी शनैः शनैः प्रारम्भ कर दिया। उदाहरण स्वरूप :—

देखना तुझ क़द का ऐ नाज़ुक बदन !
बाइसे ख़मयाज़ए आग़ोश है ॥

दूसरी बार दिल्ली हो आनेके बाद उनकी भाषामें काफ़ी परिवर्त्तन हो गया और उसमें सुथरापन भी आ गया। मसलन :—

आग़ोश में आने की कहाँ ताब है उसको।
करती है निगह जिस क़दे नाज़ुक पै गिरानी ॥
ऐ 'वली' रहने को दुनिया में मुक़ामे आशिक़।
कूचये ज़ुल्फ़ है, आग़ोशिये तनहाई है ॥

वली दिल्ली जानेसे पहले जो सिर्फ़ इस तरह लिखना जानते थे :—

तेरे आने की बात ऊपर बिछाये हूँ मैं अखियाँको

वही दिल्लीसे वापिस आनेके बाद यह बोली बोलने लगे :—

सहर है सरवेगुल जबींकी अदा

(इन्तक़ादियात भाग २, पृ० ८६—८८ और १७१ का भावानुवाद)

उर्दू-शायरीको क़ाफ़ी विकसित कर गये थे। इस युगमें—मीर, सौदा, दर्द, जानजाना, सोज़, क़ाइम, यक़ीन, बयाँ, हिदायत, क़ुदरत और जिया जैसे सुलझे हुए कलाकारोंने उसे चार चाँद लगा दिये। उस समयके शासक और कवि भारतीय भाषासे अनभिज्ञ और अरबी-फ़ारसीके विद्वान थे। अतः स्वाभाविकतया उर्दूमें नित-नये अरबी-फ़ारसी तरकीबों, मुहावरों और शब्दोंका समावेश होने लगा, और उत्तरोत्तर हिन्दीके शब्द मतरूक (त्याज्य) होते गये।

उर्दू-शायरीके पोषक

हमने प्रस्तुत पुस्तकका उद्घाटन इसी युगसे किया है। क्योंकि उर्दू-शायरीका विकसित रूप यहींसे देखनेको मिलता है। इससे पूर्व 'वली' वग़ैरहकी शायरी अन्वेषकोंके लिये तो महत्वपूर्ण हो सकती है; किन्तु हम जिस अणुवीक्षण-यन्त्रसे उसे देखने चले हैं, उसमें वह नहीं आती। बच्चीके शैशवकी क्रीड़ाएँ उसके अभिभावकोंको तो आनन्द दे सकती हैं; किन्तु वरण करनेवालेको नहीं। वह जिस शबाबको चाहता है, हमने उसीका नक़ाब उठाया है।

इस युगके सैकड़ों शायरोंमेंसे हमने केवल 'मीर' और 'दर्द'को चुना है। हमारी तुच्छ सम्मतिमें यही दो सबसे अधिक उस युगके चमकदार कलाकार थे। यद्यपि 'सौदा' भी 'मीर'के हमपल्ले थे। पर सौदा क़सीदे और हिजो के उस्ताद थे; मीर और दर्द ग़ज़लके। उर्दू-शायरीकी बिस्मिल्लाह ही ग़ज़लसे हुई है। अतः सबसे पहले ग़ज़लके बादशाह मीर और दर्दका परिचय देना आवश्यक हो जाता है।

ग़ज़लके बादशाह

यद्यपि आजके इस प्रगतिशील युगमें जबकि नित नये कमालात जहूरमें आ रहे हैं, उस अतीत युगकी ओर झाँकनेको जी नहीं चाहता; फिर भी ग़ज़लकी दुनियाका वह स्वर्ण-युग था और आज भी उनकी शायरीका बड़ा प्रभाव है। इन्होंने वलीकी शायरीको इस

तरह सँवारा है कि १५० वर्ष व्यतीत होनेपर भी उनकी तूती बोलती है।

उर्दू-शायरीका जन्म विलासितामें डूबे हुए बादशाहों-नवाबोंके महलोंमें उस समय हुआ जब कि उसकी बड़ी बहनें—अरबी, फ़ारसी—हुस्नोइश्क़से आँखमिचौनी खेल रही थीं। उर्दू-शायरीने भी अपनी बड़ी बहनोंका रंग अख़्तियार किया और विलासी शासकों तथा रंगीन मिज़ाज शायरोंके प्रयत्नसे 'ग़ज़ल'को जन्म दिया।

यद्यपि ग़ज़लका अर्थ ही इश्क़िया शायरी है; फिर भी कहीं-कहीं धार्मिक, दार्शनिक, राजनैतिक और जीवन सम्बन्धी अनेक अनुभवोंके समोनेका शायरोंने स्तुत्य प्रयत्न किया है। ग़ज़लोंके अशआर चुनते समय इस तरहके उपयोगी कलामको यथाशक्य संकलन करनेकी हमारी रुचि रही है।

१

मीर मुहम्मद तक़ी 'मीर'

[सन् १७०९-१८०९ ई०]

'मीर' साहब अपने युगमें उर्दू ग़ज़लके बादशाह माने गए हैं। जैसा आपका उपनाम 'मीर' (सरदार) था, वैसे ही आप कविता-संसारमें चमके भी हैं। अपने जीवनमें ही इतनी ख्याति पाई कि आपके कलामको लोग सौगातके तौरपर दूर-दूर ले जाते थे। आपकी कविता वेदना और आहकी सजीव मूर्त्ति है। आज १५० वर्षके बाद भी जब कि उर्दू-शायरीमें महान परिवर्त्तन हो गया है, मुहावरे, भाव, भाषा और दृष्टि-कोणमें ज़मीन-आस्मानका अन्तर आ गया है, कितने ही शब्द और तरकीबें मतरूक (अव्यावहारिक) हो गये हैं, भाव और भाषा भी नित नए परिधान बदलते जा रहे हैं; फिर भी मीर साहबकी कवितामें वही ताज़गी महसूस होती है। 'ग़ालिब' और 'ज़ौक़' जैसे महारथियोंने भी आपका लोहा माना है। फ़र्माते हैं :—

रेख़्तेके तुम्हीं उस्ताद नहीं हो 'ग़ालिब'!
कहते हैं अगले ज़मानेमें कोई 'मीर' भी था॥

× × × ×

'ग़ालिब' अपना यह अक़ीदा[1] है बक़ौले[2] 'नासिख़'।
आप बेबहरा[3] हैं जो मौतक़िदे[4] 'मीर' नहीं॥

× × × ×

---

[1] विश्वास; [2] नासिख़ शाइरके शब्दोंमें; [3] अभागे; [4] मीरके अनुयायी, मीरके प्रशंसक।

न हुआ पर न हुआ 'मीर' का अन्दाज़ नसीब।
'ज़ौक़' यारोंने बहुत ज़ोर ग़ज़लमें मारा॥

× × × ×

मीर साहब ई० स० १७०६में आगरेमें उत्पन्न हुए और १०० वर्षकी आयुमें ई० स० १८०६में लखनऊमें समाधि पायी। बचपनमें ही माता-पिताकी मृत्यु हो जानेसे आपको दिल्ली आना पड़ा और क़रीब ६५ वर्षकी आयु तक आप दिल्लीमें ही रहे। कविता करनेकी रुचि स्वाभाविक थी। धीरे-धीरे सुगन्ध फैलने लगी। यहाँ तक कि दिल्लीमें शाहआलमके दरबारमें बड़ी आवभगत होने लगी। मगर पेट ख़ाली हो, बाल-बच्चे भूखसे छटपटाते हों, तो ऐसी आवभगत और राजकीय प्रतिष्ठा नारकीय यंत्रणासे कम नहीं होती। एक कल्पित चित्र खींचिये—

दरबारमें ख़ूब क़हक़हे लग रहे हैं। कविताके फ़व्वारे छूट रहे हैं। संगीत-लहरी क़यामत ढा रही है। पान और इत्र पेश किये जा रहे हैं। टोकरों भरकर प्रतिष्ठा मिल रही है। ख़ूब रंगरेलियाँ हो रही हैं। मगर पेटकी ज्वालाको शान्त रखकर, आँखोंके आँसू पीकर और ओठोंपर हँसी लाकर बेहयाओंकी तरह कोई कब तक हँस सकता है? जब दरबार बरख़ास्त होता है, जी नहीं चाहता कि इस बेबसीकी हालतमें बीबी-बच्चों-को मनहूस शक्ल दिखाई जाय। मगर पड़ रहनेको ठिकाना भी कहाँ? मजबूरन घर जाना पड़ता है। दरवाज़ा खुलवानेको आवाज़ देना ही चाहता है कि अन्दरसे आवाज़ सुनाई पड़ती है :—

"बेटे, ज़रा सब्रसे काम लो। तुम्हारे अब्बा आते ही होंगे। आज तुम्हारे वास्ते बादशाह सलामतने बहुत सारी मिठाइयाँ और रुपये दिये होंगे।"

"अम्मीजान! आप हमेशा यूँही कहा करती हैं। काश, आपका कहा एक रोज़ भी सच हुआ होता! शहरमें अब्बाजानकी शायरी और

दरबारी इज्ज़तकी धूम है। सुना है, बादशाह सलामतको उनके बग़ैर चैन नहीं पड़ती—उनके कहनेको कभी नहीं टालते। फिर भी ख़ुदा जाने हम क्यों इस क़दर मुसीबतमें हैं।"

"नहीं, बेटे! आज वे ज़रूर मालामाल होकर आएँगे।"

है कोई ऐसा संगदिल और बेहया जो अब भी दरवाज़ा खुलवाकर घरमें घुस सके? आह—

मेरी मजबूरियोंको कौन जाने?

इस काल्पनिक चित्रका वे भुक्तभोगी ही अनुभव कर सकते हैं, जो दरिद्रताका वरदान लेकर जनमे और संसारकी समस्त आपत्तियाँ निमंत्रण दिये बिना ही जिनके यहाँ आती रही हों और दुर्भाग्यसे बड़े आदमियोंमें उनकी बैठक शुरू हो गई हो। तब देखिए वह उठक-बैठक मनुष्यताके लिए कैसी अभिशाप सिद्ध होती है? घरमें भुनी भाँग नहीं, मगर मूँछोंपर इत्र लगाना ही पड़ता है। दिल अन्दरसे रोनेको कर रहा है, परन्तु बेहया हँसी ओठोंपर लानी ही पड़ती है। तिल-तिल घुलते हुए भी अनेक स्वाँग बनाने पड़ते हैं। ऐसे ही अभागोंके लिए शायद किसीने कहा है—"घरमें बीबी झोंके भाड़, बाहर मियाँ सूबेदार।" मीर साहब शायद ऐसे ही मजबूरोंमेंसे एक थे, जो दिल ही दिलमें घुले जाते थे, पर ज़बानपर उफ़ तक न लाते थे। आप आवश्यकतासे अधिक स्वाभिमानी, सन्तोषी, निस्स्वार्थी और कष्टसहिष्णु थे। माँगनेसे मरना बेहतर समझते थे। फ़र्माया है :—

आगे किसूके क्या करें दस्तेतमअ़[1] दराज़[2]।
यह हाथ सो गया है सिरहाने धरे-धरे॥[3]

---

[1] कामनाका हाथ; [2] पसारना; [3] गोस्वामी तुलसीदासने भी क्या ख़ूब कहा है :—

समस्त आयु निर्धनताजनक कष्टोंमें काट दी। मगर किसीके सामने हाथ पसारना तो दरकिनार, अन्तर्ज्वालाका धुआँ भी बाहर तक न आने दिया। अपनी आन-बानमें कभी बाल न आने दिया। उम्र भर बाँकपन-की टेक निभाई। बक़ौल किसीके :—

आशिक़का बाँकपन न गया बादेमर्ग[1] भी।
तख़्ते पै ग़ुस्ल[2]के जो लिटाया, अकड़ गया।।

आख़िर कब तक दरबारी सूखी मान-प्रतिष्ठा पेटकी ज्वालाको शान्त रखती, जब कि ख़ुद बादशाहके ख़ज़ानेमें ही चूहे दण्ड पेल रहे थे। ऐसी हालतमें तंग आकर मीर साहबने दिल्लीको प्रणाम किया।

मीर साहब ज़रा कड़वे मिज़ाजके थे। मिलनसारी, ज़मानेसाज़ी शायद पास तक नहीं फटकी थी। दूसरोंकी प्रशंसा करनेमें भी कंजूस थे। ज़रा-सी बात उनके दिलको ठेस पहुँचा देती थी। कौन मनुष्य कैसे व्यवहारका अधिकारी है, यह वे जानते ही न थे। जो दिलमें आता वही कह देते थे। इन सब बातोंने भी उनके कष्टोंमें आहुतियाँ ही दीं।

जब दिल्लीसे लखनऊको प्रस्थान किया तो समूची बैलगाड़ीके लिए किराया भी पास न था। अतः एक और यात्रीको साझी बनाया। मार्गमें यात्रीने बातचीत छेड़नी शुरू की तो मीर साहब मुँह फेरकर बैठ गये। थोड़ी देर बाद फिर उसने बातचीतका सिलसिला ढूँढ़ना चाहा, तो मीर साहब तेवर बदलकर बोले :—

"बेशक, आपने किराया दिया है। आप गाड़ीमें शौक़से बैठे चलें, मगर बातोंसे क्या ताल्लुक़?"

तुलसी कर-पर कर करो, कर-तर कर न करो।
जा दिन कर-तर कर करो, ता दिन मरन करो।।

[1] मृत्युके पश्चात्; [2] स्नान।

यात्रीने कहा—"हज़रत, क्या मुज़ाइक़ा है? रास्तेमें बातोंसे जी बहलता है।"

मीर साहब बिगड़कर बोले—"जी, आपका तो जी बहलता है, मगर मेरी ज़बान ख़राब होती है।"[१]

लखनऊ पहुँचनेपर धूम मच गई। नवाब आसुफ़ुद्दौलाने भी सुना। उन्होंने २०० रु० मासिक नियत कर दिया। मगर दुर्दिनोंने यहाँ भी साथ न छोड़ा। और छोड़ें भी क्योंकर? बक़ौल 'ग़ालिब' :—

क़ैदेहयातो[२] बन्देग़म[३] अस्लमें दोनों एक हैं।
मौतसे पहले आदमी ग़म[४]से निजात[५] पाये क्यों?॥[६]

मीर साहबकी तुनकमिज़ाजी, रुक्षस्वभाव, दुनियादारीकी अनभिज्ञता यहाँ भी साथ-साथ आई। एक दिन नवाबने ग़ज़लकी फ़र्माइश की। कई रोज़ बाद दरबारमें पहुँचनेपर नवाबने तक़ाज़ा किया तो आपने तेवर चढ़ाकर कहा—"जनाबेआली! मज़मून ग़ुलामकी जेबमें तो भरे ही नहीं कि कल आपने फ़र्माइश की और आज हाज़िर कर दे।"[७]

एक दिन नवाबने बुला भेजा। जब पहुँचे तो देखा कि नवाब हौज़के किनारे खड़े हैं। हाथमें छड़ी है। पानीमें लाल-हरी मछलियोंके तैरनेका

---

[१] आबेहयातके लतीफ़े, पृ० ३०

[२] जीवनकी क़ैद; [३] कष्टोंका बन्धन; [४] मुसीबतसे; [५] छुटकारा; मुक्ति।

[६] बल्कि मरनेके बाद भी चैन मिल सकेगा, 'ज़ौक़' साहबको तो इसमें भी शक है :—

अब तो घबराके यह कहते हैं कि मर जाएँगे।
मरके भी चैन न पाया तो किधर जाएँगे?

[७] आबेहयातके लतीफ़े, पृ० ३३

तमाशा देख रहे हैं। इनको देखकर बहुत खुश हुए और कोई ग़ज़ल सुनानेकी फ़र्माइश की। मीर साहबने सुनाना आरम्भ किया। मगर नवाब साहब छड़ीसे मछलियोंके साथ खेलनेमें लीन थे, और पढ़नेको भी कहते जाते थे। आखिर चार शेर पढ़कर मीर साहब ठहर गये और बोले—"पढ़ूँ क्या खाक? आप तो मछलियोंसे खेलते हैं। इधर ध्यान दें तो पढ़ूँ।" नवाबने कहा—"जो अच्छा शेर होगा खुद ही ध्यान खींचेगा।" मीर साहबको यह बात पसन्द न आई और ग़ज़लको जेबमें रख घर चले आये और फिर कभी नवाब आसफ़ुद्दौलाके जीते जी उनके यहाँ नहीं गये।[1]

एक रोज मीर साहब बाज़ार गये तो सामनेसे नवाबकी सवारी आ गई। देखते ही नवाब साहबने अत्यन्त स्नेहसे न आनेका कारण पूछा तो मीर साहबने जवाब दिया—"बाज़ारमें खड़े-खड़े बातें करना सभ्यताके विरुद्ध है।"

इसी तरह मीर साहबका जीवन व्यतीत हुआ। मौक़ा महल देखकर बात करनेका ढंग और चापलूसीका तरीक़ा उन्हें न आया। परिणाम-स्वरूप बग़ैर रमज़ानके रोज़े रखने पड़ते थे। उन्होंने अपनी दरिद्रताका

---

[1] इसी तरहकी एक घटना मीर साहबके समकालीन सौदा साहबकी है। सौदा से बादशाह शाहआलम अपनी ग़ज़लें शुद्ध कराया करते थे। एक दिन बादशाहने ग़ज़लका तक़ाज़ा किया तो सौदा ने कोई मजबूरी ज़ाहिर की। बादशाहके पूछनेपर कि रोज कितनी ग़ज़ल बना लेते हो, कहा,—"जब तबियत लग जाती है तो दो-चार शेर बना लेता हूँ।" बादशाह बोले—"हम तो पाखानेमें बैठे-बैठे चार ग़ज़लें कह लेते हैं।" सौदा ने हाथ बाँधकर अर्ज़ की—"हुज़ूर! वैसी ही बू भी आती है।" कहकर चले आये और फिर कभी न गये। (आबेहयातके लतीफ़े, पृ० १०)

स्वयं हृदयस्पर्शी शब्दोंमें, विस्तारसे वर्णन किया है। बानगी मुलाहिज़ा हो :—

चार दिवारी सौ जगहसे ख़म, तर तनक हो तो सूखते हैं हम ।।
लोनी लग-लगके झड़ती है माटी, आह, क्या उम्र बेमज़ा काटी ।।
ता गले सब खड़े हैं पानीमें, ख़ाक है ऐसी ज़िन्दगानीमें ।।
घरकी सूरत तो और रोती है, छत भी बेइख़्तियार रोती है ।।
मीरजी इस तरहसे आते हैं, जैसे कंजर कहींको जाते हैं ।।

नवाब आसफ़ुद्दौलाके बाद सआदतअलीख़ाँ राज्याधिकारी हुए। परन्तु मीर साहब फिर भी दरबार न गये। एक रोज़ नवाबकी सवारी जा रही थी। मीर साहब मस्जिदमें बैठे थे। नवाबका अदब बजा लाने को सब खड़े हो गये। मगर मीर साहब हिले तक नहीं। नवाबने 'इन्शा'से इस अहंकारीका परिचय पूछा तो इन्शाने अर्ज़ की—"हुज़ूर, यही मीर साहब हैं जिनका ज़िक्र अक्सर दरबारमें रहता है। आज भी शायद भूखे बैठे होंगे, मगर दिमाग़ आस्मानपर है।" नवाबने दरबारमें आकर ख़िलअ़त मय १०००, रु०के भिजवाई। मगर मीर साहबने उसे वापिस करते हुए कहा—"इसे मस्जिदमें भिजवा दीजिये। मैं इतना मुहताज नहीं।"

नवाबने सुना तो दंग रह गये। मनानेको इंशा भेजे गये। उन्होंने अनेक उतार-चढ़ावकी बातें की। बालबच्चोंकी दयनीय स्थितिकी ओर संकेत किया तो मीर साहबने फ़र्माया—"साहब, वे अपने मुल्कके बादशाह हैं तो मैं भी अपने फ़नका बादशाह हूँ। कोई नावाक़िफ़ इस तरह पेश आता तो मुझे शिकायत न थी। नवाब साहब मुझसे वाक़िफ़, मेरे हालसे वाक़िफ़। इसपर इतने दिनोंके बाद एक दस रुपयेके ख़िदमतगारके हाथ ख़िलअ़त भेजा। मुझे फ़िक्र-फ़ाक़ा क़ुबूल है मगर यह ज़िल्लत नहीं उठाई जाती।"

मगर इंशा भी बातोंके बादशाह थे। मनाकर दरबार ले ही गये। नवाब इनकी इतनी इज्ज़त करते थे कि अपने सामने बिठाते थे और अपना पेचवान पीनेको देते थे।[1]

मीर साहबके कुल मिलाकर ६ दीवान पाये जाते हैं। बक़ौल लेखक 'तारीखे अदब उर्दू'—"मीरकी ज़िन्दगी एक दर्दोअलमकी ज़िन्दगी है। इसी वजहसे मीरके बेहतरीन और सबसे ज्यादा बाअसर शेर वही हैं जिनमें दर्दोअलमके जज़बातका इज़हार किया गया है। मीरके अशआर ग़मगीन और चुटीले दिलोंपर खास असर करते हैं।....मीरकी दुनिया तारीकी और ग़मसे भरी हुई है, जिसमें कि उम्मीदकी झलक नज़र नहीं आती। उनके तमाम अशआर इस मक़ूलेके तहतमें हैं "जो कोई इस ग़मकदेमें क़दम रखे उम्मीदको पीछे छोड़ आये।"

[1]'आबेहयातके लतीफ़े, पृ० ३९-४०'

नाहक़[1] हम मजबूरोंपर यह तुहमत[2] है मुख़्तारी[3]की।
चाहते हैं सो आप करें हैं, हमको अबस[4] बदनाम किया॥

दिल वोह नगर नहीं कि फिर आबाद हो सके।
पछताओगे सुनो हो, यह बस्ती उजाड़कर॥

मर्ग[5] इक मान्दगी[6]का वक़्फ़ा[7] है।
यानी आगे चलेंगे दम लेकर॥

कहते तो हो यूँ कहते, यूँ कहते जो वोह आता।
सब कहनेकी बातें हैं, कुछ भी न कहा जाता॥

तड़पै है जब कि सीनेमें उछले है दो-दो हाथ।
गर दिल यही है 'मीर' तो आराम हो चुका॥

सरापा[8] आरज़ू[9] होनेने बन्दा[10] कर दिया हमको।
वगर्ना हम ख़ुदा थे, गर दिलेबेमुद्दआ[11] होते॥

एक महरूम[12] चले 'मीर' हमीं आलम[13]से।
वर्ना आलमको ज़मानेने दिया क्या-क्या कुछ?

हम ख़ाकमें मिले तो मिले, लेकिन ऐ सिपहर[14]!
उस शोख़[15]को भी राह पै लाना ज़रूर था॥

---

[1] व्यर्थ; [2] दोष, अपराध; [3] स्वतंत्रतापूर्वक कार्य करनेकी; [4] व्यर्थ; [5] मृत्यु; [6] बीमारीका, शिथिलताका; [7] समयकी अवधि, विश्राम-स्थल; [8] सिरसे पैरतक, आदिसे अन्ततक; [9] अभिलाषा; [10] पुजारी, सेवक; [11] वाञ्छा-रहित हृदय; [12] वंचित, बदनसीब; [13] संसारसे; [14] आकाश; [15] चुलबुलेको।

अहदेजवानी[1] रो-रो काटी, पीरीमें[2] लीं आँखें मूँद ।
यानी रात बहुत थे जागे, सुबह हुई आराम किया ।।

रख हाथ दिलपर 'मीर'के दरियाफ़्त कर लिया हाल है ।
रहता है अक्सर यह जवाँ, कुछ इन दिनों बेताब-सा ।।

सुबह तक शमअ[3] सरको धुनती रही ।
क्या पतिंगेने इल्तमास[4] किया ?

दाग़ेफ़िराक़ो[5] हसरतेवस्ल,[6] आरज़ूएशौक़[7] ।
मैं साथ ज़ेरेख़ाक[8] भी हंगामा[9] ले गया ।।

शुक्र[10] उसकी जफ़ा[11]का हो न सका ।
दिलसे अपने हमें गिला[12] है यह ।।

शर्त सलीक़ा[13] है हर इक अम्र[14]में ।
ऐब भी करनेको हुनर चाहिए ।।

अपने जी ही ने न चाहा कि पिएँ आबेहयात[15] ।
यूँ तो हम 'मीर' उसी चश्मे[16] पै बेजान हुए ।।

चमनका नाम सुना था वले[17] न देखा हाय !
जहाँमें हमने क़फ़स[18] ही में ज़िन्दगानी की ।।

---

[1] युवावस्था; [2] वृद्धावस्थामें; [3] चिराग़, मोमबत्ती; [4] निवेदन; [5] विरहका दुःख; [6] मिलाप या सम्भोगकी इच्छा; [7] लालसाकी अभिलाषा, मौज-शौककी ख्वाहिश; [8] मिट्टीके नीचे यानी क़ब्रमें; [9] भीड़-भड़क्का; [10] धन्यवाद; [11] अत्याचारका; [12] शिकायत; [13] लियाक़त, काम करनेका अच्छा ढंग; [14] काममें, घटनामें; [15] जीवन-अमृत; [16] पानीका सोता; [17] मगर; [18] कारावास, पिंजरा ।

कैसे हैं वे कि जीते हैं सदसाल[1] हम तो 'मीर'।
इस चार दिनकी ज़ीस्त[2] में बेज़ार[3] हो गये॥

तुमने जो अपने दिलसे भुलाया हमें तो क्या ?
अपने तईं तो दिलसे हमारे भुलाइये॥

परस्तिश[4] की याँ तक कि ऐ बुत[5] तुझे।
नज़रमें सभूकी ख़ुदा कर चले॥

यूँ कानोंकान गुल ने न जाना चमनमें आह।
सरको पटकके हम सरे दीवार मर गए॥

सदकारवाँ[6] वफ़ा[7] है कोई पूछता नहीं।
गोया मताएदिल[8] के ख़रीदार मर गये॥

अपने तो होंट भी न हिले उसके रूबरू।
रंजिशकी वजह 'मीर' वोह क्या बात हो गई ?

'मीर' साहब भी उसके याँ थे पर।
जैसे कोई ग़ुलाम होता है॥

ऐ शोरेक़यामत[9]! हम सोते ही न रह जाएँ।
इस राहसे निकले तो हमको भी जगा देना॥

मस्तोंमें लग़ज़िश[10] हो गई माज़ूर[11] रक्खा चाहिए।
ऐ अहलेमस्जिद ! इस तरफ़ आया हूँ मैं भटका हुआ॥

---

[1] सौ वर्ष; [2] ज़िन्दगी; [3] परेशान, ऊब; [4] उपासना, निबाह; [5] मूर्त्ति; [6] यात्री-दल; [7] सहृदयता, सुशीलता; [8] हृदय-धनके; [9] प्रलयका शोर; [10] कम्पन, पैरका फिसलना; [11] असमर्थ (यहाँ क्षमा)।

आनेमें उसके हाल हुआ जाए है तग़ईर[1]।
क्या हाल होगा पाससे जब यार जाएगा ?

बेकसी[2] मुद्दत तलक बरसा की अपनी गोर[3] पर।
जो हमारी ख़ाकपरसे होके गुज़रा रो गया॥

आवारगानेइश्क़[4] का पूछा जो मैं निशाँ।
मुश्तेग़ुबार[5] लेके सबा[6] ने उड़ा दिया॥

हम फ़क़ीरोंसे बेअदाई क्या ?
आन बैठे जो तुमने प्यार किया॥

सख़्त काफ़िर था जिसने पहले 'मीर'।
मज़हबेइश्क़ अख़्तियार किया॥

'मीर' बन्दोंसे काम कब निकला ?
माँगना है जो कुछ ख़ुदासे माँग॥

कहता है कौन तुझको याँ यह न कर तू वोह कर।
पर, हो सके तो प्यारे, दिलमें भी टुक जगह कर॥

ताअ़त[7] कोई करे है जब अब्र[8] ज़ोर झूमे ?
गर हो सके तो ज़ाहिद ! उस वक़्तमें गुनह[9] कर॥

क्यों तूने आख़िर-आख़िर उस वक़्त मुँह दिखाया।
दी जान 'मीर'ने जो हसरत[10]से इक निगह[11] कर॥

---

[1] परिवर्तित; [2] लाचारी; [3] क़ब्र; [4] प्रेममें उन्मत्त इधर-उधर व्यर्थ घूमनेवाले का; [5] मुट्ठी भर रेत, धूल; [6] हवाने; [7] ईश्वराराधना; [8] बादल; [9] पाप; [10] अभिलाषासे; [11] दृष्टि।

काबा पहुँचा तो क्या हुआ ऐ शेख़ !
सअ़ई[1] (सई) कर, टुक पहुँच किसी दिल तक ॥

न गया 'मीर' अपनी किश्तीसे।
एक भी तख़्ता पार साहिल[2] तक ॥

गुलकी जफ़ा[3] भी देखी, देखी वफ़ाए[4]बुलबुल।
इक मुश्त[5] पर पड़े हैं गुलशनमें जाएबुलबुल[6] ॥

आग थे इब्तदायेइश्क़[7]में हम।
हो गये ख़ाक इन्तहा[8] है यह ॥

पहुँचा न उसकी दाद[9]को मजलिसमें कोई रात।
मारा बहुत पतंगने सर शमअ़दान पर ॥

न मिल 'मीर' अबके अमीरोंसे तू।
हुए हैं फ़क़ीर उनकी दौलतसे हम ॥

काबे जानेसे नहीं कुछ शेख़ मुझको इतना शौक़।
चाल वोह बतला कि मैं दिलमें किसीके घर करूँ ॥

नहीं दैर[10] अगर 'मीर' काबा तो है।
हमारा क्या कोई ख़ुदा ही नहीं ?

लुत्फ़ क्या हर किसूकी चाहके साथ।
चाह वोह है जो हो निबाहके साथ ॥

---

[1]प्रयत्न, परिश्रम; [2]किनारा; [3]अत्याचार; [4]बुलबुलका त्याग, आत्मविसर्जन; [5]मुट्ठी भर; [6]बुलबुलके स्थानपर; [7]प्रेम के प्रारम्भमें; [8]अन्त; [9]गुणगान करनेको, प्रशंसाको; [10] मन्दिर।

मैं रोऊँ तुम हँसो हो, क्या जानो 'मीर' साहब ।
दिल आपका किसूसे शायद लगा नहीं है ।।

काबेमें जाँ-ब-लब[1] थे हम दूरियेबुताँ[2]से ।
आए हैं फिरके यारो अबके ख़ुदाके याँ से ।।

छाती जला करे है, सोजेदरूँ[3] बला है ।
इक आग-सी रहे है क्या जानिये कि क्या है ।।

याराने दैरो[4] काबा दोनों बुला रहे हैं ।
अब देखें 'मीर' अपना जाना किधर बने है ।।

क्या चाल यह निकाली होकर जवान तुमने ।
अब जब चलो हो दिलको ठोकर लगा करे है ।।

इक निगह करके उसने मोल लिया ।
बिक गए आह, हम भी क्या सस्ते ।।

मत ढलक मिज़गाँ[5]से मेरे ऐ सरश्केआबदार[6] ।
मुफ्त ही जाती रहेगी तेरी मोतीकी-सी आब ।।

दूर अब बैठते हैं मजलिसमें ।
हम जो तुमसे थे पेश्तर नज़दीक ।।

२० जून १९४४

---

[1] प्राण होठोंतक आना, मरणोन्मुख; [2] मूर्तिकी दूरीसे (प्रेमिकाके विछोहसे); [3] दिलकी जलन; [4] मन्दिर; [5] पलकके बालोंसे; [6] आबदार आँसू ।

२

ख़्वाजा मीर 'दर्द'

जन्म सन् १७१५, मृत्यु सन् १७८३ ई०

ख़्वाजा मीर 'दर्द' भी मीर साहबके समकालीन हुए हैं। आपका जन्म ई० स० १७१५में दिल्लीमें हुआ और दिल्लीमें ही ६८ वर्षकी आयु (ई० स० १७८३)में समाधि पाई। आप दरबारी आवभगत और रईसोंकी बैठकोंसे दूर भागते थे। अपनी दरगाहमें ही रहते हुए ख़ुदाकी यादमें शेरोशायरी और संगीतमें लीन रहते थे। सन्तोषी और शान्त प्रकृतिके आदमी थे। जब कि दिल्ली उजड़ जानेसे लोग इधर-उधर ठिकाना बना रहे थे, ये दिल्लीमें ही बने रहे। बादशाही मौरूसी जागीरसे और मुरीदोंसे जो आमदनी होती थी, उसीपर सब्र किये रहे। कभी किसीसे धनकी अभिलाषा नहीं की।

ख़्वाजा साहबके हज़ारों मुरीद थे। माहमें दो बार मुशायरा और संगीत-सभा आपके यहाँ होती थी। शाह आलम बादशाह भी उनमें शरीक होनेकी अभिलाषा रखते थे। मगर आप टालते ही रहे। टालनेका शायद यही कारण रहा हो कि आपको बादशाहसे कोई स्वार्थ-साधन तो करना नहीं था। जब इस तरहकी अभिलाषा ही न थी, तो बादशाहके बुलानेमें हज़ारों परेशानियोंका वे क्यों सामना करते? बड़े आदमियोंके स्वागत-सत्कारमें जो कष्ट और ज़िल्लतें उठानी पड़ती हैं, शायद इसीका ख़याल करके उन्होंने अपनी आध्यात्मिक शान्तिमें विघ्न न डालना चाहा होगा। फिर भी एक रोज़ मुशायरेमें सूचित किये बिना ही बादशाह तशरीफ़ ले आये। तशरीफ़ जब ले ही आये तो जहाँ उचित स्थान मिला

बैठ गये। फ़क़ीरोंके दरपर बादशाह और गदा सब एक हैं। संयोगकी बात पाँवमें दर्द होनेके कारण बादशाहने तनिक पाँव फैला दिये। ख़्वाजा साहबको यह अच्छा न लगा। बोले—"महफ़िलमें पाँव पसारकर बैठना तहज़ीबके ख़िलाफ़ है।" बादशाहने अपने दर्दकी कैफ़ियत बताकर मअ़ज़रत चाही तो ख़्वाजा साहबने जवाब दिया कि अगर पाँवमें दर्द था तो यहाँ आनेकी आपने तकलीफ़ ही क्यों की[1]? इस एक घटनासे ही ख़्वाजा साहबके चरित्र और स्वभावका दिग्दर्शन हो जाता है।

"ज़बान और उर्दूके लिहाज़से ख़्वाजा साहब एक निहायत नुमायाँ और मुमताज़ दर्जा रखते हैं। बक़ौल लेखक 'आबेहयात' दर्दने तल-वारोंकी आबदारी नश्तरोंमें भर दी है।" या बक़ौले अमीर मीनाई "दर्दका कलाम पिसी हुई बिजलियाँ मालूम होती हैं।"

तुहमतें[2] चन्द अपने ज़िम्मे धर चले।
किसलिए आए थे और क्या कर चले?

शमअ़[3]के मानिन्द हम इस बज़्म[4]में।
चश्मेनम[5] आए थे, दामनतर[6] चले॥

अपने बन्दे[7]पै जो कुछ चाहो सो बेदाद[8] करो।
यह न आजाय कहीं जीमें कि आबाद करो॥

वाक़िफ़ न याँ किसीसे हम हैं न कोई हमसे।
यानी कि आ गए हैं, बहके हुए अदम[9]से॥

---

[1] आबेहयातके लतीफ़े, पृ० २२; [2] झूठे कलंक; [3] मोमबत्ती; [4] गीत या आमोद-प्रमोदका स्थान, रंगस्थल; [5] आँसूभरे नेत्र; [6] भीगे हुए वस्त्र; [7] सेवक, भक्त, पुजारी; [8] अत्याचार; [9] परलोक।

जितनी बढ़ती है, उतनी घटती है।
ज़िन्दगी आप ही आप कटती है॥

तरदामनी[1]पै शेख़[2]! हमारी न जाइयो।
दामन निचोड़ दें तो फ़रिश्ते[3] वज़ू[4] करें॥

दुश्वार होती ज़ालिम, तुझको भी नींद आनी।
लेकिन सुनी न तूने टुक भी मेरी कहानी॥

मुहताज अब नहीं हम नासेह[5] नसीहतोंके।
साथ अपने सब वोह बातें लेती गई जवानी॥

तेरी गलीमें मैं न चलूँ और सबा[6] चले।
यूँ ही ख़ुदा जो चाहे तो बन्देकी क्या चले॥

सूरतें क्या-क्या मिली हैं ख़ाकमें।
है दफ़ीना[7] हुस्न[8]का ज़ेरे[9]ज़मीं॥

शादीकी और ग़मकी है दुनियामें एक शक्ल।
गुलको शगुफ़्ता[10] दिल कहो या शकिस्ता[11] दिल॥

ऐ आँसुओ! न आवे कुछ दिलकी बात लब[12]पर।
लड़के हो तुम कहीं मत अफ़शाएराज़[13] करना॥

दर्देदिलके वास्ते पैदा किया इन्सानको।
वर्ना ताअत[14]के लिए कुछ कम न थे कर्रों[15]बयाँ॥

---

[1] भीगे वस्त्र; [2] धर्माचार्य; [3] देवता; [4] नमाज़ पढ़नेके पूर्व शुद्धिके लिए हाथ-पाँव आदि धोना; [5] उपदेशक; [6] हवा; [7] ख़ज़ाना; [8] सौन्दर्य; [9] पृथ्वीके नीचे; [10] खिला हुआ; [11] कुम्हलाया हुआ; [12] ओठ [13] भेद प्रकट करना; [14] ईश्वराराधन, सेवा; [15] देवता।

हम तुझसे किस हविस[१]की फ़लक[२] जुस्तजू[३] करें ?
दिल ही नहीं रहा है जो कुछ आरज़ू[४] करें ।।

क़ासिद[५] ! नहीं यह काम तेरा अपनी राह ले ।
उसका पयाम[६] दिलके सिवा कौन ला सके ?

रौंदे हैं नक़्शेपा[७]की तरह ख़ल्क़[८] याँ मुझे ।
ऐ उम्रेरफ़्ता[९] ! छोड़ गई तू कहाँ मुझे ?

बाहर न आ सकी तू क़ैदे[१०]ख़ुदीसे अपनी ।
ऐ अक़्ले बेहक़ीक़त,[११] देखा शऊर तेरा ?

किनारेसे किनारा कब मिला है बहर[१२]का यारो !
पलक लगनेकी लज़्ज़त दीदयेपुरआब[१३] क्या जाने ?

अर्ज़ो[१४] समा[१५] कहाँ तेरी वुस्अत[१६]को पा सके ।
मेरा ही दिल है वोह कि जहाँ तू समा सके ।।

किधर बहकी फिरती है ऐ बेकसी[१७] तू ।
तेरी जिन्स[१८]का याँ ख़रीदार मैं हूँ ।।

ख़ुदा जाने क्या होगा अंजाम[१९] इसका ।
मैं बेसब्र इतना हूँ, वोह तुन्दख़ू[२०] है ।।

---

[१] तृष्णा, इच्छा; [२] आकाश; [३] इच्छा; [४] निवेदन, माँग; [५] पत्रवाहक; [६] सन्देश; [७] चरण-चिन्ह; [८] जगत; [९] बीता हुआ जीवन; [१०] अहंकारका बन्धन; [११] तथ्यरहित, असलियतसे दूर; [१२] दरिया; [१३] आँसू भरे नेत्र; [१४] पृथ्वी; [१५] आकाश; [१६] विशालता; [१७] मजबूरी; [१८] वस्तु; [१९] परिणाम; [२०] उग्रस्वभावी ।

तूफ़ानेनूह ने तो डुबोई जमीं फ़क़त ।
मैं नंगेख़ल्क़[1] सारी ख़ुदाई[2] डुबो गया ॥

हिजाबे[3]रुख़ेयार थे आप ही हम ।
खुली आँख जब कोई परदा न देखा ॥

करे क्या फ़ायदा नाचीज़को तक़लीद[4] अच्छोंकी ।
कि जम जानेसे कुछ ओला तो गौहर[5] हो नहीं सकता ॥

हरदम बुतोंकी सूरत रखता है दिल नज़रमें ।
होती है बुतपरस्ती अब तो ख़ुदाके घरमें ॥

मुहब्बतने तुम्हारे दिलमें भी इतना तो सर खींचा ।
क़सम खाने लगे तब हाथ मेरे सरपे धर बैठे ॥

क़ासिदसे कहो फिर ख़बर उधर ही को ले जाय ।
याँ बेख़बरी आ गई जबतक कि ख़बर आय ॥

तू अपने हाथों आप ही पड़ता है तिफ़क़्क़ेमें ।
ऐ इख़्तियाजे नादाँ टुक इख़्तियाज करना ॥

अश्क ने मेरे मिलाये कितने ही दरियाके पाट ।
दामने सहरामें वर्ना इस क़दर कब फेर था ॥

चटका अबस नहीं कोई ग़ुंचा चमनमें आह !
ऐ तौसने बहार ! तुझे ताज़याना था ॥

२२ जून १६४४

---

[1] अधम; [2] सृष्टि; [3] प्रेमिकाके कपोलकी हया; [4] अनुकरण; [5] मोती ।

संगम





: ४ :

[उर्दू का प्रथम भारतीय विशुद्ध कवि]

३

वलीमुहम्मद 'नज़ीर' अकबराबादी

[१७४० से १८३० ई०]

जहाँ हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति और भाषा, भेद-भाव भूलकर समीपसे समीप होती हुई एकाकार हो सकें, ऐसे संगमका शिलारोपण अमीर ख़ुसरो ने १३वीं शताब्दीमें किया था; और उनके पीछे कबीर, जायसी, रहीम, आदि अनेक कवियोंने ४०० वर्षके लगातार कठोर परिश्रमसे उस संगमपर भाषा और भावका वोह प्रवाह ला दिया था कि जिसने उसमें एक बार डुबकी लगाई, आनन्दविभोर हो उठा। परन्तु वलीकी रंगीन तबियतको यह न भाया। उसने अपने कला-प्रदर्शनके लिए उस संगमको काटकर एक पृथक् नहर निकाली, और प्रयत्न यह किया गया कि उस नहरमें भारतीय संस्कृति, भाव, भाषा रूपी पानी कम-से-कम आये। यही नहीं, उस नहरपर जो उद्यान लगाया गया उसमें आम, जामुन, निबुआके पेड़ोंको काटकर खजूर और ताड़के पेड़ लगाये गये। कोयलकी बोलती बन्द करके बुलबुलको चहकनेके लिए अरबसे लाया गया। भीम और अर्जुनके बुत तोड़कर रुस्तम और सामकी ख़याली तस्वीर गढ़ी गई। हिमाचल-विन्ध्याचल तो नज़रोंसे ओझल रहे, पर कोहेतूरको जरूर उठा लाये। पद्मिनी जैसी सुन्दरी और शीलवती नारीको तो भूल गये मगर तुर्की हूर जैसी असतीको न भूले। पृथ्वीराज-संयोगिता, जहाँगीर और नूरजहाँका प्रेम इन्हें लैला-मजनूँ और शीरीं-फ़रहादके आगे याद ही न आया। काश्मीरसे बढ़कर इन्हें मिस्रका बाज़ार रुचिकर लगा।

इसी कृत्रिम प्रदर्शनीमें मीर, सौदा, दर्द, जुरअत, हसन, इंशा, मसहफ़ी,

नासिख और आतिश जैसे कलाकार अपनी कलाका जौहर दिखला रहे थे। नज़ीरने भी यहीं आँखें खोलीं। यहीं शिक्षित-दीक्षित हुए। परन्तु इन्हें यह संकुचित क्षेत्र भाया नहीं। सामने ही अमीर ख़ुसरो-द्वारा स्थापित विशाल संगम दिखलाई दे रहा था। अतः नज़ीर वहाँसे भाग निकले और उस शुष्क और उजाड़ संगमपर आकर नज़ीरने अज़ान भी दी, और शंख भी फूँका। तसबीह भी ली और जनेऊ भी पहना। मुहर्रममें रोये तो होलीमें भड़ुवे भी बने। रमज़ानमें रोज़े रखे और सलूनोंपर राखी बाँधनेको मचल पड़े। शब्बरातपर महताबियाँ छोड़ीं तो दीवालीपर दीप सँजोये। नबी, रसूल, वली, पीर, पैग़म्बरके लिए जी भरकर लिखा, तो कृष्ण महादेव, नरसी, भैरों और नानकपर भी श्रद्धाञ्जलि चढ़ाई। गुलोबुलबुलपर कहा तो आम और कोयलको पहले याद रखा। पर्देके साथ बसन्ती साड़ी भी याद रही। और तो और, गर्मी, बरसात और सर्दीपर भी लिखा। बच्चोंके लिए रीछका बच्चा, कौआ और हिरन, गिलहरीका बच्चा, तरबूज़, पतंगबाज़ी, बुलबुलोंकी लड़ाई, ककड़ी, तैराकी, तिलके लड्डू पर लिखने बैठे तो बच्चे बन गये। हरएक बालक गली-कूचोंमें गाता फिर रहा है। जवानों और बुड्ढोंको नसीहत देने बैठे तो लोग वज्दमें आ गये। मानों क़ुरान, हदीस, वेद, गीता, उपनिषद्, पुराण सब घोलकर पी जानेवाला कोई सिद्ध पुरुष बोल रहा है।

नज़ीर इन सब गुणोंके कारण ही ख़ालिस हिन्दुस्तानी शायरके पदपर आसीन हैं। उन्होंने सरल-सुबोध भाषामें जिन विषयोंपर लिखा है, उनसे पहले किसीको यह ध्यान भी न आया कि ग़ज़ल, क़सीदे, मसनवी और मर्सियोंके सिवा भी अपने चारों तरफ़ बिखरे हुए हालात, रीति-रिवाज और आवश्यकताओंपर भी प्रकाश डाला जा सकता है। इसीलिए हमने नज़ीरको अन्य समकालीन शायरोंसे पृथक् आसन दिया है।

मियाँ नज़ीरका जन्म क़रीब सन् १७४०में दिल्लीमें हुआ, और १६ अगस्त सन् १८३०में ६० वर्षकी आयु पाकर आगरेमें समाधि पाई। पिताकी मृत्युके बाद अपनी माँ और नानीको साथ लेकर आगरे आ गये थे, और यहीं बच्चोंको पढ़ाकर गुज़ारा करते थे। नज़ीर सन्तोषी जीव थे। लखनऊ और भरतपुर स्टेटके निमंत्रणोंपर भी नहीं गये। अत्यन्त मृदुभाषी, हँसमुख, और मिलनसार थे। हिन्दू और मुसलमान सभी इनके प्रेमी थे। सभीसे दिलसे मिलते थे। हर मज़हबके उत्सवोंमें बिना भेद-भाव शामिल होते थे। पक्षपात और मज़हबी दीवानगीको पासतक नहीं फटकने देते थे। जब मरे तो हज़ारों हिन्दू भी जनाज़ेके साथ थे। जवानीमें कुछ आशिक़ाना रंगमें भी रहे, और लिखा भी, मगर जल्द सम्हल गये।

नज़ीरके कलाममेंसे मामूली अशआर निकाल दिये जाएँ तो विद्वानों-का मत है कि वे बड़े-बड़े दार्शनिक और उपदेशकोंकी श्रेणीमें सरलतासे बैठाये जा सकते हैं।

नज़ीरके दीवानके कुछ शीर्षकोंमेंसे १-१ या २-२ बन्द बतौर नमूना दिये जाते हैं। ऊपर जितने विषयोंका उल्लेख हुआ है, उन सबको देनेके लिए तो एक जुदी पुस्तककी ज़रूरत है। दूसरे, वर्त्तमानमें उर्दू-शायरी जिस बुलन्दीपर पहुँच गई है, उसको देखते हुए भी हमने लोभ संवरण किया है, क्योंकि बिजलीके प्रकाशके आगे शमाकी अब उतनी क़द्र कहाँ?

(१) कामुकवृद्ध :—

चाहें तो घूर डालें सौ ख़ूबरूको दममें।
और मेले छान मारें वोह ज़ोर है क़दममें॥

सीना फड़क रहा है ख़ूबोंके दर्दोग़ममें।
पट्ठोंमें वोह कहाँ हैं जो गर्मियाँ हैं हममें॥
अब भी हमारे आगे यारो! जवान क्या हैं?

(२) तन्दुरुस्ती और आबरू :—

दुनियामें अब उन्हींके तईं कहिए बादशाह।
जिनके बदन दुरुस्त हैं दिनरात सालोमाह ॥
जिस पास तन्दुरुस्ती और हुरमतकी हो सिपाह।
ऐसी फिर और कौनसी दौलत है वाह-वाह ॥
जितने सख़ुन हैं सबमें यही है सख़ुन दुरुस्त—
"अल्लाह आबरूसे रखे और तन्दुरुस्त" ॥

(३) कलियुग :—

अपने नफ़ेके वास्ते मत औरका नुक़सान कर।
तेरा भी नुक़साँ होयगा इस बात ऊपर ध्यान कर ॥
खाना जो खा तो देखकर, पानी जो पी तो छानकर।
याँ पाँवको रख फूँककर और ख़ौफ़से गुज़रान कर ॥
कलयुग नहीं कर-जुग है यह, याँ दिनको दे और रात ले।
क्या ख़ूब सौदा नक़्द है, इस हाथ दे उस हाथ ले ॥

(४) आटे-दालकी फ़िक्र :—

इस आटे-दाल ही का जो आलममें है ज़हूर।
इससे ही मुँह पे नूर है और पेटमें सरूर ॥
इससे ही आके चढ़ता है चेहरेपै सबके नूर।
शाहोगदा अमीर इसीके हैं सब मजूर ॥
यारो ! कुछ अपनी फ़िक्र करो आटेदालकी।

(५-६) रोटियाँ :—

(वर्त्तमान भूखे भारतका क्या सजीव चित्रण है !)

पूछा किसीने यह किसी कामिल फ़क़ीरसे—
"यह महरोमाह हक़ने बनाये हैं काहेके" ?

वह सुनके बोला, "बाबा ! ख़ुदा तुझको ख़ैर दे ।
हम तो न चाँद समझें न सूरज हैं जानते ।।
बाबा ! हमें तो यह नज़र आती हैं रोटियाँ "।।
रोटी न पेटमें हो तो फिर कुछ जानते नहीं ।
मेलेकी सैर ख़्वाहिशे बाग़ोचमन नहीं ।।
भूके ग़रीब दिलकी ख़ुदासे लगन न हो ।
सच है कहा किसीने कि भूखे भजन न हो ।।
अल्लाहकी भी याद दिलाती हैं रोटियाँ" ।।

(७-८) कौड़ी का महत्व :—

कौड़ी बग़ैर सोते थे ख़ाली ज़मीनपर ।
कौड़ी हुई तो रहने लगे शहनशीनपर ।।
पटके सुनहरे बँध गये जामोंकी चैनपर ।
मोतीके लच्छे लग गये घोड़ोंकी ज़ीनपर ।।
कौड़ीके सब जहानमें नक़्शोनगीन हैं ।
कौड़ी नहीं तो कौड़ीके फिर तीन-तीन हैं ।।
गाली व मार खाते हैं कौड़ीके वास्ते ।
शर्मोहया उठाते हैं कौड़ीके वास्ते ।।
सौ मुल्क छान आते हैं कौड़ीके वास्ते ।
मस्जिदको ढममें ढाते हैं कौड़ीके वास्ते ।।
कौड़ीके सब जहानमें नक़्शोनगीन हैं ।
कौड़ी नहीं तो कौड़ीके फिर तीन-तीन हैं ।।

(९) पैसे की इज़्ज़त :—

जब हुआ पैसेका ऐ दोस्तो ! आकर संयोग ।
इशरतें पास हुईं दूर हुए मनके रोग ।।

खाये जब माल, पिये दूध, दही, मोहनभोग ।
दिलको आनन्द हुआ भाग गये सारे रोग ।।
ऐसी खूबी है जहाँ आना हुआ पैसेका ।।

(१०) होली :--

मियाँ ! तू हमसे न रख कुछ ग़ुबार होलीमें ।
कि रूठे मिलते हैं आपसमें यार होलीमें ।।
मची है रंगकी कैसी बहार होलीमें ।
हुआ है ज़ोरे चमन आश्कार होलीमें ।।
अजब यह हिन्दकी देखी बहार होलीमें ।।

(११-१२) दूसरी बहर में होली :--

क़ातिल जो मेरा ओढ़े इक सुर्ख़ शाल आया ।
खा-खाके पान ज़ालिम कर होंट लाल आया ।।
गोया निकल शफ़क़से बदरे कमाल आया ।
जब मुँहपै वह परीरू मलकर गुलाल आया ।
इक दमसे देख उसको होलीको हाल आया ।।

ऐशोतरबका सामा है आज सब घर उसके ।
अब तो नहीं है कोई दुनियामें हमसर उसके ।।
अज़माह ता-ब-माही बन्दे हैं बेज़र उसके ।
कल वक़्तेशाम सूरज मलनेको मुँहपर उसके ।।
रखकर शफ़क़के सरपर तश्तेगुलाल आया ।।

(१३-१४) फ़क़ीर की सदा :--

दौलत जो तेरे पास है रख याद तू यह बात ।
खा तू भी और अल्लाहकी कर राहमें ख़ैरात ।।

देनेसे इसीके तेरा ऊँचा रहे फिर हात।
और यां भी तेरी गुज़रेगी सौ ऐशसे औक़ात॥
और वाँ भी तुझे सैर यह दिखलायेगी बाबा!
दाताकी तो मुश्किल कभी अटकी नहीं रहती।
चढ़ती है पहाड़ोंके ऊपर नाव सख़ीकी॥
और तूने बख़ीलीसे अगर जमा उसे की।
तो याद यह रख बात कि जब आवेगी सख़्ती॥
ख़ुश्कोमें तेरी नाव यह डुबवायेगी बाबा!!

(१५-१६) मृत्युकी आमद :—

यह अश्व बहुत कूदा-उछला, अब कोड़ा मार वज़ीर करो।
जब माल इकट्ठा करते थे अब तनका अपने ढेर करो॥
गढ़ टूटा, लश्कर भाग चुका, अब म्यानमें तुम शमशेर करो।
तुम साफ़ लड़ाई हार चुके अब भगनेमें मत देर करो॥
तन सूखा, कुबड़ी पीठ हुई, घोड़ेपर ज़ीन धरो बाबा।
अब मौत नक़ारा बाज चुका, चलनेकी फ़िक्र करो बाबा॥
गर अच्छी करनी नेक अमल तुम दुनियासे ले जाओगे।
तो घर अच्छा-सा पाओगे, और सुखसे बैठके खाओगे॥
ऐसी दौलतको छोड़के तुम जो ख़ाली हाथों जाओगे।
फिर कुछ भी बन नहीं आवेगी, घबराओगे, पछताओगे॥
तन सूखा, कुबड़ी पीठ हुई, घोड़ेपर ज़ीन धरो बाबा।
अब मौत नक़ारा बाज चुका, चलनेकी फ़िक्र करो बाबा॥

(१७) ख़ाक का पुतला :—

वोह शख़्स थे जो सात विलायतके बादशाह।
हशमतमें जिनकी अर्शसे ऊँची थी बारगाह॥

मरते ही उनके तन हुए गलियोंकी ख़ाके राह ।
अब उनके हालको भी यही बात है गवाह ॥
जो ख़ाकसे बना है वोह आख़िरको ख़ाक है ॥

(१८-२१) आदमी नामा :—

दुनियामें बादशाह है सो है वह भी आदमी ।
और मुफ़लिसोगदा है सो है वह भी आदमी ॥
ज़रदार बेनवा है सो है वह भी आदमी ।
नेमत जो खा रहा है सो है वह भी आदमी ॥
टुकड़े जो माँगता है सो है वह भी आदमी ॥

मस्जिद भी आदमीने बनाई है यां मियाँ !
बनते हैं आदमी ही इमाम और ख़ुतबाख़्वाँ ॥
पढ़ते हैं आदमी ही क़ुरान और नमाज़ यां ।
और आदमी ही उनकी चुराते हैं जूतियाँ ॥
जो उनको ताड़ता है सो है वह भी आदमी ॥

यां आदमीपै जानको वारे है आदमी ।
और आदमोपै तेग़को मारे है आदमी ॥
पगड़ी भी आदमीकी उतारे है आदमी ।
चिल्लाके आदमीको पुकारे है आदमी ॥
और सुनके दौड़ता है सो है वह भी आदमी ॥

यां आदमी नक़ीब हो बोले है बार-बार ।
और आदमी ही प्यादे हैं और आदमी सवार ॥
हुक़्क़ा, सुराही, जूतियाँ दौड़ें बग़लमें मार ।
काँधेपै रखके पालकी हैं दौड़ते कहार ॥
और उसमें जो बैठा है सो है वह भी आदमी ॥

(२२) राखी :—

मची है हर तरफ़ क्या-क्या सलूनोंकी बहार अब तो।
हर एक गुलरू फिरे है राखी बाँधे हाथमें खुश हो॥
हविस जो दिलमें गुज़री है, कहूँ क्या आह! मैं तुझको।
यही आता है जी में बनके बाम्हन आज तो यारो!
मैं अपने हाथसे प्यारेके बाँधूँ प्यारकी राखी॥

(२३-२६) मुफ़लिसी :—

जब आदमीके हालपै आती है मुफ़लिसी।
किस-किस तरहसे उसको सताती है मुफ़लिसी॥
प्यासा तमाम रोज़ बिठाती है मुफ़लिसी।
भूखा तमाम रात सुलाती है मुफ़लिसी॥
ये दुख वो जाने जिसपै कि आती है मुफ़लिसी॥

मुफ़लिसकी कुछ नज़र नहीं रहती है आनपर।
देता है अपनी जान वोह एक-एक जानपर॥
हर आन टूट पड़ता है रोटीके ख्वानपर।
जिस तरह कुत्ते लड़ते हैं इक उस्तख्वानपर॥
वैसा ही मुफ़लिसोंको लड़ाती है मुफ़लिसी॥

हर आन दोस्तोंकी मुहब्बत घटाती है।
जो आश्ना हैं उनकी तो उल्फ़त घटाती है॥
अपनेकी महर, ग़ैरकी चाहत घटाती है।
शर्मोहया व ग़ैरतोहुरमत घटाती है॥
हाँ, नाखून और बाल बढ़ाती है मुफ़लिसी॥

× × ×

जिस दिलजलेके ऊपर दिन मुफ़लिसीके आये ।
फिर दूर भागे उससे सब अपने और पराये ॥
आखिरको मुफ़लिसीने यह दिन उसे दिखाये ।
खाना जहाँ था बँटता वहाँ जाके धक्के खाये ॥
कम्बख़्तको जो खाना अवसर मिला तो ऐसा ॥

(२७-३३) बनजारानामा :—

टुकहिर्स हवाको छोड़ मियाँ मत देस-विदेस फिरे मारा ।
क़ज्ज़ाक़ अजलका लूटे है दिन-रात बजाकर नक़्क़ारा ॥
क्या बधिया, भैंसा, बैल, शुतुर क्या गोनी, पल्ला, सर भारा ।
क्या गेहूँ, चावल, मोठ, मटर, क्या आग, धुआँ और अंगारा ॥
सब ठाट पड़ा रह जायेगा जब लाद चलेगा बनजारा ॥

गर तू है लक्खी बनजारा और खेप भी तेरी भारी है ।
ऐ ग़ाफ़िल ! तुझसे भी चढ़ता यह और बड़ा व्यापारी है ॥
क्या शक्कर, मिसरी, क़न्द, गरी क्या साँभर, मीठा खारी है ।
क्या दाख़, मुनक़्क़ा, सोंठ, मिरिच क्या केसर, लौंग, सुपारी है
सब ठाट पड़ा रह जायेगा जब लाद चलेगा बनजारा ॥

कुछ काम न आवेगा तेरे यह लाल ज़मुर्रद सीमोज़र ।
सब पूँजी बाटमें बिखरेगी जब आन बनेगी जान ऊपर ॥
नौबत-नक़्क़ारे-बान-निशाँ-दौलत - हशमत - फ़ौजें - लश्कर ।
क्या मसनद-तकिया, मुल्क-मकाँ क्या चौकी-कुर्सी-तख़्त-छतर ॥
सब ठाट पड़ा रह जायेगा जब लाद चलेगा बनजारा ॥

मग़रूर न हो तलवारोंपर मत भूल भरोसे ढालोंके ।
सब पटा तोड़के भागेंगे मुँह देख अजलके भालोंके ॥

क्या डब्बे मोती-हीरोंके क्या ढेर खज़ाने मालोंके।
क्या बुग़चे तार-मुशज्जरके, क्या तख्ते शाल-दुशालोंके ॥
सब ठाट पड़ा रह जायेगा जब लाद चलेगा बनजारा ॥

क्या सख्त मकाँ बनवाता है, खम तेरे तनका है पोला।
तू ऊँचे कोट उठाता है वाँ तेरी गोरने मुंह खोला ॥
क्या रेती-खंदक़ रुन्द बड़े, क्या बुर्ज-कँगूरा अनमोला।
गढ़ कोट-रहनला-तोप-क़िला, क्या सीसा-दारू और गोला ॥
सब ठाट पड़ा रह जायेगा जब लाद चलेगा बनजारा ॥

जब चलते-चलते रस्तेमें यह गौन तेरी ढल जावेगी ॥
एक बधिया तेरी मिट्टी पर फिर घास न चरने आवेगी।
यह खेप जो तूने लादी है सब हिस्सोंमें बँट जावेगी।
धी-पूत-जँवाई-बेटा क्या, बनजारन पास न आवेगी ॥
सब ठाट पड़ा रह जायेगा जब लाद चलेगा बनजारा ॥

जब मुर्ग़ फिराकर चाबुकको यह बैल बदनका हाँकेगा।
कोई नाज समेटेगा तेरा, कोई गौन सिये और टाँकेगा ॥
हो ढेर अकेला जंगलमें तू खाक लहदकी फाँकेगा।
उस जंगल में फिर आह! 'नज़ीर' एक तिनका आन न झाँकेगा ॥
सब ठाट पड़ा रह जायेगा जब लाद चलेगा बनजारा।

(३४-३८) कुछ दोहे :—

कूक करूँ तो जग हँसे, और चुपके लागे घाव।
ऐसे कठिन सनेहका, किस बिध करूँ उपाव ॥

जो मैं ऐसा जानती, प्रीत किये दुख होय।
नगर ढिंढोरा पीटती, प्रीत न कीजो कोय ॥

आह दई कैसी भई, अनचाहतके संग।
दीपकके भावे नहीं, जल-जल मरे पतंग ॥

विरह आग तनमें लगी, जरन लगे सब गात।
नारी छूवत वैद्यके, पड़े फफोला हात ॥

दिल चाहे दिलदारको, तन चाहे आराम।
दुबिधामें दोनों गये, माया मिली न राम ॥

(३९-४२)

हुशयार यार जानी, ये दश्त है ठगोंका।
यां टुक निगाह चूकी, और माल दोस्तोंका ॥

√ सब जीते जीके झगड़े हैं सच पूछो तो क्या खाक हुए।
जब मौतसे आकर काम पड़ा सब क़िस्से क़जिये पाक हुए ॥

डरती है रूह यारो! और जी भी काँपता है।
मरनेका नाम मत लो, मरना बुरी बला है ॥

दो चपातीके वरक़में सब वरक़ रोशन हुए।
इक रकाबीमें हमें चौदह तबक़ रोशन हुए ॥[1]

---

[1] विस्तारभयसे बाक़ी ८ बन्द निकाल दिये गये हैं।

ज्योत्स्ना





: ५ :

उर्दू शायरी जवानी की चौखटपर

सन् १८०० से १९०० तकके अमर कलाकार

यह युग उर्दू शायरीके लिए नेमत है। इस युगमें 'ग़ालिब', 'ज़ौक़', 'मोमिन' जैसे उस्तादगर पैदा हुए, जिनके शिष्य 'हाली', 'दाग़', 'आज़ाद' भी उस्तादोंके उस्ताद हुए हैं। इन सबने वह जीवन-ज्योति जलाई कि उर्दू-शायरीके निर्जीव शरीरमें जाज्वल्यमान प्राणोंका संचार हो उठा। वर्त्तमान उर्दू-बज़्ममें इन्हींकी ज्योतिका उजाला है।

४

शेख़ मुहम्मद इब्राहीम 'ज़ौक़'

[सन् १७८९-१८५४ ई०]

शेख़ ज़ौक़ कीचड़में कमलकी तरह उत्पन्न हुए। कमल ही की तरह विकसित हुए, वैसा ही सौरभ फैला। कमलकी तरह बादशाहके सरपर चढ़ाए गए और सर चढ़े हुए कमलकी ही तरह उनका सौरभ दिन-दूना रात-चौगुना फैलनेसे रह गया।

शेख़ ज़ौक़ एक ग़रीब साधारण सिपाहीके पुत्र थे। अपनी प्रतिभाके बलपर अनेक विघ्न-बाधाओंको रौंदते हुए शाही दरबारमें प्रवेश पाया और वहाँ बहादुरशाह बादशाहके काव्य-गुरुके आसनपर प्रतिष्ठित हुए। एक कविको जितनी अधिक-से-अधिक ख्याति और राजकीय प्रतिष्ठा मिलनी चाहिए, उतनी उन्हें मिली; पर यही प्रतिष्ठा उनकी कलाके लिए राहु बन गई।

एक बुलबुल जो चुपचाप चमनमें रहकर अपने जीवनको सानन्द व्यतीत कर सकती थी, वही नग़मये पुरदर्द छेड़नेपर बैठे-बिठाये शिकार हो गई :—

नग़मयेपुरदर्द[१] छेड़ा मैंने इस अन्दाज़से।
ख़ुद-ब-ख़ुद पड़ने लगी मुझपर नज़र सैयाद की॥

वोह बुलबुल जो आज़ाद रहकर इस शाख़से उस शाख़पर फुदकती हुई चहकती, सोनेके पिंजरेमें बन्द होकर उसे वोह बोल गाने पड़े जो पिंजरेवाला चाहता था।

---

[१] व्यथासे ओतप्रोत संगीत।

भरते हैं मेरी आहको वोह ग्रामोफ़ोनमें।
कहते हैं फ़ीस लीजिए और आह कीजिए ॥
—'अकबर'

यही दयनीय स्थिति ज़ौक़की थी। बादशाह उन्हें चैन ही नहीं लेने देता था। दिन में कई-कई ग़ज़लोंके एक-एक या दो-दो मिसरे लिखकर दे देता था और उस्तादकी हैसियतसे वे सब ग़ज़लें पूरी ज़ौक़ साहबको करनी पड़ती थीं। इतनेपर भी बस होती तो ग़नीमत थी। बादशाहको तो वहशत सवार रहती थी। किसी कुंजड़ेकी आवाज़ सुनी—

मज़ा अंगूरका है रंगतरे[1]में।

—और बादशाहकी तबियत लोट-पोट हुई। "भई उस्ताद, क्या मिसरा हुआ है। इसपर अभी एक ग़ज़ल तो कहो।" रंगतरेपर अभी ग़ज़ल कह ही रहे थे कि चूरनवालेका लटका जो सुनाई दिया—

तेरे मन चलेका सौदा है खट्टा और मीठा।

—तो फड़क उठे—"सुना उस्ताद! कैसा खटमिट्ठा मिसरा है। इसपर भी ग़ज़ल कहनी होगी।" यह ग़ज़ल हुई तो फ़क़ीरकी सदा आई—

कुछ राहेख़ुदा दे जा, जा तेरा भला होगा।

सदा बादशाहको पसन्द आगई। इस पर भी ग़ज़ल बनी। तो फिर बिसाती, मनिहार की आवाज़ पर रीझ गए। कोई लड़का गाता हुआ निकल गया तो पूरी ग़ज़ल उसी वक़्त सुननेको बेक़रार हो गए। और उस पर भी तुर्रा यह कि आज शाहज़ादीकी बोयी हुई मिर्च फली है, उसका जशन है। कल उसके गुड्डेके विवाहका सेहरा लिखना है। परसों मलकये आलमकी कुतिया के पिल्ले आँखें खोलेंगे। बादशाहने ज़ुकामसे सेहतेगुस्ल किया है। इन सबके लिए मुबारिकबादियाँ लिखनी

---

[1] सन्तरा।

हैं, तो हरमसराकी छम्मो धोबनके पाँवमें मोच आ गई है, गुलबदन लौंड़ीकी कोयलको बुख़ार हो गया है, घसीटा मालीको फाँस लग गई है, उगालदानसाफ़ करनेवालीकी आँख आ गई हैं। इन सबके लिए भी मिज़ाजपुर्सीमें कुछ-न-कुछ लिखना ही है।

इन सब बेहूदगियोंसे ज़ौक़ आजिज़ रहते थे। पर करते क्या? लाचार थे। प्रतिष्ठाका मोह उन्हें यह कास्ट्राइल पीनेको मजबूर करता था। आह! इक़बालने क्या फ़र्मा दिया है :—

ऐ ताइरेलाहूती[1]! उस रिज़्क़[2]से मौत अच्छी।
जिस रिज़्क़से आती हो परवाज़[3]में कोताही[4]॥

इस रिज़्क़ और सोनेके पिंजरेका मोह विरलोंसे ही छुटता है। ज़ौक़ अपना निजी कलाम बादशाहको सुनाते न थे। उनके सुप्रसिद्ध शिष्य मौलाना आज़ाद लिखते हैं—"अगर ज़ौक़की ग़ज़ल किसी तरह बादशाह तक पहुँच जाती तो वह उसी ग़ज़लपर ख़ुद ग़ज़ल कहता था। अब अगर नई ग़ज़ल कहकर दें और वह अपनी (ज़ौक़की) ग़ज़लसे पस्त हो तो बादशाह भी बच्चा न था। ७० वर्षका सख़ुनफ़हम (काव्य-मर्मज्ञ) था और अगर अपनी ग़ज़लसे चुस्त बनाकर दें तो अपने कहेको आप मिटाना भी कोई आसान काम नहीं। नाचार अपनी ग़ज़लमें बादशाहका उपनाम "ज़फ़र" डालकर दे देते थे। बादशाहको बड़ा ख़याल रहता था कि ज़ौक़ ख़ुदकी चीज़पर ज़ोरेतबा (बुद्धिबल) न ख़र्च करें। जब उनके शौक़को किसी तरफ़ मुतवज्जह (तल्लीन) देखता तो बराबर अपनी ग़ज़लोंका तार बाँध देता कि जो कुछ जोशेतबा (हृदयके भाव उमड़ते) हों इधर ही आ जाएँ।"

---

[1] सीमा-रहित आकाशमें उड़ने वाला पक्षी; [2] रोज़ी, जीविका; [3] उड़ान; [4] कमी।

ऐसी स्थितिमें जो भी ज़ौक़के नामसे मिलता है और आज भी जो उनको प्रतिष्ठा प्राप्त है, ग़नीमत है। काश ! वे इस बन्धनसे स्वतंत्र हुए होते तो न जाने उर्दू-साहित्यका ख़ज़ाना कैसे-कैसे अनमोल मोतियोंसे भर जाता ! स्वयं ज़ौक़ दुखी होकर एक जगह कराह उठते हैं :—

'ज़ौक़' मुरत्तिब क्योंके हो दीवाँ, शिकवयेफ़ुर्सत किससे करें ?
बाँधे गलेमें हमने अपने आप 'ज़फ़र'के झगड़े हैं ॥

कहनेको बादशाहके उस्ताद थे, मगर वेतन नाममात्रको मिलता था। गोया शाही प्रतिष्ठाको ही ओढ़ते, बिछाते और चाटते थे। जब बहादुरशाह युवराज थे और अपने पिता अकबरशाहसे तिरस्कृत-से थे, तब उनको ५०० रु० मासिक मिलता था। उसीमेंसे ४ रु० मासिक ज़ौक़ पाते थे। जब बहादुरशाह बादशाह हुए तो ३० रु० मासिक वेतन कर दिया गया। ऐरे-ग़ैरे निहाल होने लगे। जिन्हें बात करनेकी तमीज़ नहीं, मालामाल कर दिये गये। चापलूस और धोखेबाज़ दोनों हाथोंसे दौलत लूटने लगे। मगर ज़ौक़को उस्तादीकी ज़र्रीन मसनदपर बिठा देना ही अहसानकी हद समझी गई। खानेको ग़म और पीनेको आँसू गोया उनके लिए काफ़ी थे। ज़ौक़ने इस उपेक्षासे तंग आकर क्या ख़ूब कहा है :—

यूँ फिरें अहलेकमाल आशुफ़ताहाल[1] अफ़सोस है।
ऐ कमाल अफ़सोस है, तुझपर कमाल अफ़सोस है ॥

दुनियाकी नज़रमें उनकी यह इज़्ज़त उनके लिए बवालेजान रही होगी। बादशाही शानके मुताबिक़ रहन-सहनका मेयार और पग-पगपर व्यक्तित्वका ख़याल रखना होता होगा। नाई, धोबी, कुम्हार,

---

[1] फटेहाल, दुखी।

भिश्ती, हलालखोर वग़ैरह बात-बातमें इनामकी इच्छा रखते होंगे। और बादशाहके उस्ताद हैं तब दुकानदार भी सस्ती और घटिया चीज़ कैसे दिखा दें? ज़ौक़के हाथमें आते-आते सवाई-ड्योढ़ी क़ीमत न हुई तो क्या ये कँगलोंके भरोसेपर इतना खर्च लिये बैठे हैं? फिर बहन-बेटियाँ क्यों यूँ ही मान जाएँ। पड़ोसमें नवाब साहबने ही जब अपनी बहन-भतीजियोंको इतना दिया है तो भला बादशाहके उस्ताद होकर क्या उनसे भी घटियल रहेंगे? अब ज़ौक़ किसको बताएँ कि भाई ४ रु०से रीं-रीं करके १०० रु० तनख्वाह हुई है। कहते भी लाज आए और जो सुने उसे यक़ीन न आए; और आए तो बजाय प्यारके नफ़रत आए। हाथीकी झूल खरगोशपर डाल दी जानेपर वह जितना खुश होगा उतने ही शेख ज़ौक़ भी रहे होंगे।

ज़ौक़ अत्यन्त दयालु, सहृदय थे। इस सम्बन्धमें मौ० आज़ाद लिखते हैं—"उन्होंने उम्रभर अपने हाथसे जानवर ज़िबह (क़त्ल) नहीं किया। आलमेजवानीका उस्ताद ज़िक्र करते थे कि यारोंमें एक मुजरिब नुसखा क़ुव्वतेबाह (ताकतकी दवा)का बड़ी कोशिशोंसे हाथ आया। शरीक होकर उसके बनानेकी बात ठहरी। एक-एक जुज़ (वस्तु-हिस्सा) बहम पहुँचाना (प्रस्तुत करना) एक-एक शख़्सके ज़िम्मे हुआ। चुनांचे ४० चिड़ियोंका मग़ज़ हमारे सर हुआ। हमने घर आकर उनके पकड़नेका सामान फैला दिया और दो-तीन चिड़े पकड़कर एक पिंजरेमें डाले। उनका फड़कना देखकर खयाल आया कि इब्राहीम, एक पलके मज़ेके लिए ४० बेगुनाहोंको मारना क्या इन्सानियत है? यह भी तो आखिर जान रखते हैं। उसी वक़्त उठा, उन्हें छोड़ा और सब सामान तोड़-फोड़ कर यारों में जाकर कह दिया कि भई हम उस नुस्खे में शरीक नहीं होते।

"एक रोज़ रातके वक़्त टहलते हुए आये और कहने लगे कि मियाँ! अभी एक साँप गलीमें चला जाता था। एकने कहा—आपने उसे मारा

नहीं, न किसीको आवाज़ ही दी। फ़र्माया कि ख़याल तो मुझे भी आया था, मगर मैंने फिर कहा कि यह भी तो जान रखता है।

"एक दफ़ा बरसातका मौसम था। बादशाह क़ुतुब[1] में थे। ज़ौक़ हमेशा साथ होते थे। उस वक़्त आप क़सीदा लिख रहे थे। चिड़ियाँ सायेबानमें तिनके रखकर घोंसला बना रही थीं। जो तिनके गिरते थे उन्हें वे उठानेको इधर-उधर आती थीं। एक चिड़िया सरपर आन बैठी। उन्होंने हाथसे उड़ा दिया। थोड़ी देरमें फिर आ बैठी। उन्होंने फिर उड़ा दिया। जब कई दफ़ा ऐसा हुआ तो हँसकर कहा कि इसने मेरे सरको कबूतरकी छतरी बनाया है। एक अन्धे शागिर्द ने पूछा और मालूम होनेपर कहा कि हमारे सरपर तो नहीं बैठती। उस्ताद ज़ौक़ने कहा—बैठे क्योंकर? जानती है कि यह मुल्ला है। आलिम (विद्वान) है, हाफ़िज़ (क़ुरानकंठस्थ) है। अभी कलमा पढ़ेगा और हलाल कर देगा। दीवानी है जो तुम्हारे सरपर आये?

"नमाज़के लिए नहाकर वज़ू करते थे और एक लोटे पानीसे बराबर कुल्लियाँ किये जाते थे। एक दिन सबब पूछनेपर फ़र्माया—ख़ुदा जाने क्या-क्या हज़लियात (गन्दी बातें) ज़बानसे निकलती हैं और एक ठंडी साँस भरकर यह मतला उसी वक़्त पढ़ा :—

पाक रख अपना दहाँ ज़िक्रेख़ुदायेपाकसे।
कम नहीं हरगिज़ ज़बाँ मुँहमें तेरे मिसवाक[2] से॥"

नमाज़के बाद वज़ीफ़ा पढ़ते और फिर दुआएँ शुरू होतीं। दुआयें अपने लिए ही नहीं ग़ैरोंकी भलाईके लिए भी माँगते थे। आबेहयातमें लिखा है कि उनके दरवाज़ेके सामने मुहल्लेका हलालख़ोर (मेहतर-भंगी) रहता था। उन दिनों उसका बैल बीमार था। दुआएँ माँगते-माँगते

[1] क़ुतुब मीनार के रमणीक स्थान में; [2] दँतौन।

वोह भी याद आगया। कहा कि "इलाही! जुम्मा हलालखोरका बैल बीमार है, उसे भी शफ़ा दे। बिचारा बड़ा ग़रीब है। बैल मर गया तो वह भी मर जायेगा।"

उक्त चन्द उद्धरणोंसे उनके हृदयका परिचय मिल जाता है। शेख ज़ौक़ बचपनसे ही व्युत्पन्न थे। १९ वर्षकी आयुमें तो अकबरशाह बादशाहने इन्हें "ख़ाक़ानिएहिन्द" जैसी महान् पदवीसे विभूषित किया था। इससे बड़े-बड़े ध्वजाधारियोंको बहुत मलाल हुआ था। इसके बाद "मलिक उल्शोरा" की उपाधि भी प्राप्त हुई। खिलअतें, हाथी मय हौदेके और गाँव भी जागीरमें मिले।

इन्होंने ७५० दीवानोंका अध्ययन किया और उनपर टीकाएँ लिखीं। इसके अतिरिक्त इतिहास, ज्योतिषका बहुत अच्छा ज्ञान था। प्रभावशाली व्याख्यानदाता भी थे।

बक़ौल मुसन्निफ़ 'तारीख़ अदब उर्दू'—"ज़ौक़का बहुत बड़ा कारनामा यह है कि उन्होंने जबानको खूब साफ़ किया और उसपर जिला दी। वे महावरात और मिसालके इस्तैमालमें अपना जवाब नहीं रखते। ....उनकी ग़ज़लें ताज़गीयेमज़मून, खूबीयेमहावरात, सादगी और सफ़ाईके लिए मशहूर हैं।....आस्मानेशाइरीपर ज़ौक़ एक दरख़्शाँ तारा बनकर चमके और ज़बाने उर्दूके बेहतरीन शोराओंमें उनका शुमार किया जा सकता है।"

ज़ौक़ ई० सन् १७८९में दिल्लीमें उत्पन्न हुए और ६५ वर्षकी आयु पाकर १८५४में स्वर्गासीन हुए। मरनेसे ३ घंटे पूर्व आपने यह शेर कहा था :—

कहते हैं आज ज़ौक़ जहाँसे गुज़र गया।
क्या खूब आदमी था, खुदा मग़फ़रत करे॥

आपके अनेक शिष्य थे, जिनमें मौलवी मुहम्मद हुसैन 'आज़ाद' और 'दाग़' अत्यन्त प्रसिद्ध हुए हैं।

ऐ 'जौक़' होश गर है तो दुनियासे दूर भाग ।
इस मैकदे में काम नहीं होशयारका ।।

दुनियाका जरोमाल किया जमा तो क्या 'जौक़' ।
कुछ फ़ायदा बेदस्तेकरम[1] उठ नहीं सकता ।।

सुर्मयेचश्मेअज़ीज़ाँ[2] न बना मैं ऐ चर्ख़ !
क्या बना ख़ाक ? ग़ुबारेदिले अहबाब बना ।।

आनेसे मेरे ठहर गए आप वगर्ना ।
जानेका इरादा तो कहीं हो ही चुका था ।।

मौतने कर दिया नाचार वगर्ना इन्साँ ।
है वह ख़ुदबीं[3] कि ख़ुदाका भी न क़ायल होता ।।

उसने जब माल बहुत रद्दोबदलमें मारा ।
हमने दिल अपना उठा अपनी बग़लमें मारा ।।

मज़कूर[4] तेरी बज़्म[5]में किसका नहीं आता ?
पर ज़िक्र हमारा नहीं आता, नहीं आता ।।

क्या जाने उसे वहम है क्या मेरी तरफ़से ।
जो ख़्वाबमें[6] भी रातको तनहा[7] नहीं आता ।।

साथ उनके हूँ मैं, साये[8]की मानिन्द था लेकिन ।
उसपर भी जुदा हूँ कि लिपटना नहीं आता ।।

---

[1] दान बिना; [2] प्यारे, स्नेहीके नेत्रोंका सुर्मा; [3] घमंडी; [4] ज़िक्र; [5] वह स्थान जहाँ आमोद-प्रमोद हो, रंगस्थल; [6] स्वप्न; [7] अकेला; [8] परछाईं ।

क़िस्मतसे हो लाचार हूँ ऐ 'ज़ौक़' वगर्ना।
सब फ़नमें हूँ मैं ताक[1] मुझे क्या नहीं आता?

ज़ाहिद[2] शराब पीनेसे काफ़िर[3] हुआ मैं क्यों?
क्या डेढ़ चुल्लू पानीमें ईमान बह गया?

देख, छोटोंको है अल्लाह बड़ाई देता।
आसमाँ आँखके तिलमें है दिखाई देता॥

मुँहसे बस करते न हरगिज़ ये ख़ुदाके बन्दे।
गर हरीसोंको ख़ुदा सारी ख़ुदाई[4] देता॥

तू हमारी ज़िन्दगी, पर ज़िन्दगीकी क्या उमीद?
तू हमारी जान लेकिन क्या भरोसा जानका?

जो फ़रिश्ते[5] करते हैं, कर सकता है इन्सान भी।
पर, फ़रिश्तोंसे न हो, वह काम है इन्सानका॥

किसी बेकस[6]को ऐ बेदादगर[7]! मारा तो क्या मारा?
जो आप ही मर रहा हो उसको गर मारा तो क्या मारा?

बड़े मूज़ी[8]को मारा नफ़्सेअम्मारा[9]को गर मारा।
निहंगो[10] अज़दहा[11]ओ शेर नर मारा तो क्या मारा?

न मारा आपको जो ख़ाक हो अक्सीर बन जाता।
अगर पारेको ऐ अक्सीरगर[12]! मारा तो क्या मारा?

---

[1] होशियार; [2] भगतजी, परहेज़गार; [3] अधर्मी; [4] सृष्टि; [5] देवता; [6] मजबूर; [7] अत्याचारी; [8] पापी; [9] इन्द्रिय विषय-वासना; [10] मगर मच्छ; [11] अजगर; [12] ताँबे और लोहेका सोना बनानेवाला।

तुफ़ंगो[1] तीर तो ज़ाहिर न था कुछ पास क़ातिलके ।
इलाही फिर जो दिलपर ताककर मारा तो क्या मारा ?*

पानी तबीब[2] दे है हमें क्या बुझा हुआ ।
है दिल हो ज़िन्दगीसे हमारा बुझा हुआ ॥

बेनिशाँ[3] पहले फ़ना[4]से हो, जो हो तुझको बक़ा[5] ।
वर्ना है किसका निशाँ 'ज़ौक़' फ़नाने रक्खा ॥

नशा दौलतका बदअतवार[6]को जिस आन चढ़ा ।
सरपै शैतानके इक और भी शैतान चढ़ा ॥

मौत उसको याद करती है ख़ुदा जाने कि गोर[7] ।
यूँ तेरा बीमारेग़म जो हिचकियाँ लेने लगा ॥†

रहता है अपना इश्क़में यूँ दिलसे मशवरा ।
जिस तरह आइनासे करे आइना सलाह ॥

आदमीयत और शै है, इल्म है कुछ और चीज़ ।
कितना तोतेको पढ़ाया, पर वोह हैवाँ ही रहा ॥

---

[1] तोप बन्दूक़ ।

* इसी भावका द्योतक 'ग़ालिब'का शेर है :—

इस सादगीपै कौन ना मर जाये ऐ ख़ुदा !
लड़ते हैं और हाथमें तलवार भी नहीं ॥

[2] वैद्य, हकीम; [3] अस्तित्वरहित; [4] मृत्यु, बरबादी; [5] अमरत्व; ज़िन्दगी; [6] ओछे स्वभावी को; [7] क़ब्र ।

† मुझे याद करनेसे यह मुद्दआ था ।
निकल जाय दम हिचकियाँ आते आते ॥ 'दाग़'

हम ऐसे साहिबेइस्मत[1] परीपैकर[2] पै आशिक़ हैं।
नमाजें पढ़ती हैं हूरें[3] हमेशा जिसके दामनपर॥

दिलको रफ़ीक़ इश्क़में अपना समझ न 'ज़ौक़'।
टल जायगा यह अपनी बला तुझपै टालके॥

क्या आये तुम जो आये घड़ी दो घड़ीके बाद।
सीनेमें होगी साँस अड़ी दो घड़ीके बाद॥

राहतोरंज ज़मानेमें है दोनों लेकिन।
हाँ, अगर एकको राहत है तो है चारको रंज॥

दिखा न जोशोख़रोश इतना ज़ोरपर चढ़कर।
गये जहानमें दरिया बहुत उतर चढ़कर॥

मैं हूँ वोह गुमनाम जब दफ़्तरमें नाम आया मेरा।
रह गया बस मुंशियेक़ुदरत[4] जगह वाँ छोड़कर॥

कहा पतंगने यह दारे शमअपर चढ़कर।
"अजब मज़ा है जो मर ले किसीके सर चढ़कर"॥

हम उनको चालसे पहचान लेंगे उनको बुर्क़ेमें।
हज़ार अपनेको वह हमसे छिपायें सरसे पाँवोंतक॥

सरापा[5] पाक[6] हैं धोये जिन्होंने हाथ दुनियासे।
नहीं हाजत[7] कि वह पानी बहाएँ सरसे पाँवोंतक॥

---

[1]सुशीला; [2]अत्यन्त सुन्दरी; [3]अप्सराएँ; [4]प्रकृतिकी ओरसे हिसाब रखनेवाला बाबू; [5]अत्यन्त, बिल्कुल; [6]पवित्र; [7]आवश्यकता।

किया हमने सलाम ऐ इश्क़ तुझको।
कि अपना हौसला इतना न पाया॥

ख़ुरशीदवार[1] देखते हैं सबको एक आँख।
रोशनज़मीर[2] मिलते हर इक नेकोबदसे हैं॥

असीरो[3] इश्क़को मञ्ज़ूर थी मेरी लड़कपनमें।
बहाना करके मिन्नत[4]का पिन्हाया तौक़ गरदनमें॥

बजा[5] कहे जिसे आलम[6] उसे बजा समझो।
ज़ुबानेख़ल्क़[7]को नक़्क़ारएख़ुदा[8] समझो॥

नहीं है कम ज़रेख़ालिस[9]से ज़रदिए[10]रुख़सार।
तुम ऐसे इश्क़को ऐ 'ज़ौक़' कीमिया[11] समझो॥

कहे एक जब, सुन ले इन्सान दो।
कि हक़ने ज़ुबाँ एक दी कान दो॥

कब हक़परस्त[12] ज़ाहिदे जन्नतपरस्त[13] है।
हूरों[14]पे मर रहा है ये शहवतपरस्त[15] है॥

निगहका वार था दिलपर, फड़कने जान लगी।
चली थी बर्छी किसीपर किसीके आन लगी॥

---

[1] सूर्यकी तरह; [2] बुद्धिमान, प्रकाशवान हृदय; [3] क़ैद; [4] प्रार्थना, बोल क़बूल; [5] उचित, ठीक; [6] दुनिया, लोग; [7] दुनियाकी आवाज; [8] ईश्वरीय सन्देश; [9] खालिस सोना; [10] कपोलोंका पीलापन; [11] बना हुआ सोना; [12] सचाई में विश्वास करनेवाला; [13] स्वर्गका अभिलाषी; [14] देवाङ्गनाओं; [15] भोगोंकी कामना रखनेवाला।

दस्तेहिम्मत[1]से है बाला[2] आदमीका मर्तबा[3]।
पस्तहिम्मत[4] यह न होवे, पस्तक़ामत[5] हो तो हो ॥

याँ लबपै लाख-लाख सख़ुन इज़तराब[6]में।
वाँ एक ख़ामुशी तेरी सबके जवाबमें ॥

रिन्दे[7] ख़राब हालको ज़ाहिद ! न छेड़ तू।
तुझको पराई क्या पड़ी, अपनी नबेड़ तू ॥

ज़ुबाँ खोलेंगे मुझपर बदज़ुबाँ क्या बदशआरी[8]से।
कि मैंने ख़ाक भर दी उनके मुँहमें ख़ाकसारी[9]से ॥

लाई हयात आये, क़ज़ा ले चली चले।
अपनी ख़ुशी न आये न अपनी ख़ुशी चले ॥

गुल भला कुछ तो बहारें ऐ सबा[10]! दिखला गये।
हसरत[11] उन ग़ुंचोंपै है जो बिन खिले मुर्झा गये ॥

तू भला है तो बुरा हो नहीं सकता ऐ 'ज़ौक़'।
है बुरा वह ही कि जो तुझको बुरा जानता है ॥

और अगर तू ही बुरा है तो वह सच कहता है।
क्यों बुरा कहनेसे तू उसको बुरा मानता है ?

ऐ शमअ़ ! तेरी उम्रेतबीई[12] है एक रात।
रोकर गुज़ार या इसे हँसकर गुज़ार दे ॥

---

[1] साहस; [2] श्रेष्ठ; [3] गौरव; [4] असाहसी, कायर; [5] ठिगना; [6] बेचैनी, बेक़रारी; [7] शराबी; [8] बदतमीज़ी; [9] नम्रता, सेवा-धर्मसे; [10] हवा; [11] अफ़सोस; [12] जीवन-काल।

५

मिर्ज़ा असदुल्ला ख़ाँ 'ग़ालिब'

[ई० सन् १७९६ से १८६९ ई० तक]

मिर्ज़ा ग़ालिब उर्दू-शायरीमें अपना सानी नहीं रखते। उनकी शायरी बेजोड़ है। उनका ज़िक्र छिड़नेपर उर्दू-साहित्यिकोंका विनयसे सर झुक जाता है। ग़ालिबने जो कहा है, बहुत नपे-तुले शब्दोंमें कहा है। एक-एक अक्षर मोतियोंसे तोलने योग्य हैं। उस ज़मानेमें जब कि 'गुलोबुलबुल' 'साक़ी और शराब'का दौर था, इसी सीमित क्षेत्रमें उड़ान भरी जा सकती थी। ग़ालिब स्वयं इस पिंजरेमें छटपटाते थे, मगर लाचार थे। फ़र्माया भी है :—

> बक़द्रे शौक़ नहीं ज़र्फ़ तंगनाएग़ज़ल।
> कुछ और चाहिए वुस्अत मेरे बयाँके लिए[1]॥

ठीक ही फ़र्माया है। शेर बुलबुलके पिंजरेमें कैसे बन्द किया जा सकता है? मगर फिर भी इस जुग़ोड़में जितनी बार उन्होंने डुबकी लगाई, मोती ही चुने। हुस्नोइश्क़की क़ैदमें भी वे दार्शनिक और तत्ववेत्ता बने रहे। गुलोबुलबुलके अफ़सानोंमें मनुष्य-जीवनके विभिन्न पहलुओंपर किस ढंगसे कहा है और साक़ी और शराबकी रंगीन दास्ताँ कहते-कहते दुखती नसोंको किस ख़ूबीसे छेड़ा है कि वज्द होने लगता है। 'ग़ालिब'

---

[1] यानी जिन भावोंको मैं लाना चाहता हूँ वे इस संकुचित क्षत्रमें नहीं आ पाते। उसके लिए विशाल क्षेत्रकी आवश्यकता है।

ग़ालिब हैं। वैसा लिखना किसीको नसीब न हुआ। ग़ालिबके समकालीन तथा आधुनिक शायरोंने भी उन भावोंको लाना चाहा, मगर वह सफलता नहीं मिली।

मिर्ज़ा ग़ालिबकी शायरीपर जितनी टीका, भाष्य और तुलनात्मक समालोचनाएँ प्रकाशित हुई हैं, उतनी उर्दू-संसारमें और किसीकी नहीं। ग़ालिब सर्वसम्मतिसे सर्वश्रेष्ठ शायर माने गये हैं। महाभारत और रामायणके पढ़े बग़ैर जैसे हिन्दू धर्मपर नहीं बोला जा सकता, वैसे ही ग़ालिबको अध्ययन किये बिना बज़्मेअदबमें मुँह नहीं खोला जा सकता। यह सम्मान केवल ग़ालिबको ही प्राप्त है कि उनके मिसरेपर गिरह लगाना शायर धृष्ठता समझते हैं। ग़ालिबने फ़ारसीमें अधिक लिखा है। उर्दूमें एक छोटा-सा दीवान है। मगर वह छोटा-सा दीवान किसी कबाड़ियेकी दूकान न होकर एक जौहरीकी वह छोटी-सी दूकान है कि वहाँ जिस चीज़पर भी नज़र पड़ती है, कलेजेसे लगा लेनेको जी चाहता है। आपके बारेमें डा० सर इक़बालने लिखा है :—

> नुत्क़को[1] सौ नाज़[2] है, तेरे लबेऐजाज़[3] पर।
> महवेहैरत[4] है सुरैया[5] रफ़अते[6] परवाज़[7] पर॥
>
> शाहिदे[8] मज़मूँ[9] तसद्दुक़[10] है तेरे अन्दाज़पर।
> खन्दाज़न[11] है ग़ुंचयेदिल्ली[12] गुलेशीराज़[13] पर॥

---

[1]वाक्-शक्तिको; [2]अभिमान; [3]करामाती ओठ; [4]आश्चर्यान्वित; [5]एक उच्चतम नक्षत्र; [6]बुलन्दी; [7]उड़ान; [8]साक्षी, सुन्दरता; [9]कविता की देवी; [10]बलि, न्योछावर; [11]परिहास करती हैं; [12]दिल्ली की कलियाँ उर्दू के अर्द्ध विकसित रूप से अभिप्राय; [13]शीराज़ का फूल (यहाँ फारसी के प्रसिद्ध कवि सादी और हाफिज़ की परिपक्व कविता से तात्पर्य है)।

लुत्फ़ेगोयाई[1] में तेरी हमसरी[2] मुमकिन नहीं।
हो तख़ैय्युल[3] का न जबतक फ़िक्रेकामिल[4] हमनशीं[5] ॥

मिर्ज़ा ग़ालिब शायद जान-बूझकर अल्लाह मियाँसे अपने लिए मुसीबतें माँग लाये थे। वरना जो ऐसा महान कवि हो, जिसके इतने अधिक शिष्य हों, दिल्लीका बादशाह, रामपुर, लखनऊ और हैदराबादके नवाब जिसके प्रशंसक और हितैषी हों, वह भी जीवन भर चिन्ताओंसे लड़ता रहे, कुछ समझमें नहीं आता। शायद यह बात हो कि :—

किसीकी कुछ नहीं चलती कि जब तक़दीर फिरती है।

मिर्ज़ाकी ५ वर्षकी आयुमें पिता और ९ वर्षकी आयुमें चचा मर गये। १३ वर्षकी आयुमें शादी हुई किन्तु पत्नीसे अनबन रही। ७ बच्चे हुए। सब उन्हींके सामने मर गये। मुँहमें चाँदीका चम्मच लेकर उत्पन्न हुए, मगर जीवन भर आर्थिक चिन्ताओंमें ग़ोते खाते रहे। शहर कोतवाल-से अनबन थी। इसलिए तीन माहकी जेल काटनी पड़ी। मोमबत्तीकी तरह उम्र भर जलते और गलते रहे। स्वानुभव किस ख़ूबीसे फ़र्माया है आपने :—

ग़मेहस्ती[6] का 'असद' किससे हो जुज़[7] मर्ग[8] इलाज।
शमअ हर रंगमें जलती है सहर[9] होने तक ॥

जब नागहानी मुसीबतोंका पहाड़ टूट पड़ता है, तब शेरोंके जिगर भी पानी हो जाते हैं। बड़े-बड़े आस्तिक नास्तिक हो जाते हैं। हफ़ीज़ जालन्धरीके समान हर एक यह कहनेकी हिम्मत नहीं कर सकता :—

---

[1] कथनोपकथनका आनन्द; [2] बराबरी; [3] कल्पनाशक्ति; [4] पूर्णरूपेण, चिन्तन; [5] साथमें उठने-बैठनेवाला; [6] जीवनके कष्ट; [7] सिवाय; [8] मृत्यु (मृत्युके अलावा); [9] प्रातःकाल।

फिर आ गई गर्दिशे आस्मानी ।
बड़ी महर्बानी, बड़ी महर्बानी ॥

और गर्दिशे आस्मानी कभी-कभी आये तो स्वागत भी किया जाय, उसे कलेजेसे लगानेको भी दिल चाहे; मगर जो बेहया दामाद या विधवा लड़कीकी तरह घरपर छावनी ही डाल दे, तब आदमीका जी कबतक न ऊबेगा ? ऐसी ही कशमकशकी जिन्दगीसे बेज़ार होकर मिर्ज़ा ग़ालिबके मुँहसे शायद यह शेर निकला होगा :—

ज़िन्दगी अपनी जब इस शक्लसे गुज़री यारब !
हम भी क्या याद रखेंगे कि ख़ुदा रखते थे[1] !!

---

[1] उसके निजी और प्रिय होते हुए भी जब इस दुरावस्थामें रहे, तब यह बात तो हमें जीवन भर स्मरण रहेगी ही कि हम ऐसा हितैषी रखते थे, जिससे कभी हमारा हित न हुआ। वोह ज़माने भरको निहाल करता रहा, मगर हमारी तरफ़से मुँह फेरे बैठा रहा।

आये भी लोग, बैठे भी, उठ भी खड़े हुए ।
मैं जा ही देखता तेरी महफ़िलमें रह गया ॥

—'आतिश'

जो तेरे दरबारमें आया अभिलाषा पूरी करके चला भी गया; मगर एक हम उपेक्षित हैं कि हमारे लिए तेरे यहाँ कोई जगह ही नहीं। हम यूँही भटकते रहे।

फ़ानी ने इसी भावको दूसरे ढंगसे व्यक्त किया है :—

यारब ! तेरी रहमतसे मायूस नहीं 'फ़ानी' ।
लेकिन तेरी रहमतकी ताख़ीरको क्या कहिए ?

कौन कमबख़्त तेरी दयालुता और दीनबन्धुत्वमें सन्देह करता है ? हमें तो आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि तू अपनी कृपा-दृष्टि हमारी ओर

मिर्ज़ा ग़ालिब आर्थिक चिन्ताओंसे ग्रसित होते हुए भी स्वाभिमानमें बाल नहीं आने देते थे। अपने व्यक्तित्व और प्रतिष्ठाका सदैव ध्यान रखते थे। 'आबेहयात'में इस तरहकी एक घटनाका उल्लेख मिलता है, जिसका सार निम्नलिखित है :—

सन् १८४२में दिल्ली कॉलेजके लिए एक फ़ारसी प्रोफ़ेसरकी आवश्यकता थी। लोगोंने ग़ालिबका नाम सुझाया। बुलाये जानेपर आप पालकीपर सवार होकर सेक्रेटरी साहबके डेरेपर पहुँचे। उनको इत्तला हुई तो मिर्ज़ाको फ़ौरन बुलवाया। मगर यह पालकीसे उतरकर इस इन्तज़ारमें ठहरे रहे कि दस्तूरके मुआफ़िक़ सेक्रेटरी उन्हें लेनेको आएँगे। जब बहुत देर हो गई और साहबको मालूम हुआ कि इस सबबसे नहीं आये तो वे ख़ुद बाहर चले आये और मिर्ज़ासे कहा कि "जब आप दरबारे गवर्नरीमें तशरीफ़ लायेंगे तो आपका इसी तरह इस्तक़बाल किया जायेगा। लेकिन इस वक़्त आप नौकरीके लिए आये हैं, इस मौक़ेपर यह बर्त्ताव

भी फेरेगा। परन्तु इतना जो विलम्ब (ताख़ीर) हो रहा है इसको क्या कहा जाय? क्या हम मर मिटेंगे, ख़ाकमें मिल जाएँगे तब?

का बरसो जब कृषी सुखानी।

मिर्ज़ा ग़ालिब इसी विलम्बजनक आशासे तंग आकर फ़माते हैं :—

हमने माना कि तग़ाफ़ुल न करोगे लेकिन।
ख़ाक हो जायेंगे हम तुमको ख़बर होनेतक॥

हम यह तो मानते हैं कि आप हमारे कष्टोंकी भनक पड़नेपर उपेक्षा नहीं करेंगे, परन्तु हमारे मिट जानेके बाद कानमें भनक पड़ी भी तो क्या पड़ी? बक़ौल इक़बाल :—

आख़िरेशब दीदके क़ाबिल थी बिस्मिलकी तड़प।
सुबह दम कोई अगर बालाएबाम आया तो क्या?

नहीं हो सकता।" मिर्ज़ा ग़ालिबने कहा—"गवर्नमेण्टकी मुलाज़मतका इरादा इसलिए किया है कि एजाज़ कुछ ज़्यादा हो, न कि इसलिए कि मौजूदा एजाज़में भी फ़र्क़ आये।" साहबने कहा—"हम क़ायदेसे मजबूर हैं।" मिर्ज़ाने कहा—"मुझको इस ख़िदमतसे माफ़ रक्खा जाय", और यह कहकर बाहर चले आये।

इसे कहते हैं "जान जाये मगर आन न जाने पाये।" भूखा रहकर एड़ियाँ रगड़-रगड़कर मरना मंज़ूर, मगर कुत्तोंकी तरह दुम नहीं हिलाई जा सकती*। यह तो १०० रुपल्लीकी कॉलिजकी नौकरी थी, ग़ालिब तो इतने स्वाभिमानी थे कि काबेके दरवाज़ेसे भी फिर आयें, अगर दरवाज़ा खुला हुआ न मिले तो :—

बन्दगीमें भी वोह आज़ादह[1] वख़ुदबीं[2] हैं कि हम।
उल्टे फिर आये दरेकाबा[3] अगर वा[4] न हुआ॥

मिर्ज़ा ग़ालिब हर तरहकी मुसीबतोंसे घिरे रहनेपर भी अत्यन्त विनोदी और हाज़िरजवाब थे। उनका कहना था कि :—

"दिलमें हज़ार ग़म हों ज़बाँपर शिकन न हो"।

आपके बहुत-से लतीफ़े और हाज़िरजवाबीके उल्लेख उनके सुप्रसिद्ध शिष्य मौलाना हालीने 'यादगारेग़ालिब'में दिये हैं। कुछ संक्षेप करके बतौर नमूने पेश किये जाते हैं।

१—'लखनऊकी एक सुहबतमें जब कि मिर्ज़ा वहाँ मौजूद थे, एक रोज़ लखनऊ और दिल्लीकी ज़ुबानपर गुतफ़्गू हो रही थी। एक साहबने

***हरचन्द शेर आजिज़ गर तालिबेग़िज़ा हो।**
लेकिन न खायगा वोह कुत्तोंके संग रातिब॥

—अकबर

[1] स्वतंत्र; [2] स्वाभिमानी; [3] काबेका द्वार; [4] खुला हुआ।

मिर्ज़ासे कहा कि "दिल्लीवाले जिस मौक़ेपर अपने तईं बोलते हैं, वहाँ लखनऊवाले आपको बोलते हैं। आपकी रायमें फ़सीह (ललित, शुद्ध) 'आपको' है, या 'अपने तईं' ?" मिर्ज़ाने कहा—"फ़सीह तो यही मालूम होता है जो आप बोलते हैं। मगर इसमें दिक़्क़त ये है कि मसलन आप मेरी निस्बत यह फ़र्मायें कि मैं आपको फ़रिश्ता खसायल (देवता स्वरूप) समझता हूँ और मैं आपको इसके जवाबमें अपनी निस्बत यह अर्ज़ करूँ कि मैं तो आपको कुत्तेसे भी बदतर समझता हूँ, तो शायद बुरा मालूम देगा। मैं तो अपनी निस्बत कहूँगा और आप मुमकिन है कि अपनी निस्बत समझ जायें।" सब हाज़रीन यह लतीफ़ा सुनकर फड़क गये।

२—देहलीमें रथको बाज़ मोन्निस (स्त्रीलिंग) और बाज़ मुज़क्कर (पुलिंग) बोलते हैं। किसीने मिर्ज़ा साहबसे पूछा कि हज़रत ! रथ मोन्निस है या मुज़क्कर ? आपने कहा—भैया ! जबरथमें औरतें बैठी हों तो मोन्निस और जब मर्द बैठे हों तो मुज़क्कर समझो।

३—सुना है कि जब मिर्ज़ा कर्नल ब्राउनके सामने गये तो उसने इनकी पोशाक देखकर पूछा—"वेल, तुम मुसलमान ?" मिर्ज़ाने कहा—"आधा।" कर्नलने कहा—"इसका क्या मतलब ?" मिर्ज़ाने कहा—"शराब पीता हूँ, सूअर नहीं खाता।" कर्नल यह सुनकर हँसने लगा।

४—मौलवी अमीमुद्दीनने मिर्ज़ाके खिलाफ़ एक पुस्तक लिखी। मगर मिर्ज़ाने कोई जवाब नहीं दिया। किसीने कहा—"हज़रत ! आपने उसका कुछ जवाब नहीं लिखा ?" मिर्ज़ाने कहा—"अगर कोई गधा तुम्हें लात मारे तो क्या तुम भी उसके लात मारोगे ?"

५—मिर्ज़ाके पास किसीने एक बेहूदा गाली-गलौजसे भरा खत भेजा। उसमें एक जगह मिर्ज़ाको गाली भी लिखी थी। मुस्कराकर कहने लगे कि—"इस उल्लूको गाली देनी भी नहीं आती। बुड्ढे या अधेड़ आदमीको बेटीकी गाली देते हैं, ताकि उसको ग़ैरत आये। जवानको जोरूकी गाली देते हैं क्योंकि उसको जोरूसे ज्यादा ताल्लुक़ होता है।

बच्चेको माँकी गाली देते हैं, कि वह माँके बराबर किसीको प्यार नहीं करता। और यह जो ७२ बरसके बुड्ढेको माँकी गाली देता है, इससे ज्यादा कौन मूर्ख होगा ?"

६—एक सुहबतमें मिर्ज़ा 'मीर' तक़ी की तारीफ़ कर रहे थे। ज़ौक़ भी मौजूद थे। उन्होंने सौदाको मीरपर तरजीह दी। मिर्ज़ाने कहा—"मैं तो आपको मीरी (मीरका प्रशंसक, सरदार) समझता था, मगर अब मालूम हुआ कि आप सौदाई (सौदाके प्रशंसक, पागल) हैं।"

७—एक रोज़ दीवान फ़ज़लुल्ला ख़ाँ मिर्ज़ाके मकानके पाससे बग़ैर मिले निकल गये। मालूम होनेपर मिर्ज़ाने दीवानको लिखा—"आज मुझको इस क़दर नदामत हुई कि शर्मके मारे ज़मीनमें गड़ा जाता हूँ। इससे ज्यादा क्या नालायक़ी हो सकती है कि आप कभी-कभी तो इस तरफ़से गुज़रें और मैं सलामको हाज़िर न रहूँ।" जब यह रुक़्क़ा दीवान-जीके पास पहुँचा, वे निहायत शर्मिन्दा हुए और उसी वक़्त गाड़ीमें सवार होकर मिर्ज़ा साहबसे मिलनेको आये।

८—एक दिन एक साहब रातको मिलने चले आये। थोड़ी देर ठहरकर वे जाने लगे तो मिर्ज़ा खुद अपने हाथमें शमादान लेकर लबेफ़र्श तक आये; ताकि रोशनीमें जूता देखकर पहन लें। मेहमान बोले—"क़िबलाओकाबा, आपने क्यों तकलीफ़ फ़र्माई ? मैं अपना जूता आप पहन लेता।" मिर्ज़ाने कहा—"मैं आपका जूता दिखानेको शमादान नहीं लाया, बल्कि इसलिए लाया हूँ कि कहीं आप मेरा जूता न पहन जायें।"

९—ग़दरके बाद जब पेंशन बन्द थी और दरबारमें शरीक होनेकी इजाज़त न हुई थी, तब लेफ्टिनेण्ट पंजाब मिर्ज़ा साहबसे मिलनेको आये। कुछ पेंशनका ज़िक्र चला तो मिर्ज़ा साहबने कहा—"तमाम उम्रमें एक दिन शराब न पी हो तो काफ़िर और एक दफ़ा भी नमाज़ पढ़ी हो तो गुनह-गार। फिर मैं नहीं जानता कि सरकारने मुझे किस तरह बाग़ी मुसल-मानोंमें शरीक किया ?"

१०—जब मिर्ज़ा क़ैदसे छूटकर आये तो मियाँ काले साहबके मकानमें आकर रहे थे। एक रोज़ मियाँ काले साहबके पास बैठे थे। किसीने आकर क़ैदसे छूटनेकी मुबारिकबाद दी। मिर्ज़ाने कहा—"कौन भड़वा क़ैदसे छूटा है? पहले गोरेकी क़ैदमें था, अब कालेकी क़ैदमें हूँ।"

११—कहते हैं एक बार क़िलेके मुशायरेमें जब मिर्ज़ाने यह मक़्ता पढ़ा:—

यह मसाइलेतसव्वुफ़[1] यह तेरा बयान 'ग़ालिब'।
तुझे हम वली[2] समझते, जो न बादा[3]ख़्वार होता॥

—तो मुशायरेमें वाह वा की धूम मच गई। बादशाहने मज़ाक़में कहा—"भई हम तो तब भी न समझते।" मिर्ज़ाने फ़ौरन जवाब दिया—"हुज़ूर तो तुझे अब भी वली समझते हैं।"

बहादुरशाह बादशाहने मिर्ज़ाको 'नजमुद्दौला दबीरुलमुल्क निज़ामे जंग' उपाधिसे विभूषित किया था और ख़िलअ़त भी प्रदान की थी, और तैमूर-वंशका इतिहास लिखनेके लिए ५० रु० मासिकपर नियुक्त किया था। उस्ताद ज़ौक़की मृत्युके बाद बादशाह ग़ालिबसे ही अपनी कविताएँ शुद्ध कराने लगे थे। परन्तु मिर्ज़ाको यह कार्य रुचिकर नहीं था। लाचारी से करते थे। 'यादेगारे ग़ालिब'में लिखा है कि—"एक रोज़ मिर्ज़ा दीवानेआममें बैठे थे कि चोबदारने आकर कहा कि बादशाहने ग़ज़ल माँगी है। मिर्ज़ाने उसे ठहरनेको कहा और फ़ौरन ८-९ परचे निकाले जिनपर एक-एक दो-दो मिसरे लिखे हुए थे। दावात-क़लम मँगाकर थोड़ी देरमें ८ या ९ ग़ज़लें बनाकर दे दीं। इन ग़ज़लोंको लिखनेमें बमुश्किल इतनी देर लगी होगी कि जितनी देरमें एक मश्शाक़ उस्ताद चन्द ग़ज़लें सिर्फ़ कहीं-कहीं इस्लाह देकर (शुद्ध करके) ठीक कर दे।

---

[1] दार्शनिक विचार; [2] सिद्धयोगी; [3] मद्यप।

दरिद्रताके कारण मिर्ज़ाके पास कोई पुस्तकालय नहीं था। वे पुस्तकें ख़रीद ही नहीं सकते थे। इतना विशाल अध्ययन और लेखन-कार्य सब किरायेकी पुस्तकोंसे किया गया। एक बार कलकत्तेमें एक साहबके अनुरोध पर चिकनी सुपारीपर फ़िलबदी (तुरन्त) ग़ज़ल कही थी।

उक्त उदाहरणोंसे प्रकट होता है कि उनकी स्मरण-शक्ति तीव्र और कविताका अभ्यास बहुत बढ़ा हुआ था।

मिर्ज़ा जैसा दार्शनिक और पवित्र हृदयवाला मनुष्य मद्यप भी था, बात सच होते हुए भी विश्वास करनेको जी नहीं चाहता। जो स्वयं कोयला है वह कालिमाके अतिरिक्त संसारको और देगा ही क्या? पर जिससे प्रकाश मिले, उसे कोयला कौन कहेगा? हृदय स्वच्छ और प्रकाशवान हुए बिना वह कैसे ज्योति फेंक सकेगा?

कभी-कभी सांसारिक वेदनाओंसे तंग आकर मनुष्य आत्महत्या कर लेता है, निर्जन स्थानोंमें भागता फिरता है; जैसा कि ग़ालिब स्वयं लिखते हैं :—

रहिये अब ऐसी जगह चलकर जहाँ कोई न हो।
हमसख़ुन[1] कोई न हो, और हमज़बाँ[2] कोई न हो॥
बेदरोदीवार-सा इक घर बनाना चाहिये।
कोई हमसाया[3] न हो और पासबाँ[4] कोई न हो॥
पड़िये गर बीमार तो कोई न हो तीमारदार[5]।
और अगर मर जाइए तो नौहाख़्वाँ[6] कोई न हो॥

अथवा कष्टों, अपमानों और वेदनाओंको भूलनेके लिए मनुष्य दुर्भाग्यसे

---

[1] अपने जैसा बोल कहनेवाला; [2] अपनी जैसी भाषा बोलनेवाला; [3] पड़ोसी; [4] रक्षक; [5] परिचर्य्या करनेवाला; [6] रोनेवाला।

मद्यकी शरणमें जाता है। ग़मग़लत करनेको आठों पहर नशेमें डूबा रहता है। जैसा कि ग़ालिबने फ़र्माया है :—

मय[1]से ग़रज़ निशात[2] है किस रूसियाह[3]को ?
एक गूना[4]बेख़ुदी[5] मुझे दिन-रात चाहिये ॥*

शायद इसीलिए ग़ालिबने यह ज़ालिम मुँह लगाई। मगर कमीनको मुँह लगाकर जैसे बड़े आदमी पछताते हैं, वही हालत मिर्ज़ाकी हुई। उन्हें शराबने किसी कामका नहीं रखा। जैसे एक पापको छुपानेके लिए अनेक पाप करने पड़ते हैं और फिर भी भण्डाफोड़ हो ही जाता है; उसी तरह ग़ालिबने दुखों और कष्टोंसे मुक्ति पानेके लिए शराबकी शरण क्या ली मानों उन्होंने अनेक आपदाओंको आनेके लिए द्वार खोल दिया। इस विपत्तिकी ओर उन्होंने स्वयं संकेत किया है :—

इश्क़ने 'ग़ालिब' निकम्मा कर दिया।
वर्ना हम भी आदमी थे कामके ॥

× × × ×

सर्फ़ेबहायेमय[6] हुए आलाते[7] मयकशी[8]।
थे यह ही दो हिसाब सो यूँ पाक[9] हो गये ॥*

---

[1] शराबसे; [2] आनन्द; [3] काले मुँहवाला, अपराधी; [4-5] जैसेभी बने आत्म-विस्मरण;

*कौन पाजी मौज-शौक़के लिए पीना चाहता है ? अरे, मैं तो किसी भी तरह अपनेको भूले रहनेका प्रयत्न करता हूँ।

[6] शराबके लिए खर्च; [7-8] शराब पीने के उपकरण [9] पवित्र (यहाँ बट्टेखाते लगानेसे अभिप्राय है)।

*फ़र्माते हैं—"हमारे सामने दो समस्याएँ थीं। एक यह कि शराब कैसे पियें, पास कौड़ी नहीं। दूसरी यह कि इन आलातेमयकशी (शराब

मिर्ज़ा इतने तंगदस्त होते हुए भी फ़ैयाज़ थे। भिखारी उनके घरसे ख़ाली हाथ बहुत कम जाता था। एक बार जनाब लेफ्टिनेण्टके दरबारमें ख़िलअत मिली। लेफ्टिनेण्टके चपरासी और जमादार क़ायदेके अनुसार घरपर इनाम लेने आये। मिर्ज़ा साहबको पहले ही इनाम देनेकी बात याद थी। अतः आपने दरबारसे आते ही ख़िलअत बाज़ारमें बेचने भेज दी और इतने चपरासियोंको अलग मकानमें बिठवा दिया और जब बाज़ार से ख़िलअतकी क़ीमत आई तो उन्हें इनाम देकर रुख़सत किया।

मिर्ज़ा ग़ालिब स्वयं एक महान् कवि थे; परन्तु दूसरे कवियोंकी हृदय-ग्राही कविताओंकी भी मुक्तकंठसे प्रशंसा करते थे। चाहे वह उनके प्रतिद्वन्द्वीकी ही क्यों न लिखी हों। हाँ, किसीको ख़ुश करनेके लिए वह वाह वा नहीं करते थे। जो हृदयपर असर करे उसीपर झूमते थे। उस्ताद ज़ौक़से उनकी चश्मक रहती थी, फिर भी उनके इस शेरको सुनकर झूमने लगे, सर धुनने लगे और बार-बार पढ़वाते रहे। मिर्ज़ाने अपने उर्दू ख़तोंमें इस शेरका यथास्थान वर्णन किया है। यहाँतक कि जहाँ उत्तम शेरका उदाहरण दिया है, वहाँ-वहाँ इस शेरका ज़रूर उल्लेख किया है। वह शेर ये है :—

अब तो घबराके यह कहते हैं कि मर जायेंगे।
मरके भी चैन न पाया तो किधर जायेंगे?

इसी तरह मोमिन ख़ाँका :—

पीनेके पात्रों)को कहाँ-कहाँ लिये फिरें? अतः हमने यह दोनों हिसाब इस तरह पूरे किये कि पात्रोंको बेचकर शराब पी ली। ऐसा करनेसे शराब पीनेको मिल गई और पात्रके ढोते रहनेकी परेशानीसे भी बच गये।

तुम मेरे पास होते हो गोया।
जब कोई दूसरा नहीं होता।।

जब उक्त शेर सुना तो बहुत तारीफ़ की और कहा कि—"काश ! मोमिन खाँ मेरा सारा दीवान ले लेता और सिर्फ़ यह शेर मुझको दे देता !" गुण-ग्राहकताकी हद हो गई।

मिर्ज़ा साहबके शिष्य बेशुमार थे। उनमें मौलाना अल्ताफ़ हुसैन 'हाली' अत्यन्त प्रसिद्ध हुए हैं, जिनका उल्लेख इसी पुस्तकमें अन्यत्र किया गया है।

मिर्ज़ा ग़ालिब २७ दिसम्बर १७६७ ई०में उत्पन्न हुए और ७२ वर्षकी आयुमें दिल्लीमें सन् १८६९में समाधि पाई।

पयामके सम्पादकका कथन है कि "ग़ालिबने अपनी आँखोंसे तैमूरके आख़िरी चिराग़को गुल होते हुए देखा था। उसने १८५७के ग़दरके बादका हिन्दोस्तान भी देखा था। इतने बड़े परिवर्तनको अपनी आँखोंसे देखनेवाला ग़ालिब लाल क़िलेके आख़िरी शमअके ख़ामोश हो जानेका दाग़ अपने सीनेमें रखता है तो हम शायरके हालातसे उसके शेरके हक़ीक़ी मायने हासिल करनेमें हक़बजानिब हैं। ख़ूनेदिलके यह क़तरे ग़ालिबके दीवानके सुफ़ेहातपर (पृष्ठोंमें) सुर्ख़ मोतियोंकी तरह बिखरे हुए हैं। कितना ही ज़माना बिगड़ जाय, जबतक हम अपने देशके इतिहासको बिल्कुल भुला न दें, हमारी नज़रमें उन क़तरोंकी सुर्ख़ी मान्द नहीं हो सकती। वोह इस उजड़ी हुई दिल्लीमें बैठकर कहता है" :—

दिलमें ज़ौक़ेवस्लो यादेयार तक बाक़ी नहीं।
आग इस घरमें लगी ऐसी कि जो था जल गया॥

यानी अब हमारे हृदयमें ज़ौक़ेवस्ल (यारके मिलनकी अभिलाषा)-और यार की याद तक बाक़ी नहीं है। क्योंकि हमारे हृदय-रूपी घरमें ऐसी आग लगी है कि सर्वस्व भस्मीभूत हो गया। इतने बड़े विध्वंसकी बात ग़ालिबने किस ख़ूबी और सादगीसे कही है कि क़ानून-की ज़दमें भी न आएँ और सर्वसाधारण ज़ौक़ेवस्लके चक्करमें ही पड़े रहें।

था ज़िन्दगीमें मौतका खटका लगा हुआ।
उड़नेसे पेश्तर भी मेरा रंग ज़र्द था॥

× × ×

किससे महरूमिये क़िस्मतकी शिकायत कीजे।
हमने चाहा था कि मर जाएँ सो वह भी न हुआ॥

(हम किससे अपनी बदक़िस्मतीकी शिकायत करें? जीवनमें हमने जो भी अभिलाषा की वोह कभी पूरी न हुई। और तो और, हमने मृत्यु चाही वह भी न आई।)

ख़ामोशीमें निहाँ ख़ूँगुश्ता लाखों आरज़ूए हैं।
चिराग़ेमुर्दा हूँ मैं बेज़बाँ गोरेग़रीबाँका॥

(मेरी खामोशीमें लाखों मिटी हुई अभिलाषाएँ (ख़ूँगुश्ता आरज़ूएँ) छुपी हुई हैं। मैं क़ब्रके बुझे हुए चिराग़के मानिन्द हूँ। खामोश आदमीको बेज़बान कहते हैं और चिराग़की लौको ज़बानकी उपमा देते हैं। तो बुझे हुए चिराग़को बेज़बान आदमीके मानिन्द समझा गया है, और उसी तरह मरी हुई अभिलाषाओंको मरे हुए आदमीकी क़ब्रसे उपमा दी गई है।)

दरपै पड़नेको कहा और कहके कैसा फिर गया।
जितने अर्सेमें मेरा लिपटा हुआ बिस्तर खुला॥

की मेरे क़त्लके बाद उसने जफ़ासे[1] तौबा[2]।
हाय! उस ज़ूदपशेमाँका[3] पशेमाँ[4] होना॥

कहूँ किससे मैं कि क्या है? शबेग़म[5] बुरी बला है।
मुझे क्या बुरा था मरना, अगर एक बार होता॥

हुए हम जो मरके रुसवा[6] हुए क्यों न ग़र्क़ेदरिया।
न कभी जनाज़ा उठता, न कहीं मज़ार[7] होता॥

× × ×

---

[1] अत्याचारसे; [2] प्रतिज्ञा; [3] शीघ्र लज्जित होनेवाला; [4] शर्मिन्दा; [5] दुःखोंकी रात्रि; [6] बदनाम; [7] क़ब्र।

मैं और बज़्मेमयसे यूँ तिश्नाकाम आऊँ !
गर मैंने की थी तौबा, साक़ीको क्या हुआ था *?

(बड़े आश्चर्य और दुखकी बात है कि मैं भी मधुशालासे यूँही प्यासा अभिलषित (तिश्नाकाम) चला आऊँ ! यदि मैंने शराब न पीनेकी क़सम भी खाली थी तो मधुबालाको क्या हुआ था ? उसने जबरन क्यों न पिला दी ? कई बार जीवनमें आदमी रूठ जाता है, मगर दिलमें वह यही चाहता है कि जिससे वह रूठा है, वह उसे मना ले और ज़ोर ज़बर्दस्ती उसके मानको भंग कर दे। इससे रूठनेवालेको आनन्द भी आता है और उसके मानकी आन भी रह जाती है। और यदि कोई रूठने-वालेको उपेक्षित कर दे, उसे मनाए नहीं तो उसके हृदयको बड़ी ठेस लगती है और इसका उसे बहुत ज्यादा मलाल रहता है।)

घर हमारा जो न रोते भी तो वीराँ होता।
बहर गर बहर न होता तो बयाबाँ होता॥

(हम इतने रोये कि घर आँसुओंसे दरिया बन गया है। न रोते तो उजाड़ (वीराँ) बना रहता। मतलब ये है कि हम ऐसे अभागे हैं कि हर हालतमें बेचैन रहेंगे)

पकड़े जाते हैं फ़रिश्तोंके लिखेपर नाहक़।
आदमी कोई हमारा, दमेतहरीर भी था ?

(मिर्ज़ा हँसीमें ईश्वरको उलाहना देते हैं कि हमारे जुर्मके सुबूतके लिए किसीकी गवाही होनी आवश्यक थी। केवल फ़रिश्तोंके कहनेसे पकड़ लेना ठीक नहीं हुआ)

*** इन्कारेमयकशीने मुझे क्या मजा दिया।**
सीनेपै चढ़के उसने खुमेमय पिला दिया॥

—दाग़

शमअ बुझती है तो उसमेंसे धुआँ उठता है।
शोलयेइश्क़ सियहपोश हुआ मेरे बाद ।।

(चिराग़के बुझनेपर जो उठता है उसे धुआँ मत समझो। अपितु चिराग़के जल मरनेके शोकमें उसके हृदयकी आगने काला वस्त्र पहना है। इसी तरह मेरे ग़ममें मेरा शोलयेइश्क़ (प्रेम-अग्नि) स्याहपोश हुआ है। मतलब यह है कि मैं चिराग़की तरह उम्रभर जलता रहा हूँ।)

घर जब बना लिया तेरे दरपर कहे बग़ैर।
जानेगा अब भी तू ना मेरा घर कहे बग़ैर।।

कहते हैं जब रही ना मुझे ताक़तेसखुन।
"जानूँ किसीके दिलकी मैं क्योंकर कहे बग़ैर ?"

राज़ेमाशूक़ न रुसवा हो जाये।
वर्ना मर जानेमें कुछ भेद नहीं ।।

(मर जानेमें कोई ख़ास भेद नहीं। मगर माशूक़का भेद न खुल जाय, कहीं वह बदनाम न हो जाय, इसी खयालसे नहीं मरते हैं। आत्म-हत्या करनेसे कुटुम्बी और मित्रोंकी काफ़ी बदनामी होती है। फिर माशूक़को तो लोग स्पष्ट ही कहेंगे कि इसकी उपेक्षाओं और अत्याचारोंसे तंग आकर प्रेमी मर गया। ना बाबा ! हम उसकी यह ज़िल्लत कराना पसन्द नहीं करेंगे)

कहते हैं जीते हैं उम्मीदपै लोग।
हमको जीनेकी भी उम्मीद नहीं ।।

(समस्त संसार आशापर अवलम्बित है। आशा नष्ट हुई कि सब नष्ट हुआ। 'जबतक आस, तबतक साँस।' मिर्ज़ा फ़र्माते हैं कि सुनते हैं लोग उम्मीदके भरोसे जीते हैं, मगर हम क्या करें ? हम तो इतने

निराश रहे हैं कि हमें तो जीनेकी भी आशा नहीं। (इस ज़मीनमें इससे बेहतर शेर निकालना मुश्किल है)

रौ में है रख़्शेउम्र कहाँ देखिए थमे।
ना हाथ बागपर है न पा है रकाबमें ॥

(सवारकी बेअख़्तियारी और घोड़ेका उसके क़ाबूसे बाहर हो जाना चाबुकसवारकी दयाजनक स्थितिका कैसा करुण चित्र है ! यह जीव रूपी सवार शरीर रूपी ऐसे ही बेक़ाबू उदण्ड घोड़ेपर सवार है, और उसपर भी तुर्रा यह कि न हाथमें लगाम है, और न रकाबमें पाँव ही हैं। फिर भगवान् ही बेली है। न जाने कहाँ यह घोड़ा थमेगा और कहाँ गिरेगा ?)

छोड़ा न रश्कने कि तेरे घरका नाम लूँ।
हर इकसे पूछता हूँ कि जाऊँ किधरको मैं ?

(आशिक़को इस क़दर वहम है कि वह मार रश्क (ईर्ष्या) के लोगोंसे माशूक़के घरका पूरा अता-पता देकर उसके घरका मार्ग नहीं पूछता। उसे यही खटका लगा हुआ है कि कहीं ऐसा न हो कि नाम-निशाँ बता देनेसे कोई और भी वहाँ पहुँच जाय। इसलिए वह सिर्फ़ लोगोंसे यही पूछता है—"क्यों साहब ! मुझे अब किधर जाना चाहिए ?" और इसका जवाब भला कोई क्या दे ? अतः आशिक़ यूँही भटकते फिरते हैं और बदगुमानीकी वजहसे माशूक़के घरका ठीक-ठीक उल्लेख करके पता नहीं पूछते। भटकते फिरना और विरह-व्यथा सहना तो मंजूर मगर ग़ैरोंको पता बताना मंजूर नहीं)*

---

* इस बदगुमानीपर किसी साहबका एक शेर याद आया :—

बवक़्ते अलविदा उस दिलरुबाको।
न सौंपा बदगुमानीसे ख़ुदाको ॥

(माशूक़से विदा होते समय उसको ख़ुदा हाफ़िज़ (ईश्वर रक्षक हो)

लो वोह भी कहते हैं कि यह बेनंगोनाम है।
यह जानता अगर तो लुटाता न घरको मैं॥

(और तो और, जिसकी वजहसे हम तबाह हुए वही अब यह कहने लगा है कि यह निहंग है, आवारा है। अगर मुझे पहलेसे यह ध्यान रहा होता कि बिन कौड़ी आदमी बेकौड़ीका है तो मैं क्यों घरको लुटने देता ?)*

चलता हूँ थोड़ी दूर हर इक तेजरौके साथ।
पहचानता नहीं हूँ अभी राहबरको मैं॥

(जिस आदमीमें मैं कोई सिफ़ात देखता हूँ, उसीपर विश्वास कर लेता हूँ। जिस किसीको अग्रगामी देख लेता हूँ उसीके पीछे चल पड़ता हूँ। फिर जब कोई उससे बढ़कर गुणी या अग्रगामी देखता हूँ तो उसे छोड़कर उसके पीछे हो लेता हूँ। इसका कारण यह है कि मैं अभी सच्चे हितैषी और मार्गप्रदर्शकको पहचाननेकी क्षमता नहीं रखता। यह शेर उन क़ौमोंपर कितना चुस्त होता है, जिनका कोई नेता नहीं और यूँही कभी किसीके बहकावेमें और कभी किसीके इशारेपर नाचती रहती हैं)

दोनों जहान देके वोह समझे 'यह ख़ुश हुआ'।
याँ आपड़ी ये शर्म कि तकरार क्या करें ?

(ईश्वर यह लोक और परलोक देकर यह समझा कि मैं प्रसन्न हो

इसी बदगुमानीने न कहा कि कहीं ख़ुदा ही शफ़क़्क़तका हाथ न फेर दे।)

* फ़ानीने भी इस भावको क्या खूब क़लमबन्द किया है :—

बहला न दिल न तीरगिये शामेग़म गई।
यह जानता तो आग लगाता न घरको मैं॥

(अफ़सोस तो यह कि घरमें आग लगानेसे न तो मेरा ग़मरूपी अँधेरा ही मिटा, और न कुछ दिल ही बहला। बेकार घरको हमने जलाया)

गया हूँ। मगर मैं तो इस कारणसे चुप रहा कि अब क्या तकरार की जाय, क्यों दिल की बात कही जाय? यह कुछ न देता तो अच्छा था; या देना था तो मेरे मनके मुताबिक़ देना था। हम शर्मकी वजहसे चुप रहे, और उसने हमारी चुप्पीका मतलब ही और समझा।)

दिलेनाज़ुकपै उसके रहम आता है मुझे 'ग़ालिब'।
न कर सर गर्म उस काफ़िरको उल्फ़त आज़मानेमें॥

(उसे मेरे प्रेमकी परीक्षा लेनेके लिए उत्तेजित न करो। कहीं ऐसा न हो कि वह आवेशमें आकर मुझे मार डाले; और फिर उसका दिल सदैव इस करनीपर पछताता रहे। इसलिए मुझे उसके कोमल हृदयका खयाल करके यह कहना पड़ रहा है कि उसे उत्तेजित न करें। उसके नाज़ुक दिलका ख़याल आता है, वर्ना मुझे अपनी जानकी कोई चिन्ता नहीं।)

नज़र लगे न कहीं उसके दस्तोबाज़ूको।
ये लोग क्यों मेरे ज़ख्मेजिगरको देखते हैं?

× × ×

मैंने कहा कि "बज़्मेनाज़ चाहिये ग़ैरसे तिही"[१]।
सुनकर सितम ज़रीफ़ने मुझको उठा दिया कि यूँ॥

मैंने तो उस सितमज़रीफ़से (जो अत्याचारको अत्याचार न समझकर मनबहलाव या हँसी समझे; मुँहपर रंगके साथ तेज़ाब छिड़क दे, मगर वह उसे होली ही समझा करे) रक़ीबको (प्रतिद्वन्द्वीको) ग़ैर समझकर कहा था कि आप की महफ़िल ग़ैरसे ख़ाली होनी चाहिए। उसने यह सुनकर मुझे ही महफ़िलसे यह कहकर उठवा दिया कि "यहाँ सिर्फ़ तू ही ग़ैर नज़र आता है।" सितमज़रीफ़ीकी हद हो गई।

---

[१] एकान्त।

✓ न लुटता दिनको तो कब रातको यूँ बे खबर सोता।
रहा खटका न चोरोंका दुआ देता हूँ रहज़नको॥

× × ×

ख़ुशी क्या खेतपर मेरे अगर सौ बार अब्र आवे।
समझता हूँ कि ढूँढे हैं अभीसे बर्क़ ख़िरमनको॥

मेरे खेतपर बादल सोबार भी छायें या बरसें तो मुझे ख़ुशी नहीं, क्योंकि मैं जानता हूँ बादलोंमें छुपी बिजली मेरे झोंपड़ेको ढूँढ़ती फिर रही है। मतलब है कि जिसे ज़ाहिरामें सुख समझा जाता है, वह दुखका सन्देश है।

आशिक़ हुए हैं आप भी इक और शख़्सपर।
आख़िर सितमकी कुछ तो मकाफ़ात चाहिये॥

देखिये न, कुछ बात तो बनी। आप (माशूक़) भी किसीपर आशिक़ हुए तो। अब आपको मालूम तो होगा कि आशिक़ोंके दिलपर क्या बीतती है? उनकी उपेक्षा करने, विरह-अग्निमें जलाने और सतानेसे आशिक़ोंको कितना कष्ट होता है? इसका अनुभव अब आपको होगा, जब आपका माशूक़ वोह व्यवहार करेगा जो आप हमसे बरतते थे। आख़िरकार कुछ तो सितमकी मकाफ़ात (अत्याचारका बदल) चाहिए।[१]

सीखे हैं महरुख़ोंके लिए हम मुसव्वरी।
तक़रीब कुछ तो बहरेमुलाक़ात चाहिये॥

चित्रकारी, (शायरी, गायन, वादन, शतरंज, चौसर आदि) कला हमने चन्द्रमुखियोंके लिए ही सीखी है, ताकि किसी न किसी कलाके सहारे

---

[१] "वोह का जाने पीर पराई।
आके फटी न पैर बिवाई॥"

हमारा वहाँतक आना-जाना हो सके। क्योंकि वहाँतक रसाई होनेके लिए कुछ न कुछ तो गुण होने ही चाहिए।

अपनी गलीमें मुझको न कर दफ़्न बादेक़त्ल।
मेरे पतेसे ख़ल्क़को क्यों तेरा घर मिले?

तू मुझे क़त्ल करे यह तो बड़ी ख़ुशीकी बात है मगर क़त्ल करनेके बाद अपनी गलीमें मुझे दफ़न न करना। यही मेरी आख़िरी ख़्वाहिश है, क्योंकि मैं नहीं चाहता कि मेरे जैसे प्रसिद्ध आदमीकी क़ब्र तेरे कूचेमें बने। मेरी प्रसिद्धिके कारण लोगोंको जहाँ मेरी क़ब्रका पता लगे, वहाँ तेरा निवास-स्थान भी मालूम हो। मेरे बाद तेरे कूचेमें और लोग आएँ-जाएँ यह मैं नहीं सहन कर सकता। यह मिर्ज़ाका अछूता और नया ख़याल है। वर्ना आशिक़की एक इच्छा यह भी रहती है कि मरनेपर वह यारके कूचेमें दफ़नाया जाय।

'ग़ालिब' तेरा अहवाल सुना देंगे हम उनको।
वे सुनके बुला लें यह इजारा नहीं करते॥

हमको उनसे वफ़ाकी है उम्मीद।
जो नहीं जानते वफ़ा क्या है?

पिन्हाँ था दामेसख़्त क़रीब आशियानेके।
उड़ने न पाये थे कि गिरफ़्तार हम हुए॥

मतलब यह है कि होश सम्हालने भी न पाये थे कि मुसीबतोंने घर लिया। उड़ने पाये भी नहीं और गिरफ़्तार कर लिये गये।

छोड़ी 'असद' न हमने गदाईमें दिल लगी।
साइल हुए तो आशिक़े अहलेकरम हुए॥

हमने गदाई (फ़क़ीरी)में भी हँसमुख स्वभाव न छोड़ा। फ़क़ीर हुए पर दिल्लगीसे बाज़ न आये। हम साइल (फ़क़ीर) भी रहे और

आशिक़ भी रहे। यानी जिसके दरके फ़क़ीर हुए उसी दाताके आशिक़ भी हुए। इस शेरमें कई ख़ूबी हैं। एक तो यह कि जो परमात्मा (अहले-करम) हमें देता है हम उसके उपासक हैं, प्रेमी हैं, आशिक़ हैं। दूसरे यह कि हम जिसपर आशिक़ हैं उसके दरवाज़ेपर फ़क़ीर बनकर दीदार कर आते हैं। तीसरे यह कि वह हमारा दाता है तो क्या हुआ, हम भी तो उसके आशिक़ हैं।

दाग़ेफ़िराक़े[1] सुहबतेशबकी[2] जली हुई।
इक शमअ़ रह गई है सो वह भी ख़मोश है॥

एक हंगामेपै मौक़ूफ़ है घरकी रौनक़।
नोहयेग़म[3] ही सही नग़मयेशादी[4] न सही॥

उनके देखेसे जो आ जाती है मुँहपर रौनक़।
वोह समझते हैं कि बीमारका हाल अच्छा है॥

हमको मालूम है जन्नतकी हक़ीक़त लेकिन।
दिलके ख़ुश रखनेको 'ग़ालिब' ये ख़याल अच्छा है॥

मुन्हसिर मरनेपै हो जिसकी उम्मीद।
ना उम्मीदी उसकी देखा चाहिये॥

सफ़ीना जब कि किनारेपै आ लगा 'ग़ालिब'।
ख़ुदासे क्या सितमोजोरे नाख़ुदा कहिये॥

छोड़ भी, अब किसीकी क्या शिकायत और क्या गिला? जब कि

---

[1] विरहका चिन्ह।

[2] रात्रिकालीन उत्सव।

[3] शोकमें रुदन।

[4] विवाह-उत्सवपर नृत्य-गान।

सफ़ीना (जीवन रूपी नौका) जैसे-तैसे पार लग ही गया, तब रास्तेमें नाख़ुदा (मल्लाह) द्वारा किये गये अत्याचारोंका अब क्या उल्लेख करें ? हमारी नाव तो जैसे-तैसे पार लग ही गई। सतानेवालोंको क्या लाभ हुआ, यह वही जानें। अब हम क्यों व्यर्थमें शिकायत करके हल्के बनें ?

न सुनो, गर बुरा कहे कोई।
न कहो, गर बुरा करे कोई॥

रोक लो, गर ग़लत चले कोई।
बख़्श दो गर ख़ता करे कोई॥

× × ×

बक रहा हूँ जुनूँमें क्या-क्या कुछ।
कुछ न समझे ख़ुदा करे कोई॥

कभी-कभी मनुष्य दुखके आवेगको न रोक सकनेके कारण व्यथाके प्रवाहमें बह जाता है। वह नहीं चाहता कि हृदयके कोनेमें छुपे हुए दुख-दर्द किसीको दिखाये। मगर जब आवेग तेज़ होता है, तब वह नहीं सम्हल पाता और बहक जाता है। मगर बहता हुआ आदमी जिस तरह चाहता है किनारेसे आन लगे, उसी तरह जोशेजुनूँ (उन्मादके जोश)में बहकनेवाला यह चाहता है कि ईश्वर करे मेरी बात किसीकी समझमें न आये।

जब तवक़्क़ोह ही उठ गई 'ग़ालिब'।
क्यों किसीका गिला करे कोई॥

है कुछ ऐसी ही बात जो चुप हूँ।
वर्ना क्या बात कर नहीं आती॥

हो चुकीं 'ग़ालिब' बलाएँ सब तमाम।
एक मर्गेनागेहानी[1] और है॥[2]

उग रहा है दरोदीवारपै सब्ज़ा 'ग़ालिब'।
हम बयाबाँमें हैं और घरमें बहार आई है॥[3]

× × ×

देखो, मुझे जो दीदये इबरत निगाह हो।
मेरी सुनो, जो गोश! नसीहतनयोश है॥

मुझे देखो, इससे तुम्हें दीदयेइबरतनिगाह (बुरे कामोंके देखनेसे शिक्षा-रूपी पाठ मिलना) होगी, शिक्षाकी दिव्यदृष्टि मिलेगी। मेरी आप-बीती सुनो। अगर तुम्हारे गोश (कान) नसीहत नयोश (उपदेशके इच्छुक) हैं—मतलब यह है कि मैं इतना पतित हूँ कि मुझे देखनेसे ही ज्ञात हो जायेगा कि बुरे कामोंके यह फल मिलते हैं। मेरी बातें इतनी अनुभवपूर्ण हैं कि उन्हें सुनोगे तो सारी बुराइयोंसे चौकन्ने हो जाओगे।

गो हाथमें जुम्बिश नहीं, आँखोंमें तो दम है।
रहने दो अभी साग़िरो मीना मेरे आगे॥

यह शेर बज़ाहिर तो क़तई रिन्दाना है। मतलब यही कि हाथमें

---

[1] बेकार मरना, अकस्मात् मृत्यु।

[2] **अपनी तो सारी उम्र ही 'फ़ानी' गुज़ार दी।**
इक मर्गे नागहाँके ग़मे इन्तज़ारने॥
'फ़ानी'

[3] **याँ मेरे क़दमसे है वीरानेकी आबादी।**
वाँ घरमें ख़ुदा रक्खे आबाद है वीरानी॥
— 'फ़ानी'

मीना उठानेकी शक्ति न रही तो न सही, अभी आँखोंमें देखनेकी शक्ति तो है। पी नहीं सकता, मगर देखनेका तो आनन्द उठा सकता हूँ। इसलिए साग़िर और मीना सामने ही रखे रहने दिये जाएँ। मगर भाव बहुत ऊँचे हैं। जीवन-संग्राममें लड़ते-लड़ते इतने थक चुके हैं कि न खड़े रह सकते हैं न शस्त्र ही थाम सकते हैं। मगर शरीरमें रक्तकी एक बूँद रहते हुए, आँखोंमें रोशनी होते हुए क्या शत्रुको सामनेसे ओझल हो जाने दें ? क्या अपने कर्त्तव्यसे विमुख हो जाएँ ? नहीं।

हस्तीके मत फ़रेब कभी खाइयो 'असद'।
आलम तमाम हल्क़येदामेख़याल है॥

इस जीवन अथवा संसारके चक्कर (फ़रेब)में कभी नहीं आना चाहिए। यह तो आत्मा-रूपी पक्षीको फँसानेके लिए जाल (हल्क़ये-दामेख़याल) है।

क़तअ कीजै न तअल्लुक़ हमसे।
कुछ नहीं है तो अदावत ही सही॥

× × ×

लाज़िम नहीं कि ख़िज़्रकी हम पैरवी करें।
माना कि एक बुज़ुर्ग हमें हमसफ़र मिले॥*

यह माना कि एक वयोवृद्ध 'ख़िज़्र' हमें मार्गमें मिल गये हैं, जो हमारी तरह वह भी भ्रमण कर रहे हैं। मगर उनका अनुकरण करना हमारा कर्त्तव्य नहीं। हमें किसीकी नक़ल न करके अपना नवीन, स्वतंत्र,

---

*वोह पायें शौक़ दे कि जुहत आश्ना न हो।
पूछूँ न ख़िज़्रसे भी कि जाऊँ किधरको मैं ?
—'फ़ानी'

मौलिक मार्ग चुनना चाहिए। स्वावलम्बनपर कितना ऊँचा भाव है? क्योंकि इस्लाम-धर्मके अनुसार खिज़्र हमेशा संसारमें घूमते हुए भूले-भटकोंको रास्ता बताते हैं। गोया उनकी ड्यूटी ही मार्ग बतलाना है। फिर भी ग़ालिब कहते हैं कि उनसे क्यों हम मार्ग पूछें? क्यों हम उनके पीछे चलें? और क्यों उनके बताये मार्गका अनुसरण करें? क्या इससे हमारे स्वावलम्बनमें बाल न आयेगा? ५-६ वर्ष पूर्व श्रद्धेय पं० अर्जुनलाल सेठीने (सर्वज्ञदेव उनकी स्वर्गीय आत्माको सुख-शान्ति, उनके जीवित 'प्रकाश'को प्रकाश दे) ऐसा ही प्रसंग छिड़नेपर निम्न-लिखित हिन्दीका दोहा किस भवावेशमें सुनाया था कि आज भी वह दृश्य नेत्रोंके सामने भूलकर रुला गया है :—

"लीक-लीक गाड़ी चले, लीकहि चले कपूत।
लीक छोड़ तीनों चलें, शायर, सिंह, सपूत॥"

२७ जून १९४४

६

हकीम मुहम्मद मोमिन खाँ 'मोमिन'

[सन् १८०० से १८५१ ई० तक]

मोमिन साहब 'ग़ालिब' और 'ज़ौक़'के समकालीन थे। ये अपने ढंगके निराले थे। न किसीके दरबारमें जाते थे, न किसीकी चापलूसीमें कुछ लिखते थे। आरम्भमें हिकमत की, फिर ज्योतिषका अच्छा अभ्यास किया। यहाँतक कि अपनी मृत्युके बारेमें कह दिया था कि ५ रोज़ या पाँच माह या ५ वर्षमें चोला छूट जायेगा। और यही हुआ भी। कोठेपरसे गिरनेके कारण कहे हुए दिनसे ठीक ५ माहके बाद असार संसारसे उठ गये। शतरंजके चतुर खिलाड़ियोंमेंसे एक थे।

कपूरथला महाराजने ३५० रु० मासिकपर अपने यहाँ बुलाना चाहा। मगर मोमिन इसलिए नहीं गये कि इतना ही वेतन वहाँ एक गवैयेको भी मिलता था।

मोमिन रंगीन स्वभावी, हँसमुख, सौन्दर्य-उपासक और वज़ाहदार थे। उनके कलाममें दार्शनिकता नहीं मिलेगी। उनके अपने लिखनेका ढंग भी जुदा है। कहते हैं कि पढ़ते भी करुणोत्पादक ढंगसे थे। मोमिनके कलाममें नाज़ुकख़याली, भावोंकी तराश ख़ूब है। आशिक़ाना रंगके माहिर उस्ताद समझे जाते हैं। उर्दू-साहित्यके सुप्रसिद्ध आलोचक अल्लामा नियाज़ फ़तहपुरी लिखते हैं—"अगर मेरे सामने उर्दूके तमाम शुअ़रा (शायरों) मुतक़द्दमीन (प्राचीन) और मुताख़रीन (आधुनिक) का कलाम रखकर (बाइसतसनायेमीर—मीरको छोड़कर) मुझको सिर्फ़ एक दीवान हासिल करनेकी इजाज़त दी जाये तो मैं बिला ताम्मुल

कह दूँगा कि मुझे कुलियाते मोमिन दे दो और बाक़ी सब उठा ले जाओ ?"[1]

इनका जन्म १८०० ई०में दिल्लीमें हुआ। और सन् १८५१में दिल्लीमें ही मृत्यु हुई।

कलामे मोमिन :—

न मानूँगा नसीहत, पर न सुनता मैं तो क्या करता ?
कि हर-हर बातपर नासेह[2] तुम्हारा नाम लेता था ॥

छुटकर कहाँ असीरेमुहब्बत[3] की जिन्दगी।
नासेह यह बन्देग़म[4] नहीं, क़ैदेहयात[5] है ॥

मंज़ूर हो तो वस्लसे बढ़कर सितम नहीं।
इतना रहा हूँ दूर कि हिजराँका ग़म नहीं ॥*

इस नक़्शेपा[6] के सजदे[7] ने क्या-क्या किया ज़लील[8]।
मैं कूचयेरक़ीब[9] में भी सरके बल गया ॥

जाने दे चारागर,[10] शबेहिजराँ[11] में मत बुला।
वह क्यों शरीक हो, मेरे हाले तबाहमें ?

---

[1] इन्तिक़ादियात हिस्सा अव्वल, पृ० २१; [2] उपदेशक; [3] प्रेमका क़ैदी; [4] कष्टोंका बन्धन; [5] जीवन-क़ैद।

*नियम है कि आदतके ख़िलाफ़ हर बात नागवार गुज़रती है। इसलिए अगर मुझपर तुम अत्याचारका अभ्यास करना चाहते हो तो मिलनसे बढ़कर और क्या सितम होगा, क्योंकि मैं विरह-व्यथाका इतना प्रेमी हो गया हूँ कि मिलन अब मुझे आदतके ख़िलाफ़ बुरा मालूम होगा।

[6] चरण-चिन्ह; [7] नमस्कार, झुकना; [8] बदनाम, बेइज़्ज़त; [9] प्रतिद्वन्द्वीकी गलीमें; [10] वैद्य; [11] विरह-रात्रि।

ग़ैरों पै खुल न जाय कहीं राज़ देखना।
मेरी तरफ़ भी ग़मज़ए-ग़म्माज़[1] देखना॥

कैसे गिले[2] रक़ीब[3] के, क्या ताने उक़रबा[4]।
तेरा ही दिल न चाहे तो बातें हज़ार हों॥

बहरे-अयादत[5] आये वोह, लेकिन क़ज़ाके साथ।
दम ही निकल गया मेरा आवाज़ेपा[6] के साथ॥

माँगा करेंगे अबसे दुआ हिज्रेयारकी[7]।
आख़िर तो दुश्मनी है असरको दुआके साथ॥*

न बिजली जल्वाफ़र्मा[8] है, न सैयाद[9]।
करें हम क्या निकलकर आशियाँसे[10]?

बर्क़का[11] आस्मानपर है दिमाग़।
फूँककर मेरे आशियानेको॥

क्या सुनाते हो कि है हिज्रमें जीना मुश्किल?
तुमसे बेरहमपै मरनेसे तो आसाँ होगा॥

---

[1] माशूक़ाना अदाओंको आँखोंसे प्रकट करनेवाला।
[2] शिकायत; [3] प्रतिद्वन्द्वी; [4] इष्ट-मित्र।
[5] बीमारीका हाल पूछना; [6] पगध्वनि।
[7] प्रेमिकाका विरह।

*ख़ूब था पहलेसे होते जो हम अपने बदख़्वाह।
कि भला चाहते हैं और बुरा होता है॥

[8] उपस्थित; [9] चिड़ीमार; [10] घोंसलेसे।
[11] बिजलीका।

संगेसौदा जुनूँमें लेते हैं।
अपना हम मक़बरा बनानेको ॥*

यास[1] देखो कि ग़ैरसे कह दी।
बात अपनी उम्मीदवारीकी ॥

दोनोंका एक हाल है यह मुद्दआ[2] हो काश।
वोही ख़त उसने भेज दिया क्यों जवाबमें?

ख़ुदाकी याद दिलाते थे नज़अ़में[3] अहबाब[4]।
हज़ार शुक्र कि उस दम वोह बदगुमाँ न हुआ ॥

शब तुम जो बज़्मेग़ैरमें आँखें चुरा गये।
खोये गये हम ऐसे कि अग़यार[5] पा गये ॥

हँसते जो देखते हैं किसीको किसीसे हम।
मुँह देख-देख रोते हैं, किस बेकसीसे हम?

कुछ क़फ़समें इन दिनों लगता है जी।
आशियाँ अपना हुआ बरबाद क्या?

बख़्तेबद ने[6] वोह डराया है कि काँप उठता हूँ।
तू कभी लुत्फ़की बातें भी अगर करता है ॥

---

*संगसौदा एक क़िस्मका काला पत्थर जो हल्का और अन्दरसे खोखला होता है। संगसौदा इसलिए ले रहे हैं कि हमारे जुनूँ (दीवानगी)की याद रहे क्योंकि सौदा मायने दीवानेके हैं। क़ब्रपर सौदा पत्थर लगा हुआ देखकर हर एक समझ लेगा कि इसमें कोई सौदाई दफ़नाया गया है।

[1] निराशा; [2] तात्पर्य; [3] मृत्यु-काल; [4] इष्ट-मित्र; [5] ग़ैर; [6] दुर्दिनने।

दमबदम रोना हमें, चारों तरफ़ तकना हमें।
या कहीं आशिक़ हुए, या होगया सौदा[1] हमें ॥

अगर ग़फ़लतसे बाज़ आया जफ़ा[2] की।
तलाफ़ी[3] की भी ज़ालिमने तो क्या की ?

जफ़ासे थक गये तो भी न पूछा—
"कि तूने किस तवक़्क़ोह[4] पर वफ़ा[5] की ?"

किसीने गर कहा मरता है 'मोमिन'।
कहा "मैं क्या करूँ ? मर्ज़ी ख़ुदाकी"* ॥

ग़ैरसे सरगोशियाँ[6] कर लीजिए फिर हम भी कुछ।
आर्ज़ूहायेदिले[7] रश्कआश्ना[8] कहनेको हैं ॥

मजलिसमें मेरे ज़िक्रके आते ही उठे वोह।
बदनामिये उश्शाक़का एजाज़ तो देखो† ॥

---

[1] उन्माद; [2] अत्याचार; [3] बदल; [4] आशा।
[5] भलाई।

*जो कहता हूँ कि मरता हूँ, तो फ़र्माते हैं "मर जाओ"।
जो ग़श आता है मुझपर तो हज़ारों दम भी होते हैं ॥
—'दाग़'

[6] कानाफूसी; [7] हृदयकी अभिलाषा; [8] प्रतिद्वन्द्वीकी ईर्ष्या।

†मजलिसमें बदनाम प्रेमीका किसीने ज़िक्र किया तो माशूक़ घृणाके कारण उठ खड़ा हुआ। प्रेमी अपने दिलको तसल्ली देता है कि उसका खड़ा होना नफ़रतकी वजहसे नहीं, बल्कि आशिक़ोंकी बदनामीको उसने ताज़ीम दी है।

खुशी न हो मुझे क्योंकर क़ज़ाके आनेकी।
ख़बर है लाशपै उस बेवफ़ाके आनेकी॥

उलझा है पाँव यारका ज़ुल्फ़ेदराज़[1]में।
लो आप अपने दाममें[2] सैयाद आ गया॥

तुम मेरे पास होते हो गोया।
जब कोई दूसरा नहीं होता॥

गये वोह् ख़्वाबसे उठ, ग़ैरके घर आख़िरेशब।
अपने नालोंने दिखाया यह असर आख़िरेशब॥

सुबह् दम वस्लका वादा था यह् हसरत देखो।
मर गये हम दमेआग़ाज़ेसहर[3] आख़िरेशब॥

शोलये आह्, फ़लक! रुतबेका ऐजाज़[4] तो देख।
अव्वलेमाह् में चाँद आये नज़र आख़िरेशब॥

समझके और ही कुछ मर चला मैं ऐ नासेह्[5]!
कहा जो तूने 'नहीं जान जाके आनेको'॥

मेरे घर भी चलते-फिरते एक दिन आ जायगा।
वो मुबारिकबाद अबको यार हरजाई[6] मिला॥

छोड़ बुतख़ानेको 'मोमिन' सजदा[7] काबेमें न कर।
ख़ाकमें ज़ालिम! न यूँ क़दरेजबीं साई[8] मिला॥

---

[1] लम्बे बाल; [2] जालमें; [3] प्रातःकालसे पूर्व; [4] इज़्ज़त, सम्मान। [5] नसीहत देनेवाला; [6] चरित्र भ्रष्ट; [7] नमस्कार; [8] मस्तक झुकानेके गौरवको।

ग़ैरसे वोह फिर रक़ीब[1]के घरमें चला गया।
ऐ रश्क[2]! मेरी जान गई तेरा क्या गया?

आपकी कौन-सी बढ़ी इज़्ज़त?
मैं अगर बज़्ममें ज़लील हुआ॥

ख़ाक होता न मैं तो क्या करता?
उसके दरका ग़ुबार होना था॥

मत कह शबेविसाल कि ठंडा न कर चिराग़।
ज़ालिम! जला है मेरी तरह उम्रभर चिराग़॥*

उस शोलारूने[3] ताकि पसेमर्ग[4] भी जलूँ।
जलवाए दुश्मनोंसे मेरी गोर[5]पर चिराग़॥

नाकामियोंसे काम रहा उम्रभर हमें।
पीरी[6]में यास[7] थी जो हविस[8] थी शबाब[9]में॥

उम्र सारी तो कटी इश्क़ेबुताँमें[10] 'मोमिन'।
आख़िरी वक़्तमें क्या ख़ाक मुसलमाँ होंगे?

शबेफ़िराक़में भी ज़िन्दगीपै मरता हूँ।
कि गो ख़ुशी नहीं मिलनेकी पर मलाल तो है॥

---

[1] प्रतिद्वन्द्वी; [2] ईर्ष्या।

* शबेविसाल है गुल कर दो इन चिराग़ोंको।
ख़ुशीकी बज़्ममें क्या काम जलनेवालोंका?

[3] कान्तिवान; [4] मृत्युके पश्चात्; [5] क़ब्र; [6] वृद्धावस्था। [7] निराशा; [8] तृष्णा; [9] यौवन; [10] मूर्त्ति-पूजामें।

ख़ाकमें मिल जाय यारब ! बेकसीकी आबरू ।
ग़ैर मेरी नाशके[1] हमराह[2] रोता जाय है ॥

अब तो मर जाना भी मुश्किल है तेरे बीमारको ।
ज़ोफ़के[3] बाइस[4] कहाँ दुनियासे उट्ठा जाय है ?

नासहा[5] ! दिलमें तू इतना तो समझ अपने कि हम ।
लाख नादाँ[6] हुए, क्या तुझसे भी नादाँ होंगे ?

मिन्नतेहज़रते ईसा न उठाएँगे कभी ।
ज़िन्दगीके लिए शर्मिन्दये अहसाँ होंगे? *

बात नासेहसे करते डरता हूँ ।
कि फ़ुग़ाँ बे असर न हो जाये ! †

गला हम काट लेंगे आप, तेरे रश्कसे अपना ।
उदूको[7] क़त्ल कीजे फिर हमारा इम्तहाँ कीजे ॥‡

---

[1] अर्थीके; [2] साथ-साथ; [3] निर्बलताके; [4] कारण; [5] हे नसीहतकार; [6] अनसमझ; [7] प्रतिद्वन्दीको ।

*यानी ज़िन्दगी जैसी बेहक़ीक़त चीज़के लिए क्या ईसाके अहसानसे शर्मसार होंगे ? क़तई नहीं । (ईसा मुर्दोंमें जीवन डाल देता था, ऐसी धारणा प्रचलित है ।)

†नासेह (उपदेशक)की बात बेअसर होती है । कहीं ऐसा न हो कि इसकी मनहूस संगतसे मेरी वाणीमें भी असर न रहे ।

‡रश्कसे यह मुराद है कि हमें यह भी गवारा नहीं कि तुम हमें छोड़कर उदूको हलाल करो । इसलिए उदूको क़त्ल किया तो हम अपना खुद गला काटकर मर जाएँगे । (मगर इसमें चाल ये है कि तैशमें आकर माशूक़ दुश्मनका सफ़ाया कर दे तो फिर आशिक़का काम बने ।)

है दिलमें ग़ुबार उसके, घर अपना न करेंगे।
हम ख़ाकमें मिलनेकी तमन्ना न करेंगे ॥*

बेवफ़ाई का उदूकी है गिला।
लुत्फ़में भी वे सताते हैं मुझे ॥†

३० जून १९४४

*प्यारेके दिलमें हमारी तरफ़से ग़ुबार है। ऐसी सूरतमें हम उसके दिलमें घर करना पसन्द न करेंगे; क्योंकि ऐसा करना ख़ाकमें मिलने-जैसा होगा। (ग़ुबारका अर्थ यूँ तो मैल है मगर ग़ुबार और ख़ाककी तशबीह देकर मोमिनने शेरको चमका दिया है)

†यानी आशिक़ उदूका ज़िक्र बुराईके वर्णनमें भी नहीं सुनना चाहता, उसकी इच्छा तो ये है कि उसके सिवा माशूक़को किसी ग़ैरका ख़याल ही न आये। उसे तो ग़ैरसे इतनी ईर्ष्या है कि उसकी ख़्वाहिश रहती है कि माशूक़को क़त्ल करना है तो मुझे करे, बुराई करना है तो मेरी करे। मगर उदूको तो ख़्वाबमें भी मनमें न लाये।

७

मुंशी अमीर अहमद 'अमीर' मीनाई

[सन् १८२८ से १९०० ई० तक]

मुंशीजी सन् १८२८ ई०में लखनऊमें उत्पन्न हुए थे। आपको बचपनसे ही शेरोशायरीका शौक़ था। धीरे-धीरे कीर्त्ति फैलती गई। नवाब वाजिदअलीशाहने भी तारीफ़ सुनी तो इन्हें तलब किया और कलाम सुनकर इन्हें खिलअत तथा इनाम देकर सम्मानित किया। उस समय मुंशीजीकी आयु केवल २४ वर्षकी थी।

सन् १८५७के ग़दरके बाद लखनऊ उजड़नेपर आप नवाबके निमंत्रित करनेपर रामपुर चले गये और वहाँ बड़े आदरसे सत्कारपूर्वक ३४ वर्ष रहे। नवाबके काव्य-गुरु बननेका भी सौभाग्य प्राप्त हुआ। १९०० ई०में नवाब हैदराबादने अपने यहाँ खींच लिया। मगर अफ़सोस! वहाँ कुछ दिन बाद ही ७२ वर्षकी आयुमें मृत्यु हो गई।

मुंशीजीकी शायरी सरल और आकर्षक है। उनकी भाषा मुहावरेदार और प्रवाहयुक्त है। कल्पनाकी उड़ान भी खूब है। आपका जीवन धार्मिक, सरल, स्वच्छ, निष्कपट और शुद्ध था। अत्यन्त निरभिमानी, भद्र और सभ्य थे। नम्रता और प्रेमकी मूर्त्ति थे। कभी किसीकी बुराई नहीं की। यहाँतक कि अपने प्रतिद्वन्द्वी मिर्ज़ा दाग़की शायरीपर जब नुक्ताचीं लोगोंने आलोचनाएँ करनी शुरू कीं, तब आप चाहते तो मिर्ज़ा दाग़के खिलाफ़ काफ़ी ज़हर उगल सकते थे। आलोचकोंको प्रोत्साहन देकर दाग़को नीचा दिखाकर स्पर्द्धाकी आगको बुझा सकते थे। मगर नहीं, आपने यह ओछा हथियार इस्तैमाल न करके वही

व्यवहार किया जो एक शायर को शायरके साथ और बहादुरको बहादुरके साथ करना चाहिए। आपने मिर्जा दाग़को जो पत्र लिखा था, हम उसे 'मज़ामीनेचकबस्त' से यहाँ उद्धृत करते हैं :—

मेरे पुराने यार ग़मगुसार हज़रते 'दाग़' सलामत,

ख़ुदा रोज़-ब-रोज़ आपके एजाज़ (इज्ज़त)को बढ़ाये और इस फ़नमें चमकाये। मुल्कको आपकी क़दर हो या न हो, मेरी नज़रमें तो जिस क़दर है आपका दिल बख़ूबी जानता होगा। आप हासदीनें (ईर्ष्यालुओं) कोतहअन्देश (संकीर्णविचारकों)का कुछ ख़याल न करें। अरबाबे कमाल (गुणी) ख़सूसन वोह जिनसे ज़माना मुआफ़क़त करता है (आदर देता है)का महसूद (ईर्षित) होना सरमायेनाज़ व फ़ख़्र है। ख़ुदा हासिद होनेसे महफ़ूज़ रक्खे।

यादआवरीका मिन्नतपज़ीर

अमीर फ़क़ीर

इसे कहते हैं शराफ़त और इन्सानियत। वाह! क्या ऊँचे भाव हैं। "गुणियोंको ईर्ष्यालुओंकी ईर्ष्यापर अभिमान होना चाहिए और स्वयं उन्हें ईर्ष्यासे बचना चाहिए।"

मुंशी अमीर मीनाई और मिर्जा दाग़ समकालीन और एक दूसरेके प्रतिद्वन्द्वी रहे हैं। दोनों ही अपने ज़मानेमें बहुत बड़े ग़ज़्ज़ाल (ग़ज़ल लिखनेवाले) थे; और अक्सर हमतरह मिसरोंपर ग़ज़ल लिखते थे। दोनोंने यकसाँ रंगमें तबा आज़माई की है। दोनोंने रामपुर, हैदराबाद में इज़्ज़त पाई। एक लखनवी ज़बानके माहिर थे तो दूसरे देहलवी ज़बानमें कामिल। दोनोंने बकसरत शागिर्द पाये और दोनोंने ख़ूब ख्याति प्राप्त की। शायरीके मैदानमें दोनोंने ख़ूब हुनर दिखलाये मगर एक दूसरेपर चोट नहीं की।

अमीर मीनाई बीमार हुए तो मिर्जा दाग़ उनके यहाँ रोज़ाना सेवा-

सुश्रूषाको जाते थे। मुंशीजी की मृत्युपर मिर्ज़ा दाग़को बड़ा सदमा पहुँचा और उन्होंने ये तारीख़ कही :—

दाग़े बेला चल बसा दुनियासे वोह।
जो मिरा हमफ़न था मेरा हमसफ़ीर॥

मुस्तफ़ाआबादसे आया दकन।
यह सफ़र था उस मुसाफ़िरका अख़ीर॥

क्या कहूँ, क्या-क्या हुईं बीमारियाँ।
क्या लिखूँ तफ़सीले अमराज़े कसीर॥

गो बज़ाहिर था अमीर अहमद लक़ब।
दर हक़ीक़त बातनन पाया फ़क़ीर॥

है दुआ भी 'दाग़'की तारीख़ भी।
क़स्रेआली पाए[१८] जन्नत[११]में 'अमीर'[१]॥

कलामे अमीर:—

ख़बरदार ऐ मुसाफ़िर! ख़ौफ़की जा[२] राहेहस्ती है।
ठगोंका बैठका है जाबजा चोरोंकी बस्ती है॥

'अमीर' उस रास्तेसे जो गुज़रते हैं वो लुटते हैं।
मुहल्ला है हसीनोंका कि क़ज़्ज़ाकोंकी[३] बस्ती है॥

मेरे तुम्हारे बीचमें आता है बार-बार।
कम्बख़्त पाँव भी नहीं थकते मलालके॥

---

[१] यानी हिजरी सन् १३१८ इन अक्षरोंसे अमीरकी मृत्युकी तारीख बनती है; [२] जगह; [३] लुटेरोंकी।

आई सहर[1] इधर कि उधर शाम हो गई।
दो-दो घड़ीके होने लगे दिन विसाल[2]के ॥

मिट्टी जो देने आये हो तो दो हँसी-ख़ुशी।
फेंको भी अब ग़ुबारको दिलसे निकालके ॥

उनको आता है प्यारपर ग़ुस्सा।
हमको ग़ुस्सेपै प्यार आता है ॥

वो कहते हैं कि हम आँखोंमें सबको ताड़ लेते हैं।
मुहब्बत सारी दुनियाको इसी काँटेपै तुलती है ॥*

मैं जाग रहा हूँ हिज्र[3]की शब[4]।
पर मेरे नसीब सो रहे हैं ॥

किस तरह फ़रियाद[5] करते हैं बता दो क़ायदा।
ऐ असीरानेक़फ़स[6] मैं नौ[7] गिरफ्तारोंमें हूँ ॥†

इस सरामें मुसाफ़िर नहीं रहने आया।
रह गया थकके अगर आज तो कल जाऊँगा ॥

---

[1] प्रातःकाल, सुबह; [2] मिलन, सम्भोगके।

*इसी भावका द्योतक अकबर इलाहाबादीका शेर है:—

ख़ुदा जाने मेरा क्या वज़्न है उनकी निगाहोंमें ?
सुना है आदमीको वोह नज़रमें तोल लेते हैं ॥

[3] विरह; [4] रात्रि; [5] अर्ज़, प्रार्थना; [6] बन्दियों; [7] नया।

†इसी रंगमें चकबस्तका शेर है :—

नया बिस्मिल हूँ मैं वाक़िफ़ नहीं रस्मेशहादतसे।
बता दे तूही ऐ ज़ालिम ! तड़पनेकी अदा क्या है ?

है जवानी ख़ुद जवानीका सिंगार।
सादगी गहना है इस सिन के लिए॥

क़रीब है यार रोज़े महशर[1] छुपेगा कुश्तों[2] का ख़ून कबतक ?
जो चुप रहेगी ज़बाने ख़ंजर लहू पुकारेगा आस्तींका॥*

उठाऊँ सख़्तियाँ लाखों, कड़ी बात उठ नहीं सकती।
मैं दिल रखता हूँ शीशेका जिगर रखता हूँ पत्थरका॥

गर्द उड़ी आशिक़की तुरबतसे,[3] तो झुँझलाकर कहा—
"वाह! सर चढ़ने लगी पाँवोंकी ठुकराई हुई"॥

फ़ना[4] कैसी, बक़ा[5] कैसी, जब उसके आशना[6] ठहरे।
कभी इस घरमें आ निकले कभी उस घरमें जा ठहरे॥

मुस्कराकर वोह शोख़ कहता है—
"आज बिजली गिरी कहीं न कहीं"॥

शोरेमहशर[7]! 'अमीर'को न जगा।
सो गया है ग़रीब सोने दे॥

वोह दुश्मनीसे देखते हैं, देखते तो हैं।
मैं शाद[8] हूँ कि हूँ तो किसीकी निगाहमें॥

---

[1] प्रलय; [2] बलि किये हुओंका।

*इस शेरको मिस्टर जस्टिस महमूदने अपने एक फ़ैसलेमें बतौर सनदके लिखा था।

[3] क़ब्रसे; [4] मृत्यु; [5] ज़िन्दगी।

[6] महमान, प्रेमी; [7] प्रलयका शोर।

[8] प्रसन्न।

ऐ रूह ! क्या बदनमें पड़ी है बदनको छोड़ ।
मैला बहुत हुआ है अब इस पैरहनको[१] छोड़ ॥

किया यह शौक़ने अन्धा मुझे न सूझा कुछ ।
वगर्ना रब्तको[२] उससे हज़ार राहें थीं ॥

वोह मज़ा दिया तड़पने कि यह आरज़ू है यारब !
मेरे दोनों पहलुओंमें दिले बेक़रार होता ॥

जो निगाह की थी ज़ालिम ! तो फिर आँख क्यों चुराई ?
वही तीर क्यों न मारा जो जिगरके पार होता ?*

सूरत तेरी दिखाके कहूँगा यह रोज़ेहश्र[३]—
"आँखोंका कुछ गुनाह न दिलका क़ुसूर था ॥"

जुदा है दुख़्तेरिज़का[४] नाम हर सुहबतमें ऐ साक़ी !
परी है मयकशोंमें[५] हूर है परहेज़गारोंमें ॥

मिलाकर ख़ाकमें भी हाय ! शर्म उनको नहीं जाती ।
निगह नीची किये वोह सामने मदफ़नके[६] बैठे हैं ॥

उल्फ़तमें बराबर है वफ़ा हो कि जफ़ा हो ।
हर बातमें लज़्ज़त है अगर दिलमें मज़ा हो ॥

---

[१] लिबास; [२] मेल बढ़ानेकी ।

*कोई मेरे दिलसे पूछे, तेरे तीरेनीमकशको ।
ये ख़लिश कहाँसे होती, जो जिगरके पार होता ॥
—ग़ालिब

[३] प्रलयवाले दिन जब इन्साफ़ होगा; [४] अंगूरकी लड़की, शराब ।
[५] शराबियोंमें; [६] क़ब्रके ।

आये जो मेरी लाशपै वोह तन्ज़से[1] बोले—
"अब हम हैं ख़फ़ा तुमसे कि तुम हमसे ख़फ़ा हो ?"

आँखें खोलीं भी बन्द भी कीं।
वोह शक्ल न सामनेसे सरकी॥

वाये क़िस्मत जो सबकी सुनता है।
वोह भी आशिक़की इल्तजा न सुने ?

ख़ुदीसे बेख़ुदीमें आ जो शौक़े हक़परस्ती है।
जिसे तू नेस्ती समझा है ऐ ग़ाफ़िल! वो हस्ती है॥

बढ़, ऐ आहेरसा ! अब किंगरेपर अर्शके पहुँचो।
बुलन्दीको बुलन्दी जानना हिम्मतकी पस्ती है॥

न शाख़ेगुल ही ऊँची है न दीवारे चमन बुलबुल !
तेरी हिम्मतकी कोताही, तेरी क़िस्मतकी पस्ती है॥

वस्ल हो जाय यहीं हश्रमें क्या रक्खा है ?
आजकी बातको क्यों कलपै उठा रक्खा है ?

तुझसे माँगूँ मैं तुझीको कि सभी कुछ मिल जाय।
सौ सवालोंसे यही एक सवाल अच्छा है॥

न चूक वक़्तको पाकर कि है यह वोह माशूक़।
कभी उम्मीद नहीं जिससे जाके आनेकी॥

शबेवस्लत क़रीब आने न पाये कोई ख़िलवतमें।
अदब हमसे जुदा ठहरे, हया तुमसे जुदा ठहरे॥

---

[1] ताने।

ऐ बर्क़ ! तू बता कभी तड़पी, ठहर गई ।
यों उम्र कट गई है इसी इज़्तराबमें ।।

आख़िरमें दोनों उस्तादोंकी हमतरह ग़ज़लोंका इन्तख़ाब 'मज़ामीने चकवस्त'से उद्धृत करके यहाँ दिया जाता है, जिससे दोनोंकी ज़बान और मज़ाक़ेसख़ुनका रंग मालूम हो सके ।

दाग़ :—

जबतक किसीकी चाह न थी क्या ग़रूर था ?
मेरा ही दिल बग़लमें मेरे रश्के हूर था ।

वाइज़[1] ! तेरे लिहाज़से हम सुनके पी गये ।
क्या नागवारज़िक्रे शराबेतहूर[2] था ।।

क्यों तूने चश्मेलुत्फ़से देखा ग़ज़ब किया ?
क़ुरबान उस निगाहके जिसमें ग़रूर था ।।

अमीर :—

मौक़ूफ़ जुर्म ही पै करम[3]का ज़हूर[4] था ।
बन्दा[5] अगर क़ुसूर न करता, क़ुसूर था ।।

आया बड़ा मज़ा मुझे मजलिसमें वाज़की ।
वाइज़ था मस्तेज़िक्रे शराबेतहूर था ।।

नीची रक़ीब[6] से न हुई आँख उम्र भर ।
झुकता मैं क्या ? नज़रमें तुम्हारा ग़रूर था ।।

---

[1] उपदेशक; [2] पवित्र शराबका वर्णन ।
[3] दयालुता, महरबानी; [4] चमत्कार ।
[5] सेवक; [6] प्रतिद्वन्दी ।

दाग़ :—

हम बोसा लेके उनसे अजब चाल कर गये।
यूँ बख़्शवा लिया कि यह पहला क़ुसूर था॥

अमीर :—

लिपटामें बोसा लेके तो बोले कि "देखिये—
यह दूसरी ख़ता है वह पहला क़ुसूर था"॥*

दाग़ :—

यूँ तो बरसों न पिलाऊँ न पिऊँ ऐ ज़ाहिद[1]!
तौबा करते ही बदल जाती है नीयत मेरी॥

अमीर :—

तौबाकी जानकी बिजली है चमक बिजलीकी।
बदली आते ही बदल जाती है नीयत मेरी॥

दाग़ :—

क्या फ़लक[2] टूट पड़ा बादेफ़ना[3] भी मुझपर।
बैठी जाती है, दबी जाती है, तुरबत मेरी॥

---

*एक दाग़ और अमीर हैं कि अपराधपर अपराध करते हैं और फिर किस शानसे क्षमा-याचना करते हैं और एक मिर्ज़ा ग़ालिब हैं कि जागते हुए तो क्या सोते हुए भी और वोह भी पाँवके बोसा लेनेका साहस नहीं कर पाते। फ़र्माते हैं :—

ले तो लूँ सोतेमें उसके पाँवका बोसा मगर।
ऐसी बातोंसे वोह काफ़िर बदगुमाँ हो जायगा॥

[1] परहेज़गार, भगतजी; [2] आस्मान।
[3] मृत्युके पश्चात्।

अमीर :—

शमअ़ रोती है बहुत इसको उठा ले कोई।
बैठ जाये न कहीं कच्ची है तुरबत[1] मेरी ॥

दाग़ :—

शरीर आँख, निगह बेक़रार, चितवन शोख़।
तुम अपनी शक्ल तो पैदा करो हयाके लिए ॥

अमीर :—

ख़ुदाको शान ! जो शोख़ीसे आशना ही न थी।
तरस रही है वही आँख अब हयाके लिए ॥

दाग़ :—

ज़बाँसे गर किया भी वादा तूने तो यक़ीं किसको !
निगाहें साफ़ कहती हैं कि देखो यूँ मुकरते हैं ॥

अमीर :—

तसल्ली ख़ाक हो वादोंसे उनके, चितवनें उनकी।
इशारोंसे यूँ कहतीं हैं कि देखो यूँ मुकरते हैं ॥

दाग़ :—

वोह और हैं जो पीते हैं मौसमको देखकर।
आती रही बहारमें तौबाशिकन[2] हवा ॥

अमीर :—

वाइज़का[3] था लिहाज़ तो फ़स्ले[4] ख़िज़ाँ तलक।
लो आ गई बहारमें तौबाशिकन हवा ॥

---

[1] क़ब्र; [2] प्रतिज्ञा तोड़नेवाली; [3] उपदेशक।
[4] पत्रझड़।

दाग़ :—

हिर्सो[1] हविसो[2] ताबो[3] तवाँ[4] 'दाग़' जा चुके।
अब हम भी जानेवाले हैं सामान तो गया ।।

अमीर :—

बाक़ी है 'अमीर' अब तो फ़क़त जानका जाना।
होशो ख़िरदो ताबो तवाँ जा चुके कबके ।।*

३ जुलाई १९४४

[1] लालसा; [2] तृष्णा; [3] तेज; [4] बल।

* तुलनात्मक अशआर देनेके कारण ५.१की बन्दिश नहीं रक्खी गई।

८

नवाब मिर्ज़ा खाँ 'दाग़'

[सन् १८३१ से १९०५ ई० तक]

'अहसन'के शब्दोंमें—"दाग़ न सूफ़ी[1] थे न मुफ़्ती[2]। वे सिर्फ़ एक शाइर थे और शाइर भी ग़ज़लके। और ग़ज़ल भी ऐसी कि जिसमें शोख़ी,[3] शरारत, जली-कटी, ताने, रश्क,[4] बदगुमानी, छेड़-छाड़, लाग-डाँट, छीन-झपट और उरियानी[5]के सिवा कुछ नहीं।"

मौलाना हामिदहुसैन कादरी फ़र्माते हैं—"दाग़ने दिल्लीके लाल-क़िलेमें होश सम्हाला। शाही बेगमातसे ज़बान सीखी। शहज़ादोंके साथ इल्म और अदब हासिल किया। उस्ताद 'ज़ौक़'से फ़न्नेशाइरीमें फ़ैज़ पाया। क़िलेके मुशायरोंमें शरीक हुए। ख़ुद बादशाहसे दादे सख़ुन ली। दाग़ २५ सालकी उम्रतक क़िलेमें रहे।....दाग़का शीरीं बयान और लुत्फ़ेज़बान ऐसा है कि इब्तदा[6]से अबतक किसी शाइरको नसीब नहीं हुआ। जिद्दतेअदा इस क़दर है कि बजुज़ ग़ालिब व मोमिनके कोई उनका हमपल्ले नहीं। शोख़िएमज़मून इतनी कि उनसे बढ़कर कहीं नज़र नहीं आती। ग़ज़लकी ख़ूबीके लिए ज़रूरी है कि अलफ़ाज़ फ़सीह[7] हों, बन्दिश चुस्त व सही हो। मुहावरातका इस्तेमाल मौज़ूँ व बरमहल हो। तर्ज़ेअदामें जिद्दत हो। दाग़के यहाँ ये सब चीज़ें बेहतर से बेहतर हैं,

---

[1] सूफ़ी धर्मके अनुयायी, त्यागी; [2] फ़तवा देनेवाला, धर्माचार्य; [3] चुलबुलापन; [4] ईर्ष्या; [5] नग्नता; [6] प्रारम्भ; [7] सरल।

और उनपर शोखबयानी और ज़राफ़त तराज़ीका इज़ाफ़ा है। यही दाग़का तर्ज़ेख़ास है। दाग़का सबसे चमकता हुआ रंग शोखबयानी है।"

ग़ज़लमें दाग़की यह शान है कि मौलाना हाली मिर्ज़ा ग़ालिबके ज़िक्रमें लिखते हैं कि एक रात सुहबतमें वे दाग़के इस शेरको बार-बार पढ़ते थे :—

रुख़ेरोशनके आगे शमअ़ रखकर वोह यह कहते हैं—
"उधर जाता है देखें या इधर परवाना आता है ?"

मिर्ज़ा दाग़ २५ मई सन् १८३१को दिल्लीके चाँदनी चौकमें नवाब शमसुद्दीन (नवाब लोहाराके भाई)की पत्नीसे उत्पन्न हुए थे; किन्तु ६ वर्षकी आयुमें पिताकी मृत्युके कारण उनकी माँने बहादुरशाह बादशाहके युवराजसे पुनर्विवाह कर लिया। अतः दाग़ भी माँके साथ शाही क़िलेमें रहने लगे। शाही ढंगकी उन्हें शिक्षा मिली। १०-११ वर्षकी आयुमें ही कविता करने लगे। सन् १८५७के विद्रोहसे १०-११ माह पूर्व दाग़के सौतेले पिता भी मर गये। उस समय दाग़ २५ वर्षके थे कुछ दिन परेशानीका जीवन व्यतीत करनेके बाद रामपुर, लाहौर, अमृतसर किशनकोट स्टेट, अजमेर, आगरा, अलीगढ़, मथुरामें दिन गुज़ारे। रामपुरके अतिरिक्त सर्वत्र काफ़ी कष्ट और परेशानियोंमें रहे। सन् १८८८में हैदराबाद गए और वहाँ तीन वर्षके बाद निज़ामने अपना मुसाहिब और फिर कविता-गुरुके पदपर प्रतिष्ठित किया। इसके अतिरिक्त १—जहाँउस्ताद २—बुलबुलेहिन्दोस्तान ३—नाज़िमयारजंग ४—दबीरुद्दौला ५—फ़सीहउल्मुल्क जैसी ५ प्रतिष्ठित पदवियाँ प्रदान कीं।

उर्दूके किसी शाइरको अपने जीवनमें इतनी प्रतिष्ठा, ख्याति, आदर, सम्मान प्राप्त नहीं हुआ। सन् १९०५में हैदराबादमें दाग़की मृत्यु हो गई। सारे भारतके उर्दू-साहित्यिकोंमें कोहराम-सा मच गया। हज़ारों

तारीखें लोगोंने लिखीं। डा० सर इक़बालने भी अपने उस्तादकी मृत्युपर नौहा लिखा। नमूनेके तौरपर दो शेर मुलाहिज़ा हों:—

"थी हक़ीक़तसे[1] न ग़फ़लत फ़िक्रकी परवाज़में[2]।
आँख ताइरकी[3] नशेमनपर[4] रही परवाज़में॥

हू-ब-हू खींचेगा लेकिन इश्क़की तस्वीर कौन?
उठ गया नाविकफ़िग़न,[5] मारेगा दिलपर तीर कौन?"

दाग़के चार दीवान प्रकाशित हो चुके हैं। यूँ तो भारत भरमें आपके शिष्यों और शिष्योंके शिष्योंका जाल-सा पुरा हुआ है। एक तरहसे यह युग ही दाग़के अनुयायियोंका है। उनमें नवाब साइल देहलवी नूह नारवी, अहसन मारहरवी, इक़बाल, सीमाब अकबराबादी, उल्लेखनीय हैं।

"ख़ुदा बख़्शे बहुत-सी ख़ूबियाँ थी मरने वाले में।"

कलामेदाग़—

इस गिरफ़्तारीपर अपनी मैं निसार[6]।
लो, वे करते हैं निगहबानी[7] मेरी॥

कितना बावजह[8] है ख़याल उसका।
बेकसीमें[9] भी आये जाता है॥

इतनी ही तो बस कसर है तुममें—
कहना नहीं मानते किसीका॥

---

[1] वास्तविकतासे [2] उड़ानमें; [3] पक्षीकी; [4] घोंसलेपर; [5] तीरन्दाज़।

*'मुंतख़िब दाग़'के आधारपर।

बेख़ुद देहलवी, स्वर्गीय आग़ाशाइर देहलवी।

[6] बलिदान, न्योछावर; [7] निगरानी; [8] ठीक, ड्यूटीका पाबन्द; [9] लाचारीमें।

ग़श खाके 'दाग़' यारके क़दमोंपै गिर पड़ा।
बेहोश ने भी काम किया होशियारका॥

मंज़िलेमक़सूद[1] तक पहुँचे बड़ी मुश्किलसे हम।
ज़ोफ़ने[2] अक्सर बिठाया, शौक़ अक्सर ले चला॥

आँखें बिछाएँ हम तो उदूकी[3] भी राहमें।
पर क्या करें कि तुम हो हमारी निगाहमें॥

शिरकतेग़म[4] भी नहीं चाहती ग़ैरत[5] मेरी।
ग़ैरकी होके रहे, या शबेफ़ुरक़त मेरी॥

मुंसिफ़ी[6] हो तो ग़ज़ब, नामुंसिफ़ी हो तो सितम।
उसने मेरा फ़ैसला मौक़ूफ़ मुझपर रख दिया॥

ख़ुदा करीम[7] है यूँ तो मगर है इतना रश्क[8]।
कि मेरे इश्क़से पहले तुझे जमाल[9] दिया॥

वही हम थे कि जो रोतोंको हँसा देते थे।
अब वही हम हैं कि थमता नहीं आँसू अपना॥

कल छुड़ा लेंगे पै ज़ाहिद! आज तो साक़ीके हाथ।
रहन इक चुल्लूपै हमने हौज़े कौसर[10] रख दिया॥

तुमको आशुफ़्ता मिज़ाजोंकी ख़बरसे क्या काम?
तुम सँवारा करो बैठे हुए गेसू[11] अपना॥

---

[1] निर्दिष्ट स्थान; [2] निर्बलताने; [3] प्रतिद्वन्द्वीकी; [4] दुखोंमें साझीदार; [5] स्वाभिमान; [6] न्याय; [7] दयालु, न्यायी; [8] अरमान; [9] सौन्दर्य; [10] जन्नतकी शराबका हौज़; [11] बाल।

ख़ूब पर्दा है कि चिलमनसे लगे बैठे हैं।
साफ़ छिपते भी नहीं, सामने आते भी नहीं ॥

रहरवेराहेमुहब्बतका[1] ख़ुदा हाफ़िज़[2] है।
इसमें दो-चार बहुत सख़्त मुक़ाम आते हैं ॥

मुझसे बेहतर मेरा मलाल रहा।
कि तेरे दिलमें, महेजमाल[3]! रहा ॥

बशरने[4] ख़ाक पाया, लाल पाया या गुहर पाया।
मिज़ाज अच्छा अगर पाया तो सब कुछ उसने भर पाया ॥

ख़ातिरसे या लिहाज़से मैं मान तो गया।
झूठी क़समसे आपका ईमान तो गया ॥

ग़ैरके रूपमें भेजा है जलानेको मेरे।
नामाबर[5] उनका नया भेस बदलकर आया ॥

दोस्तीके पर्देमें कौन दुश्मनी करता?
उसकी मेहर्बानी है, जो है मेहबाँ अपना ॥

यह मजा था दिललगीका कि बराबर आग लगती।
न तुझे क़रार होता न मुझे क़रार होता ॥

शिरकते ग़म भी नहीं चाहती ग़ैरत मेरी।
ग़ैर की हो के रहे या शबे फ़ुरक़त मेरी ॥

---

[1] प्रेममार्गके पथिकका; [2] रक्षक।
[3] चन्द्रमुखी; [4] मनुष्यने।
[5] पत्रवाहक।

आईना तसवीरका तेरी न लेकर, रख दिया।
बोसा लेनेके लिए काबेमें पत्थर रख दिया॥

ज़िन्दगीमें पाससे दम भर न होते थे जुदा।
क़ब्रमें तनहा मुझे यारोंने क्योंकर रख दिया?

बात क्या चाहिए, जब मुफ़्तकी हुज्जत ठहरी।
इस गुनहपर मुझे मारा कि गुनहगार न था॥

पूछे कोई मिज़ाज तो अल्लाहरे ग़रूर!
कहते नहीं कि शुक्र है परविर्दगारका॥

अपनी तो ज़िन्दगी है तग़ाफ़ुलकी[1] वजहसे।
वोह जानते हैं ख़ाकमें हमने मिला दिया॥

समझो पत्थरकी तुम लकीर उसे।
जो हमारी ज़बानसे निकला॥

ख़ुशीसे कहते हैं 'यह भी मेरा ही आशिक़ था'।
वोह देखते हैं नई जिस मज़ारकी[2] सूरत॥

मेरे ही वास्ते बैठा है पासबाँ[3] दरपर।
मिले जो राहमें कहते हैं "आइये घरपर"॥

बेजुस्तजू[4] मिलेगा न ऐ दिल! सुराग़ेदोस्त[5]।
तू कुछ तो क़स्दकर[6], तेरी हिम्मतको क्या हुआ?

---

[1] उपेक्षाकी; [2] क़ब्रकी; [3] दरबान।
[4] प्रयत्न किये बिना; [5] मित्रका पता।
[6] प्रयत्नकर।

दस्तेहविस[1] बढ़ाकर क्यों मर्तबा घटाया ?
समझी न यह ज़ुलेख़ा दामन है पारसाका[2] ॥

कहाँ सैयाद, कैसा बाग़बाँ, किसपर गिरी बिजली ?
चमनमें आतिशेगुलने हमारा आशियाँ फूँका ॥

हो गई बारेगिराँ[3] बन्दा-नवाज़ी[4] तेरी।
तू न करता अगर अहसान तो अहसाँ होता ॥

पर न बाँधे पाँव बाँधा बुलबुले नाशादका।
खेलके दिन हैं लड़कपन है अभी सैयादका ॥

हो असर इतना तो सोज़े नालओ फ़रियादका।
हम तमाशा देख लें घर फूंककर सैयादका ॥

रिन्दाने बेरियाकी[5] है सुहबत किसे नसीब ?
ज़ाहिद भी हममें बैठके इन्सान हो गया ॥

जिसमें लाखों बरसकी हूरें हों।
ऐसी जन्नतको क्या करे कोई ॥

ऐ फ़लक ! दे हमको पूरा ग़म तो खानेके लिए।
वह भी हिस्सा कर दिया सारे ज़मानेके लिए ॥

यहाँ सुबहे पीरीसे पहले ही 'दाग़' !
जवानी चिराग़ेसहर[6] हो गई ॥

कहीं दुनियामें नहीं इसका ठिकाना ऐ 'दाग़' !
छोड़कर मुझको कहाँ जाय मुसीबत मेरी ?

---

[1] अभिलाषाका हाथ; [2] शीलवानका; [3] बोझ; [4] कृपा; [5] निष्कपटकी; [6] प्रातःकालीन दीपक।

रहती है कब बहारेजवानी तमाम उम्र ?
मानिन्द बूयेगुल इधर आई उधर गई ॥

जो तुम्हारी तरह तुमसे कोई झूठे वादे करता ।
तुम्हीं मुंसिफ़ीसे कह दो, तुम्हें एतबार होता ?

जो आशिक़ोंमें खाक हुआ, कीमिया हुआ ।
कहता था आज खाकमें कोई मिला हुआ ॥

वाए ग़फ़लत कि अब किया हमने ।
जो हमें पहले काम करना था ॥

जो हो सकता है उससे वह किसीसे हो नहीं सकता ।
मगर देखो तो फिर कुछ आदमीसे हो नहीं सकता ॥

मयख़ानेके क़रीब थी मस्जिद भलेको 'दाग़' !
हर शख़्स पूछता था कि "हज़रत इधर कहाँ" ?

दिलका क्या हाल कहूँ सुबहको जब उस बुतने—
लेके अँगड़ाई कहा नाज़से—"हम जाते हैं" ॥

आता है मुझको याद सवाले विसाल पर ।
कहना किसीका हाय ! वोह मुँह फेरकर 'नहीं' ॥

ख़बर सुनकर मेरे मरनेकी वोह बोले रक़ीबोंसे—
"ख़ुदा बख़्शे बहुत-सी ख़ूबियाँ थीं मरनेवालेमें" ॥

ग़ज़ब है देखना, उस सादगीपर मर गये लाखों ।
कहा था किसने बन बैठें वोह मेरे सोगवारोंमें ?

९ जुलाई १९४४

नव-प्रभात



: ६ :

उर्दू-शायरीमें अभूतपूर्व परिवर्त्तन

१८५७के विप्लवके पश्चात् युगान्तरकारी शायर

आकाशपर चढ़कर बदलीकी आड़में छिपा हुआ चाँद रंगीन-मिज़ाजोंकी रंगरेलियाँ देख रहा था कि उसकी यह हरकत सूर्यने देखी तो लाल हो गया; और चाँदने मारे शर्मके मुँह छिपा लिया, तभी ऊषाकालीन मृदु पवनने थपकियाँ देकर उन्हें जगाया :—

ले चुके अँगड़ाइयाँ, ऐ गेसुओवालो[1]! उठो!!
नूरका तड़का हुआ, ऐ शबके मतवालो! उठो!!!

—'बर्क़' देहलवी

मगर रातभर जो मयख़ाने और बज़्मे-यारमें जगे हों, उनपर नसीमे बहारी[2] का यह ठहोका क्या ख़ाक असर करता? उसी तरह मस्तेख़्वाब पड़े रहे। परन्तु जो दिव्यदृष्टा हैं, वे आनेवाली आपत्तियोंको सात पर्दोंमेंसे भी देख लेते हैं :—

जो है पर्देमें पिन्हाँ[3] चश्मेबीना[4] देख लेती है!
ज़मानेकी तबीयतका तक़ाज़ा देख लेती है!!

—'इक़बाल'

वे कैसे चुप रह सकते थे? इसलिए उनमेंसे एक ने बाआवाज़ बुलन्द कहा :—

कुछ कर लो नौजवानो! उठती जवानियाँ हैं!!!

—'हाली'

मगर मदमाते सोनेवालोंके लिए यह बिल्कुल नई सदा थी। उनके

---

[1] ज़ुल्फ़ोंवालों; [2] प्रातःकालीन पवनका; [3] छुपा हुआ; [4] दिव्य-दृष्टि।

कान इसके मानूस (अभ्यस्त) न थे। उन्होंने अभीतक 'मीर' और 'दर्द'का नग़मयेपुरदर्द[1] सुना था। 'ज़ौक़' और 'ग़ालिब'से दार्शनिक और हुस्नोइश्क़का दर्स[2] लिया था। 'मोमिन'की आशिक़ाना गुलकारियाँ देखी थीं। 'अमीर' और 'दाग़'के चुटीले अशआर सुने थे। उन्होंने आनन्दको किरकिरी करनेवाली आवाज़ काहेको सुनी थी? लिहाज़ा सुनी-अनसुनी करके जम्हाइयाँ और अँगड़ाइयाँ लेते हुए पड़े रहे। मगर इन लोगोंको चैन कहाँ? सोनेवाले भले ही खुर्राटें लेते रहें, इन जागनेवालोंको तो प्रलयकी शीघ्रगामी चालका पता था। इसलिए उनमेंसे एक नौजवानने रोषभरे स्वरमें पुकारा :—

अगर अब भी न समझोगे तो मिट जाओगे दुनियासे !
तुम्हारी दास्ताँ[3] तक भी, न होगी दास्तानोंमें !!
—'इक़बाल'

तो दूसरे साथीने पानीके छींटे देते हुए झल्लाकर शोर मचाया, कि अगर अब भी न चेते तो :—

मिटेगा दीन[4] भी और आबरू[5] भी जाएगी !
तुम्हारे नामसे दुनियाको शर्म आएगी !!
—'चकबस्त'

लोग हड़बड़ाकर उठे तो देखा अँधेरा मिट चुका है। सूर्यकी प्रखर रश्मियाँ चारों ओर छा रही हैं। चाँद पुरानी दुनियाको लेकर मलिन हो गया है। सूर्य अपने साथ नव-प्रभात लाया है। वह युग समाप्त हो गया, जब लोग अकर्मण्य बने भाग्यके भरोसे हाथ-पर-हाथ धरे सोचा करते थे :—

---

[1] व्यथा-गीत; [2] पाठ; [3] कहानी; [4] धर्म; [5] इज़्ज़त।

क़िस्मतमें जो लिखा है, वह आयेगा आपसे !
फैलाइए न हाथ, न दामन पसारिए !!
—'आतिश'

या भरी बहारमें बैठे हुए बहारको रोते थे। मानों रोना ही उनके जीवनका ध्येय था :—

क़बाए लालओगुलमें[1] झलक रही थी ख़िज़ाँ[2] !
भरी बहारमें रोया किये बहारको हम !!
—'अज्ञात'

अब नवीन कर्मयुग आया है। इसमें लोगोंको कहते हुए सुना :—

अहले[3]हिम्मत मञ्ज़िलेमक़सूद[4] तक आ ही गये !
बन्दयेतक़दीर[5] क़िस्मतका गिला[6] करते रहे !!
—'चकबस्त'

यह बज़्मेमय[7] है याँ कोताह[8]दस्तीमें है महरूमी[9] !
जो बढ़कर ख़ुद उठाले हाथमें, मीना[10] उसीका है !!
—'शाद' अज़ीमाबादी

अब ईश्वरके सहारे बैठे रहनेका भी युग गया, जिस ज़मानेमें बैठकर ज़ौक़ने कहा था :—

अहसान नाख़ुदाका[11] उठाए मेरी बला !
किश्ती ख़ुदापे छोड़ दूँ, लङ्गरको तोड़ दूँ !!

---

[1] फूलोंके पर्देमें; [2] पतझड़; [3] साहसी लोग; [4] लक्ष्य, निश्चित ध्येय; [5] भाग्यवादी लोग; [6] शिकायत; [7] मधुशाला; [8] छोटे हाथ (यहाँ पीछे रहनेमें); [9] वंचित होना; [10] मद्य-पात्र; [11] खेवटका।

वह ज़माना भी लद गया। अब इस युगमें बाहुबलके होते हुए ईश्वरका सहारा क्यों ?

सम्हल सके तो सम्हालो उमीदकी किश्ती !
ख़ुदाको देख चुके, ज़ोरे-नाख़ुदा मालूम ! !
—'एजाज़'

लोगोंने इस सुनहरे प्रभात और नव जागरणको देखा और सुना। मगर बक़ौल 'ज़ौक़' :—

छुटती नहीं है मुँहसे, ये काफ़िर लगी हुई !

वोह शीतल चाँदनी और वोह हुस्नोइश्क़की छेड़-छाड़, वह बरसाती हवाएँ और वह साक़ीका मयख़ानेमें फ़ैज़े-आम एकबारगी लोग कैसे भूल जाते ? परन्तु लोग भूलें या न भूलें, प्रकृतिका कठोर नियंत्रण सब कुछ भुला देता है। शराबकी नहरें, माशूक़ोंकी अदाएँ और आशिक़ोंकी आहें सब धरी ही रह गईं कि प्रकृतिने वह ताण्डव-नृत्य किया कि जो शाइर कूचए-यारमें आवारा फिरा करते थे, वही रोटियोंकी तलाशमें इधर-उधर दौड़ने लगे ! 'बज़मे-यार' और 'मयख़ाने'की सारी सरगर्मियाँ चौपट हो गईं ! !

अबतककी उर्दू-शायरीका विश्लेषण करनेसे ज्ञात होता है, जैसा कि 'नये अदबी रुजहानात'के सुयोग्य लेखकका कहना है कि "अबसे पहले उर्दूकी तवज्जह अवाम (जनता)की तरफ़ कभी नहीं रही। ग़रीबोंके मुताल्लिक़ कुछ नहीं कहा गया। क़ौमकी शीराज़ाबन्दी (संगठन)में हमारी शायरीने कोई मदद नहीं दी; न कोई पयाम (सन्देश) दिया। न राहे-अमलमें लाने (कर्त्तव्यशील बनने)की फ़िक्र की। हालाँकि अदब (साहित्य)के लिए इस मैदानमें आना ज़रूरी था। मंज़रनिगारी (प्रकृति-वर्णन) और अपने मुक़ामी असरात (स्थानीय घटनाओं)से ज़्यादा-तर गुरेज़ रहा है। अगर 'नज़ीर' अकबराबादी और 'अनीस व दबीर'

तवज्जह न करते, तो शायद यह अनासर (विषय) हमेशाके लिए क़दीम (भूतकालीन) शायरीसे मफ़कूदा (गुम) ही रहते।" (पृष्ठ ३२)

उर्दू-संसारकी इन त्रुटियों और वर्त्तमान युगकी आवश्यकताओंको जिन दिव्य-दृष्टाओंने अनुभव किया उनमें 'आज़ाद' 'हाली' 'अकबर' 'इक़बाल' और 'चकबस्त' मुख्य हैं। अगले पृष्ठोंमें इनका जीवन-परिचय और शायरीका चमत्कार देखनेको मिलेगा।

१० जुलाई १९४४

६

शम्सउल-उलेमा मौलवी मुहम्मद हुसैन 'आज़ाद'

[१८२९ से १९१० ई० तक]

मौलाना आजादका उर्दू-साहित्यमें वही स्थान है जो बाबू हरिश्चन्द्र भारतेन्दुका हिन्दी-संसारमें है। मुसन्निफ़ 'तारीख़े अदब उर्दू'के शब्दोंमें—"आज़ादकी ख़िदमत और एहसानात ज़बाने उर्दूपर बेहद हैं। उर्दू-शायरीमें इस रंगका बानी (प्रतिष्ठापक) और उसमें एक नई रूह फूँकनेवाला अगर कोई फ़िलहक़ीक़त कहा जा सकता है तो वह मौलाना आज़ाद हैं।"

मौलाना आज़ाद दिल्लीमें पैदा हुए थे। आप शेख़ ज़ौक़के शिष्य थे। ऐसे शिष्य भाग्यवान उस्तादोंको ही नसीब होते हैं। सन् १८५७के ग़दरकी लूट-मारमें 'आज़ाद' भी घरबार छोड़कर भागे, मगर उस्तादका दीवान सीनेसे लगाकर। सब सामान छोड़ा मगर उस्तादका कलाम न छोड़ा। उसे दुनियावी सब नेमतोंसे श्रेष्ठ समझा। मनमें सोचा कि दुनियावी और चीज़ें तो फिर भी मयस्सर हो सकती हैं, मगर स्वर्गीय उस्तादका कलाम नष्ट हुआ तो फिर हाथ मलनेके सिवा और कोई चारा न रह जायेगा। आज़ादने 'दीवाने-ज़ौक़' और 'आबेहयात' जैसी अपनी अमर रचनाओंमें इस श्रद्धा और भक्तिसे अपने उस्तादका उल्लेख किया है कि लोग उनपर अतिशयोक्तिका दोष लगानेसे बाज़ नहीं आए।

'आज़ाद'ने अपने उस्तादके साथ सैकड़ों बड़े-बड़े मुशायरे देखे थे। १८५७के विद्रोहके बाद दिल्ली छोड़नेपर इधर-उधर भटकनेके बाद एक हिन्दू मित्रकी सहायतासे लाहौर कॉलेजमें प्रोफ़ेसर हो गए। वहाँ

आपने पठन-क्रमके लिए फ़ारसी रीडर, उर्दू रीडर, उर्दू-क़ायदा वग़ैरह किताबें लिखीं और उस वक़्तकी उर्दू-शायरीकी कमियों और वर्त्तमान युगकी आवश्यकताओंको अनुभव करते हुए १५ अगस्त सन् १८६७ ई०में आज़ादनेमें लाहौर 'अंजुमने उर्दू'की स्थापना की जिसका उद्देश्य था—उर्दू-शायरीमें व्यर्थकी अतिशयोक्ति और उपमाओंको निकाल बाहर करना। मुशायरोंमें से मिसरा तरह (समस्या-पूर्त्ति)की प्रथाको उठाना, और उसके एवज़में स्वतंत्र नैतिक धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, प्राकृतिक सौन्दर्य आदि विषयोंपर लिखवानेकी परिपाटी डालना।

'आज़ाद'ने अंजुमनकी स्थापना करके ही अपने कर्त्तव्यकी इति—श्री नहीं समझी, अपितु स्वयं इस तरहकी शायरी करनी प्रारम्भ कर दी। परिमाण-स्वरूप थोड़े ही दिनोंमें उर्दू-शायरीका काया-कल्प हो गया। आज जिस उन्नत-शिखरपर हम उर्दू गद्य-पद्यको देख रहे हैं, उसके विकासका अधिकांश श्रेय आज़ादको है।

आज़ाद पद्यसे गद्यको अधिक तरजीह देते थे। यही कारण है कि उन्होंने अपनी अधिक शक्ति गद्यके विकासपर ख़र्च की और उसमें 'आबेहयात', 'नैरंगे-ख़याल', 'सख़ुनदाने फ़ारस', 'दरबारे अकबरी' और 'निगारस्तान' जैसी अमर रचनाएँ भेंट कीं। १८९९ ई०में उनकी शायरीका संकलन 'नज़्मे आज़ाद' भी प्रकाशित हुआ।

दुर्भाग्यसे कुछ मानसिक चिन्ताओंके कारण सन् १८८९में उनका मस्तिष्क विकृत हो गया और इस कष्टसाध्य रोगसे १९१० ई०में मृत्यु होनेपर मुक्ति पाई। वर्त्तमानमें उर्दू शायरीका जितना विकास हुआ है उस मियारपर 'आज़ाद'की शायरी नहीं है, न वे एक शायरकी हैसियतसे प्रसिद्ध ही हैं। वे तो उर्दू शायरी के पुरातन दृष्टिकोणको बदलनेवाले और गद्यके सिद्धहस्त लेखक थे। प्रसङ्गवश उनका उल्लेख करना आवश्यक था। नमूनेके तौरपर 'हुब्बे-वतन' शीर्षक नज़्मका एक संक्षिप्त उद्धरण यहाँ दिया जाता है।

हुब्बे वतन

दिल्ली कि जो हमेशासे कानेकमाल[1] है।
जो बाकमाल इसमें है वह बेमिसाल है॥

इक शख़्स वाँ सितारनवाज़ी की जान था।
पर, जानसे अज़ीज़ था दिल्लीको जानता॥

आया दकनसे ख़िलअ़तो-ज़र उसके वास्ते।
और नक़्द बहरे ज़ादे सफ़र उसके वास्ते॥

हर चन्द मुंह तो दिल्लीसे मोड़ा न जाता था।
पर हाथसे यह माल भी छोड़ा न जाता था॥

मतलब यह है कि बाद बहुत क़ीलोक़ालके।
असबाब सारा राहेसफ़रका सम्भालके॥

दिल्लीको यह भी छोड़के सूये दकन चले।
पर, जैसे कोई छोड़के बुलबुल चमन चले॥

पहुँचे मगर अभी थे दरेराजघाट[2]पर।
जो दफ़अ़तन् नज़र पड़ी दरियाके पाटपर॥

दरियाकी लहरें देखके लहराया उनका दिल।
और दिल्ली छोड़ते हुए भर आया उनका दिल॥

मुंह फेरकर निगाह ज्योंही शहरपर पड़ी।
जलवा दिखाती जामएमसजिद नज़र पड़ी॥

---

[1] गुणियों की खान; [2] दिल्लीमें जमनाके एक घाटका नाम।

तब वह पयाम्बर[1] कि जो आया दकनसे था ।
और उनको ले चला वह छुड़ाकर वतनसे था ।।

देखा निगाहे यासते और उससे यह कहा—
'पीछे चलेंगे पहले मगर यह तो दो बता ।।

ऐसी तुम्हारे शहरमें जमुना है या नहीं' ?
मुंह देखकर वह उनका हँसा और कहा 'नहीं' ।।

फिर सूये शहर इशारा किया और यह कहा—
'मसजिद भी इस तरहकी दिखा दोगे वाँ भला' ?

'है अपनी तर्जमें यह निराली जहानसे ।
उतरी जमींमें जिसकी शबीह आसमानसे' ।।

यह बात उसकी सुनते ही चींबरजबीं हुए ।
और बोले 'खैर है कि रवाना नहीं हुए ।।

जमुना नहीं है जामयेमसजिद जहाँ नहीं ।
सुनते भी हो मियाँ ! हमें जाना वहाँ नहीं ।।

अपने दकनको आप रवाना शिताब हों ।
पर इस चमनको छोड़के हम क्यों खराब हों ।।

और गाड़ी अपनी तू भी मियाँ गाड़ीवान फेर ।
गर अब फिरे न याँसे तो क़िस्मतका जान फेर ।।

हम अपली दिल्ली छोड़ दकनको न जाएँगे ।
गर याँ बहुत न खायेंगे थोड़ा ही खाएँगे' ।।

× × ×

---

[1] सन्देशवाहक ।

ऐसे ही नंग हुब्बे वतन बदनसीब हैं।
घरमें मुसाफ़िरों-से, जो बदतर ग़रीब हैं॥
कहते हैं, 'दुःख उठाना हो या दर्द सहना हो।
थोड़ा-सा खाना हो पै बनारसमें रहना हो'॥
अब मैं तुम्हें बताऊँ कि हुब्बे वतन है क्या।
वह क्या चमन है और वह हवाये चमन है क्या॥

× × ×

यानी यूरुपके मुल्कमें दो ताजदार थे।
दोनोंके अहले मुल्क मगर जाँनिसार थे॥
सरहदपै कुछ फ़िसाद था, पर ऐसा पड़ गया।
दोनोंके इत्तफ़ाक़का नक़्शा बिगड़ गया॥
आख़िरको थे जो वाक़िफ़े असरारे सल्तनत।
समझे बहम यह मसलहते कारे सल्तनत॥
दो जाँनिसारे मुल्क रवाना इधर करें।
और अपने दो इधरको वह गरमे सफ़र करें॥
ता चारों जिस जगह कि बहम एकबार हों।
सरहदेमुल्कके वहीं क़ायम मिनार हों॥
जाँबाज इस तरफ़के मगर जान तोड़कर।
ऐसे उड़े कि पीछे हवाको भी छोड़कर॥
इक हिस्सा तय न रस्ता हरीफ़ोंने था किया।
यह तीन हिस्से बढ़ गये औ उनको जा लिया॥
लेकिन हरीफ़ शर्तके मैदाँको छोड़के।
बोले यह अहदे क़ौलोक़रार अपना तोड़के॥

'वो अपने-अपने मुल्कके जो जाँनिसार हों।
फिर अबकी दो तरफ़से रवाँ एकबार हों॥

पर, इतनी बात पहले हरइक शख्स जान ले।
और यह इरादा ख़ूब तरह दिलमें ठान ले॥

यानी जो शर्त जीतके ख़ुरसन्द होयगा।
सरहदपै वह जमीनका पैवन्द होयगा'॥

जाँबाज आये थे जो अभी राह मारके।
हुब्बुलवतनके जोशमें बोले पुकारके—

'जो शर्त अब लगाई है तुमने यही सही।
और बात जो कि होनी है फिर वह अभी सही॥

पर बीचमें न हील हवालेकी आड़ दो।
सरहद हमारी हो चुकी बस हमको गाड़ दो'॥

हासिल यह है कि दोनों इसी जापै अड़ गये।
जीतेके जीते मुल्ककी सरहदपै गड़ गये॥

१२ जुलाई १९४४

१०

मौलाना अल्ताफ़ हुसैन 'हाली'

[ई० सन् १८४० से १९१६ तक]

मौलाना हाली मिर्ज़ा ग़ालिबके शिष्य थे। परन्तु गुरु और शिष्यके जीवनमें, दृष्टिकोणमें, महान विषमता मिलती है। ग़ालिब मुस्लिम वंशमें उत्पन्न अवश्य हुए, किन्तु न उन्होंने कभी नमाज़ पढ़ी, और न रोज़ा रक्खा। सामाजिक रीति-रिवाजसे हमेशा भागते रहे और धार्मिक उसूलके ख़िलाफ़ उम्र भर शराब पी। जो भी लिखा, सार्वजनिक दृष्टिकोणको लेकर लिखा और मनुष्यके नाते लिखा। ग़ालिब के कलाममें साम्प्रदायिक बू नहीं आई। उनके हिन्दू और मुसलमान सभी वर्गके शिष्य थे, हितैषी मित्र थे। यही कारण है कि मिर्ज़ाके आड़े वक़्तोंमें उनके हिन्दू मित्र ही काम आए।

ग़ालिब दार्शनिक कवि थे और रिन्द (मद्यप) थे। हाली मौलवी, नासेह और ज़ाहिद थे। हाली पहले मुसलमान थे, बादमें कुछ और। उन्होंने धर्मानुकूल आचरण रक्खा। शराब छुई तक नहीं। इस्लामका गुणानुवाद करने और मुसलमानोंको उठानेमें सारी उम्र व्यतीत कर दी और एक क़ौमके सपूतको जो करना चाहिए, वह करके दिखा दिया। हालीके हृदयमें मुसलमानोंकी दुर्दशाके कारण एक दर्द था जिससे वे बेचैन रहते थे। क़ौमकी दयनीय स्थिति देखकर हालीसे इश्क़के तराने नहीं गाये गए। बाग़को लुटेरोंसे घिरा हुआ देख, बुलबुल नग़मा भूलकर छाती फाड़कर चीख़ उठा। और उसने फिर वोह विप्लव-गान गाया, कि बाग़बाँ तो जागे ही, गुलचीं और सैयाद भी सकतेमें आ गए।

ग़ालिबने उर्दू शायरीके पुराने ढर्रेको दार्शनिकता और मौलिक विचारोंका पुट देकर उसे एक सजीव भावपूर्ण काव्य बनाया, तो हालीने उर्दू-शायरीका 'ओवरहॉलिङ्ग' करके उसकी काया ही पलट दी। हालीसे पूर्व या तो अक्सर आशिक़ाना ग़ज़लें लिखी जाती थीं या बड़े आदमियोंकी चापलूसीमें क़सीदे। अपनी दुर्दशाका वर्णन किस ढङ्गसे हो सकता है, घरमें आग लगी होनेपर सितार बजानेके अतिरिक्त, आत्म-रक्षाके लिए शोरोगुल भी किस तरह मचाया जा सकता है, इसका न किसीको होश था, न हालीसे पहले किसीको ख़याल ही आया। इश्क़में आहें भरना, किसी माशूक़की जुदाईमें जूते चटख़ाते हुए घूमनेके अलावा भी शायरीमें और कुछ कहा जा सकता है, यह कोई जानता ही न था। यह हालीके मस्तिष्ककी उपज है कि उसने तबाहीसे बचानेका राग गाया। स्वयं हालीने उस वक़्तकी शायरीके सम्बन्धमें अपने बारेमें लिखा है :—

"शायरीकी बदौलत चन्द रोज़ झूठा आशिक़ बनना पड़ा। एक ख़याली माशूक़की चाहमें दश्तेजुनूँ (उन्माद-मार्ग)की वह ख़ाक उड़ाई कि क़ैस व फ़रहादको गर्द कर दिया। कभी नालये नीमशबी (रात्रिमें बिलखते हुए)से रब्बेमस्कूँ (ईश्वरासन)को हिला डाला, कभी चश्मे-दरियाबार (आँसुओं)से तमाम आलमको डुबो दिया। आहोफ़ुग़ाँके ज़ोरसे करोंबियोंके कान बहरे हो गए। शिकायतोंकी बौछाड़से ज़माना चीख़ उठा। तानोंकी भरमारसे आसमान चलनी हो गया। जब रश्कका तलातुम (ईर्ष्याका वेग) हुआ तो सारी ख़ुदाईको रक़ीब (प्रतिद्वन्द्वी) समझा। यहाँ तक कि आप अपनेसे बदगुमान हो गए।....बारहा तेग़े-अब्रू (भवें-रूपी तलवार)से शहीद हुए और बारहा एक ठोकरसे जी उठे। गोया ज़िन्दगी एक पैरहन (वस्त्र) था कि जब चाहा उतार दिया और जब चाहा पहन लिया। मैदाने-क़यामतमें अक्सर गुज़र हुआ। बहिश्त व दोज़ख़की अक्सर सैर की। बादानोशी (शराब पीने)-पर तो ख़ुमके ख़ुम लुंढ़ा दिए और फिर भी सैर (सन्तुष्ट) न हुए।....

कुफ़्रसे मानूस और ईमानसे बेज़ार रहे।....ख़ुदासे शोख़ियाँ कीं।....२० वर्षकी उम्रसे ४० वर्षतक तेलीके बैलकी तरह इसी एक चक्करमें फिरते रहे और अपने नज़दीक सारा जहान तय कर चुके। जब आँख खुली तो मालूम हुआ, कि जहाँसे चले थे, अबतक वहीं हैं।

"निगाह उठाकर देखा तो दाएँ-बाएँ, आगे-पीछे एक मैदानेवसीअ़ (विस्तृतक्षेत्र) नज़र आया, जिसमें बेशुमार राहें चारों तरफ़ खुली हुई थीं और ख़यालके लिए कहीं रास्ता तङ्ग न था। जीमें आया कि क़दम आगे बढ़ायें और उस मैदानकी सैर करें। मगर जो क़दम २० वर्षसे एक चालसे दूसरी चाल न चले हों और जिनकी दौड़ गज़ दो गज़ ज़मीनमें महदूद रही हो, उनसे इस वसीअ़ मैदानमें काम लेना आसान नहीं था। इसके सिवा २० बरस बेकार और निकम्मी गर्दिशमें हाथ-पाँव चूर हो गए थे और ताक़ते-रफ़्तार जवाब दे चुकी थी। लेकिन पाँवमें चक्कर था, इसलिए निचला बैठना भी दुश्वार था।....ज़मानेका नया ठाठ देखकर पुरानी शायरीसे दिल सैर हो गया था और झूठे ढकोसले बाँधनेसे शर्म आने लगी थी। न यारोंके उभारोंसे दिल बढ़ता था, न साथियोंकी रीससे कुछ जोश आता था।

"क़ौमकी हालत तबाह है, अज़ीज़ ज़लील हो गए हैं। शरीफ़ ख़ाकमें मिल गए हैं। इल्मका ख़ात्मा हो चुका है। दीनका सिर्फ़ नाम बाक़ी है। इख़लाक़ बिलकुल बिगड़ गए हैं, और बिगड़ते जाते हैं। तअ़ास्सुबकी घन-घोर घटा तमाम क़ौमपर छाई हुई है। रस्मोरिवाजकी बेड़ी एक-एकके पाँवोंमें पड़ी है। जहालत और तक़लीद सबकी गरदनपर सवार है।"

इसी तरहके विचारोंमें डूबकर हालीने पुराने ढर्रेकी शायरीको प्रणाम किया और उसे एक नवीन रूप देकर एक महान् आदर्श उपस्थित किया।[१] हालीने जो मुसद्दस लिखा (जिसका नमूना आगे दिया गया

---

[१] हालीसे पूर्ववर्त्ती शायर नज़ीरने नज़्म (मुसद्दस) लिखकर और अनीस, दबीरने मर्सिये लिखकर यह साबित कर दिया था कि शायरीका

है) उसका परिणाम आज दृष्टिगोचर है। सैकड़ों शायर अपना रङ्ग बदलकर इसी रङ्गमें रङ्ग गए। और आज जो मुसलमानोंमें जागृति दीख पड़ती है उसके श्रेयके प्रथम अधिकारी हाली ही हैं।

अर्जुनको रण-क्षेत्रमें मोह-तन्द्रासे जगानेमें जो कार्य गीताने किया, वही कार्य मुसलमानोंके लिए 'मुसद्दसे हाली'ने किया। ग़ालिबकी जीवित अवस्थामें उनके शिष्योंमें हालीका प्रमुख स्थान नहीं था, न इनसे ग़ालिब-को कुछ विशेष आशाएँ ही थीं। पर, आगे चलकर हालीने ख़ूब ख्याति पाई और उस्तादका नाम भी ख़ूब चमकाया। हालीने गुरु-दक्षिणा-स्वरूप बहुत परिश्रम करके 'यादगारे ग़ालिब' लिखी है।

यद्यपि काव्यकी दृष्टिसे हाली उच्च श्रेणीके कवियोंमें नहीं आते हैं, परन्तु उन्होंने क्रान्तिका चिराग़ लेकर एक नवीन मार्ग खोज निकाला है और अपने पीछे लोगोंको चलनेके लिए उत्साह दिलाकर वे स्वयं अनायास आगे निकल गए हैं।

हाली सन् १८४०में पानीपतमें पैदा हुए और ७६ वर्षकी आयु पाकर सन् १९१६में पानीपतमें समाधि पाई। हालीके कई ग्रन्थ भिन्न-भिन्न भाषाओं-में अनूदित हो चुके हैं। 'मनाजाते बेवा'का तो १० भाषाओंमें (संस्कृतमें भी) अनुवाद हुआ है। इनकी रुबाइयोंका अनुवाद अङ्गरेजीमें भी छप चुका है। इनके ग्रन्थ विश्वविद्यालयोंमें पढ़ाए जाते हैं। सन् १९०४में गवर्नमेंटने इन्हें 'शम्स उल उलेमा' जैसी प्रतिष्ठित पदवीसे विभूषित किया था।

मुसद्दसके २९४ बन्दोंमेंसे ३३ बन्द यहाँ इस तरहसे दिए जा रहे हैं, जिससे हर क़ौम लाभ उठा सके और क्रमानुसार भी मालूम दे।

क्षेत्र विस्तृत है। इसमें अपने देशकी घटनाओंका उल्लेख किया जा सकता है, युद्धका सजीव वर्णन किया जा सकता है। अतः आज़ाद, हाली, इक़बाल, चकबस्तने भी अपने विचार प्रकट करनेके लिए नज़्मको ही चुना और उसमें कमाल पैदा करके छोड़ा।

मुसद्दस

किसीने यह बुक़रातसे जाके पूछा—
'मरज़ तेरे नज़दीक मुहलक[1] हैं क्या-क्या ?'
कहा—'सुन, जहाँमें नहीं कोई ऐसा,
कि जिसकी दवा हक़[2]ने की हो न पैदा ।।
मगर वह मरज़ जिसको आसान समझें ।
कहे जो तबीब उसको हज़यान[3] समझें ।।

सबब या अलामत गर उनको सुझाएँ,
तो तशख़ीसमें सौ निकालें ख़ताएँ ।
दवा और परहेज़से जी चुराएँ,
यूँही रफ़्ता-रफ़्ता मरज़को बढ़ाएँ ।।
तबीबोंसे[4] हरगिज़ न मानूस[5] हों वे ।
यहाँ तक, कि जीनेसे मायूस[6] हों वे ।।'

यही हाल दुनियामें उस क़ौमका है,
भँवरमें जहाज़ आके जिसका घिरा है ।
किनारा है दूर और तूफ़ाँ बपा है,
गुमाँ है यह हरदम, कि अब डूबता है ।।
नहीं लेते करवट मगर अहले-किश्ती ।
पड़े सोते हैं बेख़बर अहले-किश्ती ।।

आगे क़ौमकी तन्द्राका वर्णन करते हुए उन्हें सचेत होनेके लिए कहते हैं :—

---

[1] घातक; [2] ईश्वरने; [3] व्यर्थ बकवास; [4] हकीमोंसे, चिकित्सकोंसे ।
[5] हिलें-मिलें, (भावार्थ—हकीमोंका कहा न मानें); [6] निराश ।

ग़नीमत है सेहत अलालतसे[1] पहले,
फ़राग़त[2] मशाग़लकी[3] कसरतसे पहले।
जवानी, बुढ़ापेकी ज़हमतसे[4] पहले,
अक़ामत[5] मुसाफ़िरकी रहलतसे[6] पहले॥
फ़क़ीरीसे पहले ग़नीमत है दौलत।
जो करना है करलो कि थोड़ी है मुहलत॥

भूतकालीन बुज़ुर्गोंकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं :—

किफ़ायत जहाँ चाहिए, वाँ किफ़ायत,
सख़ावत[7] जहाँ चाहिए, वाँ सख़ावत।
जँची और तुली दुश्मनी और मुहब्बत,
न बे-वजह उल्फ़त, न बे-वजह नफ़रत॥
झुका हक़से जो, झुक गए उससे वोह भी।
रुका हक़से जो, रुक गए उससे वोह भी॥

वर्त्तमान दशाका वर्णन करते हुए आपने फ़र्माया है :—

वोह संगीं महल और वोह उनकी सफ़ाई,
जमी जिनके खण्डरपे है आज काई।
वोह मरक़द[8] कि गुम्बद थे जिनके तिलाई[9],
वोह माबद[10] जहाँ जल्वागर थी ख़ुदाई॥
ज़मानेने गो उनकी बरकत उठाली।
नहीं कोई वीराना पर उनसे ख़ाली॥

× × ×

[1]बीमारीसे; [2]फ़ुर्सत; [3]कार्याधिकतासे।
[4]परेशानीसे, मुसीबतसे; [5]स्थिरता; [6]मृत्युसे; [7]दान।
[8]मक़बरा; [9]स्वर्णमय; [10]उपासना-गृह।

बुरे उनपै वक़्त आके पड़ने लगे अब,
वोह दुनियामें बसके उजड़ने लगे अब।
भरे उनके मेले बिछुड़ने लगे अब,
बने थे वोह जैसे, बिगड़ने लगे अब॥
हरी खेतियाँ जल गईं लहलहाकर।
घटा खुल गई, सारे आलमपै छाकर॥

× × ×

वगर्ना हमारी रगोंमें, लहूमें,
हमारे इरादोंमें औ जुस्तजूमें।
दिलोंमें, जबानोंमें और गुफ़्तगूमें,
तबीयतमें, फ़ितरतमें, आदतमें, खू में॥
नहीं कोई जर्रा नजाबतका[१] बाक़ी।
अगर हो किसीमें तो है इत्तफ़ाक़ी[२]॥

हमारी हर इक बातमें सिफ़लापन[३] है
कमीनोंसे बदतर हमारा चलन है।
लगा नामेआबाको[४] हमसे गहन है,
हमारा क़दम नङ्गे अहले वतन है॥
बुजुर्गों की तौक़ीर[५] खोई है हमने।
अरबकी शराफ़त डुबोई है हमने॥

---

[१] भलमनसाहतका, भद्रताका।

[२] संयोगवश।

[३] कमीनापन।

[४] बुजुर्गोंके नामको।

[५] इज़्ज़त।

न क़ौमोंमें इज्ज़त न जलसोंमें वक़अत,
न अपनोंसे उल्फ़त न ग़ैरोंसे मिल्लत।
मिज़ाजोंमें सुस्ती, दिमाग़ोंमें नख़वत[1],
ख़यालोंमें पस्ती, कमालोंमें नफ़रत॥
अदावत निहाँ[2] दोस्ती आश्कारा[3]।
ग़रज़की तवाज़ा[4] ग़रज़का मुदारा[5]॥

न अहलेहुकूमत[6] के हमराज़[7] हैं हम,
न दरबारियोंमें सरअफ़राज़[8] हैं हम।
न इल्मोंमें शायाने-एज़ाज़[9] हैं हम,
न सनअ़तमें[10] हुरमतमें मुमताज़[11] हैं हम॥
न रखते हैं कुछ मंज़िलत नौकरीमें।
न हिस्सा हमारा है सौदागरीमें॥

तनज़्ज़ुलने[12] की है बुरी गत हमारी,
बहुत दूर पहुँची है नक़बत[13] हमारी।
गई गुज़री दुनियासे इज़्ज़त हमारी,
नहीं कुछ उभरनेकी सूरत हमारी॥
पड़े हैं एक उम्मीदके हम सहारे।
तवक़्क़ो पै जन्नतकी जीते हैं सारे॥

* * *

---

[1] घमंड; [2] गुप्त; [3] प्रगट; [4] सत्कार।
[5] आवभगत; [6] शासनसत्ताकी [7] विश्वस्त।
[8] उच्चपनासीन; [9] आदरके योग्य; [10] कारीगरीमें।
[11] श्रेष्ठ; [12] गिरावटने।
[13] ग़रीबी, दुर्दशा।

वोह बेमोल पूंजी कि है अस्ल दौलत,
वोह शाइस्ता लोगोंका गंजेसआ़दत[1]।
वोह आसूदा क़ौमोंका रासुलबज़ाअ़त[2],
वोह दौलत कि है 'वक़्त' जिससे इबारत॥
नहीं उसकी वक़अ़त नज़रमें हमारी।
यूँही मुफ़्त जाती है बरबाद सारी॥

अगर साँस दिन-रातके सब गिनें हम,
तो निकलेंगे अन्फ़ास[3] ऐसे बहुत कम।
कि हो जिनमें कलके लिए कुछ फ़राहम[4],
यूँही गुज़रे जाते हैं दिन रात पैहम॥
नहीं कोई गोया ख़बरदार हममें।
कि यह साँस आख़िर है अब कोई दममें॥

वोह क़ौमें जो सब राहें तय कर चुकी हैं,
ज़ख़ीरे हर इक जिन्सके भर चुकी हैं।
हर इक बोझ बार अपने सर धर चुकी हैं,
हुईं तब हैं ज़िन्दा, कि जब मर चुकी हैं॥
इसी तरह राहेतलबमें है पोया[5]।
बहुत दूर अभी उनको जाना है गोया॥

---

[1] नेकीका कोष।
[2] स्थायी सम्पत्ति।
[3] स्वाँस।
[4] जमा।
[5] वोह चाल जो न दौड़में शामिल हो न धीरे चलनेमें।

किसी वक़्त जी भरके सोते नहीं वोह,
कभी सैर मेहनतसे होते नहीं वोह।
बज़ाअ़त[1] को अपनी डुबोते नहीं वोह,
कोई लमहा बेकार खोते नहीं वोह॥
न चलनेसे थकते, न उकताते हैं वोह।
बहुत बढ़ गए और बढ़े जाते हैं वोह॥

मगर हम, कि अब तक जहाँ थे, वहीं हैं,
जमावातकी[2] तरह बारेज़मीं[3] हैं।
जहाँमें हैं ऐसे, कि गोया नहीं हैं,
ज़मानेसे कुछ ऐसे फ़ारिग़नशीं हैं॥
कि गोया ज़रूरी था जो काम करना।
वोह सब कर चुके, एक बाक़ी है मरना॥

* * *

जो गिरते हैं· गिरकर सम्हल जाते हैं वोह,
पड़े जद तो बचकर निकल जाते हैं वोह।
हर इक साँचेमें जाके ढल जाते हैं वोह,
जहाँ रङ्ग बदला, बदल जाते हैं वोह॥
हर इक वक़्तका मक़्तज़ी[4] जानते हैं।
ज़मानेका तेवर वोह पहचानते हैं॥

× × ×

---

[1] पूँजी, धन।

[2] बेजान चीज़ोंकी।

[3] पृथ्वीके बोझ।

[4] मांग, मूल्य, उपयोग।

ज़मानेका दिन-रात है ये इशारा,
कि है आश्तीमें[1] मेरी याँ गुज़ारा।
नहीं पैरवी जिनको मेरी गवारा,
मुझे उनसे करना पड़ेगा किनारा॥
सदा एक ही रुख़ नहीं नाव चलती।
चलो तुम उधरको, हवा है जिधरको॥

* * *

मशक़्क़तको, मेहनतको जो आर समझें,
हुनर और पेशेको जो ख़्वार समझें।
तिजारतको, खेतीको दुश्वार समझें,
फ़िरङ्गीके पैसेको, मुरदार समझें॥
तन आसानियाँ चाहें, और आबरू भी।
वोह क़ौम आज डूबेगी गर कल न डूबी॥

* * *

अन्य क़ौमों की उन्नति बताते हुए:—
उरूज[2] उनका जो तुम अयाँ देखते हो,
जहाँमें उन्हें कामराँ[3] देखते हो॥
मुती[4] उनका सारा जहाँ देखते हो,
उन्हें बरतरअज़[5] आस्माँ देखते हो॥
समर[6] हैं यह उनकी जवाँमर्दियोंके।
नतीजे हैं आपसमें हमदर्दियोंके॥

---

[1] प्रेम-सङ्गठन; [2] उन्नति।
[3] सफल; [4] आधीन।
[5] आकाशसे ऊँचा; [6] फल।

तत्कालीन शायरोंका उल्लेख करते हुए आपने फ़र्माया है :—

वोह शेर और क़सायदका[1] नापाक दफ़्तर,
अफ़ूनतमें[2] सण्डाससे जो है बदतर।
ज़मीं जिससे है ज़लज़लेमें बराबर,
मलिक[3] जिससे शर्माते हैं आस्माँपर॥
हुआ इल्मो दीं जिससे ताराज[4] सारा।
वोह इल्मोंमें इल्मे-अदब है हमारा॥

बुरा शेर कहनेकी गर कुछ सज़ा है,
अबस[5] झूठ बकना अगर नारवा[6] है।
तो वोह महकमा, जिनका क़ाज़ी ख़ुदा है,
मुक़र्रर जहाँ नेकोबदकी सज़ा है॥
गुनहगार वाँ छूट जाएँगे सारे।
जहन्नुमको भर देंगे शायर हमारे॥

ज़मानेमें जितने क़ुली और नफ़र[7] हैं,
कमाईसे अपनी वो सब बहरावर हैं।
गवैये अमीरोंके नूरे-नज़र हैं,
डफ़ाली भी ले आते कुछ माँगकर हैं॥
मगर इस तपेदिक़में जो मुब्तिला है।
ख़ुदा जाने वोह किस मरज़की दवा है॥

---

[1] क़सीदोंका; [2] दुर्गन्धके।
[3] देवता; [4] नष्ट।
[5] व्यर्थ; [6] अनुचित।
[7] नौकर।

जो सक़्क़े न हों, जीसे जाएँ गुज़र सब,
हो मैला जहाँ, गुम हों धोबी अगर सब।
बने दमपै, गर शहर छोड़ें नफ़र सब,
जो थुड़ जाएँ मेहतर, तो गन्दे हों घर सब।।
पै कर जाएँ हिजरत[1] जो शायर हमारे।
कहें मिलके 'ख़सकम जहाँ पाक'[2] सारे।।

तवायफ़को अज़बर[3] हैं दीवान उनके,
गवैयोंपै बेहद हैं अहसान उनके।
निकलते हैं तकियोंमें[4] अरमान उनके,
सनाख़्वाँ[5] हैं इब्लीसो[6] शैतान उनके।।
कि अक़्लोंपै पर्दे दिए डाल उन्होंने।
हमें कर दिया फ़ारिग़-उल्बाल[7] उन्होंने।।

तत्कालीन स्थिति :—

शरीफ़ोंकी औलाद बे-तरबियत है,
तबाह उनकी हालत, बुरी उनकी गत है।
किसीको कबूतर उड़ानेकी लत है,
किसीको बटेरें लड़ानेकी धत है।
चरस और गाँजेपै शैदा है कोई।
मदक और चण्डूका रसिया है कोई।।

---

[1] प्रवास।
[2] गंदगी दूर हुई, वातावरण शुद्ध हुआ; [3] कंठस्थ।
[4] ऐसी क़ब्र जहाँ गाना बजाना होता रहे।
[5] प्रशंसक; [6] शैतान।
[7] बेकार, निठल्ला।

हुई उनकी बचपनमें यूं पासबानी[1],
कि क़ैदीकी जैसे कटे जिन्दगानी।
लगी होने जब कुछ समझ-बूझ स्यानी,
चढ़ी भूतकी तरह सरपर जवानी॥
बस अब घरमें दुश्वार थमना है उनका।
अखाड़ोंमें, तकियोंमें रहना है उनका॥

नशेमें मये-इश्क़के चूर हैं वे,
सफ़े[2] फ़ौजेमिज़गाँमें महसूर[3] हैं वे।
ग़मे चश्मो अबरूमें रंजूर हैं वे,
बहुत हालसे दिलके मजबूर हैं वे॥
करें क्या, कि है इश्क़ तबीयतमें उनकी।
हरारत भरी है तबीयतमें उनकी॥

अगर माँ है दुखिया, तो उनकी बलासे,
अपाहज हैं बाबा तो उनकी बलासे।
जो है घरमें फ़ाक़ा, तो उनकी बलासे,
जो मरता है कुनबा, तो उनकी बलासे॥
जिन्होंने लगाई हो लौ दिलरुबासे।
ग़रज़ फिर उन्हें क्या रही मासिवासे?

न गालीसे, दुश्मनसे जो जी चुराएँ,
न जूतीसे पैज़ारसे हिचकिचाएँ।

---

[1] देख-रेख।

[2] कटाक्ष-सैनिकोंकी पक्ति में।

[3] घिरे हुए।

जो मेलोंमें जाएँ, तो लुचपन दिखाएँ,
जो महफ़िलमें बैठें, तो फ़ितने उठाएँ ॥
लरज़ते हैं ओबाश[1] उनकी हँसीसे।
गुरेज़ाँ[2] हैं रिन्द[3] उनकी हमसायगीसे[4] ॥

जहाज़ एक गरदाबमें फँस रहा है,
पड़ा जिससे जोखोंमें छोटा-बड़ा है।
निकलनेका रस्ता न बचनेकी जा है,
कोई उनमें सोता, कोई जागता है ॥
जो सोते हैं वोह मस्तेख्वाबे[5] गिराँ हैं।
जो बेदार[6] हैं उनपै खन्दाज़नाँ[7] हैं ॥

कोई उनसे पूछे कि ऐ होशवालो!
किस उम्मीदपर तुम खड़े हँस रहे हो?
बुरा वक़्त बेड़ेपै आनेको है जो,
न छोड़ेगा सोतोंको और जागतोंको ॥
बचोगे न तुम और साथी तुम्हारे।
अगर नाव डूबी तो डूबोगे सारे ॥

---

[1] कमीने, लुच्चे।
[2] भागते।
[3] शराबी।
[4] पड़ोससे, सङ्गतसे।
[5] घोर स्वप्नमें लीन।
[6] जागते।
[7] हँस रहे।

ज़मीमा

१६२ बन्दोंमेंसे केवल ८ बन्द महज़ नमूनेके तौरपर पेश हैं :—

बस ऐ ना उम्मीदी ! न यूँ दिल बुझा तू ,
झलक ऐ उमीद ! अपनी आख़िर दिखा तू ।
ज़रा ना-उमीदोंको ढारस बँधा तू ,
फ़सुर्दा[1] दिलोंके दिल आकर बढ़ा तू ॥
तेरे दमसे मुर्दों में जानें पड़ी हैं ।
जली खेतियाँ तूने सर-सब्ज़ की हैं ॥

× × ×

बहुत डूबतोंको तिराया है तूने ,
बिगड़तोंको अक्सर बनाया है तूने ।
उखड़ते दिलोंको जमाया है तूने ,
उजड़ते घरोंको बसाया है तूने ॥
बहुत तूने पस्तोंको[2] बाला[3] किया है ।
अँधेरेमें अक्सर उजाला किया है ॥

× × ×

बहुत हैं अभी, जिनमें ग़ैरत है बाक़ी ,
दिलेरी नहीं पर हमैय्यत[4] है बाक़ी !
फ़क़ीरोमें भी बूएसरवत[5] है बाक़ी ,
तिहीदस्त[6] हैं पर मुरव्वत[7] है बाक़ी ॥

---

[1] बुझे हुए; [2] गिरे हुओंको; [3] उठाया; [4] शर्म ।
[5] वैभव, सम्पन्नता; [6] खाली हाथ, निर्धन; [7] लिहाज़ ।

मिटे पर भी पिन्दारे[1] हस्ती वही है।
मकाँ गर्म है, आग गो बुझ गई है।।

समझते हैं इज्जतको दौलतसे बेहतर,
फ़क़ीरीको ज़िल्लतकी शुहरतसे बेहतर।
गलीमें क़नाअ़तको[2] सरवतसे* बेहतर।
उन्हें मौत है बारे-मिन्नतसे[3] बेहतर।।
सर उनका नहीं दर-बदर झुकनेवाला।
वोह खुद पस्त[4] हैं, पर निगाहें हैं बाला[5]।।

× × ×

अयाँ[6] सब यह अहवाल[7] बीमारका है,
कि तेल उसमें जो कुछ था, सब जल चुका है।
मुआफ़िक़ दवा है न कोई गिज़ा है,
इज़ाले-बदन[8] है जबाले[9] क़बा[10] है।।
मगर है अभी यह दिया टिमटिमाता।
बुझा जो कि है याँ, नज़र सबको आता।।

× × ×

जो चाहें पलट दें यही सबकी काया,
कि एक-एकने मुल्कोंको है जगाया।

---

[1] आत्माभिमान; [2] सन्तोष रूपी कमली को।
*धन-वैभव की अधिकतासे श्रेष्ठ समझते हैं।
[3] खुशामद या निवेदनके बोझसे; [4] छोटे।
[5] ऊँची; [6] प्रगट; [7] अवस्था; [8] उपहासास्पद; [9] चीथड़ा।
[10] लिबास।

अकेलोंने हैं क़ाफ़िलोंको बचाया,
जहाज़ोंको है ज़ोरे कूने[1] तिराया॥
यूँही काम दुनियाका चलता रहा है!
दियेसे दिया यूँ ही जलता रहा है॥

× × ×

मगर बैठ रहनेसे चलना है बेहतर,
कि है अहले-हिम्मतका अल्लाह यावर।
जो ठण्डकमें चलना न आया मयस्सर,
तो पहुँचेंगे हम धूप खा-खाके सरपर॥
यह तकलीफ़ ओ राहत है सब इत्तफ़ाक़ी।
चलो अब भी है वक़्त चलनेका बाक़ी॥

बशरको है लाज़िम कि हिम्मत न हारे,
जहाँतक हो काम आप अपने सँवारे।
ख़ुदाके सिवा छोड़ दे सब सहारे,
कि हैं आरज़ी ज़ोर, कमज़ोर सारे॥
अड़े वक़्त तुम दाएँ-बाएँ न झाँको।
सदा अपनी गाड़ीको तुम आप हाँको॥

कुछ फुटकर रचनाएँ

बैठे बेफ़िक्र क्या हो, हमवतनो!
उठो, अहले वतनके दोस्त बनो॥

---

[1] संगठित शक्तिने।

मर्द हो तो किसीके काम आओ।
वर्ना खाओ, पियो, चले जाओ ॥

* * *

जागनेवालो ! ग़ाफ़िलोंको जगाओ।
तैरनेवालो ! डूबतोंको तिराओ ॥

तुम अगर हाथ-पाँव रखते हो।
लँगड़े-लूलोंको कुछ सहारा दो ॥

* * *

होगी न क़द्र जानकी क़ुर्बां किए बग़ैर।
दाम उठेंगे न जिन्सके अर्जां किए बग़ैर ॥

* * *

अपनी नज़रमें भी याँ अब तो हक़ीर हैं हम।
बेग़ैरतीकी यारो ! अब ज़िन्दगानियाँ हैं ॥

खेतोंको दे लो पानी अब बह रही है गङ्गा।
कुछ कर लो नौजवानो ! उठती जवानियाँ हैं ॥

× × ×

मुसीबतका इक-इकसे अहवाल कहना।
मुसीबतसे है यह मुसीबत ज़ियादा ॥

कहीं दोस्त तुमसे न हो जाएँ बदज़न।
जताओ न अपनी मुहब्बत ज़ियादा ॥

जो चाहो फ़क़ीरीमें इज़्ज़तसे रहना।
न रक्खो अमीरोंसे मिल्लत ज़ियादा ॥

फ़रिश्तेसे बेहतर है इन्सान बनना।
मगर इसमें पड़ती है मेहनत ज़ियादा ॥

* * *

नफ़ासत भरी है तबीयतमें उनकी ।
नज़ाकत, सो दाख़िल है आदतमें उनकी ।।
दवाओंमें मुश्क उनके उठता है ढेरों ।
वोह कपड़ोंमें इत्र अपने मलते हैं सेरों ।।

* * *

ऐ माओ ! बहनो ! बेटियो ! दुनियाकी ज़ीनत तुमसे है ।
मुल्कोंकी बस्ती हो तुम्हीं, क़ौमोंकी इज़्ज़त तुमसे है ।।
तुम घरकी हो शहज़ादियाँ, शहरोंकी हो आबादियाँ ।
ग़मगीं दिलोंकी शादियाँ, दुख-सुखमें राहत तुमसे है ।।

नेकीकी तुम तस्वीर हो, इफ़्फ़तकी[1] तुम तदबीर हो ।
हो दीनकी तुम पासबाँ,[2] ईमाँ सलामत तुमसे है ।।
मर्दोंमें सतवाले थे जो, सत् अपना बैठे कबके खो ।
दुनियामें ऐ सतवन्तियो, ले-देके अब सत् तुमसे है ।।

मूनिस[3] हो ख़ाविन्दोंकी तुम, ग़मख़्वार फ़र्ज़न्दोंकी तुम ।
तुम बिन है घर वीरान सब, घर भरमें बरकत तुमसे है ।।
तुम आस हो बीमारकी, ढारस हो तुम बेकारकी ।
दौलत हो तुम नादारकी,[4] उसरतमें[5] इशरत[6] तुमसे है ।।

२० जुलाई १९४४

[1] कुमार्गसे बचानेकी; [2] रक्षक; [3] सहायक; [4] निर्धनकी;
[5] निर्धनता; [6] आराम ।

११

सैयद अकबरहुसेन 'अकबर' इलाहाबादी

[सन् १८४६ से १९२१ ई० तक]

जिस तरह अकबर बादशाह मुस्लिम बादशाहोंमें एक आदर्श, तेजस्वी, प्रतापी, यशस्वी और ख्याति-प्राप्त शासक हुआ है, जिस प्रकार वह अपने शासन-सञ्चालन और व्यक्तित्वका एक पृथक 'स्टैण्डर्ड' स्थापित कर गया है, उसी तरह 'अकबर' इलाहाबादी भी उर्दू-शायरीमें हास्य-रसके प्रथम आविष्कारक हैं। गुलो-बुलबुलके झमेलेमें ही उन्होंने शायरी सीखी। कलेजा थामकर हुस्न और इश्ककी पुरअलम कहानियाँ सुनीं। आशियाँ और क़फ़समें बन्द रहनेको उनके लिए सामान प्रस्तुत हुए। साक़ी और मयखानेने उन्हें अपनी ओर बर्बस खींचना चाहा। पर वह दामन बचाकर साफ़ निकल गए। बक़ौल 'असग़र' :—

दैरो[1] हरम[2] भी कूचये-जानामें[3] आये थे।
पर शुक्र है, कि बढ़ गये दामन बचाके हम॥

जिस तरह अपने पूर्ववर्त्ती शायरोंके सुन्दरसे सुन्दर कलाम होनेपर भी उनमें शृङ्गार-रसकी अधिकता और समयकी आवश्यकताओंसे कोरी होनेके कारण हालीने शायरीकी दिशा ही बदल दी, उसी तरह अकबरने भी अपना एक पृथक ही दृष्टिकोण स्थापित किया। अकबरके पूर्ववर्त्ती शायर विरहमें जहाँ आँसूके दरिया बहाते थे :—

---

[1] मन्दिर; [2] मस्जिद; [3] प्रेयसीके मार्गमें (अभिप्राय है प्रेम-मार्गमें)।

ऐसा नहीं जो यारकी लावे ख़बर मुझे।
ऐ सैले[1] अश्क तू ही बहा ले उधर मुझे॥

वहाँ अकबरने इस तरह हास्यकी निर्मल धारा बहाई :—

दिल लिया है हमसे जिसने दिल्लगीके वास्ते।
क्या तअ़ाज्जुब है, जो तफ़रीहन हमारी जान ले॥

जहाँ मेंहदीके पत्तेपर लोग सन्देश भेजते थे :—

बर्गे-हिनापै[2] लिक्खेंगे हम दर्दे दिलकी बात।
शायद कि लगे रफ़्ता-रफ़्ता गुल-बदनके हात॥

वहाँ अकबरने लिखा :—

क़ासिद मिला जब उनसे, वे खेलते थे पोलो।
ख़त रख लिया यह कहकर, अच्छा सलाम बोलो॥

जब दूसरे शायर ग़मको कलेजा खिलाते थे, जङ्गलोंमें भटकते फिरते थे, जीनेसे मरना बेहतर समझते थे, सभीपर अकर्मण्यता छाई हुई थी, तब अकबरने अपने जुदागाना रङ्ग (हास्य-रस)का आविष्कार करके बता दिया, कि हर समय मनहूस सूरत बनाये रखना ठीक नहीं। अगर मुहर्रममें रोना ज़रूरी है, तो होलीमें हँसना भी आवश्यक है। मगर वह हँसी बेहयाओं या शोहदोंकी तरह नहीं, जिससे सभ्यता और बुद्धि भी दूर भागे। हास्य ऐसा हो, कि माँ-बहन भी आनन्द ले सकें, शत्रु भी बिना हँसे न रह सके। जो कहना है वह कह भी दिया जाय, मगर ओठों-पर हँसीकी गुलकारियाँ बनी रहें।

हाली मौलवी थे, अकबर जज। हाली मौलवी होते हुए भी अङ्ग-रेज़ी शिक्षाके हिमायती थे। वे कौंसिलों और सरकारी नौकरियोंमें

---

[1] आँसुओंकी बाढ़; [2] मेंहदीके पत्तेपर।

अधिकसे अधिक मुसलमान देखना चाहते थे। अकबर जज होते हुए भी इङ्गलिश सभ्यता और शिक्षा-दीक्षाके घोर विरोधी थे। कौंसिलों और पदवियोंको क़ौमके लिए घातक समझते थे। हाली और अकबर दोनों ही मुस्लिम संस्कृतिके घोर पक्षपाती थे। पर हाली सर सैयद अहमदके एक खास समर्थकोंमेंसे थे। वे अङ्गरेज़ी राज्यसे जो भी मिले, छीन लेनेके पक्षमें थे। अकबर मुस्लिम संस्कृतिके लिए अङ्गरेज़ी सभ्यताको श्राप समझते थे। वे इसी कारण सैयद अहमदके घोर विरोधियोंमेंसे थे। हाली जिन्ना थे, तो अकबर अब्बुल कलाम आज़ाद। भलाई दोनों चाहते थे, पर दृष्टिकोणमें ठीक इतना ही अन्तर था। जहाजको तूफ़ानमें घिरा देखकर दोनोंने ही आवाज़ बुलन्द की। मगर हालीने सिर्फ़ मुसलमानोंको सचेत करनेके लिए अज़ान दी और अकबरने जहाजके सभी यात्रियोंको सावधान करनेके लिए ढोल पीटा। हालीको दूसरी क़ौमोंसे नफ़रत नही थी, मगर दृष्टि इस्लामकी उन्नतिपर थी। अकबरका दृष्टिकोण व्यापक था।

अकबरने राष्ट्रीयता और हिन्दू-मुस्लिम संस्कृतिके पक्षमें और अभारतीय सभ्यता और शिक्षाके विपक्षमें जिस ढङ्गसे कहा है, उस तरहका कहना अकबरके सिवाय अबतक किसीको नसीब नहीं हुआ। उर्दू-शायरीमें अकबर हास्य-रसके सृष्टा हैं। एक सरकारी नौकर होते हुए भी किस निर्भयतासे उन्होंने हँसी-हँसीमें चोट की है, कि आदमी ओठोंपर तो हँसता है, मगर कलेजा थाम लेता है। काश! वे जजीके बन्धनमें न होकर स्वतंत्र होते तो न जाने कैसे अनमोल मोती छोड़ जाते! उनके रङ्गमें सैकड़ोंने लिखनेकी कोशिश की मगर वह अन्दाज और शोख़िये-बयान कहाँ?

अकबरने हास्य-रसके अतिरिक्त नीति-विषयक भी काफ़ी कहा है। हमने उनका वह कलाम जो काफ़ी विरदे ज़बान है, सङ्कलन न करके कुछ प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध दोनों तरहका किया है। जिससे थोड़ी-बहुत नवीनता

भी रहे और कुछ मशहूर कलाम भी रहे, ताकि जिन्हें याद है वे क़तई यह भी न समझ लें कि हमारी दृष्टि ही उधर न पड़ी या हम उस मज़ाक़से अनभिज्ञ हैं। ५१की क़ैदका ध्यान रखकर ही सब तरहके नमूने देनेका प्रयत्न किया गया है।

अकबर १६ नवम्बर, सन् १८४६में इलाहाबाद ज़िलेके एक गाँवमें उत्पन्न हुए और ९ सितम्बर, १९२१को इलाहाबादमें जन्नत-नशीन हुए। आप ११ वर्षकी आयुमें ही कविता करने लगे थे। सन् १८६९में वे नायब तहसीलदार हुए। सन् १८७३में प्रयाग हाईकोर्टकी परीक्षा पास करके कुछ दिनों वकालत की। १८८०में मुन्सिफ़ हुए। फ़िर सब-जज हुए। वर्षों स्थानापन्न सेशन-जज भी रहे। १८९८में खानबहादुरकी उपाधि भी मिली। मगर सरकारी डिगरियोंको वे मनुष्यताका कलङ्क समझते थे। फ़र्माते हैं :—

नेशनल[1] वक़अतके[2] गुम होनेका है 'अकबर'को ग़म।
ऑफ़िशल इज़्ज़तका उसको कुछ मज़ा मिलता नहीं॥

१९०३में वे पेन्शन लेकर इशरत मन्ज़िल बनवाकर रहने लगे। मगर सांसारिक आपदाओंने इस हँसोड़का भी पीछा न छोड़ा। ७ वर्ष तक मोतियाबिन्दसे पीड़ित रक्खा। १९१०में पत्नी छीन ली, फिर जवान बेटेका सदमा पहुँचाया।

अकबर अत्यन्त ख़ुश-मिज़ाज और हँसोड़ थे। सरकारी अफ़सर होते हुए भी निहायत सादगी-पसन्द और निराभिमानी थे। हर आदमीसे जीसे मिलते। जैसा कि आप हास्य अपनी कविताओंमें बखेरते थे, उसी तरह पारस्परिक बात-चीतमें भी हाज़िर-जवाबी और हँसीका फ़व्वारा छोड़ते थे। एक बार लॉर्ड कर्ज़नने अपने भाषणमें हिन्दुस्तानियोंको

---

[1] राष्ट्रीय; [2] प्रतिष्ठाके।

झूठा कहा । अकबरने अखबारमें पढ़ा तो तत्काल उनके मुँहसे निकला :—

झूठे हैं हम तो आप हैं झूठोंके बादशाह !

एक बार एक सज्जन मिलने आए तो उन्होंने अपना विज़िटिङ्ग कार्ड अकबरके पास भेजते समय नामके आगे पेन्सिलसे बी० ए० और बना दिया । क्योंकि वे कार्ड छप जानेके बाद बी० ए० हुए थे । अकबरने भी उसी कार्डकी पीठपर यह शेर लिखकर भिजवा दिया और मुलाक़ात नहीं की :—

शेख़जी घरसे न निकले और लिखकर दे दिया—
"आप बी० ए० पास हैं तो बन्दा बीबी पास है ॥"

नीतिविषयक:—

रोना है तो इसीका, कोई नहीं किसीका।
दुनिया है और मतलब, मतलब है और अपना॥

*　　　　*　　　　*

अय बरहमन! हमारा-तेरा है एक आलम।
हम ख्वाब देखते हैं, तू देखता है सपना॥

*　　　　*　　　　*

अजलसे[1] वे डरें, जीनेको जो अच्छा समझते हैं।
यहाँ हम चार दिनकी जिन्दगीको क्या समझते हैं?

ऊँचा नीयतका अपनी जीना रखना।
अहबाबसे साफ़ अपना सीना रखना॥

गुस्सा आना तो 'नेचुरल' है 'अकबर'।
लेकिन है शदीद ऐब कीना[2] रखना॥

*　　　　*　　　　*

जो देखी हिस्ट्री इस बातपर कामिल यक़ीं आया।
उसे जीना नहीं आया, जिसे मरना नहीं आया॥

*　　　　*　　　　*

सवाब[3] कहता है मिल जाऊँगा, कर उनकी मदद।
छिपा हुआ मैं ग़रीबोंकी भूख-प्यासमें हूँ॥

*　　　　*　　　　*

---

[1] मृत्युसे; [2] द्वेष, बदलेकी भावना; [3] पुण्य, धर्म।

हर चन्द बगोला मुजतिर[1] है, इक जोश तो उसके अन्दर है।
इक वज्द[2] तो है इक रक़्स[3] तो है, बेचैन सही, बरबाद सही॥

* * *

सकूने[4]क़ल्ब की दौलत कहाँ दुनियाए-फ़ानीमें[5]?
बस इक ग़फ़लत-सी आ जाती है, और वोह भी जवानीमें॥

* * *

गिरे जाते हैं हम ख़ुद अपनी नज़रोंसे, सितम ये है।
बदल जाते तो कुछ रहते, मिटे जाते हैं, ग़म ये है॥

* * *

ख़ुशी बहुत है जहाँमें, हमारे घर न सही।
मलूल क्यों रहें दुनियाके इन्तज़ामसे हम?

* * *

बहरे-हस्तीमें[6] हूँ मिसाले-हुबाब[7]।
मिट ही जाता हूँ, जब उभरता हूँ॥

* * *

अपनी मिनक़ारोंसे हल्क़ा कस रहे हैं जालका।
तायरोंपर[8] सहर[9] है, सैयादके इक़बालका॥

* * *

---

[1] परेशान; [2] तन्मयता; [3] नाच; [4] हृदयकी शान्ति, सुख-चैन; [5] असार संसारमें; [6] जीवन रूपी दरियामें; [7] बुलबुकी नाईं; [8] पक्षियों; [9] जादू।

हकीम और वैद यकसाँ हैं, अगर तशख़ीस अच्छी हो।
हमें सेहतसे मतलब है बनफ़्शा हो, या तुलसी हो॥

* * *

हास्य-रसके भी कुछ नमूने हाज़िर हैं :—

तमाशा देखिये बिजलीका, मग़रिब[1] और मशरिक़में[2]।
कलोंमें है वहाँ दाखिल, यहाँ मजहबपै गिरती है॥

* * *

तिफ़्लमें[3] बू आए क्या, माँ-बापके अतवारकी।
दूध तो डिब्बेका है, तालीम है सरकारकी॥

* * *

कर दिया 'कर्ज़न'ने जन, मर्दों की सूरत देखिये।
आबरू चेहरेकी सब, फ़ैशन बनाकर पोंछ ली॥

* * *

मग़रबी ज़ौक़[4] है, और वज़हकी पाबन्दी भी।
ऊँटपर चढ़के थियेटरको चले हैं हज़रत॥

* * *

जो जिसको मुनासिब था गरदूँने[5] किया पैदा।
यारोंके लिए ओहदे, चिड़ियोंके लिए फन्दे॥

* * *

---

[1] पश्चिम (यूरोप); [2] पूरबमें (भारतमें); [3] बालकमें; [4] शौक़; [5] आकाशने।

पाकर ख़िताब नाचका भी ज़ौक़[1] हो गया।
'सर' हो गये, तो 'बॉल'का भी शौक़ हो गया॥

* * *

बोला चपरासी जो मैं पहुँचा ब-उम्मीदे सलाम—
"फाँकिये ख़ाक आप भी, साहब हवा खाने गये"॥

* * *

ख़ुदाकी राहमें अब रेल चल गई 'अकबर'!
जो जान देना हो अंजनसे कट मरो इक दिन॥

* * *

क्या ग़नीमत नहीं ये आज़ादी?
साँस लेते हैं, बात करते हैं!!

* * *

तङ्ग इस दुनियासे दिल दौरेफ़लकमें आगया।
जिस जगह मैंने बनाया घर, सड़कमें आगया॥

पुरानी रौशनीमें औ नईमें, फ़र्क़ इतना है।
उसे किश्ती नहीं मिलती, इसे साहिल[2] नहीं मिलता॥

* * *

दिलमें अब नूरे-ख़ुदाके दिन गये।
हड्डियोंमें फ़ॉस्फ़ोरस देखिये॥

* * *

[1] शौक़; [2] किनारा।

मेरी नसीहतोंको सुनकर वो शोख़ बोला—
"नेटिवकी क्या सनद है, साहब कहे तो मानूं ॥"

* * *

नूरे-इस्लामने समझा था मुनासिब पर्दा।
शम्अ-ख़ामोशको[1] फ़ानूसकी हाजत क्या है ?

* * *

मेरे सय्यादकी तालीमकी है धूम गुलशनमें।
यहाँ जो आज फँसता है, वो कल सैयाद होता है ॥

* * *

बे-परदा नज़र आईं, जो कल चन्द बीबियाँ,
'अकबर' ज़मींमें ग़ैरते क़ौमीसे गड़ गया।
पूछा जो उनसे—"आपका परदा कहाँ गया ?"
कहने लगीं, कि "अक़्लपे मरदों की पड़ गया" ॥

* * *

तालीम लड़कियोंकी ज़रूरी तो है मगर,
ख़ातूने-ख़ाना[2] हों, वे सभाकी परी न हों।

* * *

जी इल्मो[3] मुत्तक़ी[4] हों, जो हों उनके मुन्तज़िम।
उस्ताद अच्छे हों, मगर 'उस्ताद जी' न हों ॥

* * *

---

[1] बुझे हुए दीपकको; [2] सद्गृहस्थ, सुशीला।
[3] विद्वान; [4] सदाचारी।

तालीमेदुख़्तरांसे[1] ये उम्मीद है ज़रूर।
नाचे दुल्हन ख़ुशीसे ख़ुद अपनी बरातमें॥

* * *

फ़िरङ्गीसे कहा पेन्शन भी लेकर बस यहीं रहिये।
कहा "जीनेको आये हैं, यहाँ मरने नहीं आये॥"

* * *

हम ऐसी कुल किताबें क़ाबिले-ज़ब्ती समझते हैं—
कि जिनको पढ़के, लड़के बापको ख़ब्ती समझते हैं॥

* * *

क़द्रदानोंकी तबीयतका अजब रङ्ग है आज।
बुलबुलोंको है ये हसरत, कि वे उल्लू न हुए॥

* * *

बर्क़के लैम्पसे आँखोंको बचाये अल्लाह।
रौशनी आती है, और नूर चला जाता है॥

* * *

कौन्सिलमें सवाल होने लगे।
क़ौमी-ताक़तने जब जवाब दिया॥

* * *

हरमसराकी[2] हिफ़ाज़तको तेग़ ही न रही।
तो काम देंगी यह चिलमनकी तीलियाँ कबतक ?

* * *

---

[1] लड़कियोंकी शिक्षासे; [2] अन्तःपुरकी।

ख़ुदाके फ़ज़्लसे बीबी-मियाँ, दोनों मुहज़्ज़ब हैं।
हिजाब उनको नहीं आता, इन्हें ग़ुस्सा नहीं आता॥

*   *   *

मालगाड़ीपै भरोसा है जिन्हें ऐ 'अकबर'!
उनको क्या ग़म है गुनाहोंकी गिराँबारीका?

*   *   *

ख़ुदाकी राहमें बेशर्त करते थे सफ़र पहले।
मगर अब पूछते हैं, रेलवे इसमें कहाँ तक है?

*   *   *

मय भी होटलमें पियो, चन्दा भी दो मस्जिदमें।
शेख़ भी ख़ुश रहें, शैतान भी बेज़ार न हों॥

*   *   *

ऐशका भी ज़ौक़, दींदारीकी शुहरतका भी शौक़।
आप म्यूज़िक-हॉलमें क़ुरआन गाया कीजिये॥

*   *   *

गुले-तस्वीर किस ख़ूबीसे गुलशनमें लगाया है।
मेरे सैयादने बुलबुलको भी उल्लू बनाया है॥

*   *   *

मछलीने ढील पाई है, लुक़मेपै शाद है।
सैयाद मुतमइन है, कि काँटा निगल गई॥

*   *   *

क्योंकर ख़ुदाके अर्शके क़ायल हों यह अज़ीज़ ?
जुग़राफ़ियेमें अर्शका नक़्शा नहीं मिला ।।

* * *

ज़वाले-क़ौमकी इब्तदा वही थी कि जब—
तिजारत आपने की तर्क, नौकरी कर ली ।

* * *

क़ौमके ग़ममें डिनर खाते हैं हुक्कामके साथ ।
रंज लीडरको बहुत है, मगर आरामके साथ ।।

* * *

जान ही लेनेकी हिकमतमें तरक़्क़ी देखी ।
मौतका रोकनेवाला कोई पैदा न हुआ ।।

* * *

तालीमका शोर ऐसा, तहज़ीबका गुल इतना ।
बरकत जो नहीं होती, नीयतकी ख़राबी है ।।

* * *

तुम बीबियोंको मेम बनाते हो आजकल ।
क्या ग़म जो हमने मेमको बीबी बना लिया ?

* * *

नौकरोंपर जो गुज़रती है, मुझे मालूम है ।
बस करम कीजै, मुझे बेकार रहने दीजिये ।।

३० जुलाई १९४४

१२

डॉक्टर सर शेख़ मुहम्मद 'इक़बाल'

[सन् १८७५ से १९३७ ई० तक]

वर्त्तमान युगके प्रवर्त्तक आज़ाद और हाली उर्दू-शायरीमें एक क्रान्ति लानेमें सफल हुए। शायरीमें आशिक़ाना ग़ज़लोंके अतिरिक्त क़ौमोंके उत्थान-पतनका भी दिग्दर्शन हो सकता है, छोटी-छोटी शिक्षाप्रद बातें भी नज्म हो सकती हैं, यह नक्श तो जहननशीन करनेमें वे कामयाब हुए, पर यही नक्श रङ्ग भर देनेपर मुँहबोलती तसवीर भी बन सकती है, यह उनके बसका काम नहीं था। इसके लिए बड़े सुलझे हुए चित्रकारोंकी आवश्यकता थी। और सौभाग्यसे उर्दू-शायरीको दो ऐसे चित्रकार मिले कि उनकी कूचीने उर्दू-शायरीको ऊषाका अनुपम सौन्दर्य दे दिया। उनकी इस कलापर उर्दूको ही नहीं, समूचे भारत-वर्षको अभिमान है। वे अमर चित्रकार इक़बाल और चकबस्त थे।

आज़ाद और हालीकी शायरीमें सचाई, सादगी और नवीनता थी। इक़बाल और चकबस्तने उसमें कल्पना, भाव, भाषा और उपमाके ऐसे रंग भरे कि लोग सकतेमें आगए। प्रकृति-वर्णन और दार्शनिक नवीन सम्मिश्रण करके चार चाँद लगा दिए। देशकी दुर्दशाका चित्र खींचकर पत्थर-हृदय पिघला दिए। दीन-दुखियोंकी ओरसे सबसे पहले वोह दर्दीली सदा दी कि कलेजा मुँहको आने लगा। क़ौमोंकी दयनीय स्थिति-का वर्णन किया, तो लोग फुफ्फा मारकर रो पड़े। सङ्गठन और स्वतंत्रताके वोह मन्त्र फूँके कि शत्रुओंके हृदय दहल गए।

'इक़बाल'का इक़बाल[1] आस्माने-शायरीपर सबसे अधिक चमका है। वे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त शायर थे। उन्हें शायरीकी बदौलत जर्मन सरकारने 'डॉक्टरेट' और भारत सरकारने 'सर' जैसी सर्वोच्च उपाधिसे विभूषित किया था। भारतीय सपूतोंमें रवीन्द्रनाथ ठाकुरके बाद इक़बाल ही हैं, जिन्हें शायरीकी बदौलत इतनी प्रतिष्ठा मिली।

इक़बाल सन् १८७५में स्यालकोट (पंजाब)में पैदा हुए। वे बचपनसे ही मेधावी थे। स्कूल-जीवनसे ही शेर कहने लगे। एम० ए०की परीक्षामें यूनिवर्सिटी भरमें प्रथम आए। १९०५में बैरिस्टरीकी सनद लेने इङ्गलैण्ड गए और वहाँसे १९०८में सफलता प्राप्त करके लाहौरमें आकर वकालत करने लगे।

इक़बाल शायरकी हैसियतसे जनताके सामने सबसे पहले १८९९में आए, जब कि उन्होंने एक वार्षिकोत्सवपर 'नालये-यतीम' कविता पढ़कर लोगोंको चकित कर दिया था। इसके एक वर्ष बाद सहपाठियोंके आग्रहपर 'हिमालय' नामक कविता पढ़ी तो लोग आत्मविभोर हो उठे और इस उदीयमान युवककी ओर ललचाई नज़रोंसे देखने लगे। इक़बालकी ख्याति तभीसे दिन-दूनी रात-चौगुनी फैलती चली गई।

इक़बालकी शायरीके तीन दौर हैं। पहला विलायत जानेसे पूर्व १८९९से १९०५ तक। दूसरा विलायत-प्रवास १९०५से १९०८ तक। तीसरा भारत आनेपर १९०८से जीवन पर्यन्त १९३७ तक।

पहला दौर

इस दौरमें इक़बाल केवल भारतीय नज़र आते हैं। भारतीय-हित उनका ईमान, हिन्दू-मुस्लिम-प्रेम उनका मज़हब, स्वतंत्रता और सङ्गठन

---

[1] भाग्य।

उनका ध्येय और वतनका राग उनकी हृदयतंत्रीकी झनकार है। बच्चेसे कहलवाते हैं :—

यूनानियोंको जिसने हैरान कर दिया था।
सारे जहाँको जिसने इल्मोहुनर दिया था॥
मिट्टीको जिसकी हक़ने ज़रका असर दिया था।
तुर्कोंका जिसने दामन हीरोंसे भर दिया था॥
मेरा वतन वही है, मेरा वतन वही है॥

स्कूली लड़कोंकी जिह्वापर बैठकर गाते हैं :—

सारे जहाँसे अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा।
हम बुलबुलें हैं इसकी यह गुलसिताँ हमारा॥
मज़हब नहीं सिखाता आपसमें बैर रखना।
हिन्दी हैं हम, वतन है हिन्दोस्ताँ हमारा॥
कुछ बात है जो हस्ती मिटती नहीं हमारी।
सदियों रहा है दुश्मन दौरे ज़माँ हमारा॥

और तो और, परिन्दोंको फ़रियाद बन कर कहते हैं :

जबसे चमन छुटा है यह हाल हो गया है,
दिल ग़मको खा रहा है ग़म दिलको खा रहा है।
गाना इसे समझकर खुश हों न सुननेवाले,
दुक्खे हुए दिलोंकी फ़रियाद यह सदा है॥
आज़ाद मुझको कर दे ओ क़ैद करनेवाले!
मैं बेज़बाँ हूँ क़ैदी तू छोड़कर दुआ ले॥

मज़हबी दीवाने, मुल्ले-पण्डित, जो गाय और बाजा, हलाल और झटका, मन्दिर और मस्जिदके झगड़ोंको खड़ा करके देशोन्नतिमें बाधक बनते हैं, उनको आड़े हाथ लेते हुए फ़र्माते हैं :—

सच कह दूँ ऐ बिरहमन ! गर तू बुरा न माने ।
तेरे सनमकदोंके[1] बुत हो गये पुराने ।।
अपनोंसे बैर रखना तूने बुतोंसे सीखा ।
जङ्गोजदल[2] सिखाया वाइजको भी खुदाने ।।
तङ्ग आके मैंने आखिर दैरोहरमको[3] छोड़ा ।
वाइजका वाज[4] छोड़ा, छोड़े तेरे फ़िसाने ।।
पत्थरकी मूरतोंमें समझा है तू खुदा है ।
खाके-वतनका मुझको हर जर्रा देवता है ।।

आ, ग़ैरियतके[5] पर्दे इकबार फिर उठा दें ।
बिछुड़ोंको फिर मिला दें, नक़्शे-दुई मिटा दें ।।
सूनी पड़ी हुई है मुद्दतसे दिलकी बस्ती ।
आ इक नया शिवाला इस देशमें बना दें ।।
दुनियाके तीरथोंसे ऊँचा हो अपना तीरथ ।
दामाने-आस्मांसे उसका कलस मिला दें ।।
हर सुबह उठके गायें मनतर वोह मीठे-मीठे ।
सारे पुजारियोंको मय प्रीतकी पिला दें ।।
शक्ति भी, शान्ति भी भक्तोंके गीतमें है ।
धरतीके वासियोंको मुक्ती पिरीतमें है ।।

'आफ़ताबे सुबुह' कवितामें कितने विशाल-हृदयका परिचय मिलता है :—

---

[1] मन्दिरोंके; [2] लड़ाई-झगड़ा ।
[3] मन्दिर-मस्जिदको; [4] उपदेश ।
[5] ग़ैरपनेके ।

शौक़े-आज़ादीके दुनियामें न निकले होसले,
ज़िन्दगी भर क़ैदे जंजीरे तअल्लुक़में रहे।
ज़ेरोबाला[1] एक हैं तेरी निगाहोंके लिए,
आरज़ू है कुछ इसी चश्मे तमाशाकी मुझे॥
आँख मेरी औरके ग़ममें सरश्क[2]आबाद हो।
इम्तियाज़े[3] मिल्लतो[4] आईंसे[5] दिल आज़ाद हो॥

सदमा आ जाये हवासे गुलकी पत्तीको अगर,
अश्क बनकर मेरी आँखोंसे टपक जाये असर।
दिलमें हो सोज़े-मुहब्बतका[6] वोह छोटासा शरर[7],
नूरसे[8] जिसके मिले राज़े हक़ीक़तकी[9] ख़बर॥
शाहिदे-क़ुदरतका[10] आईना हो दिल, मेरा न हो।
सरमें जुज़[11] हमदर्दिए इन्साँ, कोई सौदा न हो॥

'सर सैयदकी लोहे तुरबत' कवितामें किस ख़ूबीसे अमनकी भीख माँगते हैं :—

वा[12] न करना फ़िर्क़ाबन्दीके लिए अपनी ज़बाँ,
छिपके है बैठा हुआ हंगामिए महशर[13] यहाँ।
वस्लके[14] सामान पैदा हों तेरी तहरीरसे,
देख कोई दिल न दुख जाये तेरी तक़रीरसे॥
महफ़िले-नौमें पुरानी दास्तानोंको न छेड़।
रंगपर जो अब न आएँ उन फ़िसानोंको न छेड़॥

---

[1] नीच-ऊँच; [2] आँसुओंसे; [3] भेद-भाव; [4] मज़हब; [5] क़ानूनसे; [6] प्रेमाग्निका; [7] चिनगारी; [8] प्रकाशसे; [9] वास्तविकताकी; [10] प्राकृतिक-सौन्दर्यकी देवी का; [11] सिवा, केवल; [12] खोलना; [13] प्रलयका तूफ़ान; [14] मेल-मिलाप के।

'तस्वीरेदर्द'में तो इक़बाल सचमुच कराह उठे हैं :—

निशाने बर्गेगुल तक भी न छोड़ इस बाग़में गुलचीं,
तेरी क़िस्मतसे रज़्म आराइयाँ[1] हैं बाग़बानोंमें ॥

छुपाकर आस्तींमें बिजलियाँ रक्खी हैं गर्दूंने।
अनादिल बाग़के ग़ाफ़िल न बैठें आशियानोंमें ॥

सुन ऐ ग़ाफ़िल ! सदा मेरी यह ऐसी चीज़ है जिसको,
वज़ीफ़ा जानकर पढ़ते हैं ताइर[2] बोस्तानोंमें[3] ॥

वतनकी फ़िक्र कर नादाँ ! मुसीबत आनेवाली है,
तेरी बरबादियोंके मशविरे हैं आस्मानोंमें ॥

न समझोगे तो मिट जाओगे ऐ हिन्दोस्ताँवालो !
तुम्हारी दास्ताँ तक भी न होगी दास्तानोंमें !!

जो है परदोंमें पिन्हाँ चश्मेबीना देख लेती है।
ज़मानेकी तबीयतका तक़ाज़ा देख लेती है ॥

× × ×

किया रफ़अतकी[4] लज़्ज़तसे न दिलको आश्ना तूने।
गुज़ारी उम्र पस्तीमें मिसाले नक़्शेपा तूने ॥

फ़िदा करता रहा दिलको हसीनोंकी अदाओंपर।
मगर देखी न इस आईनेमें अपनी अदा तूने ॥

दिखा वोह हुस्ने आलम सोज़, अपनी चश्मेपुरनमको।
जो तड़पाता है परवानेको, रुलवाता है शबनमको ॥

---

[1] लड़ाई-झगड़े; [2] पक्षी; [3] बाग़ोंमें।
[4] उच्चताकी।

शजर[1] है फ़िर्क़ा-आराई[2] तअस्सुब[3] है समर[4] इसका।
ये वोह फल है कि जन्नतसे निकलवाता है आदमको॥

फिरा करते नहीं मजरूहे-उल्फ़त[5] फ़िक्रे-दरमाँमें[6]।
ये ज़ख़्मी आप कर लेते हैं पैदा अपनी मरहमको॥

मुहब्बतके शररसे दिल सरापा नूर होता है।
ज़रा-से बीजसे पैदा रियाज़ेतूर[7] होता है॥

दवा हर दुखकी है मजरूहे तेग़ेआरज़ू रहना।
इलाजे ज़ख़्म है आज़ादे अहसाने रफ़ू रहना॥

धरमें क्या दीदएगिरियाँ[8] वतनकी नौहाख़्वानीमें[9]।
इबादत चश्मेशाइरकी है हरदम बावज़ू रहना॥

बनाएँ क्या समझकर शाख़े-गुलपर आशियाँ अपना।
चमनमें आह! क्या रहना, जो हो बे-आबरू रहना॥

न रह अपनोंसे बे परवाह इसीमें ख़ैर है अपनी।
अगर मंज़ूर है दुनियामें ओ बेगानाख़ू[10]! रहना॥

मुहब्बत ही से पाई है शफ़ा बीमार क़ौमोंने।
किया है अपने बख़्तेख़ुफ़्तहको बेदार क़ौमोंने॥

शमअपर कहते हुए उसकी किस ख़ूबीपर नज़र जाती है :—

---

[1] पेड़; [2] जात-पाँतका भेद; [3] पक्षपात।
[4] फल; [5] प्रेमके घायल।
[6] चिकित्साकी चिन्तामें; [7] प्रकाशका पर्वत।
[8] आँसू; [9] व्यथा वर्णन करनेमें।
[10] अपरिचित-जैसा, निर्मोही।

यक है तेरी नज़र-सिफ़ते[1] आशिक़ाने राज़[2],
मेरी निगाह मायऐ आशूबे इम्तियाज़[3]।
काबेमें बुतकदेमें है यकसाँ तेरी ज़िया[4],
मैं इम्तियाज़े दैरो-हरममें फँसा हुआ ॥

है शान आहकी तेरे दूदेसियाहमें[5]।
पोशीदा कोई दिल है तेरी जलवागाहमें ॥

एक आरज़ूमें अपने हृदयकी बात किस ख़ूबीसे प्रकट की है :—

दुनियाकी महफ़िलोंसे उकता गया हूँ यारब !
क्या लुत्फ़ अञ्जुमन का जब दिल ही बुझ गया हो ॥
शोरिशसे[6] भागता हूँ दिल ढूँढ़ता है मेरा।
ऐसा सकूत जिसपर तक़रीर भी फ़िदा हो ॥
मरता हूँ ख़ामुशीपर, यह आरज़ू है मेरी—
दामनमें कोहके[7] इक छोटा-सा झोंपड़ा हो ॥
हो हाथका सिरहाना सब्ज़ेका हो बिछौना।
शरमाए जिससे जलवत[8] ख़िलवतमें[9] वोह अदा हो ॥
मानूस[10] इस क़दर हो सूरतसे मेरी बुलबुल।
नन्हें-से दिलमें उसके खटका न कुछ मेरा हो ॥
रातोंके चलनेवाले रह जाएँ थकके जिस दम।
उम्मीद उनकी मेरा टूटा हुआ दिया हो ॥

---

[1] की तरह ; [2] प्रेमियोंका भेद ।
[3] भेद-भाववाली ; [4] रोशनी ; [5] काले धुएँमें ।
[6] होहल्लासे ; [7] पर्वतके ; [8] भीड़, महफ़िल ।
[9] एकांतमें ; [10] परिचित ।

बिजली चमकके उनको कुटिया मेरी दिखा दे।
जब आस्मांपर हरसू बादल घिरा हुआ हो॥

फूलोंको आए जिस दम शबनम वज़ू कराने।
रोना मेरा वज़ू हो, नाला मेरी दुआ हो॥

हर दर्दमन्द दिलको रोना मेरा रुला दे।
बेहोश जो पड़े हैं, शायद उन्हें जगा दे!

इसी दौरके कुछ और नमूने :—

हुस्न हो क्या ख़ुदनुमाँ[1] जब कोई माइल[2] ही न हो।
शमअ़को जलनेसे क्या मतलब, जो महफ़िल ही न हो॥

× × ×

कब ज़बाँ खोली हमारी लज़्ज़ते गुफ़्तारने।
फूँक डाला जब चमनको आतिशे पैकारने॥

× × ×

यह दौर नुक़्ताचीं[3] है कहीं छुपके बैठ रह।
जिस दिलमें तू मुकीं है वहीं छुपके बैठ रह॥

× × ×

तू अगर अपनी हक़ीक़तसे ख़बरदार रहे।
न सियहरोज़ रहे फिर न सियहकार रहे॥

× × ×

अजब वाइज़की दींदारी है यारब!
अदावत है उसे सारे जहाँसे॥

---

[1] प्रदर्शनीय; [2] प्रशंसक, गुण-ग्राही; [3] आलोचक।

कोई अब तक न यह समझा कि इन्साँ—
कहाँ जाता है, आता है कहाँसे ?
बड़ी बारीक हैं वाइज़की चालें।
लरज़ जाता है आवाज़े अज़ाँसे ॥

× × ×

लाऊँ वोह तिनके कहींसे आशियानेके लिए।
बिजलियाँ बेताब हों जिनको जलानेके लिए॥
दिलमें कोई इस तरहकी आरज़ू पैदा करूँ।
लौट जाए आस्माँ मेरे मिटानेके लिए॥
पास था नाकामिए सैयादका ऐ हमसफ़ीर !
वर्ना मैं, और उड़के आता एक दानेके लिए !

× × ×

है तलब बेमुद्दआ होनेकी भी इक मुद्दआ।
मुर्गे-दिल दामे-तमन्नासे रिहा क्योंकर हुआ ?

× × ×

न पूछो मुझसे लज़्ज़त ख़ानुमा बरबाद रहनेकी।
नशेमन सैकड़ों मैंने बनाकर फूँक डाले हैं॥
नहीं बेगानगी अच्छी रफ़ीक़ेराहे मंज़िलसे।
ठहर जा ऐ शरर ! हम भी तो आख़िर मिटने वाले हैं॥

× × ×

अगर कुछ आशना होता मज़ाक़े-जिबहसाईसे[1]।
तो संगे आस्ताने[2]काबा जा मिलता जबीनोंमें॥

---

[1] मस्तक टेकने के आनन्द से।

[2] वोह काबेका पत्थर जिसे हर यात्री बोसा देता है, मस्तक टेकता है।

कभी अपना भी नज्ज़ारा किया है तूने ऐ बुलबुल !
कि लैलाकी तरह तू ख़ुद भी है महमिल-नशीनोंमें ॥
मुझे रोकेगा तू ऐ नाख़ुदा ! क्या ग़र्क़ होनेसे ।
कि जिनको डूबना हो डूब जाते हैं सफ़ीनोंमें ॥
किसी ऐसे शररसे फूँक अपने ख़िरमने दिलको ।
कि ख़ुरशीदे क़यामत भी हो तेरे ख़ोशहचीनोंमें ॥

× × ×

बिठाके अर्शपै रक्खा है तूने ऐ वाइज़ !
ख़ुदा वोह क्या है जो बन्दोंसे अहतराज़ करे ॥
मेरी निगाहमें वोह रिन्द ही नहीं साक़ी !
जो होशियारी-ओ-मस्तीमें इम्तयाज़ करे ॥
कोई यह पूछे कि वाइज़का क्या बिगड़ता है ।
जो बे-अमल पै भी रहमत वोह बेनियाज़ करे ॥

× × ×

है मेरी ज़िल्लत ही कुछ मेरी शराफ़तकी दलील ।
जिसकी ग़फ़लतको मलक रोते हैं वोह ग़ाफ़िल हूँ मैं ॥
बज़्मेहस्ती ! अपनी आराइश पै तू नाज़ाँ न हो ।
तू तो इक तसवीर है महफ़िलकी और महफ़िल हूँ मैं ॥

× × ×

मजनूँने शहर छोड़ा तू सहरा भी छोड़ दे ।
नज्ज़ारेकी हविस हो तो लैला भी छोड़ दे ॥
वाइज़ ! कमाले तर्कसे मिलती है याँ मुराद ।
दुनिया भी छोड़ दी है तो उक़बा भी छोड़ दे ॥

तक़लीदकी रविशसे तो बेहतर है ख़ुदकशी।
रस्ता भी ढूंढ़, ख़िज़्रका सौदा भी छोड़ दे॥

है आशिक़ीमें रस्म अलग सबसे बैठना।
बुतख़ाना भी, हरम भी, कलीसा भी छोड़ दे॥

सौदागरी नहीं, यह इबादत ख़ुदाकी है।
ऐ बेख़बर जज़ाकी तमन्ना भी छोड़ दे॥

अच्छा है दिलके साथ रहे पासबाने-अक़्ल।
लेकिन कभी-कभी उसे तनहा भी छोड़ दे॥

जीना वोह क्या जो हो नफ़सेग़ैरपर मदार।
शुहरतकी ज़िन्दगीका भरोसा भी छोड़ दे॥

दूसरा दौर

(१६०५से १६०८ विलायत-प्रवास तक)

इस दौरमें उन्होंने बहुत कम लिखा है। इसका एक तो कारण यह था, कि बैरिस्टरीकी पढ़ाईसे अवकाश कम मिलता था। दूसरे उन दिनों फ़ारसीकी ओर अधिक ध्यान था। अवकाश मिलनेपर फ़ारसीमें ही तबा आज़माई करते थे। उर्दू कलामके चन्द नमूने मुलाहिज़ा हों :—

भला निभेगी तेरी हमसे क्योंकर ऐ वाइज़ !
कि हम तो रस्मे मुहब्बतको आम करते हैं॥

मैं उनकी महफ़िले-इशरतसे कांप जाता हूँ।
जो घर को फूंक के दुनिया में नाम करते हैं॥

× × ×

गुज़र गया अब वोह दौर साक़ी, कि छुपके पीते थे पीनेवाले।
बनेगा सारा जहान मयख़ाना, हर कोई बादहख़्वार होगा।

तुम्हारी तहज़ीब अपने ख़ंजरसे आप ही ख़ुदकशी करेगी।
जो शाखे नाज़ुकपै आशियाना बनेगा, ना पाएदार होगा।

ख़ुदाके बन्दे तो हैं हज़ारों, बनोंमें फिरते हैं मारे-मारे।
मैं उसका बन्दा बनूँगा जिसको, ख़ुदाके बन्दोंसे प्यार होगा।

तीसरा दौर

(१९०८में विलायतसे आनेके बाद जीवन पर्यन्त १९३७ तक) इस दौरमें इक़बाल साम्प्रदायिक रङ्गमें रँग गये हैं, और अधिकांश केवल मुस्लिम दृष्टिकोणको लेकर लिखा है। आपके 'शिकवा' और 'जबाबे शिकवा' दो अत्यन्त प्रसिद्ध मुसद्दस हैं, जिन्होंने मुसलमानोंमें तो जीवन-ज्योति जलाई ही, पर उर्दू-शायरीमें भी एक नवीन अध्याय उपस्थित कर दिया। मुसलमानोंने ख़ुदाके लिए क्या-क्या कार्य किए और ख़ुदाने उसके उपलक्षमें क्या व्यवहार किया, यही चित्रण इक़बालने ३१ बन्दोंमें किया है। नमूनेके ८ बन्द मुलाहिज़ा हों :—

शिकवा

हमसे पहले था अजब तेरे जहाँका मंज़र[1],
कहीं मस्जूद[2] थे पत्थर कहीं माबूद[3] शजर[4]।
ख़ूगरे पैकरे महसूस थी इन्साँकी नज़र,
मानता फिर कोई अनदेखे ख़ुदाको क्योंकर?
तुझको मालूम है लेता था कोई नाम तेरा?
क़ुव्वते बाज़ूए मुस्लिमने किया काम तेरा॥

---

[1] दृश्य; [2] पूज्य; [3] पूज्य।
[4] पेड़।

बस रहे थे यहीं सलजूक़ भी तूरानी भी,
अहलेचीं चीनमें, ईरानमें सासानी भी।
इसी मामूरेमें आबाद थे यूनानी भी,
इसी दुनियामें यहूदी भी थे नुसरानी भी॥

पर तेरे नाममें तलवार उठाई किसने?
बात जो बिगड़ी हुई थी वोह बनाई किसने?

थे हमीं एक तेरे मार्का-आराओंमें,
ख़ुश्कियोंमें कभी लड़ते कभी दरियाओंमें।
दीं अज़ानें कभी यूरुपके कलीसाओंमें,
कभी अफ़रीक़ाके तपते हुए सेहराओंमें॥

शान आँखोंमें न चुभती थी जहाँदारोंकी।
कलमा पढ़ते थे हम छाओंमें तलवारोंकी।

हम जो जीते थे, तो जंगोंकी मुसीबतके लिए,
और मरते थे तेरे नामकी अज़मतके लिए।
थी न कुछ तेग़ज़नी अपनी हुकूमतके लिए,
सरबकफ़ फिरते थे क्या दहरमें दौलतके लिए?

क़ौम अपनी जो ज़रोमाले-जहाँपर मरती।
बुतफ़रोशीके एवज़ बुतशिकनी क्यों करती?

टल न सकते थे अगर जंगमें अड़ जाते थे,
पाँव शेरोंके भी मैदाँसे उखड़ जाते थे।
तुझ से सरकश हुआ कोई तो बिगड़ जाते थे,
तेग़ क्या चीज़ है हम तोप से लड़ जाते थे॥

नक़्श तौहीदका हर दिलपै बिठाया हमने।
ज़ेरे ख़ंजर भी यह पैग़ाम सुनाया हमने॥

* * *

सुफ़ये दहरसे बातिलको मिटाया हमने,
नोए इन्साँको ग़ुलामीसे छुड़ाया हमने।
तेरे काबेको जबीनोंसे बसाया हमने,
तेरे क़ुरआनको सीनेसे लगाया हमने॥
फिर भी हमसे यह गिला है कि वफ़ादार नहीं।
हम वफ़ादार नहीं, तू भी तो दिलदार नहीं॥

उम्मतें और भी हैं उनमें गुनहगार भी हैं,
इज्ज़वाले[1] भी हैं मस्तेमयपिन्दार[2] भी हैं।
उनमें काहिल भी हैं, ग़ाफ़िल भी हैं हुशियार भी हैं,
सैकड़ों हैं कि तेरे नामसे बेज़ार भी हैं॥
रहमतें हैं तेरी अग़ियारके काशानोंपर[3]।
बर्क़[4] गिरती है तो बेचारे मुसलमानोंपर॥

बुत सनमख़ानोंमें कहते हैं, "मुसलमान गए"
है ख़ुशी उनको कि काबेके निगहबान गए।
मंज़िले-दहरसे ऊँटोंके, हदीख़्वान गए,
अपनी बग़लोंमें दबाए हुए क़ुरआन गए॥
ख़न्दाज़न कुफ़्र है, अहसास तुझे है कि नहीं?
अपनी तौहीदका कुछ पास तुझे है कि नहीं?

---

[1] माननीय; [2] घमण्डके नशेमें चूर; [3] महलोंपर;
[4] बिजली।

. . . .

कभी हमसे कभी ग़ैरोंसे शनासाई है।
बात कहनेकी नहीं,—तू भी तो हरजाई है॥

इस शिकवेके सम्बन्धमें प्रोफ़ेसर 'एजाज़' साहब लिखते हैं :—

"इक़बालने निहायत बेबाकीके साथ अपनी मुसीबतों और दुशवारियोंका गिला ख़ुदासे किया है। बरबादियोंकी तफ़सील बताई और सबका ज़िम्मेदार भी उसको ठहराया। इस्लामका अहसान भी उसपर जताया और फिर उसकी बेमेहरीका गिला भी किया....इस नये रुजहानने बताया कि जो कुछ कहना हो और जिससे कहना हो, ख़्वाह वोह कोई हो, अगर जोशे सदाक़त और ख़ुलूसनीयत है तो उसकी हशमत व सतवतसे दबकर ख़ामोश नहीं हो जाना चाहिए। इक़बालका शिकवा इस मारकेमें ग़ालिबन पहली नज़्म है। शेरियत और अन्दाज़े-बयानके लिहाज़से भी बेमिसाल है। और आज़ादिये-गुफ़्तारका संगेबुनियाद भी।.... शिकवेसे ही उर्दू-शायरीने फ़रियादका पहलू बदलना सीखा और आइन्दा चलकर बड़े-से-बड़े हाकिम व साहिबे जब्रोअख़्तियारसे कल्लेबकल्ले गुफ़्तगू करनेकी सलाहियत पाई* ।"

जवाबे-शिकवा

यह उक्त शिकवेका जवाब इक़बालने ख़ुदाकी ओरसे ३६ बन्दोंमें लिखा है। इसमें ग़ैबसे कहलवाया है कि मुसलमान पहलेसे मुसलमान ही न रहे कि उन्हें कुछ दिया जाय। हाँ, अगर वे चाहें तो सच्चे मुसलमान बनकर ले सकते हैं। इस नज़्ममें ख़ूबी यह है कि इक़बाल जो मुसलमानोंमें त्रुटियाँ देखते हैं और उनको दूर करनेके लिए जो सुधार चाहते हैं, वह

---

*नए अदबी रुजहानात, पृष्ठ ५०-५१।

स्वयम् अपने मुंहसे न कहकर, ईश्वरीय-सन्देशके रूपमें पेश करते हैं और वह भी अनोखे ढङ्गसे। यानी पहले मुसलमानोंकी ओरसे 'शिकवे'में उनकी मुसीबतोंकी शिकायत करते हैं और उन शिकायतोंका जो जवाब ईश्वरकी ओरसे इक़बालको मिलता है वही 'जवाबे-शिकवा'में नज़्म है। यानी प्रत्यक्ष रूपमें हालीकी तरह मुसलमानोंको न तो ग़ैरत दिलाते हैं, न किसी व्याख्यानदाताकी तरह फटकारते हैं, न अकबरकी तरह चुटकी लेते हैं; बल्कि मुसलमानोंकी तरफ़से शिकायत करनेपर जो उन्हें फटकार सुननी पड़ी है, उसे वह सकुचाते हुए ज़ाहिर करते हैं। इक़बालके इस सुधारके नवीन उपायने सचमुच जादूका काम किया है। वे जो कुछ कहना चाहते थे, कह भी दिया, मगर किस ख़ूबीसे ?

'हो जाएँ ख़ून लाखों लेकिन लहू न निकले।'

जवाबे-शिकवाके तीन बन्द मुलाहिज़ा हों :—

जिनको आता नहीं दुनियामें कोई फ़न तुम हो,
नहीं जिस क़ौमको परवाए-नशेमन[1] तुम हो।
बिजलियाँ जिसमें हों आसूदा[2] वोह ख़िरमन तुम हो,
बेच खाते हैं जो इसलाफ़के[3] मदफ़न[4] तुम हो॥
हो निको[5]नाम जो क़ब्रोंकी तिजारत करके।
क्या न बेचोगे जो मिल जाएँ सनम पत्थरके ?

मुनफ़अ़त[6] एक है इस क़ौमकी, नुक़सान भी एक,
एक ही सबका नबी, दीन भी, ईमान भी एक।

---

[1] अपने घरकी चिन्ता; [2] सन्तुष्ट।
[3] बाप-दादाके; [4] क़ब्रिस्तान।
[5] प्रसिद्ध; [6] लाभ।

हरमेपाक[1] भी, अल्लाह भी, क़ुरआन भी एक,
कुछ बड़ी बात थी होते जो मुसलमान भी एक ?

फ़िर्क़ाबन्दी है कहीं और कहीं जातें हैं।
क्या ज़मानेमें पनपनेकी यही बातें हैं ?

× × ×

अक़्ल है तेरी सिपर[2] इश्क़ है शमशीर तेरी,
मेरे दरवेश ! ख़िलाफ़त है जहाँगीर[3] तेरी।

मासिवा अल्लाहके[4] लिए आग है तकबीर[5] तेरी,
तू मुसल्माँ हो तो तक़दीर है तदबीर तेरी॥

की मुहम्मदसे वफ़ा तूने तो हम तेरे हैं।
यह जहाँ चीज़ है क्या, लोहो क़लम तेरे हैं॥

दुआ

या रब ! दिले-मुस्लिमको वोह ज़िन्दा तमन्ना दे।
जो क़ल्बको गरमा दे, जो रूहको तड़पा दे॥

भटके हुए आहूको[6] फिर सूएहरम[7] ले चल।
इस शहरके ख़ूगरको[8] फिर वुसअ़तेसहरा[9] दे॥

इस दौरकी ज़ुल्मतमें[10] हर क़ल्बे परेशाँको[11]।
वोह दाग़ेमुहब्बत दे जो चाँदको शरमा दे॥

---

[1] पवित्र मस्जिद; [2] ढाल; [3] विश्वव्यापी; [4] नास्तिकके; [5] अल्लाहो अकबरका इस्लामी नारा; [6] हिरनको; [7] मस्जिदकी ओर; [8] आदीको; [9] जङ्गलोंका विशाल क्षेत्र; [10] अँधेरेमें; [11] परेशान दिलको।

रफ़अतमें[1] मक़ासिदको हमदोशेसुरैया[2] कर।
ख़ुद्दारिए[3]साहिल[4] दे, आज़ादिए-दरिया[5] दे ॥

शमअ

इस शीर्षकमें इक़बालने ८१ अशआर बहुत ही महत्वपूर्ण और गम्भीर कहे हैं। कुछ नमूने दिए जाते हैं :—

वाएनाकामी[6] मताएकारवाँ[7] जाता रहा।
कारवाँके दिलसे अहसासे ज़ियाँ[8] जाता रहा ॥

जिनके हंगामोंसे[9] थे आबाद वीराने कभी।
शहर उनके मिट गए आबादियाँ बन हो गईं ॥

फ़र्द[10] क़ायम रब्तेमिल्लतसे[11] है तनहा कुछ नहीं।
मौज है दरियामें और बेरूनेदरिया[12] कुछ नहीं ॥

* * *

तू अगर ख़ुद्दार[13] है मिन्नतकशे[14] साक़ी न हो।
ऐन दरियामें हुबाब[15]आस नगूँ पैमाना[16] कर ॥
कैफ़ियत बाक़ी पुराने कोहो[17] सहरामें[18] नहीं।
है जुनूँ तेरा नया, पैदा नया वीराना कर ॥

---

[1] बलन्दीसे; [2] सुरैय्या नामी नक्षत्र जितना ऊँचा; [3, 4] नदीके तीरकी तरह दृढ़ तथा स्थिर स्वाभिमान; [5] नदीकी स्वतंत्रता; [6] हाय, दुर्भाग्य; [7] यात्री-दलका माल असबाब; [8] लुटनेका अहसास; [9] शोरोगुलसे; [10] मानव; [11] मेल-मिलापसे; [12] दरियाके बाहर; [13] स्वाभिमानी; [14] प्रार्थी; [15] बुलबुलेकी तरह; [16] मद्यपानका पात्र; [17] पर्वत; [18] जङ्गलमें।

ख़ाकमें तुझको मुक़द्दरने मिलाया है अगर।
तू असा[1] उफ़्तादसे पैदा मिसाले दाना कर॥

इस चमनमें पैरवे बुलबुल हो या तलमीज़े गुल[2]।
या सरापा नाला बन जा या नवा[3] पैदा न कर॥

इक़बालने निम्न अशआर लिखकर साबित किया है कि आत्मा ही परमात्मा बननेकी क्षमता रखती है और उन लोगोंको सचेत किया है जो परमात्माको ही कर्त्ता-धर्त्ता और भाग्यविधाता समझकर दुखोंके शिकार बने हुए भी कहते रहते हैं :—

शिकवा न बेशोकमका, तक़दीरका गिला है।
राज़ी हैं हम उसीमें, जिसमें तेरी रज़ा है॥

इक़बाल इस अन्धविश्वास और अकर्मण्यताको दूर करनेके लिए फ़र्माते हैं :—

आश्ना[4] अपनी हक़ीक़तसे हो ऐ दहक़ाँ[5]! ज़रा।
दाना तू, खेती भी तू, बाराँ भी तू, हासिल भी तू॥

आह! किसकी जुस्तजू आवारा रखती है तुझे।
राह तू, रहरव[6] भी तू, रहबर[7] भी तू, मंज़िल भी तू॥

काँपता है दिल तेरा अन्देशएतूफ़ाँसे क्या?
नाख़ुदा[8] तू, बहर[9] तू, कश्ती भी तू, साहिल[10] भी तू॥

वाए नादानी! कि तू मोहताजे साक़ी हो गया।
मय भी तू, मीना भी तू, साक़ी भी तू, महफ़िल भी तू॥

---

[1] बिन जोते-बोए खेतसे; [2] फूलका शिष्य; [3] स्वर, आवाज़; [4] परिचित; [5] किसान; [6] यात्री; [7] मार्गप्रदर्शक; [8] मल्लाह; [9] समन्दर दरिया; [10] किनारा।

बेख़बर ! तू जौहरेआईनए[1] अय्याम[2] है।
तू ज़मानेमें ख़ुदाका आख़िरी पैग़ाम है॥

* * *

तू ही नादाँ चन्द कलियोंपर क़नाअ़त[3] कर गया।
वर्ना गुलशनमें इलाजे तंगिएदामाँ[4] भी है॥

* * *

आँख जो कुछ देखती है लबपै आ सकता नहीं।
महवे-हैरत हूँ यह दुनिया क्यासे क्या हो जाएगी॥

फूल

तुझे क्यों फ़िक्र है ऐ गुल ! दिले सदचाक[5] बुलबुलकी।
तू अपने पैरहनके चाक तो, पहले रफ़ू कर ले॥

तमन्ना आबरूकी हो, अगर गुलजारे हस्तीमें।
तो काँटोंमें उलझकर जिन्दगी करनेकी ख़ू कर ले॥

सनोबर बाग़में आज़ाद भी है, पाबगिल[6] भी है।
इन्हीं पाबन्दियोंमें हासिल आज़ादीको तू कर ले॥

नहीं यह शाने ख़ुद्दारी चमनसे तोड़कर तुझको।
कोई दस्तारमें रख ले, कोई ज़ेबेगुलू कर ले॥

इस दौरके कुछ और नमूने :—

जिन्दगी इन्साँकी है मानिन्दे मुर्ग़े ख़ुशनवा।
शाख़पर बैठा कोई दम चहचहाया, उड़ गया॥

× × ×

[1-2] संसार रूपी शीशेकी चमक; [3] सन्तोष; [4] दामनकी संकीर्णता; [5] विदीर्ण; [6] मट्टीमें फँसी हुई।

तेरा ऐ क़ैस ! क्योंकर हो गया सोज़ेदरूँ[1] ठण्डा ?
कि लैलामें तो है अब तक वही अन्दाज़े लैलाई ॥

× × ×

एक भी पत्ती अगर कम हो तो वोह गुल ही नहीं ।
जो ख़िज़ाँ नादीदह[2] बुलबल हो, वोह बुलबुल ही नहीं ॥

× × ×

दीदए बीनामें[3] दाग़ेग़म चिराग़े सीना है ।
रूहको सामाने ज़ीनत आहका आईना है ॥

× × ×

हादसाते ग़मसे है इन्साकी फ़ितरतको कमाल ।
ग़ाज़ह[4] है आईनएदिलके लिए गर्देमलाल[5] ॥
ग़म जवानीको जगा देता है लुत्फ़ेख़्वाबसे ।
साज़ यह बेदार होता है इसी मिज़राबसे ॥

× × ×

है जज़्बे बाहमीसे क़ायम निज़ाम सारे ।
पोशीदा है यह नुक्ता तारोंकी ज़िन्दगीमें ॥

× × ×

हो सदाक़तके लिए जिस दिलमें मरनेकी तड़प ।
पहले अपने पैकरे ख़ाकीमें जाँ पैदा करे ॥

× × ×

---

[1] इश्क़की आग; [2] पतझड़से अनभिज्ञ; [3] देखनेवाली आँख; [4] पाउडर; [5] रंजोग़मकी गर्द ।

यह घड़ी महशरकी है तू अरसए महशरमें है ।
पेश कर ग़ाफ़िल ! अमल कोई अगर दफ़्तरमें है ॥

× × ×

इस शराबेरंगोबूको गुलसिताँ समझा है तू ।
आह, ऐ नादाँ ! क़फ़सको आशियाँ समझा है तू ॥

× × ×

अपने सहरामें[1] बहुत आहू[2] अभी पोशीदा हैं ।
बिजलियाँ बरसे हुए बादलमें भी ख़्वाबीदा हैं ॥

× × ×

सबक़ फिर पढ़ सदाक़तका, अदालतका, शुजाअतका ।
लिया जाएगा तुझसे काम दुनियाकी उमामतका ॥

× × ×

उक़ाबी[3] शानसे झपटे थे जो बे बालोपर निकले ।
सितारे शामको ख़ूने शफ़क़में[4] डूबकर निकले ॥
हुए मदफ़ूने[5]दरिया ज़ेरे दरिया तैरनेवाले ।
तमाँचे मौजके खाते थे जो, बनकर गुहर[6] निकले ॥
गुबारे[7] रहगुज़र[8] हैं कीमियापर नाज़ था जिनको ।
जबीनें[9] ख़ाकपर रखते थे जो अक्सीरगर निकले ॥
हमारा नर्म[10]रौ क़ासिद पयामे ज़िन्दगी लाया ।
ख़बर देती थीं जिनको बिजलियाँ वोह बेख़बर निकले ॥

---

[1] जङ्गलमें; [2] हिरन; [3] गिद्धपक्षी; [4] सूर्यास्त समयकी लालिमामें; [5] दरियामें दफ़्न; [6] मोती; [7] धूल; [8] राहगीरोंकी; [9] मस्तक; [10] सुस्त ।

जहाँमें अहले ईमाँ सूरते खुरशीद जीते हैं।
इधर डूबे उधर निकले, उधर डूबे इधर निकले ॥

× × ×

कभी ऐ हक़ीक़ते[1] मुन्तज़िर ! नज़र आ लिबासे[2] मिजाज़में ।
कि हज़ारों सजदे तड़प रहे हैं, मेरी जबीने[3]नियाज़में ॥
जो मैं सरबसजदा हुआ कभी, तो ज़मींसे आने लगी सदा ।
'तेरा दिल तो है सनमआश्ना, तुझे क्या मिलेगा नमाज़में ?'
की तर्क तगोदौ क़तरेने, तो आबरूए गोहर[4] भी मिली ।
आवारगिए फ़ितरत भी गई, और कश्मकशे दरिया भी गई ॥

हास्य-रस

इक़बालने मज़ाहिया रङ्गमें भी तबाआज़माई की है परन्तु इस रंगमें वे अकबरको न पा सके। यह उनकी तबियतके अनुकूल भी न था। भला जिस हृदयमें शोले दहकते हों, वहाँ हास्यका क्या गुज़र ? फिर भी समय-समयपर मुँहका ज़ायक़ा बदलनेके लिए तफ़रीहन जो फ़र्माया है, उसके चन्द अशआर मुलाहिज़ा फ़र्माइए :—

शेख़ साहब भी तो परदेके कोई हामी नहीं।
मुफ़्तमें कॉलिजके लड़के उनसे बदज़न हो गए ॥
वाज़में फ़र्मा दिया कल आपने यह साफ़-साफ़—
"पर्दा आख़िर किससे हो जब मर्द ही ज़न हो गए ॥"

× × ×

---

[1] ईश्वरीय प्रेमका प्रतीक्षक; [2] कृत्रिम भेषमें [3] प्रेमी-मस्तिष्कमें; [4] मोतीकी प्रतिष्ठा ।

यह कोई दिनकी बात है ऐ मर्दे होशमन्द !
ग़ैरत न तुझमें होगी न ज़न ओट चाहेगी ॥
आता है अब वह दौर कि औलादके एवज़ ।
कौन्सिलकी मेम्बरीके लिए वोट चाहेगी ॥

× × ×

बसते हैं हिन्दमें जो ख़रीदार ही फ़क़त ।
आग़ा भी लेके आते हैं अपने वतनसे हींग ॥

× × ×

इन्तिहा भी इसकी है, आख़िर ख़रीदें कब तलक ?
छतरियाँ, रूमाल, मफ़लर, पैरहन जापानसे ॥
अपनी ग़फ़लतकी यही हालत अगर क़ायम रही ।
आएँगे ग़स्साल काबुलसे, कफ़न जापानसे ॥

× × ×

इस दौरमें सब मिट जाएँगे, हाँ बाक़ी वह रह जाएगा ।
जो क़ायम अपनी राहपे है, और पक्का अपनी हठका है ॥
ऐ शेख़ो बिरहमन ! सुनते हो, क्या अहले बसीरत कहते हैं ?
गर्दूंने कितनी बलन्दीसे, इन क़ौमोंको दे पटका है ॥
या बाहम प्यारके जल्से थे, दस्तूरे मुहब्बत क़ायम थे ।
या बहसमें उर्दू हिन्दी है, या क़ुर्बानी या झटका है ॥

क़ानूने वक़्फ़के लिए लड़ते थे शेख़जी ।
पूछो तो वक़्फ़के लिए है जायदाद भी !

जान जाए हाथसे जाए न सत ।
है यही इक बात हर मज़हबका तत ॥

चट्टे-बट्टे एक ही थैलीके हैं।
साहूकारी, बिसवादारी, सल्तनत ।।

उठाकर फेंक दो बाहर गलीमें।
नई तहज़ीबके अण्डे हैं गन्दे ।।

इलेक्शन, मेम्बरी, कौन्सिल, सदारत।
बनाए ख़ूब आज़ादीने फन्दे ।।

मस्जिद तो बना दी शब भरमें, ईमाँकी हरारतवालोंने।
मन अपना पुराना पापी है, बरसोंमें नमाज़ी बन न सका।

तर आँखें तो हो जाती हैं, पर क्या लज़्ज़त इस रोनेमें।
जब ख़ूनेजिगरकी आमेज़शसे, अश्क पियाज़ी बन न सका ।।

'इक़बाल' बड़ा उपदेशक है, मन बातोंमें मोह लेता है।
गुफ़्तारका यह ग़ाज़ी तो बना, किरदारका ग़ाज़ी बन न सका ।।

१५ अगस्त १६४४

'इक़बाल'की कविताओंके उर्दू-फ़ारसीमें एक दर्जनसे अधिक संकलन प्रकाशित हो चुके हैं। हमने उनकी सर्वप्रथम कृति केवल 'बाँगेदरा'-से ही उक्त कलामका संकलन किया था। इसको देखकर हिन्दी-उर्दू साहित्यकी गति-विधिसे अच्छी तरह परिचित हमारे अनन्य मित्र श्री सुमतप्रसाद जैनने सम्मति दी कि इक़बालकी 'बालेजिबरील'का उद्धरण दिये बिना इक़बालका परिचय अधूरा रह जायगा। अतः उनकी सम्मतिसे बालेजिबरीलका भी कुछ नमूना दिया जा रहा है। जो इक़बाल विलायत जानेसे पूर्व देशभक्त, प्रेम-सन्देश-वाहकके रूपमें जनताके समक्ष आते हैं और मादक स्वरमें गाकर लोगोंकी हृदय-तंत्रीको झंकृत कर देते हैं :—

हर दर्दमन्द दिलको रोना मेरा रुला दे।
बेहोश जो पड़े हैं शायद उन्हें जगा दे॥

सदमा आ जाये हवासे गुलकी पत्तीको अगर।
अश्क बनकर मेरी आँखोंसे टपक जाए असर॥

वस्लके असबाब पैदा हों तेरी तहरीरसे।
देख कोई दिल न दुख जाए तेरी तक़रीरसे॥

वतनकी फ़िक्र कर नादाँ! मुसीबत आनेवाली है।
तेरी बरबादियोंके मशवरे हैं आस्मानोंमें॥

न समझोगे तो मिट जाओगे ऐ हिन्दोस्ताँवालो!
तुम्हारी दास्ताँ तक भी न होगी दास्तानोंमें॥

मुहब्बतसे ही पाई है शिफ़ा बीमार क़ौमोंने।
किया है अपने बख़्तेख़ुफ़्ताको बेदार क़ौमोंने॥

सारे जहाँसे अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा।
हम बुलबुलें हैं इसकी यह गुलिस्ताँ हमारा॥
मज़हब नहीं सिखाता आपसमें बैर रखना।
हिन्दी हैं हम, वतन है हिन्दोस्ताँ हमारा॥

शक्ति भी, शान्ति भी भगतोंके गीतमें है।
धरतीके वासियोंकी मुक्ति प्रीतिमें है॥

वही 'इक़बाल' केवल तीन वर्ष विलायत रह आनेके बाद देशोत्थान, मानव-प्रेम और मनुष्य-सेवाके मादक गीत गाते-गाते मुस्लिम साम्राज्य-वाद, तबलीग, हिजाज और सम्प्रदायवादके विषैले तीर छोड़ने लगते हैं :—

यारब ! दिलेमुस्लिमको वह दर्देतमन्ना दे।
जो क़ल्बको गरमा दे जो रूहको तड़पा दे॥

× × ×

हमनशीं ! मुस्लिम हूँ मैं तौहीदका हामिल हूँ मैं।

× × ×

तुझको मालूम है लेता था कोई नाम तेरा ?
क़ुव्वतेबाज़ूए मुस्लिमने किया काम तेरा॥
पर तेरे नामपर तलवार उठाई किसने ?
बात जो बिगड़ी हुई थी, वह बनाई किसने ?

× × ×

चीनोअरब हमारा, हिन्दोस्ताँ हमारा।
मुस्लिम हैं हम, वतन है सारा जहाँ हमारा॥
तेग़ोंके सायेमें हम पलकर बड़े हुए हैं।
ख़ंजर हिलालका है क़ौमी निशाँ हमारा॥

केवल तीन वर्ष सुहबते फ़िरंगमें रहकर बाग़बाने गुलशने हिन्दोस्ताँ कुछसे कुछ बन बैठा। बक़ौल अकबर :—

मेरे सैयादकी तालीमकी है धूम गुलशनमें।
वहाँ जो आज फँसता है, वोह कल सैयाद होता है ॥

इक़बाल जैसे परिष्कृत मस्तिष्क और विशाल हृदयवाले राष्ट्रकविको यकायक सम्प्रदायवादके दलदलमें फँसते देख लोग कराह उठे :—

हिन्दी होनेपर नाज़ जिसे कलतक था, हिजाज़ी बन बैठा।
अपनी महफ़िलका रिन्द पुराना, आज नमाज़ी बन बैठा ॥

महफ़िलमें छुपा है क़ैसेहज़ीं, दीवाना कोई सहरामें नहीं।
पैग़ामेजुनूँ जो लाता था, इक़बाल वोह अब दुनियामें नहीं ॥

ऐ मुतरिब ! तेरे तरानोंमें अगली-सी अब वोह बात नहीं।
वोह ताज़गीये तख़य्युल नहीं, बेसाख़्तगीये जज़्बात नहीं ॥

—आनन्दनारायण मुल्ला

इक़बाल सम्प्रदायवादके व्यूहमें बैठकर कभी तो मुसलमानोंको बाज़ पक्षीकी तरह आक्रमणकारी होनेका मंत्र देते हैं, कभी तलवार उठानेका आदेश देते हैं और कभी ग़ैर मुस्लिमोंपर टूट पड़नेका फ़तवा देते हैं। जिन्हें सुनकर मुस्लिम जनता रणोन्मत्त हो उठती है।

पाकिस्तानका अंकुर विलायत-प्रवासमें सबसे प्रथम इक़बालके ही मस्तिष्कमें अंकुरित हुआ। जिन्हाने जब इक़बालके मुँहसे पाकिस्तानीनारा सुना तो खिलखिलाकर हँस पड़े और फ़र्माया कि इक़बाल शायर हैं, इसलिए वे ख़याली दुनियामें रहते हैं और आस्मानमें उड़ान लेते हैं। परन्तु उन्हें क्या पता था कि एक दिन इक़बालका जादू स्वयं उनके सर चढ़कर बोलेगा।

इक़बालके कलामका मुस्लिम जनता क़ुरानकी तरह तलावत करती है। इक़बालने जो रूह फूँकी है और जो सम्प्रदायवादका विष वमन किया है, उसके आगे जिन्हाकी हज़ार स्पीचें मान्द है।

यहाँ हम 'बालेजिबरीलसे कुछ इस तरहका कलाम दे रहे हैं, जिससे ग़ैर मुस्लिम भी लाभ उठा सकें। फिर भी सम्प्रदायवादकी झाँकी यत्र-तत्र मिलेगी।

तूने यह क्या ग़ज़ब किया ? मुझको ही फ़ाश[1] कर दिया।
मैं ही तो एक राज़[2] था सीनयेकायनातमें[3] ॥

× × ×

तेरे शीशेमें मय[4] बाक़ी नहीं है ?
बता, क्या तू मेरा साक़ी नहीं है ?
समन्दरसे मिले प्यासेको शबनम[5] !
बख़ीली[6] है, यह रज़्ज़ाक़ी[7] नहीं है !
इसी कौकबकी[8] ताबानीसे है तेरा जहाँ रोशन।
ज़वाले[9] आदमे[10] ख़ाकी[11] ज़ियाँ[12] तेरा है या मेरा ?

× × ×

बाग़े बहिश्तसे मुझे हुक्मे सफ़र दिया था क्यों ?
कारेजहाँदराज़ है अब मेरा इन्तज़ार कर ॥

× × ×

रोज़ेहिसाब जब मेरा पेश हो दफ़्तरेअमल।
आप भी शर्मसार हो मुझको भी शर्मसार कर !

× × ×

---

[1] प्रकट; [2] भेद; [3] संसारके हृदयमें; [4] शराब; [5] ओस; [6] कंजूसी; [7] उदारहृदयता, दानशीलता; [8] चमकदार तारेकी; [9,10,11] ख़ाकके पुतलेरूपी मनुष्यका पतन; [12] हानि, नुक़सान।

तेरी दुनिया जहानेमुर्गोमाही[1],
मेरी दुनिया फ़ुग़ानेसुबहगाही[2],
तेरी दुनियामें मैं महकूमो[3]मजबूर[4]
मेरी दुनियामें तेरी पादशाही[5]!

× × ×

मतायेबेबहा[6] है दर्दोसोज़े[7] आर्ज़ूमन्दी[8]।
मुक़ामे बन्दगी[9] देकर न लूँ शाने ख़ुदावन्दी[10]॥
तेरे आज़ादबन्दोंकी न यह दुनिया न वह दुनिया।
यहाँ मरनेकी पाबन्दी वहाँ जीनेकी पाबन्दी॥
गुज़र औक़ात कर लेता है यह कोहो-बयाबाँमें[11]।
कि शाहीं[12] के लिये ज़िल्लत है कारे आशियाँबन्दी[13]॥

× × ×

तेरी बन्दापरवरीसे[14] मेरे दिन गुज़र रहे हैं।
न गिला है दोस्तोंका न शिकायते ज़माना॥
ख़िरद[15] वाक़िफ़ नहीं है नेकोबदसे,
बढ़ी जाती है ज़ालिम अपनी हदसे।
ख़ुदा जाने मुझे क्या होगया है,
ख़िरद बेज़ार दिलसे, दिल ख़िरदसे॥

---

[1] मुर्ग़ और मछलियोंकी दुनिया; [2] प्रातःकालीन रुदन; [3] आधीन; [4] असमर्थ; [5] बादशाही; [6] अनमोल धन; [7] दर्द और तपिश; [8] अभिलाषा [9] उपासनाका अधिकार; [10] ईश्वरत्वका गौरव; [11] पर्वतों-वनोंमें; [12] बाज़ पक्षी; [13] घोंसला बनानेकी चिन्ता; [14] दीन-बन्धुत्वसे; [15] अक़्ल।

इश्क़को एक जस्तने[1] तय कर दिया क़िस्सा तमाम।
इस ज़मीनोआस्मांको बेकरां[2] समझा था मैं॥

× × ×

ख़ुदाई अहतमामे[3] ख़ुश्कोतर[4] है,
ख़ुदावन्दा! ख़ुदाई दर्देसर है।
वलेकिन बन्दगी! इस्तग़फ़ार अल्लाह,
यह दर्देसर नहीं दर्देजिगर है॥

× × ×

यही आदम है सुलतां[5] बहरोबरका[6],
कहूँ क्या माजरा इस बेबसरका[7]।
न ख़ुदबीं[8] ना ख़ुदाबीं[9] ना जहांबीं[10],
यही शहकार[11] है तेरे हुनरका?

× × ×

अपने भी ख़फ़ा मुझसे हैं बेगाने भी नाख़ुश।
मैं ज़हरे हलाहलको कभी कह न सका क़न्द॥
हर हालमें मेरा दिले बेक़ैद है ख़ुर्रम[12]।
क्या छीनेगा ग़ुंचेसे कोई ज़ौक़े[13]शकरख़न्द!

× × ×

---

[1] छलांगने; [2] असीम; [3, 4] जल तथा स्थलकी व्यवस्था; [5] बादशाह; [6] जलथलका; [7] दृष्टि हीनका; [8] स्वयंको जाननेवाला; [9] ईश्वरको पहचाननेवाला; [10] संसारको समझनेवाला; [11] सर्वश्रेष्ठ कृति; [12] प्रसन्न; [13] मुस्कराहट शौक़।

तेरा इमाम[1] बेहुजूर[2] तेरी नमाज़ बेसरूर[3]।
ऐसी नमाज़से गुज़र ऐसे इमामसे गुज़र[4]॥

× × ×

अपने मनमें डूबकर पा जा सुराग़े जिन्दगी।
तू अगर मेरा नहीं बनता न बन, अपना तो बन॥

शिकायत है मुझे या रब! ख़ुदावन्दाने मकतबसे[5]।
सबक़ शाहीं[6] बच्चोंको दे रहे हैं ख़ाकबाज़ीका[7]!

× × ×

दिलकी आज़ादी शहंशाही, शिकम[8] सामाने मौत।
फ़ैसला तेरा तेरे हाथोंमें है दिल या शिकम?

× × ×

ऐ मुसलमाँ! अपने दिलसे पूछ, मुल्लासे न पूछ।
होगया अल्लाहके बन्दोंसे क्यों खाली हरम[9]?

वह आँख कि है सुरमयेअफ़रंगसे[10] रोशन।
पुरकार[11] सख़ुनसाज़[12] है! नमनाक नहीं है॥

बिजली हूँ, नज़र कोहोबयाबाँ[13] पै है मेरी।
मेरे लिए शायाँ[14] ख़सोख़ाशाक[15] नहीं है॥

---

[1] नमाज़ पढ़ानेवाला; [2] ईश्वर-आस्थाविहीन। [3] श्रद्धारहित; [4] भाग, बेकार है; [5] शिक्षकोंसे। [6] बाज़ पक्षी; [7] ज़मीन पर रहनेका; [8] पेटकी चिन्ता। [9] मस्जिद; [10] अंग्रेज़ियतके सुरमेसे; [11] चालाक, [12] वक्तृत्वसे ओतप्रोत; [13] पर्वतों-जंगलों; [14] गौरव योग्य; [15] घासफूसका घोंसला।

आलम है फ़क़त मोमनेजाँबाज़की[1] मीरास[2]।
मोमिन नहीं जो साहबेलोलाक[3] नहीं है!

× × ×

हुजूम क्यों है ज़ियादा शराबख़ानेमें।
फ़क़त यह बात कि पीरेमुग़ाँ[4] हैं मर्देख़लीक़[5]॥

अगर हो इश्क़, तो है कुफ़्र भी मुसलमानी।
न हो तो मर्देमुसलमाँ भी काफ़िरो ज़न्दीक़[6]॥

× × ×

काफ़िर है मुसलमाँ तो न शाही न फ़क़ीरी।
मोमिन है तो करता है फ़क़ीरीमें भी शाही!

काफ़िर है तो शमशीरपै करता है भरोसा।
मोमिन है तो बेतेग़ भी लड़ता है सिपाही!

काफ़िर है तो है ताबएतक़दीर[7] मुसलमाँ।
मोमिन है तो वह आप है तक़दीरेइलाही[8]॥

× × ×

ख़ुदावन्दा! यह तेरे सादादिल बन्दे किधर जाएँ?
कि दरवेशी[9] भी ऐय्यारी है सुलतानी[10] भी ऐय्यारी॥

---

[1] वीर मुसलमानकी; [2] जागीर।
[3] समस्त विश्व को अपना समझनेवाला।
[4] शराबख़ानेका मालिक; [5] मिलनसार।
[6] नास्तिक और अनेक ईश्वरवादी।
[7] भाग्य-अधीन; [8] ईश्वरीय भाग्य।
[9] साधुता; [10] बादशाही।

मुझे तहज़ीबे हाज़िरने अता[1] की है वह आज़ादी।
कि ज़ाहिरमें तो आज़ादी है बातिनमें[2] गिरफ़्तारी।।

× × ×

हुई न आम जहाँमें कभी हकूमते इश्क़।
सबब यह है कि मुहब्बत ज़मानासाज़ नहीं।।

× × ×

कहीं सरमायए महफ़िल थी मेरी गर्मगुफ़्तारी[3]।
कहीं सबको परेशाँ कर गई मेरी कमआमेज़ी[4]।।

जलाले पादशाही[5] हो कि जमहूरी[6] तमाशा हो।
जुदा हो दीं सियासतसे तो रह जाती है चंगेज़ी।।

× × ×

फ़ारिग़ तो न बैठेगा, महशरमें जुनूँ अपना।
या अपना गिरेबाँ चाक या दामनेयज़दाँ[7] चाक।।

× × ×

हर गुहरने[8] सदफ़को[9] तोड़ दिया।
तू ही आमादयेज़हूर[10] नहीं।।

× × ×

ख़ुदी वह बहर[11] है जिसका कोई किनारा नहीं।
तू आबजू[12] उसे समझा अगर तो चारा नहीं।।

---

[1] दान दी है; [2] वास्तवमें; [3] वाक्‌पटुता; [4] कम बोलना; [5] एकतंत्रशासन; [6] प्रजातंत्र; [7] ईश्वरका परिधान; [8] मोतीने; [9] सीपको; [10] प्रकाशमें आनेका प्रस्तुत; [11] दरिया; [12] नदी, नहर।

ग़ज़ब है रग़बेकरममें[1] बख़ील[2] है फ़ितरत[3]।
कि लालेनाबमें[4] आतिश[5] तो है शरारा[6] नहीं॥

× × ×

हर इक मुक़ामसे आगे मुक़ाम है तेरा।
हयात[7] ज़ौक़ेसफ़रके[8] सिवा कुछ और नहीं॥

× × ×

किसे नहीं है तमन्नायेसरवरी[9] लेकिन।
ख़ुदीकी[10] मौत हो जिसमें यह सरवरी क्या है?

× × ×

मैं तुझको बताता हूँ तक़दीरेउमम[11] क्या है?
शमशीरोसनाँ[12] अव्वल, ताऊसो[13] रुबाब[14] आख़िर॥

मयख़ानये यूरुपके दस्तूर निराले हैं।
लाते हैं सरूर अव्वल देते हैं शराब आख़िर॥

× × ×

यह बन्दगी ख़ुदाई, वह बन्दगी गदाई[15]।
या बन्दयेख़ुदा बन या बन्दयेज़माना॥

× × ×

---

[1] कृपाके होते हुएभी; [2] कंजूस; [3] प्रकृति; [4] निर्मल लालमें; [5] अग्नि; [6] चिनगारी; [7] जिन्दगी; [8] यात्राके शौक़के; [9] नेतृत्वकी लालसा; [10] अपने अस्तित्वकी; [11] मुसलमानोंका भाग्य; [12] तीरकी नोक, भाला; [13] राज्यसिंहासन; [14] वाद्ययंत्र; [15] फ़क़ीरी।

ग़ाफ़िल न हो ख़ुदीसे कर अपनी पासबानी[1]।
शायद किसी हरमका[2] तू भी है आस्तानी[3]॥

× × ×

ख़िरदमन्दोंसे[4] क्या पूछूँ कि मेरी इब्तदा[5] क्या है?
कि मैं इस फ़िक्रमें रहता हूँ मेरी इन्तहा[6] क्या है?
ख़ुदीको कर बुलन्द इतना कि हर तक़दीरसे पहले।
ख़ुदा बन्देसे ख़ुद पूछे बता तेरी रज़ा[7] क्या है?
नवायेसुबहगाहीने[8] जिगर ख़ूँ कर दिया मेरा।
ख़ुदाया जिस ख़ताकी यह सज़ा है वह ख़ता क्या है?

× × ×

ऐ तायरेलाहूती[9]! उस रिज़क़से[10] मौत अच्छी।
जिस रिज़क़से आती हो परवाज़में[11] कोताही[12]॥

× × ×

यह मिसरा लिख दिया किस शोख़ने महराबे मस्जिदपर—
"यह नादाँ गिर गये सिजदोंमें जब वक़्ते क़याम आया"॥
चल ऐ मेरी ग़रीबीका तमाशा देखनेवाले।
वह महफ़िल उठ गई जिसदम तो मुझतक दौरेजाम आया॥

× × ×

---

[1] चौकसी; [2] मसजिदका; [3] दहलीज, प्रवेशद्वार।
[4] अक़्लमन्दोंसे; [5] शुरुआत; [6] आख़ीर।
[7] इच्छा; [8] प्रातः कालीन संगीतने।
[9] ईश्वरत्वकी क्षमता रखनेवाले पक्षी।
[10] जीविकासे; [11] उड़ानमें, विकासमें; [12] कमी।

मुझे फ़ितरत, नवापर[1] पै-ब-पै[2] मजबूर करती है।
अभी महफ़िलमें है शायद कोई दर्दआश्ना बाक़ी ।।

× × ×

यक़ीं पैदा कर ऐ नादां ! यक़ींसे हाथ आती है।
वह दरवेशी कि जिसके सामने झुकती है फ़ग़फ़ूरी[3] ।।

× × ×

मीरी में, फ़क़ीरीमें, शाहीमें, गुलामीमें।
कुछ काम नहीं बनता बेजुरअते रिन्दाना ।।

× × ×

जिस खेतसे दहक़ाँको[4] मयस्सर नहीं रोजी।
उस खेतके हर खोशयेगन्दुमको[5] जलादो ।।

उक़ाबी[6] रूह जब बेदार होती है जवानोंमें।
नजर आती है उनको अपनी मंजिल आस्मानोंमें ।।

नहीं तेरा नशेमन क़सरे सुलतानीके गुम्बदपर।
तू शाहीं है ! बसेराकर पहाड़ोंकी चटानोंपर ।।

× × ×

है शबाब अपने लहूकी आगमें जलनेका नाम।
सख़्तकोशीसे[7] है तलख़ेजिन्दगानी[8] अंगबीं[9] ।।

---

[1] गायन, मुँह खोलनेपर; [2] हर वक़्त, बराबर; [3] चीनके एक प्रसिद्ध बादशाहकी सल्तनत; [4] किसानको; [5] अनाजको; [6] गिद्ध पक्षी; [7] कठिन परिश्रमसे; [8] जीवनकी कड़वाहट; [9] शहद (मधुर हो जाती है)।

जो कबूतरपर झपटनेमें मजा है ऐ पिसर !
वह मजा शायद कबूतरके लहूमें भी नहीं ।।

× × ×

उस मौजके मातममें रोती है भँवरकी आँख ।
दरियासे उठी लेकिन साहिलसे न टकराई ।।

× × ×

कहते हैं अरबी ज़बानका मशहूर शायर अब्दुल्ला मुअर्री निरामिष-भोजी था। उसके एक मित्रने छकानेके ख़यालसे उसे भुना हुआ तीतर भेजा। मृतक तीतरको देखकर मुअर्रीने उससे पूछा कि तुझे मालूम है कि किस दोषके कारण तेरी यह दुरावस्था हुई है। उन्हीं भावोंको इक़बालने इस तरह क़लमबन्द किया है :—

अफ़सोस सद अफ़सोस कि शाहीं[1] न बना तू ।
देखे न तेरी आँखने फ़ितरतके इशारे ।।
तक़दीरके क़ाज़ीका यह फ़तवा है अज़लसे—
"है जुर्म ज़ईफ़ीकी सज़ा मर्गे मफ़ाजात[2] ।।"

× × ×

हमामो[3] कबूतरका भूखा नहीं मैं ।
कि है जिन्दगी बाज़की ज़ाहिदाना[4] ।।
झपटना, पलटना, पलटकर झपटना ।
लहू गर्म रखनेका है इक बहाना ।।

---

[1] बाज़ पक्षी; [2] अकालमृत्यु; [3] कबूतर, निरीह पक्षी; [4] परहेज़गारी ।

यह पूरब, यह पच्छिम, चकोरोंकी दुनिया।
मेरा नीलगूँ आस्माँ बेकिनारा[1]॥
परिन्दोंकी दुनियाका दरवेश[2] हूँ मैं।
कि शाहीं बनाता नहीं आशयाना॥

इक़बालने भारतीयोंको विशेषकर मुसलमानोंको जागृत करनेके लिए जो बोल गाए हैं वे मन्त्रोंकी तरह प्रभावशाली और मूल्यवान हैं। १९३७में आपकी मृत्यु होनेपर भारतमें, विशेषकर उर्दू-संसारमें, एक कोहराम मच गया। यूनिवर्सिटी, कॉलेज, हाईकोर्ट बन्द हुए। उर्दू-पत्रोंने विशेषाङ्क निकाले। आपकी शायरीपर हज़ारों तुलनात्मक लेख लिखे गए और लिखे जा रहे हैं। इक़बाल मिर्ज़ा 'दाग़'के शिष्य थे, और 'दाग़'को अपने इस शिष्यपर बेहद नाज़ था।

९ मार्च १९४७

---

[1] अनन्त; [2] साधु।

१३

पण्डित ब्रजनारायण 'चकबस्त'

(सन् १८८२ से १९२६ तक)

आवश्यकता आविष्कारकी जननी है। समयकी आवश्यकतानुसार अनेक परिवर्त्तन होते रहते हैं। जीती हुई बाज़ी हारकर १८५७के विद्रोहके बाद समूचा भारत सन्तप्त और भयभीत हो उठा। पादरियोंके नित्य नये प्रचार, अङ्गरेज़ी सभ्यता और शिक्षाके प्रसारको वेगसे बढ़ता हुआ देखकर लोगोंको भय होने लगा कि राज्य गया तो गया, कहीं प्राणोंसे भी अधिक प्रिय धर्म, संस्कृति और भाषाका भी सफ़ाया न कर दिया जाय। इसी आशङ्कासे घबराकर हिन्दू, जैन, सिक्ख, मुसलमान, आदि हर सम्प्रदायमें इनकी रक्षाके लिए आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। सिंह जितना ही अधिक आलसी होता है, गोली लगनेपर उतना ही अधिक विक्षुब्ध भी हो उठता है। दरियामें पर्वत-चट्टान गिरनेसे जितना अधिक गहरा गड्ढा होता है, उतने ही अधिक वेगसे चारों ओरका पानी दौड़कर उस क्षतिको पूरा करता है। भारतके हर क़ौम और हर मजहबके लोग मर्दानावार खड़े हो गए और बड़ी लगनके साथ अपने-अपने दायरेमें व्याख्यानों, लेखों, और कविताओं द्वारा धर्मपर मर मिटनेका प्रचार करने लगे। स्कूल और कॉलेजके मुक़ाबिलेमें विद्यालय और अरबी मदर्से भी खोले गए। अङ्गरेज़ी सभ्यता और फ़ैशनसे दूर रहनेके लिए भी काफ़ी कहा गया। चूँकि घरकी फूटके कारण ही यह दुर्दिन देखने पड़े। इसलिए हिन्दू-मुस्लिम एकताकी भी आवश्यकता महसूस हुई। अकबर इलाहाबादीकी शायरीमें दीन (धर्म)पर अमल करनेकी ताकीद,

अङ्गरेज़ी शिक्षा और सभ्यताका विरोध और हिन्दू-मुस्लिम-प्रेम देखनेको मिलता है। इक़बाल और चकबस्तने भारतके पर्वतों, दरियाओं, ऐतिहासिक इमारतों, शहरों, गाँवों और प्रकृतिका वर्णन करके लोगोंमें अपने देशके प्रति अनुराग उत्पन्न कर दिया।

बङ्ग-भङ्ग आन्दोलन, होमरूललीग और कॉङ्गरेसने जनतामें देश-भक्तिकी एक लहर पैदा कर दी थी। प्रोफ़ेसर 'एजाज़' लिखते हैं कि "चकबस्त इस कामके लिए बहुत मौज़ूँ नज़र आए।...उनका पैमानये-दिल क़ौमी जज़बातसे लबरेज़ हो रहा था। मौक़ा मुनासिब पाया, जज़्बाती रङ्ग देकर इतनी दिलकश नज़्मोंमें दुनियाके सामने होमरूलके मतालिब पेश किए कि अवाम व ख़ास दोनोंमें उनकी शायरीका चर्चा होने लगा। उनके अशआर हर सियासी या नीम सियासी (अर्द्ध राज-नैतिक) मजलिसके लिए बाइसे ज़ीनत हुए। इसने दूसरे शुअराको भी सियासी तहरीकमें दिलचस्पी लेनेपर माइल किया। छोटे-बड़े शुअरा कुछ न कुछ अपने तौरपर मुल्कके मज़ाक़का अन्दाज़ा करके अख़बारों, रिसालों और जल्सोंकी ज़ीनत अपने कलामसे बढ़ाते रहे। यूँ तो चकबस्तके अलावा और शुअरा मसलन ज़फ़रअली ख़ाँ, अकबर वग़ैरह भी वक़्तन-फ़वक़्तन सियासी नज़्में कहते रहे। लेकिन होमरूलके सिलसिलेमें सबसे सरबरआवुरदह चकबस्त ही नज़र आते हैं।....चकबस्तकी नज़्मोंमें ख़ाली जोश व नुमाइश ही नहीं, बल्कि इन्क़लाबकी दिलचस्प अहमियत और हिम्मत-अफ़ज़ाई भी मौजूद है। वे अपने वतनकी तारीफ़ भी करते हैं और फिर ग़ैरत दिलानेके लिए अपनी बेकसी और वतनकी बरबादीका भी ज़िक्र करते हैं।

"इसी सिलसिलेमें चकबस्तके मुत्तालिक़ यह भी लिख देना ज़रूरी मालूम होता है कि उन्होंने न सिर्फ़ उस तहरीकसे दिलचस्पी ही ली थी, बल्कि उस तहरीकसे दिलचस्पी लेनेवालोंसे भी एक ख़ास क़िस्मकी अक़ीदत का इज़हार वक़्तन-फ़वक़्तन ख़लूस और जोशके साथ करते रहे। उनके

कहे हुए मर्सिये इस अम्रकी शहादतके लिए बहुत काफ़ी हैं। जब किसी ख़ास रहनुमाका इन्तक़ाल होता था तो उसका मातम निहायत जोशके साथ अपनी शायरीमें करते थे।....इस सिलसिलेमें चकबस्त आप अपनी मिसाल हैं। उर्दू-शायरीमें इस लिहाज़से उनका कोई हरीफ़ नज़र नहीं आता[1]।"

डॉ० सर तेजबहादुर सप्रू लिखते हैं:—

"..........I have known the poet intimately for the last twenty-five years and admired him for his high ideals in literature and life, and have enjoyed some of the best moments of my life in reading his poetry...........If Iqbal is more spiritual and mystical than Chakbast, that is probably due to his Philosophy of life—on the other hand, if Chakbast is more elegant in form, and shows greater pathos, if he appeals more to human feeling than to intellect, it is because of his environments in Lucknow........Brij Narain Chakbast's merits as a poet and artist are universally acknowledged by his contemporaries; and succeeding generations will recognise him as a great pioneer of a new school of poetry."

"××× पिछले २५ वर्षसे कवि (चकबस्त)से मेरा घनिष्ठ परिचय है। मैंने सदा ही उन्हें उनके साहित्य और जीवनके ऊँचे आदर्शोंके लिए सराहा है तथा जिन क्षणोंमें मैंने उनकी कवितायें पढ़कर आनन्द

---

[1] नये अदबी रुजहानात, पृष्ठ ६५-१००।

उठाया है, उन्हें मैं जीवनके सर्वोत्तम क्षण मानता हूँ। ××× यदि इक़बाल चकबस्तकी अपेक्षा अधिक आध्यात्मिक और रहस्यवादी हैं तो वह इसलिए कि उनके जीवनकी फ़िलॉसफ़ी ही ऐसी है—दूसरी ओर, यदि चकबस्तकी शायरीमें शब्द और शैलीकी सुन्दरता है, और उसमें अधिक करुणा है, यदि वह आदमीके मनके बजाय उसके हृदयको प्रभावित करती है, तो इसका कारण है कविका लखनऊका वातावरण। ××× कवि और कलाकारके रूपमें चकबस्तमें जो गुण हैं, उन्हें उनके समकालीन एकमतसे स्वीकार करते हैं; और आनेवाली पीढ़ियाँ उन्हें कविताके नये युगका महान प्रवर्त्तक मानेंगी ही[१]।"

चकबस्त सन् १८८२में फ़ैज़ाबादमें उत्पन्न हुए और बचपनमें ही अपने असली वतन लखनऊ आ गये। १९०५में कैनिङ्ग कॉलेजसे बी० ए० और क़ानूनकी डिगरी प्राप्त करके लखनऊमें ही वकालत प्रारम्भ की, जहाँ थोड़े ही अर्सेमें आप प्रथम श्रेणीके वकीलोंमें शुमार होने लगे। चकबस्तको शेरोशायरीका शौक़ बचपनसे ही था। कहा जाता है, कि उन्होंने ९ वर्षकी उम्रमें ही ग़ज़ल कही थी। आप विद्यार्थी-अवस्थामें भी लिखते रहे। कॉलेजके मुशायरोंमें पदक व पुरस्कार भी प्राप्त करते रहे। आप ख्यातिसे दूर भागते थे। यहाँ तक कि अपना उपनाम (तख़ल्लुस) भी नहीं रक्खा। पारिवारिक नाम 'चकबस्त'के नामसे ही लिखते रहे। आपने अपना कोई उस्ताद नहीं बनाया।

'तारीख़े-अदब उर्दू'के विद्वान् लेखक लिखते हैं कि—"चकबस्तकी ज़बान निहायत साफ़ शुस्ता और शीरीं है। कलाममें लखनऊका रङ्ग है। मगर बहतरीन क़िस्म और आला दरजेकी एक खास खुसूसियत यह भी है कि मुनासिब हिन्दी अल्फ़ाज़ कलाममें मिलाकर कलामकी शीरीनी और असरको दुबाला कर देते हैं। बसबब आला अङ्गरेज़ी-

---

[१] सुबहे वतनकी भूमिकासे।

दानीके चकवस्त मशरक़ी और मग़रबी दोनों क़िस्मकी तनक़ीदों (आलोचनाओं)से बख़ूबी आगाह थे। इसी वजहसे उनकी रायें अदबी (साहित्यिक) मुआमलातमें बहुत जँची-तुली मुन्सिफ़ाना और ग़ैर जानिबदाराना थीं। कभी किसीकी तारीफ़ या तनक़ीद आँख बन्द करके या मुबालिग़ेके साथ नहीं करते थे। जैसा कि खुद कहते हैं :—

उलझ पड़ूँ किसी दामनसे मैं वोह ख़ार नहीं।
वोह फूल हूँ जो किसीके गलेका हार नहीं॥

उनके मज़ामीन 'दाग़', 'सरशार' और उर्दू-शायरीपर निहायत आला दर्जेके हैं और बड़ी वाक़फ़ियत और मालूमातका पता देते हैं। नसरमें भी मसल नज़मके उनका पाया बहुत बुलन्द था।"[1]

चकबस्त वास्तवमें देशके वकील थे। इक़बाल भी उनके समकालीन थे। मगर इक़बाल राष्ट्र-भेरी बजाते-बजाते अज़ान देने लगे और चकबस्तने जो बिगुल उठाया उसे मरते-दम तक बजाते रहे। जब क़ौमी जहाज़को बचानेके लिए हाली और अकबरने आवाज़ बुलन्द की तो दो नौजवान ख्वाबे-ग़फ़लतसे चौंके और उन्होंने लपककर उन बूढ़े हाथोंसे चप्पू अपने हाथोंमें लेकर इस ख़ूबीसे हाथ मारे कि जहाज़ चट्टानसे टकरानेसे बाल-बाल बच गया। मगर अफ़सोस, तूफ़ान बढ़ता ही गया। ये बहादुर नौजवान जितना ही ज़्यादा जानपर खेलते गये, समुद्र उतना ही अधिक क्षुब्ध होता चला गया। इक़बाल उम्रमें बड़ा था, वह काफ़ी थक गया था। उसने समूचे जहाज़को बचता न देख पानीमें कश्ती डाल दी और जो भी बच सकें ग़नीमत है, यह सोचकर वह कश्तीमें मुसलमानोंको उतारने लगा और अपनी इस सूझमें सफल भी हुआ। मगर चकबस्तसे यह न हुआ। उसके चश्मेमें दाढ़ी और चोटी न दिखाई देकर केवल

---

[1] जमीमये तारीखे अदबे उर्दू, पृ० १५-१६।

मनुष्योंके आकुल चेहरे दिखाई दिये। मनुष्यता उसकी जाति और देश-सेवा उसका धर्म था। वह अपनी धुनमें डटा ही रहा जब तक कि वह चूर-चूर होकर समाप्त नहीं हो गया।

१२ जनवरी, १६२६को उनके स्वर्गवासपर समस्त उर्दू-संसारमें शोक छा गया। लखनऊकी अदालतें बन्द कर दी गईं। शोक-सभाएँ की गईं। व्याख्यानोंके अतिरिक्त प्रसिद्ध शायरोंने नोहे पढ़े, तारीखें कहीं। 'महशर' साहबने तो उनके इस मिसरेपर ही तारीख कहकर लोगोंको रुला दिया :—

उनके ही मिसरेसे तारीख़ है हमराह अज़ा।
'मौत क्या है, इन्हीं अजज़ाका परेशाँ होना*'॥

१—ख़ाके हिन्द (भारत की रज)

* * *

अगलीसी ताज़गी[1] है फूलोंमें और फलोंमें।
करते हैं रक़्स[2] अबतक ताऊस[3] जङ्गलोंमें॥
अबतक वही कड़क है बिजलीकी बादलोंमें।
पस्ती-सी[4] आगई है, पर दिलके हौसलोंमें॥

गुल[5] शमए अंजुमन[6] है, गो अंजुमन[7] वही है।
हुब्बेवतन[8] नहीं है, ख़ाकेवतन[9] वही है॥

---

*इस मिसरेसे १३४४ हिजरी सन् उनके स्वर्गवासका बनता है।

[1] नवीनता; [2] नृत्य; [3] मोर।
[4] निरूत्साहता; [5] बुझा हुआ।
[6] महफ़िलका चिराग़; [7] महफ़िल।
[8] स्वदेश प्रेम; [9] स्वदेशकी मिट्टी।

बरसोंसे हो रहा है बरहम[1] समाँ[2] हमारा।
दुनियासे मिट रहा है नामों निशाँ हमारा॥
कुछ कम नहीं अजलसे[3] ख्वाबेगराँ[4] हमारा।
इक लाशे बेकफ़न है हिन्दोस्ताँ हमारा॥
इल्मो-कमाल[5] ओ ईमाँ बरबाद हो रहे हैं।
ऐशोतरबके[6] बन्दे[7] ग़फ़लतमें सो रहे हैं॥

ऐ सूरे[8] हुब्बेक़ौमी[9] ! इस ख्वाबसे[10] जगा दे।
भूला हुआ फ़िसाना[11] कानोंको फिर सुना दे॥
मुर्दा तबीयतोंकी[12] अफ़सुर्दगी[13] मिटा दे।
उठते हुए शरारे[14] इस राखसे दिखा दे॥
हुब्बेवतन[15] समाए आँखोंमें नूर[16] होकर।
सरमें खुमार[17] होकर, दिलमें सुरूर[18] होकर॥

*　　*　　*

है जूयेशीर[19] हमको नूरे-सहर[20] वतनका।
आँखोंकी रोशनी है जल्वा[21] इस अंजुमनका॥

---

[1] अस्त-व्यस्त; [2] हाल; [3] मृत्युसे; [4] गहरी नींद।
[5] विद्या और कार्य-कुशलता; [6] भोग-विलासके; [7] दास।
[8] नरसिंहा बाजा; [9] जातीय प्रेम; [10] नींदसे।
[11] कहानी; [12] कुम्हलाये हृदयोंकी।
[13] मुरझाया-पन; [14] चिनगारियाँ [15] स्वदेश-प्रेम।
[16] प्रकाश; [17] उतरा हुआ नशा; [18] चढ़ता हुआ नशा।
[19] दूधकी नदी; [20] प्रभातका प्रकाश।
[21] आलोक।

हैं रश्केमहर[1] अर्रह[2] इस मंजिले कुहनका[3]।
तुलता है बर्गेगुलसे[4] काँटा भी इस चमनका॥

गर्दोग़ुबार[5] याँका ख़िलअ़त[6] है अपने तनको।
मरकर भी चाहते हैं ख़ाकेवतन[7] कफ़नको॥

२—वतन का राग

* * *

वतनपरस्त[8] शहीदोंकी[9] ख़ाक लायेंगे।
हम अपनी आँखका सुर्मा उसे बनाएँगे॥

ग़रीब माँके लिए दर्द दुख उठाएँगे।
यही पयामेवफ़ा[10] क़ौमको सुनाएँगे॥

तलब फ़िज़ूल है काँटोंकी फूलके बदले।
न लें बहिश्त[11] भी हम होमरूलके बदले॥

* * *

बसे हुए हैं मुहब्बतसे जिनको क़ौमके घर।
वतनका पास[12] है उनको सुहागसे[13] बढ़कर॥

जो शीरख़्वार[14] हैं हिन्दोस्ताँके लख़्तेजिगर[15]।
यह माँके दूधसे लिक्खा है उनके सीनेपर[16]॥

---

[1] सूर्यको लज्जित करनेवाला; [2] बालुकण; [3] प्राचीन-पथका; [4] फूलकी पत्तीसे; [5] मिट्टी, धूल; [6] पोशाक; [7] स्वदेश-रज; [8] देशभक्त; [9] प्राण समर्पित करनेवालोंकी; [10] कृतज्ञताका संदेश; [11] स्वर्ग; [12] खयाल; [13] सौभाग्यसे; [14] दुग्धपायी; [15] कलेजेके टुकड़े; [16] छातीपर।

तलब फ़िज़ूल है काँटोंकी फूलके बदले।
न लें बहिश्त भी हम होमरूलके बदले॥

* * *

यह जोशेपाक[१] ज़माना दबा नहीं सकता।
रगोंमें ख़ूँकोहरारत[२] मिटा नहीं सकता॥
ये आग वो है जो पानी बुझा नहीं सकता।
दिलोंमें आके यह अरमान[३] जा नहीं सकता॥

तलब फ़िज़ूल है काँटोंकी फूलके बदले।
न लें बहिश्त भी हम होमरूलके बदले॥

३—पयामे-वफ़ा

* * *

हो चुकी क़ौमके मातममें[४] बहुत सीनाज़नी[५]।
अब हो इस रंगका संन्यास[६] यह है दिलमें ठनी॥
मादरे-हिन्दकी[७] तस्वीर हो सीनेपै बनी।
बेड़ियाँ पैरमें हों और गलेमें कफ़नी॥

हो यह सूरतसे अयाँ[८] आशिक़े आज़ादी[९] हैं।
क़ुफ़्ल[१०] है जिनकी ज़बाँपर यह वह फ़रियादी हैं॥

आजसे शौक़ेवफ़ाका[११] यही जौहर[१२] होगा।
फ़र्श काँटोंका हमें फूलोंका बिस्तर होगा॥

---

[१] पवित्र उत्साह; [२] रक्तकी गर्मी; [३] कामना; [४] दुःख, शोकमें; [५] छाती पीटना; [६] दीक्षित होना, रंगमें रंगना; [७] भारतमाताकी; [८] प्रकट; [९] स्वतन्त्रताके प्रेमी; [१०] ताला; [११] सद्व्यवहारकी लगनका; [१२] गुण, भेष।

फूल हो जाएगा छातीपै जो पत्थर होगा।
क़ैदख़ाना जिसे कहते हैं, वही घर होगा॥

सन्तरी देखके इस जोशको शरमायेंगे।
गीत जंजीरकी झनकारपै हम गायेंगे॥

* * *

४—फ़रियादे-क़ौम

* * *

लुटे हैं यूँ कि किसीकी गिरहमें दाम नहीं।
नसीब[१] रातको पड़ रहनेका मुक़ाम नहीं॥

यतीम बच्चोंके खानेका इन्तज़ाम नहीं।
जो सुबह ख़ैरसे[२] गुज़री उमीदे-शाम नहीं॥

अगर जिये भी तो कपड़ा नहीं बदनके लिए।
मरे तो लाश पड़ी रह गई कफ़नके लिए॥

नसीब चैन नहीं भूख-प्यासके मारे।
हैं किस अज़ाबमें[३] हिन्दोस्तानके प्यारे॥

तुम्हें तो ऐशके सामान जमा हैं सारे।
यहाँ बदनसे रवाँ[४] हैं लहूके फ़व्वारे॥

जो चुप रहें तो हवा क़ौमकी बिगड़ती है।
जो सर उठायें तो कोड़ोंकी मार पड़ती है॥

* * *

---

[१] प्राप्त, भाग्यमें; [२] कुशलसे; [३] विपत्तिमें।
[४] जारी।

अगर दिलोंमें नहीं अब भी जोश ग़ैरतका[1]।
तो पढ़ दो फ़ातहा[2] क़ौमीवक़ारोइज़्ज़तका[3]॥
वफ़ाको[4] फूँक दो मातम[5] करो मुहब्बतका।
जनाज़ा[6] लेके चलो क़ौमी-दीनो-मिल्लतका[7]॥
निशाँ मिटा दो उमङ्गोंका और इरादोंका।
लहूमें ग़र्क़[8] सफ़ीना[9] करो मुरादोंका[10]॥

* * *

भँवरमें क़ौमका बेड़ा है हिन्दियो! हुशियार।
अँधेरी रात है, काली घटा है और मँझधार॥
अगर पड़े रहे ग़फ़लतकी नींदमें सरशार[11]।
तो ज़ेरेमौजेफ़ना[12] होगा आबरूका[13] मज़ार[14]॥
मिटेगी क़ौम यह बेड़ा तमाम डूबेगा।
जहाँमें भीषमो अर्जुनका नाम डूबेगा॥

* * *

रहेगा माल, न हमराह[15] जायगी दौलत।
गई तो क़ब्र तलक साथ जायगी ज़िल्लत[16]॥
करो जो एक रुपयेसे भी क़ौमकी ख़िदमत।
तुम्हारी ज़ातसे हो इक यतीमको[17] राहत॥

---

[1] लज्जाका; [2] तिलांजलि देना; [3] जातीय प्रतिष्ठाका; [4] नेकीको; [5] शोक, (यहाँ त्याग); [6] अरथी; [7] जातीय धर्म और मेल-जोलका; [8] डुबाना; [9] नाव; [10] अभीष्ट मनोरथोंका; [11] मस्त, बेहोश; [12] मृत्युकी लहरोंके नीचे; [13] प्रतिष्ठाका; [14] क़ब्र; भावार्थ यह हमारी प्रतिष्ठाका अन्त हो जाएगा; [15] साथ; [16] बदनामी; [17] अनाथको।

मिले हिजाबकी[1] चादर किसीकी अस्मतको[2]।
कफ़न नसीब[3] हो शायद किसीकी मैयतको[4]॥

जो दबके बैठ रहे सर उठाओगे फिर क्या ?
उदूए-क़ौमको[5] नीचा दिखाओगे फिर क्या ?

रहेगा क़ौल यही उनसे उनकी माओंका—
"लहू रगोंमें तुम्हारी है बेहयाओंका"॥

मिटा जो नाम तो दौलतकी जुस्तजू[6] क्या है ?
निसार[7] हो न वतनपर, तो आबरू क्या है ?
लगा दे आग न दिलमें तो आरज़ू[8] क्या है ?
न जोश खाय जो ग़ैरतसे वह लहू क्या है ?

फ़िदा[9] वतनपै जो हो, आदमी दिलेर है वोह।
जो यह नहीं तो फ़क़त हड्डियोंका ढेर है वोह॥

५—फूलमाला

(कन्याओंको सम्बोधन करते हुए)

रविशेख़ामपै[10] मर्दों की न जाना हर्गिज़।
दाग़ तालीममें[11] अपनी न लगाना हरगिज़॥
नाम रक्खा है नुमायशका[12] तरक़्क़ी व रिफ़ॉर्म[13]।
तुम इस अन्दाज़के[14] धोखेमें न आना हर्गिज़॥

---

[1] लाजकी; [2] पाकदामनीको; [3] प्राप्त; [4] लाशको; [5] जातीय शत्रुको; [6] तलाश, खोज; [7] न्योछावर; [8] कामना, इच्छा; [9] आसक्त; [10] कच्चे ढंगपर; [11] शिक्षामें; [12] दिखलावेका; [13] उन्नति व सुधार; [14] ढंगके।

रंग है जिनमें मगर बूए-वफ़ा[1] कुछ भी नहीं।
ऐसे फूलोंसे न घर अपना सजाना हर्गिज़ ॥

नक़्ल यूरपकी मुनासिब है मगर याद रहे।
ख़ाकमें ग़ैरते-क़ौमी[2] न मिलाना हर्गिज़ ॥

ख़ुदपरस्तीको[3] लक़ब[4] देते हैं आज़ादीका।
ऐसे इख़लाक़पै[5] ईमान न लाना हर्गिज़ ॥

रङ्गो रोग़न[6] तुम्हें यूरुपका मुबारिक लेकिन।
क़ौमका नक़्श न चेहरेसे मिटाना हर्गिज़ ॥

जो बनाते हैं नुमाइशका खिलौना तुमको।
उनकी ख़ातिरसे यह ज़िल्लत[7] न उठाना हर्गिज़ ॥

रुख़से[8] पर्देको हटाया तो बहुत ठीक किया।
पर्दएशर्मको[9] दिलसे न उठाना हर्गिज़ ॥

नक़्द इख़लाक़का[10] हम नलकी तरह हार चुके।
तुम हो दमयन्ति, यह दौलत न लुटाना हर्गिज़ ॥

गो[11] बुज़ुर्गोंमें तुम्हारे न हो इस वक़्तका रङ्ग।
इन ज़ईफ़ोंको[12] न हँस-हँसके रुलाना हर्गिज़ ॥

होगा परलय जो गिरा आँखसे इनके आँसू।
बचपनेसे न यह तूफ़ान उठाना हर्गिज़ ॥

---

[1] गुणोंकी गन्ध; [2] जातीय लज्जा।
[3] स्वच्छन्दताको; [4] पदवी।
[5] शिष्टाचारपर; [6] पाउडर, इत्यादि।
[7] बदनामी; [8] चेहरेसे; [9] लाजके पर्देको।
[10] शिष्टाचारका; [11] यद्यपि; [12] वृद्धोंको।

— ६ —

क्या कहूँ कौन हवा सरमें भरी रहती है।
बे-पिए आठ पहर बेख़बरी रहती है॥

— ७ —

अपने ही दिलका पियाला पिये मदहोश हूँ मैं।
झूठी पीता नहीं मग़रिबकी[1] वह मै-नोश[2] हूँ मैं॥

— ८ —

आबरू[3] क्या है, तमन्नाए-वफ़ामें[4] मरना।
दीन[5] क्या है, किसी कामिलकी[6] परस्तिश[7] करना॥

— ९ —

गुल न हो दिलके शिवालेमें हमैयतका[8] चिराग़।
बेगुनाहोंके लहूका न हो तलवारमें दाग़॥
रास्ता है यही क़ौमोंकी तबाहीके लिए।
ख़ून मासूमका[9] दोज़ख़[10] है सिपाहीके लिए॥

— १० —

वह ख़ुदग़रज़ हैं जो दौलतपै जान देते हैं।
वही हैं मर्द जो विद्याका दान देते हैं॥

---

[1] पश्चिम (यूरोप)की; [2] शराबी।
[3] प्रतिष्ठा, इज़्ज़त; [4] नेकीकी अभिलाषामें।
[5] धर्म; [6] सिद्ध पुरुषकी।
[7] उपासना, सेवा; [8] सदाचरणका।
[9] निरपराधका; [10] नरक।

— ११ —

क़ौमी मुसद्दस

गुनाह क़ौमके धुल जाएँ अब वोह काम करो।
मिटे कलङ्कका टीका वह फ़ैजेआम[1] करो॥
निफ़ाक़ो[2] जुहलको[3] बस दूरसे सलाम करो।
कुछ अपनी क़ौमके बच्चोंका इन्तज़ाम करो॥
जो तुमने अब भी न दुनियामें काम कर जाना।
तो यह समझ लो कि बेहतर है इससे मर जाना॥

अगर जो ख़्वाबसे[4] अब भी न तुम हुए बेदार[5]।
तो जान लो कि है इस क़ौमकी चिता तैयार॥
मिटेगा दीन[6] भी और आबरू[7] भी जाएगी।
तुम्हारे नामसे दुनियाको शर्म आएगी॥
अगर हो मर्द न यूँ उम्र रायगाँ[8] काटो।
ग़रीब क़ौमके पैरोंकी बेड़ियाँ काटो॥

यह कारेख़ैर[9] वोह हो नाम चारसू[10] रह जाय।
तुम्हारी बात ज़मानेके रूबरू[11] रह जाय॥
जो ग़ैर हैं उन्हें हँसनेकी आरज़ू[12] रह जाय।
ग़रीब क़ौमकी दुनियामें आबरू रह जाय॥

---

[1] व्यापक दान; [2] द्वेष; [3] मूर्खताका।
[4] स्वप्नसे; [5] जागृत; [6] धर्म।
[7] प्रतिष्ठा; [8] व्यर्थ; [9] भला कार्य।
[10] चारों तरफ़; [11] समक्ष; [12] अभिलाषा।

– १२ –

मज़हबे शायरान

पीता हूँ वह मय, नशा उतरता नहीं जिसका।
खाली नहीं होता है वह पैमाना है मेरा॥
जिसजा[1] हो खुशी, है वह मुझे मंज़िले-राहत[2]।
जिस घरमें हो मातम[3], वह अज़ाखाना[4] है मेरा॥
जिस गोशएदुनियामें[5] परस्तिश[6] हो वफ़ा की।
काबा है वही और वही बुतखाना है मेरा॥

– १३ –

जुनूने[7] हुब्बेवतन का मज़ा शबाब[8] में है।
लहू में फिर यह रवानी[9] रहे-रहे, न रहे॥
जो दिल में ज़ख्म लगे हैं वह खुद पुकारेंगे।
ज़बाँ को सैफ़बयानी[10] रहे-रहे, न रहे॥

– १४ –

मिटने वालों को वफ़ा[11] का यह सबक़ याद रहे।
बेड़ियाँ पैरमें हों, और दिल आज़ाद रहे॥

---

[1] स्थानमें; [2] सुखद स्थान।
[3] शोक, रोना-पीटना; [4] शोकगृह।
[5] संसारके कोनेमें; [6] पूजा।
[7] देशभक्तिका उन्माद; [8] युवावस्था।
[9] जोश, बहाव; [10] कथन-शक्ति।
[11] नेकीका।

दिल वह दिल है जो सदा ज़ब्त[1]से नाशाद[2] रहे।
लब[3] वह लब है जो न शर्मिन्दये[4] फ़रियाद रहे॥

खुशनवाईका[5] सबक़ मैंने क़फ़समें[6] सीखा।
क्या कहूँ और, सलामत मेरा सैयाद[7] रहे॥

मुझको मिल जाय चहकनेके लिए शाख़ मेरी।
कौन कहता है कि गुलशनमें न सैयाद रहे॥

जज़बए-क़ौम[8]से ख़ाली न हो सौदाए-शबाब[9]।
वह जवानी है जो इस शौक़में बरबाद रहे॥

— १५ —

यह बेकसी[10] भी अजब बेकसी है दुनियामें।
कोई सताए हमें हम सता नहीं सकते॥

चिराग़ क़ौमका रौशन है अर्शपर[11] दिलके।
इसे हवाके फ़रिश्ते[12] बुझा नहीं सकते॥

— १६ —

दरे तदबीरपर[13] सर फोड़ना शेवा[14] रहा अपना।
वसीले[15] हाथ ही आये न क़िस्मत आज़माईके॥

---

[1] सहन-शक्ति; [2] उदास, रंजीदा; [3] होठ।
[4] आत्म-निवेदन करनेसे शर्म आना, स्वार्थकी बात करते हुए सकुचाना।
[5] मधुर वाणी; [6] पिंजरेमें; [7] शिकारी, चिड़ीमार।
[8] जातीय प्रेम; [9] जवानीका नशा; [10] लाचारी।
[11] आस्मानपर; [12] देवता; [13] पुरुषार्थकी चौखटपर।
[14] कर्त्तव्य, आदत, ढंग; [15] साधन।

— १७ —

अगर दर्दे-मुहब्बतसे न इन्साँ[1] आश्ना[2] होता।
न मरनेका सितम[3] होता, न जीनेका मज़ा होता॥

हज़ारों जान देते हैं बुतोंकी[4] बेवफ़ाईपर[5]॥
अगर इनमेंसे कोई बावफ़ा[6] होता तो क्या होता?

हविस[7] जीनेकी है यूँ उम्रके बेकार कटनेपर।
जो हमसे ज़िन्दगीका हक़ अदा होता तो क्या होता?

यह मरना बेहिजाबाना[8] निगाहें[9] क़हर[10] करती हैं।
मगर हुस्ने-हयापरवरका[11] आलम[12] दूसरा होता।

ज़बाँके ज़ोरपर हँगामाआराईसे[13] क्या हासिल[14]?
वतनमें एक दिल होता, मगर दर्द-आश्ना[15] होता॥

— १८ —

अहले[16]हिम्मत मंज़िलेमक़सूद[17] तक आ ही गये।
बन्दए[18]तक़दीर क़िस्मतका गिला[19] करते रहे॥

— १९ —

निफ़ाक़[20] गबरू[21] मुसलमाँका यूँ मिटा आख़िर।
यह बुतको[22] भूल गये, वह ख़ुदाको भूल गये॥

---

[1] मनुष्य; [2] परिचित; [3] दुख, रंज; [4] माशूक़, प्रेमिकाकी; [5] कृतघ्नतापर; [6] भलामानस, कृतज्ञ; [7] तृष्णा; [8] बेपर्दा, बेशर्म; [9] आँखें; [10] ग़ज़ब; [11] लज्जायुक्त सौन्दर्यका; [12] दृश्य; [13] फ़िसाद उठानेसे; [14] लाभ; [15] दुखमें सहानुभूति रखनेवाला; [16] साहसी पुरुष; [17] अभीष्ट स्थान; [18] प्रारब्धको ही सब कुछ समझनेवाले; [19] शिकायत; [20] झगड़ा; [21] आतिशपरस्त; [22] मूर्त्ति (पूजा) को।

— २० —

बाग़बाँने यह अनोखा सितम[१] ईजाद[२] किया।
आशियाँ[३] फूँकके पानीको बहुत याद किया॥

वरेज़िन्दाँपै[४] लिखा है किसी दीवानेने—
'वही आज़ाद है जिसने इसे आबाद किया'॥

जिसपर अहबाब[५] बहुत रोए, फ़क़त इतना था।
घरको वीरान किया, क़ब्रको आबाद किया॥

इसको नाक़दरिये[६] आलमका सिला[७] कहते हैं।
मर चुके हम तो ज़मानेने बहुत याद किया॥

— २१ —

राहतसे[८] भी अज़ीज़[९] है राहतकी आरज़ू[१०]।
दिल ढूँढ़ता है सिलसिलये[११]इन्तज़ारको॥

— २२ —

कुछ दाग़ गुनाहोंके[१२] हैं कुछ अश्केनदामत[१३]।
इबरतका[१४] मुरक़्क़ा[१५] है मेरे दामनेतरमें[१६]॥

---

[१] अत्याचार; [२] आविष्कार; [३] घोंसला।
[४] कारावासके द्वारपर; [५] मित्र, कुटम्बी।
[६] नेकीके प्रति संसारकी उपेक्षा; [७] बदला।
[८] चैन, सुखसे; [९] सुप्रिय; [१०] अभिलाषा।
[११] प्रतीक्षाका छोर, मार्ग; [१२] पापोंके।
[१३] प्रायश्चित्त (शरमिन्दगी)के आँसू।
[१४] नसीहत, शिक्षाका; [१५] तसवीर; [१६] भींगे वस्त्रोंमें।

— २३ —

यह ग़लत है कि हमें तर्जेफ़ुग़ाँ[1] याद नहीं।
अब वह आलम[2] है कि गुंजाइशे[3]फ़रियाद नहीं॥
जब कोई ज़ुल्म नया करते हैं, फ़र्माते हैं—
"अगले वक़्तोंके हमें तर्जेसितम[4] याद नहीं"॥

— २४ —

मुझसे रौशन इन दिनों दैरो[5] हरमका[6] नाम है।
पाएबुतपर[7] है जबीं[8] लबपर[9] ख़ुदाका नाम है॥
देखना है हुस्नके[10] जल्वे[11] तो बुतख़ानेमें[12] आ।
तेरे काबेमें तो बस वाइज़[13]! ख़ुदाका नाम है॥
शर्त है पीकर मुकरना, पारसाईके[14] लिए।
जो सरे बाज़ार पीता है वही बदनाम है॥
मेरे मज़हबमें है वायज़! तर्केमयनोशी[15] हराम[16]।
छोड़कर पीता हूँ फिर, तौबा[17] इसीका नाम है॥

— २५ —

मुफ़लिसी मेरी मुहब्बतकी कसौटी बन गई।
हिम्मते अहबाबके[18] जौहर नुमायाँ[19] हो गये॥

---

[1] रोनेका ढंग; [2] हालत, दशा; [3] प्रार्थनाकी ज़रूरत; [4] अत्याचारके तरीक़े; [5] मन्दिर; [6] मसजिदका; [7] मूर्त्तिके चरणपर; [8] मस्तक; [9] होठपर; [10] सौन्दर्यके; [11] प्रकाश, करामात; [12] मन्दिरमें; [13] व्याख्याता; [14] नेकचलनीके; [15] शराबका त्याग; [16] पाप; [17] प्रतिज्ञा, प्रायश्चित्त; [18] मित्रोंकी हिम्मतके; [19] प्रकट।

— २६ —

वर्वेदिल, पासेवफ़ा,[1] जज़्बए[2]ईमाँ होना।
आदमीयत है यही, औ यही इन्साँ होना॥

दुनियासे ले चला है जो तू हसरतोंका[3] बोझ।
काफ़ी नहीं है सरपै गुनाहोंका[4] बार[5] क्या?
बादेफ़ना[6] फ़िज़ूल है नामोनिशाँकी फ़िक्र।
जब हम नहीं रहे तो रहेगा मज़ार[7] क्या?

— २८ —

आशना[8] हों, कान क्या, इन्सानकी फ़रियादसे?
शेख़को[9] फ़ुर्सत नहीं मिलती ख़ुदाकी यादसे॥

— २९ —

उसे यह फ़िक्र है हरदम नया तर्जेजफ़ा[10] क्या है?
हमें यह शौक़ है देखें सितमकी[11] इन्तहा[12] क्या है?
गुनहगारोंमें[13] शामिल हैं गुनाहोंसे नहीं वाक़िफ़।
सज़ाको जानते हैं हम, ख़ुदा जाने ख़ता क्या है?
नया बिस्मिल[14] हूँ मैं वाक़िफ़ नहीं रस्मे-शहादतसे[15]।
बता दे तूही ऐ ज़ालिम! तड़पनेकी अदा क्या है?

---

[1] प्रीतिका बर्त्ताव; [2] ईमानदारीका गुण; [3] अभिलाषाओंका; [4] पापोंका; [5] बोझ; [6] मृत्युके बाद; [7] क़ब्र; [8] परिचित; [9] धर्माचार्यको; [10] अत्याचारका ढंग; [11] अत्याचारकी; [12] अन्त, हद; [13] अपराधियों; [14] अर्धमृतक, वेदनासे तड़पनेवाला; [15] मरनेके न्योछवर होनेके रीति-रिवाजसे।

चमकता है शहीदोंका लहू क़ुदरतके परदेमें।
शफ़क़का[1] हुस्न[2] क्या है, फूलकी रङ्गी क़ँबा[3] क्या है?

— ३० —

अभी नया जोश इश्क़का है सलाह सुनते नहीं किसीकी।
करेंगे आख़िरमें फिर वही हम जो चार यार आश्ना[4] कहेंगे॥

हमारे और ज़ाहिदोंके[5] मज़हबमें, फ़र्क़ अगर है तो इस क़दर है।
कहेंगे हम जिसको पासे इन्सां[6], वह उसको ख़ौफ़े ख़ुदा कहेंगे॥

— ३१ —

चमनको दीदयेउल्फ़तसे[7] देख ऐ बुलबुल!
गुलोंसे फूटके रङ्गे-ख़िज़ां[8] निकल आया॥

अज़लके[9] दिन जो तबाहीकी फ़ाल देखी गई।
तो नामे किश्वरे हिन्दोस्तां[10] निकल आया॥

— ३२ —

जिसकी दुनियाको ख़बर हो यह वह नासूर[11] नहीं।
तेरे मातमको[12] नुमाइश[13] मुझे मंज़ूर नहीं॥

---

[1] सूर्यास्तके समयका दृश्य; [2] सौन्दर्य।
[3] पोशाक; [4] मित्र; [5] परहेज़गारोंके।
[6] मनुष्यका कर्त्तव्य; [7] प्रेमदृष्टि।
[8] पतझड़का रंग; [9] सृष्टिके आदिमें।
[10] भारत देश; [11] कभी न भरनेवाला घाव।
[12] मृत्यु शोककी; [13] प्रदर्शन, दिखलावा।

– ३३ –

ग़रूरो जुहलने[1] हिन्दोस्ताँको लूट लिया।
बजुज़[2] निफ़ाक़के[3] अब ख़ाक भी वतनमें नहीं॥

– ३४ –

गुलोंने बाग़ छोड़ा तंग आकर जौरेगुलचींसे।
चमन वीरान होता है, ख़बर लें बाग़बाँ अपनी॥

– ३५ –

जिसे है फ़िक्र मरहमकी, उसे क़ातिल समझते हैं।
इलाही ख़ैर हो, यह ज़ख़्म अच्छा हो नहीं सकता॥
कमालेबुज़दिली है पस्त होना अपनी आँखोंमें;
अगर थोड़ीसी हिम्मत हो तो फिर क्या हो नहीं सकता?
उभरने ही नहीं देती यहाँ बेमायगी[4] दिलकी,
नहीं तो कौन क़तरा है जो दरिया हो नहीं सकता?

– ३६ –

फ़नाका[5] होश आना, जिन्दगीका दर्देसर जाना।
अजल[6] क्या है ख़ुमारेबादएहस्ती[7] उतर जाना॥

– ३७ –

शिरकतेग़मकी[8] अज़ीज़ोंसे[9] तमन्ना[10] क्या हो।
इम्तहाँ[11] इनकी वफ़ाका मुझे मंज़ूर नहीं॥

---

[1] घमण्ड और नादानीने; [2] सिवाय; [3] द्वेषसे; [4] बेसामानी; [5] नाश, बरबादीका; [6] मृत्यु; [7] जिन्दगीकी शराबका नशा; [8] दुख बँटानेकी; [9] स्नेही मित्रोंसे; [10] आशा; [11] परीक्षा।

— ३८ —

अबकी तो शामेग़मकी[१] सियाही कुछ और है।
मंज़ूर है तुझे मेरे परवरदिगार क्या?॥

— ३९ —

मेरे अहबाब पेश आते हैं मुझसे बेवफ़ाईसे।
वफ़ादारीमें शायद कर रहे हैं इम्तहाँ मेरा॥

— ४० —

जिन्दगी नाम था जिसका उसे खो बैठे हम।
अब उमीदोंकी फ़क़त जलवागरी[२] बाक़ी है॥

२८ अगस्त १९४४

---

[१] रंजकी सन्ध्याकी; [२] चमत्कार।

जागरण

: ७ :

सन् १६१४-१८ के महासमरके बाद राजनैतिक चेतना

साम्राज्य-विरोधी, मज़दूर-किसान-हितैषी शायर

जागरण

सन् १९१४-१८के महासमरके बाद
राजनैतिक चेतना

जिस तरह १८५७के विद्रोहके झटकेसे भारतवासियोंकी तन्द्रा दूर हुई, और अनेक परिवर्त्तनोंके साथ उर्दू-शायरीने भी अपना परिधान बदला, उसी तरह १९१४-१८के गत महासमरके पश्चात् भारतमें जागरणके चिन्ह दिखाई देने लगे। महासमरके कारण विश्वका नक़्शा ही बदल गया। कोई देश मुंहके बल औंधा पड़ा और कोई सीना तानकर खड़ा होनेमें समर्थ हो गया। कुछ देश पराधीनताके बन्धनमें जकड़े गये और कुछने स्वतंत्रता देवीका वरदान पाया। कितने ही लोग मटियामेट हो गये और कितने ही मालामाल बन बैठे। अखिल विश्वमें एक अभूतपूर्व परिवर्त्तन हो उठा। कुम्भकर्णी नींदको मात करनेवाले भारतकी भी आँखें खुलीं। लाखों लालोंकी बलि देनेपर भी उसे अँगूठा दिखाया गया। युवती स्त्रियाँ भरी जवानीमें माँगका सिंदूर धो बैठीं। वृद्धाएँ निपूती हो गईं। दुधमुँहे बच्चे बिलखते हुए अनाथ हो गये। भारतके धन-जनकी पूर्णाहुति दी गई। परिणाम-स्वरूप इसके शासक अजेय बन बैठे और यह मुंह देखता ही रह गया। इतने महान त्याग और उपकारके एवज़में पारितोषिक-रूपमें कुछ देनेके बजाय गिड़गिड़ाते भारतपर 'रौलट ऐक्ट' लादकर उल्टा उसकी पीठमें लात मार दी। रोटीके बदले गोली खानेको मिली। इस कृतघ्नताके अपमानको भारतीय सहन न कर सके। और सहन करते भी कैसे? भारतवासी भी आख़िर मनुष्य थे। मनुष्य तो मनुष्य, दबाव पड़नेपर तो पाँवोंकी ठुकराई हुई मिट्टी भी सरपर आ जाती है :—

गर्द उड़ी आशिक़की तुर्बतसे तो झुँझलाकर कहा—
"वाह ! सर चढ़ने लगी पाँवोंकी ठुकराई हुई ॥"
—अज्ञात्

अतः सारे भारतमें एक कोहराम मच गया। महात्मा गाँधीने आगे बढ़कर धोंसेपर चोट जमाई, और उनके नेतृत्वमें सामूहिक आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। ६ अप्रैल १६१६को समग्र भारतमें विरोध-स्वरूप विराट हड़ताल हुई। उस रोज़ बालकों तकने उपवास किये। मल्लाहों, क़ुलियों और ताँगेवालोंने भी काम नहीं किया। विरोध-प्रदर्शन करनेके लिए जनसमूह उमड़ पड़ा। शान्त किन्तु आर्त्तस्वरमें अपनी वेदना व्यक्त करनेको मुँह खोला तो निहत्थोंपर गोलियोंकी बौछार हुई। इतने भयानक दमनके बाद भी आन्दोलन उग्रतर होता गया। मुसलमान भी टर्कीके कारण क्षुब्ध थे। अतः हिन्दू-मुस्लिम संगठित हो गये और उनकी वेदना असहयोग आन्दोलनके रूपमें फूट पड़ी। सारे भारतमें जागरणके चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे। कांग्रेस द्वारा कॉलिजों, कौंसिलों, अदालतों और विदेशी वस्तुओंके बहिष्कारका प्रस्ताव पास होते ही अनेक वकीलोंने वकालत छोड़कर, हज़ारों विद्यार्थियोंने कॉलिजसे निकलकर, कौंसिल-मेम्बरोंने कौंसिलको धता बताकर आन्दोलनको प्रचण्ड रूप देनेमें सक्रिय भाग लिया। जनसाधारणने विदेशी वस्त्र, शराब आदिका ऐसा बहिष्कार किया कि लंकाशायर डाँवाडोल हो गया। आन्दोलनको कुचलनेके लिए गोलियाँ चलाई गईं, जेलख़ाने भरे गये, घर-बार नीलाम किये गये; परन्तु आन्दोलन उभरता ही गया।

साहित्यपर देशकी परिस्थिति और समयका बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है। अतः इस युगान्तर उत्पन्न करनेवाली स्थितिसे उर्दू-शायरी कैसे अछूती रह सकती थी? घरमें आग लगनेपर मादकसंगीत कैसे गाया जा सकता था? अतः उर्दू-शायरोंने भी अपना रुख़ बदला। देशके नेताओंके बलिदान और त्यागके ऊपर नज़्में लिखी जाने लगीं। परा-

धीनता, स्वतंत्रता, हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य, बहिष्कार, जलियानवाला बाग़, आदिपर काफ़ी लिखा गया। इस मैदानके शूरमा ज़फ़र, लालचन्द फ़लक, किशनचन्द ज़ेबा आदिने अच्छे हाथ दिखाए। १९१४से २५ तकका युग राजनैतिक क्षेत्रमें उर्दूका प्रवेश-युग है। शनैः शनैः भारतमें किसान-मज़दूर, साम्राज्यवाद, लोकतंत्रवाद, ग्रामोद्धार, बेकारी, विद्रोह, आन्दोलनोंका दौर आया तो उर्दू-शायरी जवानीकी चौखटपर खड़ी थी। आगेके पृष्ठोंमें इसी युवा युगकी झाँकी मिलेगी। प्रारम्भकी राजनैतिक गतिविधिकी शायरी जान-बूझकर छोड़ दी गई है।

२५ मार्च १९४५

१४

शबीर हसन खाँ 'जोश' मलीहाबादी

(जन्म सन् १८९६)

इस युगके शायरोंमें 'जोश'का नाम सबसे पहले आता है। १८५७के विद्रोहके बाद 'आज़ाद' और 'हाली'के प्रयत्नसे उर्दू-शायरी जम्हाइयाँ और करवट-सी लेती हुई मालूम होती है। 'इक़बाल' और 'चकबस्त'के प्रयत्नसे उसकी नींद उचाट होती है। ये लोग युगान्तरकारी थे। उर्दू-शायरीके युगान्तरकारी महलका 'आज़ाद' और 'हाली'ने शिलारोपण किया, 'इक़बाल' और 'चकबस्त'ने दीवारें खड़ी कीं और 'जोश'ने उनके अधूरे कामको पूरा किया।

'जोश' स्पष्टवादी हैं। जो उनके मनमें होता है वही ज़बानपर, और नोकेक़लमसे काग़ज़पर आता है। वह अपने भावोंको शायरीके रंगीन पर्देमें छुपाकर तीर नहीं छोड़ते, अपितु एक वीर सैनिककी भाँति ललकारकर मैदानमें आते हैं। सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक गढ़ोंपर इस वीरता-धीरतासे उन्होंने आक्रमण किया है, वह करारी चोट पहुँचाई है कि बरबस मुँहसे वाह-वाह निकल पड़ती है। 'जोश'ने बादशाहोंकी मसनवी न लिखकर किसानका गुणगान किया है। फ़रिश्तेसे बेहतर मज़दूरको समझा है। भारतपर जन्नतको क़ुरबान किया है। दोज़ख़से बदतर उन्होंने साम्राज्यवादको बताया है। 'जोश'की कहानी उनकी ही ज़बानी सुनिये :—

"मैंने नौ बरसकी उम्रसे शेर कहना शुरू कर दिया था। जब मेरे दूसरे हमसिन बच्चे पतंग उड़ाते और गोलियाँ खेलते थे, उस वक़्त किसी

अलहदा गोशेमें शेर मुझसे अपनेको कहलवाया करता था। शायरीसे जब फ़ुर्सत पाता था तो एक ऊँची-सी मेज़पर बैठकर साथी बच्चोंको जो जीमें आता अनाप-शनाप दर्स (उपदेश) दिया करता था। दर्स देते वक़्त मेरी मेज़पर एक पतला-सा बेंत रखा रहता था। ग़ौरसे न सुननेवाले बच्चोंको मैं बुरी तरह मारता था। मैं लड़कपनमें बलाका ग़ौलाख़ू था। ज़रा-सी ख़िलाफ़ बातपर मेरे मुँहसे चिनगारियाँ निकलने लगती थीं। तीस फ़ी सदी ज़मानेकी गर्दिश और सत्तर फ़ी सदी फ़िक्र, परेशानी और मुहब्बतने मेरे मिज़ाजको अब इस क़दर बदल दिया है कि मुझे ख़ुद हैरत होती है।"

"शायरी करते हुए यह मेरी चौथी पुश्त है। मेरा लड़का और मेरी लड़की भी मौज़ूँतबह हैं। अगर आइन्दा यह दोनों शायरी करेंगे तो 'पाँचवीं पुश्त है शब्बीरकी मद्दाहीमें' कहनेके मुस्तहक़ होंगे। मेरे वालिदने मुझे शायरीसे हमेशा रोका और सख़्तीके साथ रोका। फ़र्माते—'बेटा! शायरी मनहूस चीज़ है। अगर इसमें पड़ोगे तो तबाह हो जाओगे।' एक रोज़ मैंने बड़ी जिसारतसे काम लेकर डरते-डरते सवाल किया—'आप और दादामियाँ भी तो शेर कहते हैं, वो तो तबाह नहीं हुए, मैं क्यों तबाह हो जाऊँगा?' उन्होंने आँखोंमें आँसू भरकर जवाब दिया कि 'चार-पाँच पुश्तोंसे हमारी जायदाद लड़कों और लड़कियोंमें तक़सीम-दर-तक़सीम होती चली आ रही है, और तुम्हारे दादाने अपने कुछ ऊपर सौ लड़कों और लड़कियोंमें अपने ताल्लुक़ेको जिस तौरसे तक़सीम फ़रमाया है, उसके मायने हैं कि जो जायदाद मेरे हिस्सेमें आई है वोह मेरे बाद तुम तीनों भाइयों और चारों बहनोंमें तक़सीम होनेके बाद हरगिज़ इस क़ाबिल नहीं रहेगी कि एक शायरकी ज़ौक़े-ख़ानुमाँबरदारीको बरदाश्त कर सकें।' चूनांचे वही हुआ जिसका मेरे बापको अन्देशा था।"

"घरमें दौलत पानीकी तरह बहती फिरती थी। हुकूमतका तनतना भी शामिल था। ज़िन्दगी और ज़िन्दगीकी तल्ख़ियोंसे क़तई नावाक़िफ़ियत। फिर भी, मुझे याद है कि कोई शै मेरे दिलमें रह-रहकर चुभा

करती थी। साथ ही मुझे हुस्नेमनाज़िर (प्राकृतिक सौन्दर्य)से ख़ुशी और हुस्नेइन्सानीसे दुख महसूस हुआ करता था। यह सब क्यों होता था, मैं नहीं समझ पाता था।....उन दिनों नमाज़का सख़्त पाबन्द था। दाढ़ी रख ली थी, और कमरा बन्द करके घंटों इबादतमें खोया रहता था। चारपाईपर लेटना, गोश्त खाना, तर्क कर दिया था। एक मशहूर ख़ानक़ाहके सज्जादहनशींके हाथपर बेत कर ली थी। ज़रा-ज़रा-सी बातमें मेरे आँसू निकल आते थे।....मैं कबीर, टैगोरकी शायरीका दिलदादा और हाफ़िज़ेशीराज़का परिस्तार था। .... लेकिन कभी-कभी यह भी महसूस होता था जैसे मेरे दमाग़के अन्दर कोई ख़तरनाक कमानी खुल रही है, जो आख़िरकार मुझसे मेरी इस दुनियाए लताफ़तको छीन लेगी। वक़्त गुज़रता गया, कमानी खुलती चली गई, और कुछ दिनके बाद मुझे एक क़िस्मका हल्का बाग़ियाना (विद्रोही) मैलान पैदा हो गया और तरक़्क़ी करने लगा। नौबत यहाँ तक पहुँची कि मेरी नमाज़ें तर्क हो गईं, दाढ़ी मुँड़ गई, रातका रोना, सुबहका आहें भरना ख़त्म हो गया, और मैं उस मंज़िलमें आगया जहाँ हर क़दीमी रस्मो-रिवाज रिवायत (पुरातन प्रथाओं, रूढ़ियों, किंवदन्तियों)पर एतराज़ करनेको जी चाहता है।"

"मेरे वालिदने मुझे बड़ी नरमी और अहतियातके साथ समझाया, फिर धमकाया, मगर मुझपर कोई असर न हुआ। मेरी बग़ावत बढ़ती ही चली गई। नतीजा यह हुआ कि मेरे बापने वसीयतनामा तहरीर फ़र्माकर मेरे पास भेज दिया कि अगर अब भी मैं अपनी ज़िदपर क़ायम रहूँगा तो सिर्फ़ १०० रुपये माहवार वज़ीफ़ेके अलावा कुल जायदादसे महरूम कर दिया जाऊँगा। लेकिन मुझपर इसका भी मुतलक़ असर नहीं हुआ। छः माहके बाद उनके तलब किये जानेपर सर झुकाये अदबके साथ वालिदके पास पहुँचा। मेरे शफ़ीक़ बापने मुझसे कहा—'शबीर!' और मैंने नज़र उठाई तो देखा कि मेरे बापकी बड़ी-बड़ी गुलाबी आँखोंमें

आँसू डबडबाये हुए हैं। 'यह देखो, दूसरा वसीअतनामा। मैंने जायदादमें हिस्सा तुम्हारे दोनों भाइयोंके बराबर कर दिया है।' मेरे बापने भर्राई हुई आवाज़में मुझसे कहा—'शबीर! इस दौलत और जायदादकी खातिर लोग माँ-बाप और भाई-बहन तकको मार डालते हैं और यहाँ तक कि ईमानको भी गँवा देते हैं। मगर तुमने इस दौलत और जायदाद-की अपने उसूलके सामने ज़र्रा बराबर भी परवाह न की। मुझे तुम्हारी यह बात बहुत पसन्द आई'।"

उक्त आत्मपरिचयसे स्पष्ट हो जाता है कि 'जोश' किस धातुके बने हैं। 'जोश'का जन्म १८९६में मलीहाबाद, ज़िला लखनऊमें हुआ। आप ९ वर्षकी आयुसे १२-१३ वर्षकी आयु तक 'अज़ीज़' लखनवीसे इसलाह लेते रहे। बादमें स्वतंत्र होकर शायरी करने लगे। कॉलिज छोड़ कर १९२४में निज़ाम-स्टेटमें सर्विस की, और १९३४में 'लिटरेरी सीनियर'के पदको छोड़कर देहलीमें 'कलीम' मासिकपत्र निकालने लगे।

'जोश' इतने नेक हैं कि दुश्मनके बदी करनेपर उन्हें स्वयं शर्म आ जाती है। लेकिन स्वाभिमानको ठेस पहुँचनेपर आग हो जाते हैं। फ़र्माया भी है :—

"दिल हमारा जज़्बयेग़ैरतको[1] खो सकता नहीं।
हम किसीके सामने झुक जायँ हो सकता नहीं॥
राहेख़ुद्दारीसे[2] मरकर भी भटक सकते नहीं।
टूट तो सकते हैं हम, लेकिन लचक सकते नहीं॥
हश्रमें[3] भी ख़ुसरवाना[4] शानसे जायेंगे हम।
और अगर पुरसिश[5] न होगी तो पलट आयेंगे हम॥

[1] लज्जा (यहाँ व्यक्तित्वकी आन); [2] स्वाभिमानके पथसे। [3] प्रलयवाले दिन ईश्वरके समक्ष; [4] बादशाही; [5] आवभगत।

अहलेदुनिया क्या हैं और उनका असर क्या चीज़ है ।
हम ख़ुदासे नाज़ करते हैं बशर[1] क्या चीज़ है ?

नाज़ कर ऐ यार ! अपनी दिलवरीपर नाज़ कर ।
'जोश'सा मग़रूर है तेरा ग़ुलामेकमतरीं[2] ॥"

अभिमानकी गन्ध तक नहीं है । सर्वसाधारणसे बड़ी नम्रता और सहृदयतासे मिलते हैं । एक बार मुझे अपने मित्र सुमत बाबू (जो आज-कल रोहतकमें फ़र्स्ट क्लास मजिस्ट्रेट हैं, और तब एम० ए०के विद्यार्थी थे)के साथ एक मुशायरेके सिलसिलेमें मुलाक़ातका इत्तफ़ाक़ हुआ । उन दिनों वे करौलबाग़ दिल्लीमें रहते थे । मकान तलाश करते हुए एक और नामी बुज़ुर्ग शायरके यहाँ अचानक पहुँच गये । पहुँचनेका मक़सद छुपाकर इस तरह बातचीत की मानों हम उन्हें निमंत्रित करनेको ही आये थे । बातचीतके सिलसिलेमें 'जोश' साहबके घरका पता पूछा तो हज़रत भड़क गये । बोले—" 'जोश' जैसे काफ़िरको बुलाओगे तो भई हम नहीं आनेके ।" हम किसी तरह वहाँसे उठे और जोश साहबके यहाँ पहुँचे तो वहाँ आलम ही दूसरा था । कमरेमें क़ालीन-गद्दे बिछे हुए थे । रेशमीन रिज़ाई ओढ़े कई साहब बैठे थे । चाय-पकौड़ीका दौर चल रहा था, और शेरोशायरीका सिलसिला जारी था । हमारी स्कीम सुनी तो ख़ूब पसन्द की और आनेका बग़ैर किसी हीले-हवालेके इक़रार किया । क़सदन उन बुज़ुर्गवारके भी मशायरेमें शामिल होनेका ज़िक्र किया कि देखें यह भी उनके नामसे भड़कते हैं या नहीं । जहाँ तक मुझे याद है 'जोश' साहबने उनकी तारीफ़ ही की ।

पटनेके एक मुस्लिम सज्जनने एक मुशायरेका ज़िक्र करते हुए बतलाया कि जोश साहब पटने आये तो कॉलेजके एक सहपाठीसे बग़लगीर

---

[1] मनुष्य; [2] विनम्र सेवक ।

होनेपर जोशको उनके पुराने नौकरकी भी याद आगई। और उस बूढ़े नौकरके आनेपर उससे भी बड़ी मुहब्बतसे सबके सामने पेश आये।

'जोश' उदार हृदय और दानी स्वभावके हैं—भद्र और नेक हैं। मुस्लिम वंशमें उत्पन्न हुए हैं, परन्तु 'जोश'का मज़हब मनुष्य-सेवा और ईमान देशकी स्वतंत्रता है।

'जोश' एक कामयाब शायर हैं। वे सही मायनोंमें शायराना दिलो-दिमाग़ लेकर पैदा हुए हैं। उनके कलाममें वोह सचाई है जो उनके फ़लसफ़ेको उभारती है। लाहौरके एक बहुत बड़े जल्सेमें जिसमें टैगोर और सरोजिनी नायडू भी थीं, जल्सेके सभापति पं० बृजमोहन दत्तात्रय साहब 'कैफ़ी'ने 'जोश'का परिचय देते हुए फ़र्माया था—" 'जोश'की शायरीने हमें इस क़ाबिल बना दिया है कि आँखें नीची किये बग़ैर अपनी शायरीको तरक़्क़ीयाफ़्ता ज़बानोंकी शायरीके मुक़ाबिलेमें रख सकते हैं।"[1]

'जोश'ने प्राकृतिक सौन्दर्य, प्रेम, देशभक्ति, हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य, स्वतंत्रता, किसान-मज़दूर, मुफ़लिस, सरमायेदार और मानसिक, धार्मिक, सामाजिक रूढ़ियोंपर बहुत काफ़ी लिखा है। उसी सागरके कुछ मोतियोंकी बानगी देखिए।

ग़ुलामों से ख़िताब :—

('जोश'की देशभक्तिका परिचय)

जब दो देशोंमें युद्ध होता है, तब एक-न-एककी हार निश्चित है। फलस्वरूप विजित देश परतंत्रताकी नारकीय यंत्रणा सहन करनेको बाध्य हो जाता है। विजित होनेपर भी वह अपने पूर्व गौरवको नहीं भूलता और अपनी वर्त्तमान स्थितिसे सदैव असन्तुष्ट और क्षुब्ध रहता है। उसके मनमें लुटने और पिटनेका खयाल सदैव काँटेकी तरह चुभता रहता है।

---

[1] देखिए—नक़्शोनिगारकी भूमिका।

और यही ख़याल (अहसास) कभी-न-कभी अवसर और साधन मिलते ही परतंत्र जातियोंको स्वतंत्रताका सुनहरा प्रभात दिखला देता है। जीती हुई बाज़ी हार जाना, धोखे-फ़रेबमें फँस जाना, साधन, शक्ति-क्षीण, समय प्रतिकूल, असावधानता, अल्पसंख्यक अथवा भाग्य प्रतिकूल होनेके कारण हार जाना कुछ आश्चर्यकी बात नहीं। आश्चर्य तो हार जानेके अहसासके नष्ट होनेमें है, क्योंकि अहसास बना रहेगा, परतंत्रता अनुभव करता रहेगा तो कभी-न-कभी अवसर आ सकता है। इसी भाव-का द्योतक सर 'इक़बाल'ने क्या खूब शेर कहा है !:—

"वायेनाकामी मताए कारवाँ जाता रहा।
कारवाँके दिलसे अहसासेज़ियाँ जाता रहा* ॥"

ऐसे ही अभागे ग़ुलामोंसे तंग आकर 'जोश' खीझकर फ़र्माते हैं :—

'इन बुज़दिलोंके हुस्नपै[1] शैदा[2] किया है क्यों ?
नामर्द क़ौममें मुझे पैदा किया है क्यों ?'

'मुल्कों के रजज़' शीर्षकमें स्वतंत्र देशोंकी तुलना करते हुए भारतकी शोचनीय स्थितिका वर्णन उसीके मुँहमें किन मार्मिक शब्दोंमें रक्खा है :—

"निहंगोंका[3] समन्दर हूँ, दरिन्दोंका[4] बयाबाँ हूँ।
उदूसे क्या ग़रज़ अपनोंसे ही दस्तोगरीबाँ[5] हूँ ॥

---

* खेद है कि यात्रियोंका धन (मताए कारवाँ) लूट लिया गया। परन्तु इससे भी अधिक खेद अथवा निराशाकी बात (वायेनाकामी) तो ये है कि यात्री-दलके हृदयसे लुट जानेकी संज्ञा (अहसासे ज़ियां) ही नष्ट हो गई।

[1] सौन्दर्यपर; [2] मोहित; [3] घड़ियाल, मगर, जलजन्तुओंका; [4] फाड़ खानेवाले शेर चीते, भेड़िये आदिका; [5] परस्पर झगड़ा करना।

खुदाके फ़ज़्लसे बदबख़्त हूँ, बुज़दिल हूँ, नादाँ हूँ ।
मेरी गर्दनमें है तौक़ेग़ुलामी पाबजौलाँ[1] हूँ ।।
दरेआक़ा[2] पै सर है, क़फ़्श'बरदारो[3] पै नाज़ाँ[4] हूँ ।।"

ग़ुलामीसे आपको इस क़दर चिढ़ है कि **'मुस्तक़बिल के ग़ुलाम'** शीर्षकमें आप सन्तान भी पसन्द नहीं करते, क्योंकि :—

इक दिन 'ज़लील'ओ 'वहशी' इनके भी नाम होंगे ।
अपनी ही तरह इक दिन यह भी ग़ुलाम होंगे ।।
(शोलओ शबनम)

पस्तक़ौम :—

गर्दनका तौक़ पाँवकी जंजीर काट दे ।
इतनी ग़ुलामक़ौममें हिम्मत कहाँ है 'जोश' ?
अपनी तबाहियोंपै कभी ग़ौर कर सके ।
इतनी ज़लील मुल्कको फ़ुर्सत कहाँ है 'जोश' ?
इक हर्फ़ेगर्म सुनते ही लौ दे उठे दमाग़ ।
हिन्दोस्तानमें वह हरारत कहाँ है 'जोश' ?
(सैफ़ोसुबू)

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर दिल्ली गए तो म्यूनस्पल कमेटीने अभिनन्दन देनेसे मना कर दिया । उसी भावावेशमें लिखते हैं :—

....'आह ! ऐ टैगोर ! तू क्यों हिन्दमें पैदा हुआ ?
सच बता तू किस अदायेमुल्कपर शैदा हुआ ?

---

[1] पाँवोंमें बेड़ियाँ पहने हुए ।
[2] परतंत्र बनानेवालेकी चौखट ।
[3] जूता उठानेपर; [4] गर्वित ।

'इस जगह तो काँपती हैं क़हरकी परछाइयाँ।
ज़िन्दगी ग़ायब है मुर्दे साँस लेते हैं यहाँ॥'

भारतकी ग़ुलामीसे 'जोश' इतने दुखी हैं कि इसपर उन्होंने उम्र भर लिखा है। अपने इकलौते पुत्रको सम्बोधित करते हुए **"सज्जाद से"**—शीर्षकमें उन्होंने जो लिखा है उसीसे उनकी असीम देश-भक्तिका परिचय मिलता है :—

. . . .

क़ब्रमें रूहेपिदरको शाद करनेके लिए।
सर कटाना, हिन्दको आज़ाद करनेके लिए॥

. . . .

बापकी सोती हुई क़िस्मत जगानेके लिए।
क़ब्रपर दो फूल ले आना चढ़ानेके लिए॥
बाग़ेहस्तीके न वोह बाग़े जिनांके फूल हों।
मुज़दए[1] आज़ादिये हिन्दोस्ताँके फूल हों॥'

(शोलओ शबनम)

हुब्बे वतन और मुसलमान :—

मज़हबी इख़लाक़के जज़्बेको ठुकराता है जो।
आदमीको आदमीका गोश्त खिलवाता है जो॥
फ़र्ज़ भी कर लूँ कि हिन्दू हिन्दकी रुसवाई है।
लेकिन इसको क्या करूँ, फिर भी वोह मेरा भाई है॥
बाज़ आया मैं तो ऐसे मज़हबी ताऊनसे।
भाइयोंका हाथ तर हो भाइयोंके ख़ूनसे॥

---

[1] शुभ समाचाररूपी फूल।

. . . .

तेरे लबपर हैं इराक़ो, शामो, मिस्रो, रूमो, चीन ।
लेकिन अपने ही वतनके नामसे वाक़िफ़ नहीं ॥

सबसे पहले मर्द बन हिन्दोस्ताँके वास्ते ।
हिन्द जाग उट्ठे, तो फिर सारे जहाँके वास्ते ॥

(हर्फ़ो हिकायत)

ग़द्दार से ख़िताब :—

उँगलियाँ उट्ठेंगी दुनियामें तेरी औलादपर ।
ग़लग़ला होगा वह आते हैं रज़ालतके[1] पिसर[2] ॥

तेरी मस्तूरातका बाज़ारमें होगा क़याम ।
मारिज़ेदुश्नाममें[3] तेरा लिया जायेगा नाम ॥

उस तरफ़ मुँह करके थूकेगा न कोई नौजवाँ ।
बरकी[4] हसरतमें रहेंगी तेरे घरकी लड़कियाँ ॥

क्या जवानोंके ग़ज़बका ज़िक्र ओ इब्नेख़िताब[5] !
सुनके तेरा नाम उड़ जाएगा बूढ़ोंका ख़िज़ाब ॥

फ़ाश ! समझी जायेंगी महलोंमें तेरी दास्ताँ ।
काँप उट्ठेंगी ज़िक्रसे तेरे कँवारी लड़कियाँ ॥

आयेगा तारीख़का जिस वक़्त जुम्बिशमें क़लम ।
क़ब्र तेरी दे उठेगी लौ, जहन्नुमकी क़सम ॥

---

[1] कमीनापनके; [2] वंशज ।

[3] दुर्वचनोंका आदर्श (यानी ग़द्दार कह देना ही सबसे बड़ी गाली होगी) ।

[4] दूल्हाकी; [5] स्वार्थी सम्बोधनवाला ।

भूखा हिन्दोस्तान :— . . . .

(दरिद्र कुटुम्बका चित्र खींचते हुए अभिलषित वस्तु न मिलनेपर एक बालककी मनोव्यथाका कैसा सजीव वर्णन है :—

'खेलनेमें तिफ़्लके[1] गुलफ़ाम था डूबा हुआ।
आई इतनेमें गलीसे आमवालेकी सदा॥

देखकर माँकी उदासी हो गई पामाले यास।
अँखड़ियोंमें आमकी सुर्ख़ी, तख़ैयुलमें मिठास॥

होंठ काँपे ख़ुद-ब-ख़ुद और रह गए फिर काँपकर।
दिलमें फिर चुभने लगे अगली ज़िदोंके तजरुबे॥

. . . .

छा गया चेहरेपै सन्नाटा दिले नाकामका।
अश्क बनकर आँखसे टपका तसव्वुर आमका॥

. . . .

आह! ऐ हिन्दोस्ताँ! ऐ मुफ़लिसोंकी सरज़मीं।
इस क़ुरेपर कोई तेरा पूछनेवाला नहीं?

ताकुजा[2] यह ख़्वाब? ऐ हिन्दोस्ताँ आ होशमें।
आज भी हैं सैकड़ों अर्जुन तेरे आग़ोशमें॥'

(शोलओ शबनम)

चलाए जा तलवार :—

सन् १९३०में लखनऊकी पुलिसने निर्दोष निहत्थी जनतापर गोली चलाई थी। उसीको लक्ष्य करते हुए फ़र्माया है :—

---

[1] गुलाब-सा सुन्दर बच्चा; [2] कबतक।

'भेड़ियोंके तौरसे इन्साँका करता है शिकार।
खाक हो जा ऐ जहाँबानीके[1] झूठे इक्तदार[2]॥
बेकसोंके खूनको नामर्द समझे जा हलाल।
देख, खंजर तौलनेपर है मशीय्यतका[3] जलाल[4]॥
औरतोंकी अस्मतें, बच्चोंके दिल, बूढ़ोंके सर।
हाँ, चढ़ाए जा जहाँबानीकी क़ुर्बांगाहपर॥
ठोकरें खाता फिरेगा कजकुलाहीका[5] ग़रूर।
दबके भेजेसे निकल जाएगा शाहीका ग़रूर॥'

(हर्फ़ो कायनात)

'मक़तले कानपुर'—शीर्षकमें 'जोश'ने १६३१में कानपुरमें हुए हिन्दू-मुस्लिम फ़िसाद—जिसमें श्रीगणेशशंकर विद्यार्थी बलि हुए, अपने हृदयकी वेदना किस ढंगसे व्यक्त की है, और मुसलमानोंपर किस तरह बरसे हैं नमूना देखिये :—

'ऐ सियह रू, बेहया, वहशी, कमीने, बदगुमाँ!
ऐ जबीने अर्ज़के दाग़, ऐ दनी[6] हिन्दोस्ताँ!!
तुझपै लानत ऐ फ़िरंगीके ग़ुलामे बेशऊर!
यह फ़िज़ाये सुलह परवर, यह क़ताले कानपूर॥
तेग़ेबुर्राँ और औरतका गला क्यों बदसिफ़ात?
छूट जायें तेरी नब्ज़ें, टूट जाएँ तेरे हात॥
कोहनियोंसे यह तेरी कैसा टपकता है लहू?
यह तो है ऐ संगदिल! बच्चोंका खूने मुश्कबू॥

---

[1]-[2] विश्व-विजयके झूठे दावेदार; [3] ईश्वरका; [4] तेज; [5] बादशाही तिर्छे कुल्लेपर बँधा हुआ तिर्छा साफ़ा अर्थात् अकड़; [6] हिन्दके कमीन।

मर्द है तो उससे लड़ पहले जो मारे फिर मरे ।
तूने बच्चोंको चबा डाला, खुदा गारत करे ।।

तूने ओ बुज़दिल ! लगाई है घरोंमें जिनके आग ।
'क्या इन्हीं हाथोंमें लेगा रख़्शे आज़ादीकी बाग[1]' ?

इस तरह इन्सान, और शिद्दत करे इन्सानपर ।
तुफ़ है तेरे दीनपर, लानत तेरे ईमानपर ।।'

दर्दे मुश्तरक :—

ऐक्यका कैसा ज़ोरदार समर्थन है :—

सुनते हैं सैलाबमें डूबा हुआ था इक दरख़्त ।
जिसकी चोटीपर डरे बैठे थे दो आशुफ़्ता बख़्त ।।

एक उनमें साँप था और एक सहमा नौजवाँ ।
दो अदोंका एक भीगी शाख़पर था आशियाँ ।।

सच है दर्देमुश्तरकमें है वोह रूहे इत्तहाद ।
इश्क़में जिसके बदल जाते हैं आईने इनाद ।।

लेकिन ऐ ग़ाफ़िल मुसलमानो ! मुबश्शिर हिन्दुओ !
हिन्दके सैलाबमें इक शाख़पर तुम भी तो हो ?

नाज़ुक अन्दामाने कॉलिज से ख़िताब शीर्षकमें फ़ैशनेबुल विलासी युवकोंकी किस तरह खबर ली है :—

जंग और नाज़ुक कलाई पेच हैं तक़दीरके ।
मुड़ न जाएगी निगोड़ी बोझसे शमशीरके ?

सुन लो ओ मौजूँ नहीं मर्दाना सीरतके लिए ।
ज़िन्दगी उनकी बनी है आदमीयतके लिए ।।

---

[1] स्वतंत्रता तुरंगकी लगाम ।

मर्द कहते हैं उसे ऐ माँग-चोटीके ग़ुलाम !
जिसके हाथोंमें हो तूफ़ानी अनासिरकी लगाम ।।

मर्दकी तख़लीक है ज़ोर आज़मानेके लिए।
गर्दनें सरकश हवादिसकी झुकानेके लिए ।।

मर्द है सैलाबके अन्दर अकड़नेके लिए।
बहरकी बिफरी हुई मौजोंसे लड़नेके लिए ।।

. . . .

जंगमें हो बाँकपन जिसकी शुजाअ़तका गवाह ।
रज़्मके मैदांमें कज करता हो माथेपर कुलाह ।।

दौड़ता हो शोलाख़ू बिजलीका दामन थामने ।
मुस्कराता हो गरजते बादलों के सामने ।।

मज़हका करता हो खूँ आशाम तलवारोंके साथ ।
खेलती हों जिसकी नींदें सुर्ख़ अंगारोंके साथ ।।

. . . .

ज़िन्दगी तूफ़ान है और नाव हो तुम पापकी।
आह, जीती-जागती बदबख़्तियाँ माँ-बापकी ।।

किसान और मज़दूर :—

'किसान'—शीर्षकमें सन्ध्या-कालीन दृश्यका वर्णन करते हुए फ़र्माया है :—

. . . .

'ख़ून है जिसकी जवानीका बहारे रोज़गार ।
जिसके अश्कोंपर फ़राग़तके[1] तबस्सुमका[2] मदार ।।

---

[1] सुख चैन, आरामके; [2] मुस्कराहटका ।

. . . .

दौड़ती है रातको जिसकी नज़र अफ़लाकपर[1] ।
दिनको जिसकी उँगलियाँ रहती हैं नब्ज़ेख़ाकपर ।।

. . . .

ख़ून जिसका दौड़ता है नब्ज़े इस्तक़लालमें[2] ।
लोच भर देता है जो शहज़ादियोंकी चालमें ।।

. . . .

धूपके झुलसे हुए रुख़पर मशक़्क़तके निशाँ ।
खेतसे फेरे हुए मुँह, घरकी जानिब है रवाँ ।।
टोकरा सरपर, बग़लमें फावड़ा, तेवरपै बल ।
सामने बैलोंकी जोड़ी, दोशपर[3] मज़बूत हल ।।

. . . .

जिसका मस[4] ख़ाशाकमें[5] बुनता है इक चादर महीन ।
जिसका लोहा मानकर सोना उगलती है ज़मीन ।।

. . . .

सोचता जाता है—"किन आँखोंसे देखा जाएगा ।
बेरिदा[6] बीबीका सर, बच्चोंका मुँह उतरा हुआ ।।
सीमोज़र,[7] नानोनमक,[8] आबोग़िज़ा[9] कुछ भी नहीं ।
घरमें इक ख़ामोश मातमके सिवा कुछ भी नहीं ।।"

. . . .

---

[1] आकाशपर; [2] सन्तोष, दृढ़तामें; [3] कन्धेपर ।
[4] स्पर्श करनेकी शक्ति, (यहाँ हल जोतनेसे तात्पर्य है) ।
[5] कूड़ा-करकट; [6] नंगे सिर, चादर रहित; [7] चाँदी-सोना ।
[8] रोटी नमक; [9] ख़ुराक पानी ।

'जवाले जहाँबानी'—शीर्षकसे किसानको सावधान करते हुए कहा है :—

तुझे मालूम है तारीकियाँ[1] बढ़ती हैं जब हदसे।
उबलने लगती है जर्राते खाकोसे दरख्शानी[2]॥

. . . .

गये वोह दिन कि तू महरूमिये क़िस्मतपै रोता था।
जरूरत है तुझे अब आफ़तोंपै मुस्करानेकी॥
तड़प, पैहम तड़प, इतना तड़प बर्क़तपाँ[3] बन जा।
खुदारा! ऐ जमीने बेहक़ीक़त!! आस्माँ बन जा॥

(शोलओ शबनम)

ईद मिलने वाले :—

कहूँ क्या दिलपै क्या-क्या हौलनाक आलाम सहता हूँ।
न पूछ ऐ हमनशीं! क्यों ईदके दिन सुस्त रहता हूँ?
वोह सदमे जो लगे रहते हैं आसाइशकी घातोंमें।
वोह दुनिया सिसकियाँ भरती है जो तारीक रातोंमें॥
वोह चश्मा ग़मका सीनेसे जमींके जो उबलता है।
वोह ग़मगीं करवटें जो आस्माँ शबको बदलता है॥
वोह झूठी राहतें जिनसे तपाँ है दर्दके पहलू।
वोह फीके क़हक़हे गिरते हैं जिनसे खूनके आँसू॥
वोह कौन्दे[4] ग़मके रूहोंके उफ़क़पर[5] जो लपकते हैं।
वोह दिल जो सीनए जर्रातमें[6] पैहम[7] धड़कते हैं॥

---

[1] अँधयारियाँ; [2] चमक रोशनी; [3] जलती हुई बिजली।
[4] शोले, लपट; [5] आसमान; [6] धूलके कणों; [7] सदैव।

वोह झोंके नर्म जिनमें रात भर दम ही नहीं लेती।
ग़रीब इन्सानियतकी सुस्तरू ग़मनाक मौसीक़ी[१]॥

वोह दिल मशग़ूल हैं जो जिन्दगीके दर्दपैहममें।
वोह आँसू जो हैं ग़ल्तां दीदये[२] इशयाये आलममें॥

सबाए[३] ईदके जिस वक़्त जल्वे मुस्कराते हैं।
यह सब रोते हुए मुझसे गले मिलनेको आते हैं॥

(फ़िक्र: निशात)

मुफ़लिसोंकी ईद :—

अहलेदुवलमें[४] धूम थी रोज़े सईदकी।
मुफ़लिसके दिलमें थी न किरन भी उमीदकी॥

इतनेमें और चर्ख़ने मिट्टी पलीद की।
बच्चेने मुस्कराके ख़बर दी जो ईदकी॥

फ़र्तेमहृनसे[५] नब्जकी रफ़्तार रुक गई।
माँ-बापकी निगाह उठी और झुक गई॥

आँखें झुकीं कि दस्तेतहीपर[६] नजर गई।
बच्चोंके वलवलोंकी दिलों तक ख़बर गई॥

जुल्फ़ें शबातग़मकी हवासे बिखर गई।
बर्छी-सी एक दिलसे जिगर तक उतर गई॥

दोनों हजूमेग़मसे हम आग़ोश हो गये।
एक दूसरेको देखके ख़ामोश हो गये॥

(नक्शोनिगार)

---

[१] संगीत; [२] भरणपोषणकी चीजोंके जुटानेमें त्रस्त; [३] हवा; [४] अमीरोंमें; [५] आकस्मिक चिन्ताकी अधिकतासे; [६] ख़ाली हाथकी ओर, दरिद्रतापर।

दीने आदमियत :—

(सामाजिक उन्नतिमें रोड़े अटकानेवाले बड़े-बूढ़ोंके प्रति)

नौजवानो ! यह बड़े बूढ़े न मानेंगे कभी।
सेहते अफ़कारसे[1] ख़ाली है उनकी ज़िन्दगी ॥

सुबहका जब नाम आता है तो सो जाते हैं ये।
रोशनीको देखते ही कोर हो जाते हैं ये ॥

इनके शानोंपर तो ऐसे सर हैं ऐ अहलेनिगाह !
जिनका गूदा जल चुका है, जिनके ख़ाने हैं सियाह ॥

और वोह ख़ाने हैं जिन तक रोशनी जाती नहीं।
आँधियोंके वक़्त भी जिनमें हवा आती नहीं ॥

बुझ चुके हैं जुहलके[2] झोंकोंसे उन सबके चिराग़।
कबसे हैं ज़ीक़ुलनफ़समें[3] मुब्तला[4] उनके दमाग़ ॥

. . . .

योमे पैदाइशसे हैं यह अपने सीनोंमें लिये।
काँपते, बूढ़े अक़ीदे, थरथराते वसवसे[5] ॥

. . . .

सैकड़ों हूरोंका हर नेकीपै है इनको यक़ीं।
सूद लेनेमें 'ख़ुदा'से भी ये शर्माते नहीं ॥

(हर्फ़ो हिकायत)

धार्मिक विद्रोहकी भावना यहाँ तक प्रबल हो उठी है कि पुराने सड़े-गले ख़ुदाको भी नहीं चाहते :—

---

[1] विचारधारासे; [2] जहालत, मूर्खताके; [3] श्वास रोगसे पीड़ित; [4] घिरे हुए; [5] वहम, विचार।

'मजाक़ेबन्दगीये[1] असरेनौकी[2] तुझको क़सम।
नये मिजाजका परिवर्दगार पैदाकर॥

बहारमें तो जमींसे बहार उबलती है।
जो मर्द है तो ख़िजाँमें बहार पैदा कर॥

बनवासी बाबू :—

(प्राकृतिक सौन्दर्यकी कुछ झलक)

जंगलोंके सर्दगोशे,[3] रेल बल खाती हुई।
जुहलके[4] सीनेपै जुल्फ़ेइल्म[5] लहराती हुई॥

बज्मेवहशतमें[6] तमद्दुन[7] नाज फ़रमाता हुआ।
तुन्द[8] ऐंजिनका धुआँ मैदाँपै बल खाता हुआ॥

फूल घबराये हुए-से, पत्तियाँ डरती हुईं।
गर्म पुरज़ोंको सदाएँ शोख़ियाँ करती हुईं॥

एक इस्टेशन फ़सुर्दा, मुजमहल, तनहा, उदास।
झुटपुटेकी बदलियाँ, पुरहौल जंगल आसपास॥

मलजगेनाले, अँधेरी वादियाँ, हल्की फुवार।
बनके गर्दापेश कोसों तक खजूरोंकी क़तार॥

क़द्दे आदम घास, गहरी नद्दियाँ, ऊँचे पहाड़।
एक इस्टेशन फ़क़त ले-देके, बाक़ी सब उजाड़॥

---

[1] उपासनाकी अभिलाषा; [2] नवीन युगकी; [3] शीतल स्थानोंमें; [4] अज्ञानता रूपी अन्धकारके; [5] शिक्षा रूपी जुल्फ़ें; [6] दीवानगीके दरबारमें; [7] नागरिकता, शहरियत; [8] उग्र।

काश ! जाकर बाबुओंसे 'जोश' यह पूछे कोई ।
जंगलोंमें कट रही है किस तरहसे जिन्दगी ?

. . . .

सच कहो, उठते हैं बादल जब अँधेरी रातमें ।
जब पपीहा कूक उठता है भरी बरसातमें ॥

शबको होता है घने जंगलमें जब बारिशका शोर ।
साइयाँ[1] भीगी हुई रातोंमें जब करता है शोर ॥

रूह तो उस वक़्त फ़र्तेग्रमसे घबराती नहीं ?
तुमको अपने अहदेमाज़ीकी[2] तो याद आती नहीं ?

(शालओ़शबनम)

दुनिया में आग लगी है :—

मोजे हवाके अन्दर शोला भड़क रहा है ।
गर्मीको दोपहर है, सूरज दहक रहा है ॥

तपती हुई जमींसे आँचें निकल रही हैं ।
पत्थर सुलग रहे हैं, कानें पिघल रही हैं ॥

हर क़ल्ब फुँक रहा है तहख़ाना चाहता है ।
पर्देमें लूके गोया आलम कराहता है ॥

लौ दे रहे हैं काँटे, और फूल काँपते हैं ।
ताइर[3] सकूतमें[4] हैं, चौपाये हाँपते हैं ॥

क्यों जिस्मेनाज़नीको लूमें जला रहे हो ?
रूमाल मुंहपै डाले किस सिम्त जा रहे हो ?

---

[1] सिंह; [2] भूतकालकी; [3] परिन्दे ।
[4] मौनावस्थामें ।

वक़्तेजलाल अपनी शाने अताबपर है।
ठहरो, कि दोपहरकी गर्मी शबाबपर है॥

देखो यह मेरा मस्कन[1] किस दर्जा पुरफ़िज़ा[2] है।
साया भी है मयस्सर दरिया भी बह रहा है॥

पानी है सर्दोशीरीं, ख़ुनको भी दिलनशीं है।
नज़दीक, दूर कोई ऐसी जगह नहीं है॥

दुखते हुए जिगरकी हालत दिखाऊँ तुमको।
ठहरो तो बाँसुरीपर आहें सुनाऊँ तुमको॥

साँस लो या ख़ुश रहो :—

क़सम उस मौतकी उठती जवानीमें जो आती है।
उरूसेनौको[3] बेवा, माँको दीवाना बनाती है॥
जहाँसे झुटपुटेके वक़्त इक ताबूत[4] निकला हो।
क़सम उस शबकी जो पहले पहल उस घरमें आती है॥

अज़ीज़ोंकी निगाहें ढूँढ़ती हैं मरनेवालोंको।
क़सम उस सुबहकी जो ग़मका यह मंज़र दिखाती है॥

क़सम साइलके[5] उस अहसासकी[6] जब देखकर उसको।
सियाही दफ़अतन[7] कंजूसके माथेपै आती है॥

. . . .

क़सम उन आँसुओंकी माँकी आँखोंसे जो बहते हैं।
जिगर थामे हुए जब लाशपर बेटेकी आती है॥

---

[1] स्थान; [2] शोभायुक्त।
[3] नव दुल्हनको; [4] अर्थी; [5] भिक्षुके।
[6] भावनाकी; [7] यकायक।

क़सम उस बेबसीकी अपने शौहरके जनाज़ेपर।
कलेजा थामकर ताज़ा दुल्हन जब सर झुकाती है॥
नज़र पड़ते ही इक ज़ीमर्तबा[1] मेहमाँके चेहरेपर।
क़सम उस शर्मकी मुफ़लिसकी आँखोंमें जो आती है॥

. . . .

कि यह दुनिया सरासर ख़्वाब और ख़्वाबे परीशाँ है।
'ख़ुशी' आती नहीं सीनेमें जब तक 'साँस' आती है॥

हमारी सैर :—

लोग हँसते हैं चहचहाते हैं।
शामको सैरसे जब आते हैं॥
लैम्पकी रोशनीमें यारोंको।
दास्तानें नई सुनाते हैं॥

हम पलटते हैं जब गुलिस्ताँसे।
आह भरते हैं थरथराते हैं॥
मेज़पर सरसे फेंककर टोपी।
एक कुर्सीपै लेट जाते हैं॥

आप समझे यह माजरा क्या है?
सुनिये, हम आपको सुनाते हैं॥
वोह लगाते हैं सिर्फ़ चक्कर ही।
हम मनाज़िर से दिल लगाते हैं॥

वोह नज़र डालते हैं लहरोंपर।
और हम तहमें डूब जाते हैं॥

---

[1] भद्र।

घर पलटते हैं वोह 'हवा' खाकर।
और हम 'ज़ख़्म' खाके आते हैं॥

(रुहे अदब)

फुटकर :--

मर्द वह कब है भँवरसे जो उभर सकता नहीं।
हक़ ही जीनेका नहीं उसको जो मर सकता नहीं॥

× × ×

जिसको ज़िल्लतका न हो अहसास वोह नामर्द है।
तंग पहलू है वोह दिल जो बेनियाज़े[1] दर्द है॥
हक़ नहीं जीनेका उसको जिसका चेहरा ज़र्द है।
ख़ुदकशी है फ़र्ज़ उसपर ख़ून जिसका सर्द है॥

× × ×

दौरेमहकूमीमें[2] राहत[3] कुफ़्र, इशरत[4] है हराम।
महवशोंकी[5] चाह, साक़ीकी मुहब्बत है हराम॥
इल्म नाजाइज़ है, दस्तारेफ़ज़ीलत[6] है हराम।
इन्तहा ये है, ग़ुलामोंकी इबादत है हराम॥
कूएज़िल्लतमें ठहरना क्या, गुज़रना भी हराम।
सिर्फ़ जीना ही नहीं, इस तरह मरना भी हराम॥

× × ×

---

[1] अनभिज्ञ; [2] परतंत्र अवस्थामें।
[3] चैन; [4] विलास; [5] चन्द्रमुखियोंकी।
[6] विद्या-युक्त होनेकी पगड़ी बँधवाना।

अहानत[1] गवारा नहीं आशिक़ीको।
ग़ुलामीमें भी सरवरी[2] चाहता हूँ॥

मिज़ाजेतमन्नाये[3] ख़ुद्दार[4] तौबा।
इबादतमें भी दावरी[5] चाहता हूँ॥

मुसिर[6] है अगर दिलबरी 'दावरी'पर।
कमज़कम मैं पैग़म्बरी चाहता हूँ॥

जो पैग़म्बरीमें भी दुश्वारियाँ हों।
तो हंगामिये[7] काफ़िरी चाहता हूँ॥

ख़ुलासा है यह 'जोश' इस दास्ताँका।
कि जौहर हूँ और जौहरी चाहता हूँ॥

× × ×

बिठा दे कश्तियेआलमके[8] नाख़ुदाओं को।
ख़ुद आज कश्तियेआलमका नाख़ुदा[9] हो जा॥

बशक्लेबन्दा तो रहता है उम्रभर ऐ 'जोश'!
उठ, और चन्द नफ़सके लिए ख़ुदा हो जा॥

बेहतर तो यही है हँसता रह, तू कोह[10] है ख़ुदको काह[11] न कर।
यह बन न पड़े तो कम-से-कम, ख़ामोश ही रह और आह न कर॥

कुछ दिनमें यह दुनिया ग़श खाकर क़दमोंपर तेरे झुक जाएगी।
गोग़ाए[12] मसाइबसे न झिजक परवाए ग़मेजाँ काह न कर॥

---

[1] बेइज़्ज़ती; [2] बराबरी; [3] [4] स्वाभिमानीकी अभिलाषा तो देखिये; [5] न्यायाधीशका वह पद जो हश्रमें न्याय करे; [6] ज़िद, अनधिकार चेष्टा; [7] नास्तिकका विद्रोह; [8] सांसारिक नावके मल्लाहोंको; [9] मल्लाह नेता; [10] पर्वत; [11] तिनका; [12] आपत्तियोंकी भीड़से या शोरसे।

रुबाइयात

अपनी ही ग़रज़से जी रहे हैं जो लोग ।
अपनी ही अबाएँ[1] सी रहे हैं जो लोग ।।
उनको भी है क्या शराब पीनेसे गुरेज़ ?
इन्सानका ख़ून पी रहे हैं जो लोग ।।

सबक़ इबरतका ले नादान ! बालोंकी सुफ़ेदोसे ।
कफ़न ओढ़ा है जीते जी निगारेज़िन्दगानीने[2] ।।
नज़रकर भुर्रियोंसे शेबके सिमटे हुए रुख़पर ।
यह वोह बिस्तर है दम तोड़ा है जिसपर नौजवानीने ।।

फाड़ते ही जैसे मैला चीथड़ा उठती है गर्द ,
यूँ ही वोह दो शख़्स जो इक दूसरेसे हैं ख़फ़ा ।
गुफ़्तगू करते हैं जब आपसमें अज़राहेनिफ़ाक़[3] ,
देखता हूँ उनके होंठोंसे ग़ुबार उड़ता हुआ ।।

ग़ुबार इक दूसरेपर फेंकते हैं तेज़ रौ मोटर ।
मुख़ालिफ़ सिम्तसे हमदोश होकर जब गुज़रते हैं ।।
यूँ ही दो बदगुहर[4] अशख़ास जब मिलते हैं आपसमें ।
नई तारीकियाँ इक दूसरेसे अख़्ज़[5] करते हैं ।।

वक़्त है तारीक और रह-रहके कौंदेकी लपक ।
छू रही है यूँ उफ़ुक़को[6] ज़ुल्मते ख़ामोशको ।।

---

[1] चोग़े; [2] ज़िन्दगीके सौन्दर्यने; [3] द्वेषभावसे ।
[4] कटुभाषी; [5] प्राप्त; [6] आकाशकी ।

जैसे उस मायूसकी आँखोंका आलम जो ग़रीब।
हाल कहना चाहता हो और कह सकता न हो॥

वक़्तेशब कुछ और भी तारीक कर जाती है यूँ।
अपनी चमकाती हुई ज़ुल्मतको मोटरका ग़ुबार॥

जिस तरह काँधेपै रखकर हाथ दम भरको ख़ुशी।
दोशपर[1] ग़मका नया इक और रख जाती है बार॥

नर्म हो जाता है पुलटिशसे जो पककर फोड़ा।
बेश्तर नश्तरेजर्राहसे होता है फ़िगार[2]॥

फ़र्शेगुलकी यूँही हो जाती है खूगर[3] जो क़ौम।
होना पड़ता है उसे ख़ारेमुग़ीलाँसे[4] दो-चार॥

गुज़रजा

(१६मेंसे २ बन्द)

यह माना कि यह ज़िन्दगी पुरअलम है।
यह माना कि यह ज़िन्दगी मौजेसम है॥

यह माना कि यह ज़िन्दगी इक सितम है।
यह माना कि यह ज़िन्दगी ग़म ही ग़म है॥
सरेग़मपै ठोकर लगाता गुज़र जा।

अगर हर नफ़स है सतानेपै माइल।
अगर ज़िन्दगी है रुलानेपै माइल॥

---

[1] कन्धेपर; [2] चिरना।
[3] आदी; [4] कीकरका काँटा, मुसीबत।

अगर आस्माँ है मिटाने पै माइल।
अगर दहर है रंग उड़ानेपै माइल॥
ख़ुद इस दहरका रंग उड़ाता गुज़र जा।

नौजवानीमें मसाइबसे[1] डराता है मुझे।
नासिहा! नादाँ यह है वोह मौसमे बर्क़ों शरर[2]॥

आलिमेकैफ़ोजुनूँमें[3] मारती है क़हक़हे।
ज़िन्दगी जब मौतकी आँखोंमें आँखें डालकर॥

गज़लें

ज़माना ही बुरा है दूर क्यों जाओ, हमें देखो।
जवाँ हैं और कोई वलवला बाक़ी नहीं दिलमें॥

जो मौक़ा मिल गया तो ख़िज्रसे यह बात पूछेंगे—
"जिसे हो जुस्तजू अपनी वोह बेचारा किधर जाये?"

जब कोई बनता है लाखों हस्तियोंको मेटकर।
सुबह तारोंको दबाती है उभरनेके लिए॥

हँस रहे हैं शबेवादा वोह मकाँमें अपने।
हम इधर ऐशका सामान किये बैठे हैं॥

शहरोंमें गश्त कर लें, सहरामें ख़ाक उड़ा लें।
तुमको भी ढूँढ लेंगे अपनेको पहले पा लें॥

अगर सच पूछिये इससे कहीं आसान है मरना।
ग़यूर[4] इन्सानका नाअहलसे[5] हाजत[6]तलब करना॥

---

[1] मुसीबतोंसे; [2] बिजली और शोलोंकी ऋतु; [3] उन्मत्तावस्थामें; [4] आन रखनेवाला; [5] अयोग्यसे; [6] अभिलाषापूर्ति।

शौक़ेकरम[1] नहीं है, ताबेजफ़ा[2] नहीं है।
बुज़दिलको ज़िन्दगीका कोई मज़ा नहीं है॥

बढ़े जाओ न यूँ डूबो ज़रा ग़ौरोताम्मुलमें[3]।
तरक़्क़ी थकके सो जाती है आग़ोशेतनज़्ज़ुलमें[4]॥

बढ़के सामान ऐशोइशरतका।
ख़ून करता है आदमीयतका॥

कहते हो 'ग़मसे परीशान हुए जाते हैं।'
यह नहीं कहते कि 'इन्सान हुए जाते हैं'॥

पपीहा जब तड़पता है घटामें 'पी कहाँ ?' कहकर।
हमारी रूह सोज़ेइश्क़से इस तरह जलती है॥

तलाशेतुरबतेआशिक़में कोई नाज़नीं जैसे।
कलाकी धूपमें पत्थरपै नंगे पाँव चलती है॥

इक बबा है आलिमेइख़लाक़में[5] उसका वजूद[6]।
तुझमें इक ज़र्रा भी ग़ैरत हो तो उस ज़ालिमसे डर॥

उस कमीनेसे हज़रकर, भाग उस मनहूससे।
ख़र्च कर डाले जो इज़्ज़त और बचा ले मालोज़र॥

रेशये पीरी

निगह बेनूर होकर रातका मंज़र दिखाती है।
तनफ़्फ़ुस आह भरता है क़ज़ा लोरी सुनाती है॥

---

[1] महरबानीका शौक़; [2] अत्याचारकी शक्ति।
[3] सोच फ़िक्रमें; [4] असफलताकी गोदमें; [5] चारित्र-लोकमें;
[6] अस्तित्व।

ज़ईफ़ीका यह रेशा जिससे जुम्बिशमें है सब आज़ा[1]।
यह है दरअस्ल क्या? कुछ अक़्लमें यह बात आती है?
यह है इक 'पालना' डोरी हिलाती हैं रगें जिसकी।
यह इक 'झूला' है जिसमें ज़िन्दगीको नींद आती है॥

इबादत :—

इबादत करते हैं जो लोग जन्नतकी तमन्नामें।
इबादत तो नहीं है, इक तरहकी वोह 'तिजारत' है॥
जो डरकर नारेदोज़ख़से ख़ुदाका नाम लेते हैं।
इबादत क्या वोह ख़ाली बुज़दिलाना एक ख़िदमत है॥
मगर जब शुक्रेनेमतमें जबीं झुकती है बन्देकी।
वोह सच्ची बन्दगी है, इक शरीफ़ाना अताअ़त है॥

कुचल दे हसरतोंको बेनियाज़े मुद्दआ हो जा।
ख़ुदीको झाड़ दे दामनसे मर्देबाख़ुदा हो जा॥
उठा लेती हैं लहरें तहनशीं होता है जब कोई।
उभरना है तो ग़र्क़े मौजयेबहरेफ़ना हो जा॥

५ अप्रैल १९४५

---

[1] अंगोपांग।

१५

शेख़ आशिक़ हुसैन 'सीमाब' अकबराबादी

[जन्म आगरा सन् १८८० ई०]

अल्लामा 'सीमाब' अकबराबादी उर्दू-शायरीके लब्धप्रतिष्ठ काव्यगुरुओंमें हैं। आपके कई सहस्र शिष्य हैं जो भारतवर्षके हर कोनेमें बिखरे हुए हैं। सैकड़ोंकी संख्यामें सीमाब-सोसायटीकी शाखाएँ उर्दूका प्रसार कर रही हैं। 'सीमाब' मानों उर्दूका प्रसार करनेके लिए ही पैदा हुए हैं। साहित्य-सेवा ही आपके जीवनका ध्येय है। दिन-रात उसीमें रत रहते हैं। उर्दू-संसार आपकी सेवाओंसे उऋण नहीं हो सकता। सर इक़बालकी तरह फ़सीहुल्मुल्क मिर्ज़ा 'दाग़' देहलवी आपके भी काव्य-गुरु थे। किन्तु 'इक़बाल' और 'सीमाब' दोनोंने ही उनके पथका अनुसरण न करके अपना पृथक-पृथक मार्ग चुना। 'इक़बाल' और 'सीमाब' दोनों एक गुरुके शिष्य और युगान्तरकारी कवि होते हुए भी दोनों भिन्न-भिन्न दिशाओंमें बढ़ते हुए दिखाई देते हैं। 'इक़बाल' अन्तमें पूर्णरूपेण इस्लामके लिए चिन्ताग्रस्त नज़र आते हैं। उनकी शायरीका समूचा प्रवाह इस्लामी शिक्षा-दीक्षाकी ओर बढ़ता है, और इस्लाम ही उनकी दृष्टिका लक्ष्य बनकर रह जाता है। 'सीमाब' किसी विशेष जाति या सम्प्रदायके मोहमें न फँसकर अखिल विश्वके लिए चिन्तातुर नज़र आते हैं। वे अपने सन्देशसे विश्वकी समस्त पिछड़ी हुई जातियोंको जगाना चाहते हैं। आप उर्दू-शायरीके पुराने स्कूलके स्नातक और वयोवृद्ध होते हुए भी एक क्रान्तिकारी शायर हैं। आपके सन्देशमें विध्वंस और नाशकी खटास न होकर रचनात्मक मिठास मिलती है। ख़ूबी

ये है कि आप ग़ज़ल और नज़्म (पुरानी-नई) दोनों प्रणालियोंके ख्याति-प्राप्त उस्तादोंमें हैं। आपने ग़ज़लोंका ढाँचा ही बदल दिया है। सीमाबका कलाम विश्वहित, देशभक्ति, स्वतंत्रता, रचनात्मक, आध्यात्मिक और दार्शनिक भावोंसे ओत-प्रोत होता है। प्रसिद्ध उर्दू पत्रकार और आलोचक 'नियाज़' फ़तहपुरीके शब्दोंमें :—

"सीमाबका तग़ज़्ज़ुल (ग़ज़लें) सुनकर पढ़ने और पढ़कर समझनेकी चीज़ है"।[1]

दुआ :—

'साज़ो आहंग' नामक पुस्तक आप इस दुआसे प्रारम्भ करते हैं :—

यारब ! ग़मेदुनियासे इक लहमेकी फ़ुर्सत दे।
कुछ फ़िक्रेवतन कर लूँ इतनी मुझे मुहलत दे॥

जंगी तराना :—

दिलावराने तेज़दम, बढ़े चलो, बढ़े चलो।
बहादुराने मोहतरिम, बढ़े चलो, बढ़े चलो॥

यह दुश्मनोंके मोर्चे फ़क़त हैं ढेर ख़ाकके।
तुम्हारे सामने जमे कहाँ किसीमें हौसले ?
नहीं हो तुम किसीसे कम,
बढ़े चलो, बढ़े चलो। दिलावराने०॥

सितमके तमतराक़को[2] बढ़ाके हाथ छीन लो।
है फ़तह सामने चलो, उठो, उठो, बढ़ो, बढ़ो॥

---

[1] देखिये—'आजकल' (उर्दू) पृष्ठ २९, १ दिसम्बर, १९४४।
[2] शानोशौकत, कर्रोफ़रको।

यह जामेजम, वोह तख़्तेजम,
बढ़े चलो, बढ़े चलो। विलावराने० ॥

× × ×

वतन :—

जहाँ जाऊँ वतनकी याद मेरे साथ रहती है।
निशाते महफ़िलेआबाद[1] मेरे साथ रहती है ॥

× × ×

वतन प्यारे वतन तेरी मुहब्बत जुज़्वे ईमाँ है।
तू जैसा है, तू जो कुछ है, सकूनेदिलका सामाँ है ॥

वतनमें मुझको जीना है, वतनमें मुझको मरना है।
वतनपर ज़िन्दगीको एक दिन क़ुरबान करना है ॥

दावते इन्क़लाब :—

'आगे बढ़ो..............या वक़्तकी रफ़्तार रोकदो'

....

तुझे है याद नुस्ख़ा ज़ुल्मतेआलम[2] बदलनेका।
तो फिर क्यों मुन्तज़िर[3] बैठा है तू सूरज निकलनेका ॥

मिसाले माहेताबाँ[4] ज़ूफ़िशाँ[5] हो और आगे बढ़।
मिसाले शमा क्यों ख़ूगर है जल-जलकर पिघलनेका ॥

ख़ुदाने आज तक उस क़ौमकी हालत नहीं बदली।
न हो ख़ुद जिसको अहसास अपनी हालतके बदलनेका ॥

---

[1] भरी मजलिसोंके वैभव; [2] संसारके अँधेरे।
[3] प्रतीक्षामें; [4] चमकता हुआ चाँद; [5] प्रकाशमान।

जवानाने वतन :—

बढ़के आगे दूरिये साहिलका[1] अन्दाजा करो।
इज्तराबे[2] गर्मिये महफ़िलका अन्दाजा करो॥
खोलकर आँखें हक़ोबातिलका[3] अन्दाजा करो।
आनेवाली हर नई मुश्किलका अन्दाजा करो॥
इम्तिहाँ लेनेको है दौरेपरीशानेवतन।
ऐ जवानानेवतन!!

सोच लो आजाद हो जानेकी तदबीरें तमाम।
जमा कर लो जहनमें रक़अतकी[4] तनवीरें[5] तमाम॥
फेंक दो हाथोंसे मायूसीकी तस्वीरें तमाम।
खोल दो प्यारे वतनसे आज जंजीरें तमाम॥
तोड़ दो बन्देगुलामी ऐ गुलामानेवतन!
ऐ जवानानेवतन!!

ख्वाबआश्नाये जमूद से :—

जहाँमें इन्क़लाबे ताजा बरपा होनेवाला है।
गुलामीके अँधेरेमें उजाला होनेवाला है॥
मुरत्तिब[6] अजसरेनौ[7] नज्मेदुनिया[8] होनेवाला है।
मिसाले नक़्शेक़ालीं[9] बेहिसोहरकत[10] पड़ा है तू॥
अरे क्या सो रहा है तू?

---

[1] दरियाका किनारा; [2] बेचैनी; [3] सत्य-असत्य;
[4] मुश्किल वक्रताकी; [5] ज्ञान, उजाला; [6] तय्यार;
[7] नये ढंगसे; [8] संसारकी व्यवस्था; [9] गलीचे परकी तसवीरकी तरह;
[10] निर्जीव-सा।

जवानानेवतनमें इक तड़प इक जोश पैदा है।
गुलिस्तानेवतनका पत्ता-पत्ता चौंक उट्ठा है॥
बयाबानेवतनका ज़र्रा-ज़र्रा शोला बरपा है।
मगर अबतक जमूदोकस्लमें[1] ही मुब्तिला है तू॥
अरे क्या सो रहा है तू ?

ग़द्दारे क़ौम और वतन :—

किया था जमा जाँबाज़ोंने जिसको जाँफ़रोशीसे।
रुपहले चन्द टुकड़ोंपर वोह इज़्ज़त बेच दी तूने॥
कोई तुझ-सा भी बेग़ैरत ज़मानेमें कहाँ होगा ?
भरे बाज़ारमें तक़दीरेमिल्लत[2] बेच दी तूने॥

फुटकर :—

सच कहा था यह किसी दोस्तने मुझसे 'सीमाब' !
'अमन हो जाय अगर मुल्कमें अख़बार न हो'॥

* * *

ज़िन्दगी इल्मोहुनर अक़्मोअमलका नाम है।
ज़िन्दगी उसकी है जिसको है शऊरे ज़िन्दगी॥

सजदे करूँ, सवाल करूँ, इल्तजा करूँ।
यूँ दे तो कायनात मेरे कामकी नहीं॥
वोह ख़ुद अता करे तो जहन्नुम भी है बहिश्त।
माँगी हुई निजात मेरे कामकी नहीं॥

---

[1] आलस्य और ढोंगमें।

[2] क़ौमियत।

मज़दूर :—

गर्द चेहरेपर, पसीनेमें जबीं डूबी हुई।
आँसुओंमें कुहनियों तक आस्तीं डूबी हुई॥
पीठपर नाक़ाबिले बरदाश्त इक बारेगिराँ।
ज़ोफ़से लरज़ी हुई सारे बदनकी झुर्रियाँ॥
हड्डियोंमें तेज़ चलनेसे चटख़नेकी सदा।
दर्दमें डूबी हुई मजरूह[1] टख़नेकी सदा॥
पाँव मिट्टीकी तहोंमें मैलसे चिकटे हुए।
एक बदबूदार मैला चीथड़ा बाँधे हुए॥
जा रहा है जानवरकी तरह घबराता हुआ।
हाँफता, गिरता, लरज़ता, ठोकरें खाता हुआ॥
मुज़महिल[2] वामाँदगीसे[3] और फ़ाक़ोंसे निढाल।
चार पैसेकी तवक़्क़ोह[4] सारे कुनबेका ख़याल॥

* * *

अपनी ख़िलक़तको[5] गुनाहोंकी सज़ा समझे हुए।
आदमी होनेको लानत और बला समझे हुए॥

* * *

इसके दिल तक ज़िन्दगीकी रोशनी जाती नहीं।
भूलकर भी इसके होठों तक हँसी आती नहीं॥

* * *

---

[1]घायल; [2]बहुत थका हुआ; [3]दुर्बलताके कारण; [4]आशा; [5]अपने जन्मको।

शायरे इमरोज :—

क्या है कोई शेर तेरा तर्जुमाने-दर्देक़ौम[1] ?
तूने क्या मंज़ूम[2] की है दास्ताने दर्देक़ौम ?

अपने सोज़ेदिलसे गरमाया है सीनोंको कभी ?
तर किया है आँसुओंसे आस्तीनोंको कभी ?

क़ौमके ग़ममें किया है ख़ूनको पानी कभी ?
रहगुज़ारे[3]जंगमें की है हुदीख़्वानी[4] कभी ?

क्या रुलाया है लहू तूने किसी मज़मूनसे ?
नज़्मे आज़ादी कभी लिक्खी है अपने ख़ूनसे ?

हिन्दोस्तानी माँ का पैग़ाम :—

* * *

मेरे बच्चे सफ़शिकन[5] थे और तीरन्दाज़ भी।
मनचले भी, साहबेहिम्मत भी, सरअफ़राज़[6] भी ॥

मैं उलट देती थी दुश्मनकी सफ़ें तलवारसे।
दिल दहल जाते थे शेरोंके मेरी ललकारसे ॥

जुरअत[7] ऐसी, खेलती थी दश्ना औ ख़ंजरके साथ।
बावफ़ा ऐसी कि होती थी फ़ना शोहरके साथ ॥

छीनकर तलवार पहना दीं सुनेहरी चूड़ियाँ।
रख दिया हर जोड़पर ज़ेवरका एक बारेगिराँ ॥

---

[1] समाजके दर्दका सन्देश; [2] नज़म; [3] युद्धमें मार्गके; [4] बलिदानोंकी प्रशंसा; [5] व्यूह तोड़नेवाले; [6] सर ऊँचा रखने वाले; [7] दिलेरी।

दर्सेआज़ादीका[1] देती क्या तुझे आग़ोशमें[2] ?
मैं तो ख़ुद ही क़ैद थी इक मजलिसे गुलपोशमें ॥

मैंने दानिस्ता बनाया ख़ायफ़ोबुज़दिल[3] तुझे ।
मैंने दी कम हिम्मतोंकी दावते बातिल तुझे ॥

दिलको पानी करनेवाली लोरियाँ देती थी मैं ।
जब गरज होती थी दामनमें छुपा लेती थी मैं ॥

हाँ, तेरी इस पस्त ज़हनीयतकी मैं हूँ जिम्मेदार ।
तू तो मेरी गोद ही में था ग़ुलामीका शिकार ॥

सुन कि इस दुनियामें मिलता है उसीको इक्तदार[4] ।
जिसको अपनी क़ूवते[5]तामीरपर हो इख़्तियार ॥

ग़ज़लोंके कुछ शेर :—

(खेद है कि आपकी ग़ज़लोंके संग्रह युद्धके कारण अप्राप्य होनेसे हम इधर-उधरसे लेकर कुछ नमूने दे रहे हैं। काश ! आपका दीवान मिला होता, तब असली जौहर देखनेका अवसर मिलता।)

आ ऐ गुलेफ़[6]सुर्दा ! लगा लूँ गले तुझे ।
तू भी तो मेरी तरह लुटा है शबाबमें ॥[7]

कहानी कहनेवाले हाय, क्यों जिकरेजवानी है ?
जवानीकी कहानी क्या ? जवानी ख़ुद कहानी है ॥

कहानी मेरी रूदादे जहाँ मालूम होती है ।
जो सुनता है उसीकी दास्ताँ मालूम होती है ॥

---

[1]स्वतन्त्रताका पाठ; [2]गोदमें; [3]भयभीत और कायर; [4]अधिकार; [5]निर्माण-बलपर; [6]मुरझाए फूल; [7]भरी जवानीमें।

कर रहे थे जाने हम अल्लाहसे किसका गिला।
आप अपना सर झुकाकर क्यों पशेमाँ हो गये?

न पूछ मुझसे तेरे जब्रोअख़्तियारकी ख़ैर।
गुनाह हो न सका या गुनाह कर न सका॥

आज़ुर्दा इस क़दर हूँ सराबे ख़यालसे[1]।
जी चाहता है तुम भी न आओ ख़यालमें॥

मुहब्बतमें एक ऐसा वक़्त भी आता है इन्साँपर।
सितारोंकी चमकसे चोट लगती है रगेजाँपर॥

अगर तू चाहता है आरज़ू तेरी करे दुनिया।
तो दिलपर जब्र करके बेनियाज़े[2] आरज़ू होजा॥

मिटा दे अपनी ग़फ़लत फिर जगा अरबाबेग़फ़लतको।[3]
उन्हें सोने दे, पहले ख़्वाबसे बेदार तू हो जा॥

यह सोचता हूँ तो सिजदेसे[4] सर नहीं उठता।
जो था फ़रिश्तोंका मसजूद[5] क्या वही हूँ मैं?

तेरा जलवा, मेरा जलवा, जो है तू मैं हूँ वही।
परदा इतना है कि मैं ज़ाहिर हूँ तू मस्तूर[6] है॥

वोह सिजदा क्या, रहे अहसास[7] जिसमें सर उठानेका।
इबादत और बक़ैबेहोश, तौहीनेइबादत है॥

---

[1] ख़यालके धोखेसे; [2] बेपरवाह।
[3] ग़फ़लतमें पड़े हुओंको; [4] ईशप्रार्थनामें झुका हुआ सर।
[5] उपास्य; [6] परदेमें छुपा हुआ।
[7] ज्ञान।

दीवानेको तहक़ीरसे क्यों देख रहा है ?
दीवाना मुहब्बतकी ख़ुदाईका ख़ुदा है ।।

सच है कि ख़ुदा तक है मुहब्बतकी रसाई ।
और तुमको यक़ीं हो तो मुहब्बत ही ख़ुदा है ।।

क़फ़सकी तीलियोंमें जाने क्या तरकीब रक्खी है ।
कि हर बिजली क़रीबेआशियाँ मालूम होती है ।।

वोह कोई और है जो मुझको तूफ़ाँसे बचाएगा ।
ख़िरदको[1] एतबारे नाख़ुदासे[2] खेल लेने दो ।।

उन्हें हिजाब, उदू शादमां, अज़ीज़ निढ़ाल ।
मेरा जनाज़ा भी कोई उठायेगा कि नहीं ?

न सरमें सौदा है रहबरीका[3] न दिलमें जज़्बा है रहबरीका ।
कुछ ऐसा महसूस कर रहा हूँ कि थक गया पाँव ज़िन्दगीका ।।

मिला है तुझको दिले शकिस्ता तो और उसे तोड़ता चला जा ।
शकिस्त हो जाये ग़ैरमुमकिन कमाल ये है शकिस्तगीका ।।

तू अपनी ज़ातमें ताज़ा सिफ़ात पैदा कर ।
हो जिसमें शानेबदाअत वोह ज़ात पैदा कर ।।

कमाले इल्मोअमलकी हदूद और बढ़ा ।
नये शऊर नई हिस्सयात पैदा कर ।।

है मुश्किलातका बढ़ना ही अजहे आसानी ।
जो हल न हो सके वह मुश्किलात पैदा कर ।।

---

[1] अक़्लको; [2] मल्लाहके विश्वाससे; [3] नेतागिरीका ।

क़ौमो मज़हबो मिल्लतसे गर नहीं तसकीं।
तो फिर नई कोई राहेनिजात पैदा कर॥

बढ़ती ही चली जाती है दुनियाकी ख़राबी।
इसपर यह क़यामत अभी रहना है यहीं और॥

मैंने शबेग़म जिनको समेटा था बमुश्किल।
वोह तीरगियाँ[1] बादेसहर[2] फैल गईं और॥

है और तलब इश्क़की पस्तोबुलन्दी।
[3]आईनेनजर और है दस्तूरेजबीं[4] और॥

मैं हौसलोंसे यूँ शबेग़म काट रहा हूँ।
जैसे कोई बाद इसके मुसीबत ही नहीं और॥

* * *

सैयाद दे रहा है सबक़ सब्रोज़ब्तका।
क़ैदेक़फ़स[5] है सिलसिलये आगही[6] मुझे॥

बजाय हाथ उठानेके अपने पाँव बढ़ा।
दुआ तो वहमेअसरके सिवा कुछ और नहीं॥

जहाँ दिल है वहाँ वो हैं, जहाँ वो हैं वहाँ सब कुछ।
मगर पहले मुक़ामेदिल समझनेकी ज़रूरत है॥

बक़दरेयकनफ़[7]स ग़म माँग ले और मुतमइन हो जा।
भिकारी! यह मनाजाते निशाते जाविदाँ[8] कब तक?

---

[1] अन्धेरे; [2] प्रातःकालके पश्चात्; [3] नज़रोंका कानून; [4] मस्तिष्क का नियम; [5] पिंजरेकी क़ैद; [6] बराबर आते रहनेवाली आपत्तियोंकी सूचना है; [7] शरीरकी सामर्थ्यके अनुसार; [8] स्थाई सुख-भोगकी प्रार्थना।

बहुत मुश्किल है क़ैदेज़िन्दगीमें मुतमइन होना।
चमन भी इक मुसीबत था, क़फ़स भी इक मुसीबत है॥

मुक़ाम इक इन्तहायेइश्क़में ऐसा भी आता है।
ज़मानेकी नज़र अपनी नज़र मालूम होती है॥

जो मुमकिन हो जगह दिलमें न दे दर्देमुहब्बतको।
घड़ीभरकी ख़लिश फिर उम्रभर मालूम होती है॥

* * *

हर इक फूल एक चश्मेतर है सुबहेचाकदामाँकी।
कभी शबनमके आँसू बनके देख आँखें गुलिस्ताँकी॥

फ़क़त अहसासेआज़ादीसे आज़ादी इबारत है।
वही दीवार घरकी है वही दीवार ज़िन्दाँकी॥

१५ अप्रैल १९४५

१६

अहसान बिन दानिश

[जन्म कान्धला (मेरठ) १९१० ई० के क़रीब]

'अहसान' शोषित वर्गके पैग़म्बर कहलानेके अधिकारी हैं। वे उन्हींके लिए जीते हैं, उन्हींके लिए सोचते हैं और उन्हींकी व्यथाओंको काग़ज़पर सजीव रूप देते हैं। उनके यहाँ निरी कल्पना, भावुकता और उड़ान नहीं। उनका एक-एक अक्षर आपबीती और जगबीतीका मुँहबोलता हुआ चित्रपट है। उनका कलाम सुनते या पढ़ते हुए ऐसा मालूम होता है कि हम सब आँखोंसे देख रहे हैं। उन्होंने जीवनके लक्ष्य तक पहुँचनेमें जिन कण्टकाकीर्ण और दुर्गम मार्गोंको तय किया है, उसीमें जो देखनेको मिला वही काग़ज़पर चित्रित कर दिया है।

'अहसान' अपने सीनेमें एक दहकती हुई आग लिये फिरते हैं और उसी आगकी चमकमें जो भी देख लेते हैं उसे चमका देते हैं। खतौलीसे मेरठ जाते हुए एक अशिक्षिता नारीको घूरे जाते हुए देखनेपर नारी-समाजके इस पतनपर उबल पड़ते हैं। सरयू नदीके घाटपर सैर करते हुए एक युवती कन्याकी अर्थीको देखकर विह्वल हो उठते हैं। हिन्दू मज़दूरको दीवाली और मुस्लिम मज़दूरको ईदके रोज़ भी चिन्ताग्रस्त पाकर ईश्वर तकसे कैफ़ियत तलब कर बैठते हैं। मुस्लिम-समाजमें विधवा-विवाह प्रचलित होते हुए भी भाई-भावजकी सताई विधवाको पुनर्विवाहका विरोध करते हुए सुनकर उसके पति-प्रेमका ज्वलन्त दृश्य खींचते हैं, तो कहीं अपने मित्रकी सुहागरातको ही मृत्यु हो जानेपर बिकल हो जाते हैं। एक साधुकी चिता और दो शिशुओंकी क़ब्रें देख पाते हैं तो असार-संसारका दृश्य

खींचकर रख देते हैं। भूखेके घर अतिथि और असहाय बीबी-बच्चोंको बिलखते छोड़कर मज़दूरको मरते देख 'अहसान' कलेजा थामकर रह जाते हैं। जहाँ मजदूरसे कुत्तेकी अवस्था श्रेष्ठ और रोज़ीकी तलाशमें निर्दोष मज़दूरका चालान होता है, उस पापी समुदायसे आप सिहर उठते हैं। और ऐसे ही पापियोंका शिकार करनेके लिए अपने एक शिकारी मित्रको परामर्श देते हैं। संसारको नर्क बना देनेवाले पूँजीपतियोंसे आप कितनी घृणा करते हैं, यह 'बाग़ीका ख्वाब' पढ़कर ही जाना जा सकता है। सन् ४२के आन्दोलनमें जो हुआ वह १०-१२ वर्ष पूर्व ही दिव्यदृष्टा अहसानने बाग़ीके ख्वाबमें लिख दिया था।

'अहसान'को बचपनमें संस्कृत और हिन्दी पढ़नेका चाव था। परन्तु दरिद्र परिवारके एकमात्र कमाऊ पिताको रुग्ण-शैया पकड़नेपर पढ़ाई-लिखाईके सब स्वप्न भंग हो गये। स्वयं मज़दूरी करना प्रारम्भ कर दिया। किशोरावस्था और उसपर अचानक घोर परिश्रम। 'अह-सान' भी चारपाईपर गिर पड़े। मगर मरता क्या न करता? पड़े-पड़े भी परिवारके भरण-पोषणकी चिन्ताने चैन न लेने दिया। रुग्णावस्थामें ही म्युनिस्पिल कमेटीमें हल्की-सी नौकरी कर ली। चेचककी पीपसे शरीरमें कपड़े चिपक जाते फिर भी नौकरी करनेको विवश थे।

अनेक प्रयत्न करनेपर भी जब जीवन-निर्वाह दूभर हो उठा तो मातृ-भूमिसे विदा होकर कितने ही स्थानोंमें चक्कर काटनेको विवश हुए, परन्तु कहीं भी ढंग न बैठा। अन्तमें लाहौर आये और वहाँ ईंट-गारा ढो कर जीवन निर्वाह करने लगे। परिश्रमी और ज़हीन तो थे ही। धीरे-धीरे राज-मिस्त्रीका कार्य करने लगे। भाग्यका खेल देखिये कि जिसे साहित्य-निर्माण करना था वह भवन-निर्माण-कार्य करनेपर मजबूर होता है। जो पूँजीपतियोंके प्रति असीम घृणा रखता था उसीको उनके महल बनानेको बाध्य होना पड़ा।

'अहसान' राजमिस्त्रीका कार्य करते हुए लाहौर क़िलेकी बुलन्द

दीवारसे गिरे और महीनों खटिया सेककर उठे तो मिन्नत-खुशामद करके किसी रईसकी कोठीमें चौकीदार हो गये। वहीं धीरे-धीरे बाग़बानी भी सीख ली। इस चौकीदारीके कार्यसे 'अहसान' अत्यन्त प्रफुल्लता और गर्वका अनुभव करते थे क्योंकि यहाँ पढ़ने-लिखनेकी सुविधा मिल जाती थी। परन्तु क़िस्मतकी मार 'अहसान'की यह नौकरी भी जाती रही। फिर वही रोज़ीकी तलाशमें दर-दरकी खाक छाननी शुरू कर दी। कभी रेलवेमें नौकरी मिली तो कभी मोचीका कार्य करना पड़ा। यहाँ तक कि बग़ैर रमज़ान आये रोज़े रखने पड़े तथा कपड़ेपर कंट्रोल न होते हुए भी फटेहाल रहना पड़ा। परन्तु अपनी वज़हदारी और ग़रूरे-मुफ़लिसीपर बाल नहीं आने दिया। 'अहसान'की इस आनका उल्लेख तौक़ीर साहब इस तरह करते हैं :—

"अहसान मुझे अपने कुटुम्बियों और प्रियजनोंमें सबसे अधिक प्रिय है। यदि 'अहसान' मेरे स्नेहपूर्ण आग्रहको मान लेता तो मैं इस योग्य अवश्य था कि उसे लाहौरमें दरिद्रताके अभिशापसे बचा लेता। किन्तु आवश्यकतासे अधिक इस स्वाभिमानीने आग उगलती हुई दोपहरमें मज़दूरी करना तो श्रेष्ठ समझा, परन्तु मुझ-जैसे अन्तरंग मित्रसे भी सहायता लेना अपमान समझा।

मुझे वे दिन अच्छी तरह स्मरण हैं कि जब दोपहरको सब मज़दूर आराम करते थे और 'अहसान' सबसे जुदा एकान्तमें पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ा करता था। मैं उन रातोंको नहीं भूल सकता जब कि 'अहसान' अकेला एक तंग कोठरीमें टाटके बिस्तरपर बैठा हुआ मिट्टीके तेलकी डिबिया एक चीड़के सन्दूक़पर जलाये हुए पुस्तकोंमें तल्लीन पाया जाता था। 'अहसाम'ने लाहौरमें मज़दूरी भी की और मेमारी भी। पहरेदारी भी और बाग़बानी भी। लेकिन उसे कभी रातको १२ बजेसे पहले और प्रात: ४ बजेके बाद सोते हुए नहीं पाया। और आज तक उसका यही नियम चला आता है।

परिश्रम किसीका व्यर्थ नहीं जाता। फलस्वरूप 'अहसान' आज ख्यातिप्राप्त शायर है। 'अहसान'की यद्यपि वह खस्ता हालत नहीं रही है, फिर भी वह साहसको तोड़ देनेवाली घाटियोंसे गुज़र रहा है। उसका कहना है कि 'मेरी बोरियेपर आँखें खुलीं, मगर दम क़ालीनपर निकलेगा।' अभी चन्द रोज हुए बरेलीसे वह एक दरी खरीद लाया। एक दोस्तने व्यंगमें पूछा—'अहसान साहब! बोरियेसे दरी तक तो आ गये हो, अब क़ालीनमें कितना अर्सा है?' 'अहसान'ने मुस्कराते हुए जवाब दिया—'सिर्फ़ बालका फ़र्क़ है।' "[1]

'अहसान' साहबकी नज़्मोंके ६-७ संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। नमूनेके तौरपर उनकी ५ नज़्मोंका थोड़ा-थोड़ा अंश दिया जा रहा है। यद्यपि इस तरहसे बीच-बीचके अंश छोड़ देनेसे कविताका प्रवाह और सौन्दर्य बिगड़ जाता है; परन्तु क्या करें, स्थानाभावके कारण लाचारी है।

---

[1] नवाएकारगरसे।

नाख़्वान्दा ख़ातून (अशिक्षिता नारी)

खतौलीसे मेरठ आते हुए एक आँखों देखा दृश्य चित्रित करते हैं :—

. . . .

याद है अब तक वोह मन्ज़र[1] ढल चुका था आफ़ताब।
धीमा-धीमा था शररअफ़रोज़[2] किरणोंका रुबाब॥

कट चुके थे जंगलोंमें जाबजा गेहूँके खेत।
जम रही थी पाँवसे पिचके हुए तिनकोंपै रेत॥

झुक रही थी मअबदे[3] मग़रिबमें सूरजकी जबीं।
चुप थी ख़ाली गोद फैलाये हुए बेवा ज़मीं॥

ख़ारोख़समें[4] परशकिस्ता[5] टिड्डियोंकी आहटें।
नहरकी पटरीपै जालोंके तले धुँधलाहटें॥

बढ़ रही थी छाँव खेतोंके किनारोंकी तरफ़।
फैलते जाते थे साये रहगुज़ारोंकी[6] तरफ़॥

नालाज़न[7] थीं फ़ाख़्ताएँ[8] ढल रही थी दोपहर।
हलकी-हलकी साँस लेती चल रही थी दोपहर॥

सनसनाती कीकरोंकी टहनियाँ कुछ ख़म-सी थीं।
धूपकी शिद्दत, लुओंकी सीटियाँ मद्धम-सी थीं॥

इसी तरह प्राकृतिक सौन्दर्यकी छटा बखेरते हुए आगे कहते हैं :—

---

[1] दृश्य; [2] प्रकाशकी शोभा बढ़ानेवाला; [3] मन्दिर-मस्जिद; [4] कूड़ा-करकट, काँटे और घास; [5] पर टूटे हुए; [6] मार्गोंकी; [7] फ़रियादी, आर्त; [8] बुलबुलें।

आ रहा था मैं खतौलीसे थका हारा हुआ।
प्यास का, पैदल सफ़रका, धूपका मारा हुआ।।

* * *

रफ़्ता-रफ़्ता शहरमें 'अहसान' जब मैं आ गया।
वोह समाँ देखा ग़रूरेज़िन्दगी थर्रा गया।।

* * *

एक अशिक्षिता नारीका चित्र खींचते हुए आगे फ़र्माते हैं :—

आई है घरसे निकलकर ख़त लिखानेके लिए।
गोशेनामहरमको[1] राज़ेदिल[2] सुनानेके लिए।।

* * *

शर्मसे मामूर[3] आँखें बेकसीकी[4] नोहाख़्वाँ[5]।
थरथराते लफ़्ज़, शरमाता बयाँ, रुकती ज़बाँ।।

यह तो हालत और आलिम मुस्तरी नामानिगार[6]।
लिखते-लिखते रोक लेता है क़लमको बार-बार।।

* * *

ताकि चश्मेबदसे[7] वोह इस नेकख़ूको[8] देख ले।
दीदयेबेआबरूसे[9] आबरूको[10] देख ले।।

* * *

अशिक्षिता नारीकी इस बेबसीपर 'अहसान' उबल पड़ते हैं। भारतीयोंको झाड़ बताते हुए आगे फ़र्माते हैं :—

---

[1] हृदयकी बातसे अनभिज्ञको; [2] हृदयका भेद; [3] पूर्ण; [4] लाचारीकी; [5] रुदन करनेवाली; [6] पत्र लिखनेवाला मुंशी; [7] कुदृष्टिसे; [8] भद्रको; [9] निर्लज्ज नेत्रोंसे; [10] साकार लज्जाको।

जिनका दूध उनको मयस्सर था वोह माएँ और थीं।
जिनसे यह परवान चढ़ते थे वुआएँ और थीं॥

* * *

हाँ, अगर पहली-सी माएँ हों तो फिर पैदा हों मर्द।
जिनका मशरब हो उख़ुव्वत[1] शग़ल हो जिनका नबर्द[2]॥
जिनका दिल बेदार[3] हो तौक़ोसलासिल[4] देखकर।
जो चलें हर राहचेपर हक़[5] ओ बातिल[6] देखकर॥
जिनकी आँखें हों भयानक घाटियोंकी राज़दार[7]।
सर झुकाये सामने जिनके फ़राज़े[8] कोहसार[9]॥
जिनको तूफ़ाने तबाही में नज़र आए चमन।
जिनकी फ़ितरत हो तड़पती बिजलियोंपर ख़न्दाज़न[10]॥
जिनकी ठोकरसे रहे पामाल[11] मैदानेअजल[12]।
मक़बरे जिनको नज़र आते हों जन्नतके महल॥
जिनके क़दमोंके तले रुककर चले पत्थरकी नब्ज़।
देखती हों जिनकी लम्बी उँगलियाँ ख़ंजरकी नब्ज़॥
साइदोंपर[13] जिनके हो ख़ूँरेज़ शमशेरोंको नाज़।
चुटकियोंपर जिनके हों मर्गआफ़रीं तीरोंको नाज़॥
तनतनेसे जिनके हो सैलाबे ख़ूँका रंग फ़क़।
जिनकी इक ललकारसे आ जाए शेरोंको अरक़॥
कर सकें जो दुश्मनोंके मोर्चे ज़ेरोज़बर।
सो सकें रातोंको रखकर लाशएइन्सांपै सर॥

---

[1]भ्रातृत्वभाव; [2]युद्ध; [3]जागना; [4]तौक़ और बेड़ियाँ; [5]सत्य; [6]असत्य; [7]भेद जाननेवाली; [8]उच्च; [9]पर्वत; [10]मुस्करानेवाली; [11]नष्ट; [12]मृत्युक्षेत्र; [13]बाज़ुओंपर, कलाइयोंपर।

क़हक़हे मारें जो बारानेबलाको देखकर।
नारएहक़ सर करें बाबेक़ज़ाको देखकर॥
धूपमें खंजर हों जब क़ालीन-सा बुनते हुए।
मुस्करायें ज़ख्मियोंकी सिस्कियाँ सुनते हुए॥
जाएँ तोपोंके धमाकोंमें गज़र दम झूमकर।
बर्छियाँ लेकर बढ़ें ठंढी अनीको चूमकर॥
माँग्रोंके सीने अगर हों मायावारे इल्मोफ़न।
क्यों न फिर बच्चे हों पैदा अर्जमन्दो सफ़शिकन॥
—नवाए कारगरसे।

मज़दूरकी मौत :—

एक टूटा-सा मकाँ है यासोहिरमाँ[1] दर किनार।
बामोदर[2] सहमे हुए, ख़स्ता मुँडेरे सोगवार॥
सुरमई छप्पर धुएँसे सहन नाहमवार-सा[3]।
ज़र्रा-ज़र्रा सरबसर, नासाज़-सा बीमार-सा॥
आग चूल्हेमें नहीं यह शिद्दतेइफ़लास[4] है।
घरका घर ओढ़े हुए गोया रदाएयास[5] है॥
ताक़ हैं काले धुओंसे और घड़ोंपर काई है।
नीमजाँ ग़ुर्बतकी डूबी हुई बीनाई है॥
घरके एक कोनेमें चक्की मुफ़लिसीकी राज़दाँ।
छतमें जालोंकी चर्खे, जालोंके अन्दर मकड़ियाँ॥

[1]निराशा; [2]छत और दर्वाजे; [3]टूटा-फूटा; [4]दरिद्रताकी बहुलता; [5]निराशाकी चादर।

इक तरफ़को जंगआलूदा तवा रक्खा हुआ।
ख़स्ता दोवटपर सिसकता-सा दिया रक्खा हुआ॥

* * *

मशरिक़ी[1] हिस्सेमें इक मजबूर बीमारोज़ईफ़[2]।
नामुरादो,[3] नातवाँ,[4] मजबूरो, माज़ूरो[5] नहीफ़[6]॥
हैं अरक़में तरबतर उलझी हुई दाढ़ीके बाल।
डूबती नब्ज़ें, उलझती हिचकियाँ, चेहरा निढाल॥

* * *

पास बीबी गोदमें बच्चा लिये ख़ामोश है।
जिसकी ख़ातिर बेवगी, खोले हुए आग़ोश[7] है॥

* * *

देगची ख़ाली है चूल्हेपर दिखानेके लिए।
मुज़तरब[8] बच्चोंको बहलाकर सुलानेके लिए॥

* * *

जिस तरह लेकर सम्भाला शमा होती है ख़मोश।
यूँही जब दम तोड़ते मज़दूरको आता है होश॥

तो बीबीको तसल्ली देते हुए, ईश्वरसे प्रार्थना करते हुए कहता है :—

गर्चे कुछ सामाँ नहीं है अहतमामेमर्गका[9]।
ख़ैर मक़दम दिलसे करता हूँ पयामेमर्गका॥

* * *

---

[1]पूर्वी; [2]वृद्ध; [3]असफल; [4]दुबला; [5]मजबूर; [6]दुर्बल, पतला; [7]गोद; [8]बेचैन; [9]मृत्युके स्वागतका।

मेरे बाद इन ख़स्ताजानोंको परेशानी न हो।
तरजावरअन्दाम इनको शमअ ईमानी न हो॥

यह न हो यह जाके फैलाएँ कहीं दस्तेसवाल।
यह न हो उतरे हुए चेहरे हों तसवीरेमलाल॥

यह न हो इनका ग़रूरेमुफ़लिसी बरबाद हो।
यह न हो इनके लबोंपर नालओफ़रियाद हो॥

यह न हो ये फूल हमसायोंको[1] ठोकरमें रहें।
यह न हो ये ज़ालिमोंके जोरे बेपायाँ सहें॥

* * *

यह न हो इस नेकदिल बेवाको दुनिया हो वबाल।
यह न हो जीना इसे हो जाये मरनेसे मुहाल॥

मुफ़लिसी बढ़कर कहीं अस्मतको दुश्मन हो न जाय।
मामता औलादकी ईमाँकी रहज़न[2] हो न जाय॥

इसी तरह कहते-कहते मजदूर दम तोड़ देता है, तब शायर ख़ुदासे पूछता है :—

क्या यही इंसाफ़ेयज़दानी[3] है ऐ परवरदिगार ?
क्या तेरे बन्दे यूँही रहते हैं आफ़तके शिकार ?

* * *

यह तेरी ग़ैरतमें जज़्बे बेनियाज़ी हाय! हाय!
क्या इसीका नाम है मुफ़लिसनवाज़ी हाय! हाय!

—नवाए कारगरसे।

---

[1]पड़ोसियोंकी; [2]लुटेरी।
[3]ईश्वरीय न्याय।

एक शिकारीसे—

ऐ अनीसे दश्त ! ऐ मेरे बहादुर हमनशीं !
शेरनी और फिर दुनालीसे गिरा दी जिन्दहबाश ।।

लेकिन इस मंज़रसे मेरा दिल हुआ जाता है शक़ ।
है अचानक मौतसे इसको मुझे बेहद क़लक़ ।।

इसका यह नाज़ुक शिकम, यह ज़र्द मख़मलका गुलू ।
आह ! यह छकड़ेके पहियोंपर जवानीका लहू ।।

इसका नर फ़ुरक़तमें इसकी बावला हो जायगा ।
हाल बच्चोंका न जानें क्या-से-क्या हो जायगा ।।

भेड़िये हों, रीछ हों, चीते हों या ख़ूँख़्वार शेर ।
दस्तेवादी तक बहादुर हैं नशिस्ताँ तक दिलेर ।।

यह कभी आबादियोंमें आके ग़ुर्राते नहीं ।
यह किसानों और मज़दूरोंका हक़ खाते नहीं ।।

* * *

इनसे बढ़कर वोह दरिन्दे हैं शक़ीदिल गुर्ग ख़ूँ ।
चूस लेते हैं जो मज़दूरोंकी शहरगका लहू ।।

इनसे बढ़कर वे दरिन्दे हैं कि ज़ालिम बरमला ।
घोंट देते हैं अदालतमें सदाक़तका गला ।।

इनसे बढ़कर वे दरिन्दे हैं बशक्ले राहबर ।
दिनदहाड़े लूट लेते हैं जो बेवाओंके घर ।।

* * *

इनसे बढ़कर वे दरिन्दे हैं जो पोशिश देखकर ।
अपने मुफ़लिस हमनशीनोंसे चुराते हैं नज़र ।।

इनसे बढ़कर वे दरिन्दे हैं जो इशरतके लिए।
दाम फैलाते हैं बेवाओंकी अस्मतके लिए॥

इनसे बढ़कर वे दरिन्दे हैं जो जरके वास्ते।
बाइसे तकलीफ़ हैं नोए बशरके वास्ते॥

लाख हैवाँ हों अख़ुव्वतको यह खो सकते नहीं।
शेर चीते ऐसे बेइन्साफ़ हो सकते नहीं॥

—आतिशे ख़ामोशसे

नौ उरूसे बेवा—

'अहसान' साहबके एक मित्र सुहागरातको ही चल बसे। उनका जिस लड़कीसे प्रेम था उसीसे जैसे-तैसे विवाह हुआ। पर हायरे भाग्य! सुहागरातको दुल्हनके बजाय मौतने आलिंगन किया। उस वज्रपातका आँखों देखा दृश्य कैसे हृदयद्रावक शब्दोंमें खींचते हैं:—

सितारोंकी फ़लकपर जगमगाती अंजुमन टूटी।
इधर दूल्हाका दम निकला उधर पहली किरन फूटी॥

शिकन बिस्तरमें दिलकी आरज़ू लाने न पाई थी।
नसीमे ख़्वाब बेदारीमें लहराने न पाई थी॥

मचा कुहराम हलचल पड़ गई सीने फड़क उट्ठे।
दिलोंमें आतिशेअन्दोहके शोले भड़क उट्ठे॥

* * *

जो सुनता था कि दूल्हा मर गया दिल थाम लेता था।
तहय्युर आँखसे नोकेज़बाँका काम लेता था॥

वज़ीफ़ेकी तरह माँके लबोंपर नाम जारी था।
अलमसे बापपर इक आलमे वहशत-सा तारी था॥

* * *

दमावम हो रही थी मौत और हस्तीमें नजवोकी ।
कि जैसे चाँद छुपनेसे बढ़े जंगलमें तारीकी ।।
उरूसेनौका सीना बेबसीसे पारा-पारा था ।
न खुलकर रो ही सकती थी न जब्तेग़मका चारा था ।।
क़यामत हैं क़यामत कारज़ारेज़िन्दगानीमें ।
किसी दूल्हाका पहली रात मर जाना जवानीमें ।।
दरोदीवार थर्राते हुए मालूम होते थे ।
ज़मीनोचर्ख़ चकराते हुए मालूम होते थे ।।
हुजूमे बेकराँ था कर्बसे जाँ खोनेवालोंका ।
वोह मुँह तकती थी दीवानोंकी सूरत रोनेवालोंका ।।
वोह शर्मिन्दा थी मातीमोंकी अन्दाज़ेहिक़ारतसे ।
कली जैसे कोई मुरझाये सूरजकी तमाज़तसे ।।

* * *

अलमने रौंद डाला था ग़रूरेकामरानीको ।
बहारें जा रही थीं छोड़कर बेकस जवानीको ।।

* * *

हयासे रह गये थे अश्क यूँ लहराके आँखोंमें ।
गुमां होता था मोती जम गये हैं आके आँखोंमें ।।

* * *

वह रोते देखती थी सबको लेकिन रो न सकती थी ।
हयासे मातमेशौहरमें शामिल हो न सकती थी ।।
मुहल्लेकी छतोंपर दूर तक एक हश्रेमातम था ।
असरसे मौंके हर मासूम बच्चा चश्मेपुरनम था ।

सहर बुहरा रही थी रातकी सूनी कहानीको।
लिबासे नौउरूसी रो रहा था नौजवानीको॥

वही कमरा कि जिसकी शाम थी राहत असर उसको।
उसी कमरेमें जाते मौत आती थी नजर उसको॥

यह नौ आमोज थी मग़मूम होना भी न आता था।
सलीक़ेसे जवाँ शौहरको रोना भी न आता था॥

* * *

विधवा विलाप करते हुए सोचती है :—

मुसीबत हूँ मुसीबतमें अगर मैकेमें जा बैठी।
मचेगा शोर "डायन खाके शौहर माँके आ बैठी"॥

मेरी हर एक साथिन मुझको नामानूस समझेगी।
सुहागन हो कि दोशीज़ा मुझे मनहूस समझेगी॥

. . . .

—नवाएकारगरसे

कुत्ता और मजदूर

अहसान साहब घूमने जा रहे थे कि—

. . . .

कुत्ता इक कोठीके दरवाज़ेपं भूँका यकबयक।
रुईकी गद्दी थी जिसकी पुश्तसे गरदन तलक॥

रास्तेकी सिम्त सीना बेख़तर ताने हुए।
लपका इक मजदूरपर वह सैद गरदाने हुए॥

ओ यक़ीनन शुक्र ख़ालिक़का अदा करता हुआ।
सर झुकाये जा रहा था, सिसकियाँ भरता हुआ॥

पाँव नंगे फावड़ा काँधेपै यह हाले तबाह।
उँगलियाँ ठिठरी हुई धुँधली फ़िज़ाओंपर निगाह॥
जिस्मपर बेआस्तीं मैला, पुराना-सा लिबास।
पिंडलियोंपर नीली-नीली सी रगें चेहरा उदास॥
ख़ौफ़से भागा बिचारा ठोकरें खाता हुआ।
संगदिल ज़रदारके कुत्तेसे थर्राता हुआ॥
क्या यह एक धब्बा नहीं हिन्दोस्ताँकी शानपर।
यह मुसीबत और ख़ुदाके लाड़ले इनसानपर॥
क्या है इस दारुलमहनमें आदमीयतका विक़ार ?
जब है इक मज़दूरसे बहतर सगे सरमायादार॥
एक वोह हैं जिनकी रातें हैं गुनाहोंके लिए।
एक वो हैं जिनपै शब आती है आहोंके लिए॥
—दर्देज़िन्दगीसे

३० अप्रैल १९४५

१७

महाराज बहादुर 'बर्क़' बी० ए०

[जन्म-देहली, जुलाई १८८४, मृत्यु १२ फरवरी १९३६]

'बर्क़' पैदायशी और ख़ानदानी शायर थे। उनकी आँखें शायरीके वातावरणमें खुली थीं। उनके नाना और पिता दोनों ही शायर थे। शायरी आपको मानों पारिवारिक सम्पत्तिके रूपमें मिली थी। अतएव बचपनसे ही आपको शेरोशायरीसे दिलचस्पी थी। एक बार बचपनमें आपकी आँखें दुखने आईं। किसी हमजोलीके मिज़ाज पूछने पर आपके मुँहसे बेसाख़्ता निकल पड़ा :—

दिल तो आता था मगर अब आँख भी आने लगी।
पुरख़ताकारी इश्क़की यह रंग दिखलाने लगी॥

किशोरावस्था और उस पर भी फड़कता हुआ यह फ़िलबदी शेर! हवामें तैर गया। जिसने भी सुना कलेजा थाम कर रह गया। इश्क़, मुश्क, खाँसी खुश्क छिपायेसे नहीं छिपते। धीरे-धीरे बर्क़की इस हाज़िर जवाबी और शेरोशायरीकी गन्ध आपके पिता तक भी पहुँची तो बाग़-बाग़ हो गये। परन्तु विद्याध्ययनमें विघ्न पड़नेके भयसे इस ओर अधिक झुकाव न होने दिया। आखिर १९०३ में मैट्रिक पास कर लेनेपर दिल्लीके मुशायरोंमें कभी-कभी सम्मिलित होनेकी आज्ञा मिली।

'बर्क़'साहबने शायरीकी चौखट पर जब क़दम रखा तो 'आज़ाद' और 'हाली' ग़ज़ल कहना छोड़ चुके थे। मिर्ज़ा 'दाग़' देहली छोड़कर

हैदराबाद रहने लगे थे। दिल्लीमें रहे-सहे नवाब 'साइल', 'बेख़ुद' 'आग़ाशायर', 'कैफ़ी', 'शैदा', 'माइल', और लाला श्रीराम जैसे शायरों और अदीबोंका दम ग़नीमत था। इन्हींके दमसे देहलीकी वज्मेअदबकी शमा रोशन थी। रौनक़ेमहफ़िल मिर्जा 'ग़ालिब' 'ज़ौक' 'मोमिन' 'दाग़' जैसे बाकमाल उस्ताद नहीं रहे थे।

हज़ारों उठ गये लेकिन वही रौनक़ है महफ़िलकी।

फिर भी मुशायरे उसी उत्साहसे पुरलुत्फ़ और बारौनक़ होते थे। उस्ताद चल बसे थे। मगर अपने शागिर्दोंको उस्तादीकी मसनदपर बिठा गये थे। बक़ौल 'बर्क़':—

'नाम लेवा उनके हम ज़ेरेफ़लक बाक़ी तो हैं।
मिटते-मिटते भी जहाँमें आजतक बाक़ी तो हैं॥

'बर्क़'ने इन्हीं प्राचीन प्रणाली के उस्तादों की सुहबतमें होश सम्हाला। अत: आपकी कविताका श्रीगणेश भी ग़ज़लगोईसे ही हुआ। परन्तु धीरे-धीरे नज़्मकी ओर रुचि बढ़ती गई। आपकी पहली नज़्म 'कारेख़ैर' जनवरी १९०८के 'ज़बान'में प्रकाशित हुई। यह जनतामें काफ़ी पसन्द की गई। उत्तरोत्तर 'बर्क़' साहबकी ख्याति फैलती चली गई। बैरिस्टर आसफ़अली साहब (वर्त्तमान उड़ीसा प्रान्तके गवर्नर) के शब्दोंमें "देहली और देहलीवाले ही नहीं उर्दूके हामी 'बर्क़'के कमाल पर जितना नाज़ करें बजा है। 'बर्क़' देहलीकी वोह सुथरी ज़बान लिखते थे, जो सनद मानी जा सकती थी।...............................

'बर्क़'की तबियत में पहाड़ी चश्मेका-सा बहाव था कि जिससे हमेशा साफ़ वा निथरा हुआ पानी उबलता रहता है। उनके कलाम में अव्वलसे आख़िर तक मोतीकी-सी आब पाई जाती है। अगर उन्होंने फूलोंकी दुनियाँसे सुफ़येक़रतास (पृष्ठों)को सजाया तो इस तरह कि फूलोंके रंगोबू और पत्तियोंकी नरमाहट क़ायम रही। और अगर

जुगनुओंकी धूप-छाँवपर नज़र डाली तो बिजलीके ठण्डे शरर क़ायम रखे। क़ुदरतके मनाज़र (प्राकृतिक दृश्य) की तसवीरें खींची तो ऐसे पुर-असरार लूकाज़ा (मनमोहक कूची)से रंग भरे कि सब्ज़ा लहलहाता, फूल खिलखिलाते, घटायें उमड़तीं, शबनम शुआओं (सूर्यकी किरणों)के परोंपर उड़ती और मुर्ग़ाने चमन (कोयल, बुलबुल आदि) बज़्मेतरब (ख़ुशीकी महफ़िल) को आरास्ता (शृंगार) करते नज़र आते हैं"[1]।

मतलयेअनवारकी भूमिका लिखते हुए मौलाना असग़र गोण्डवी फ़र्माते हैं :—

"बर्क़ साहबकी नज़्मोंकी सबसे बड़ी ख़ूबी ये है कि उनकी नज़्मों-की आत्मा और वेष-भूषा सब कुछ भारतीय है। इंगलिश साहित्य का ज्ञान उनके विचारोंको परिष्कृत तो करता है पर उनकी मौलिकता और भारतीय भावनाको छू नहीं पाता है। और यही वह सबसे बड़ी कामयाबी है जो किसी बड़े-से-बड़े नवीन प्रणालीके शायरको हो सकती है"।[2]

मुझे 'बर्क़' साहबको सैकड़ों बार दिल्लीके धार्मिक, सामाजिक शिक्षाकेन्द्रों और मुशायरोंमें सुननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। अहले देहलीको 'बर्क़'पर नाज़ था। जहाँ भी जाते समाँ बांध देते थे। जो कहते थे सबसे जुदा और अनूठा कहते थे। अभिमान लेशमात्र भी नहीं था। अपनेसे बड़ोंका विनय और छोटोंको प्यार करते थे। मगर स्वाभिमान इतना कि एक बार आपके पढ़नेको उद्यत होनेपर एक उर्दू दैनिक पत्रके मालिक और सम्पादक बीचमें उठकर जाने लगे तो आपने वहीं ऐसी झाड़ पिलाई कि बार-बार क्षमा-याचना करनेपर उन्हें फिर बैठने की आज्ञा मिली। जीवन सरल, स्वभाव मृदु और व्यक्तित्व ऊँचा था।

---

[1] हर्फ़ेनातमाम, पृष्ठ ३४; [2] मतलये अनवार, पृष्ठ ५३।

'बर्क़' साहब कुछ दिन और जीवित रहते तो न जाने कैसे-कैसे अनमोल मोती छोड़ जाते। फिर भी जो लिख गये हैं, उर्दू साहित्यके लिये गौरवकी वस्तु हैं। खेद है कि इस गुटबन्दीकी दुनियाँ में उनका कोई गुट न होनेसे पब्लिसिटी न हो पाई और जो ख्याति उनको मिलनी चाहिये थी वह न मिली। 'बर्क़'के ही शब्दोंमें :—

खिलके मुर्झा भी गया आँख किसीकी न पड़ी।

नसीमे सुबह

[प्रातः कालीन वायु]

तू चमनमें आई इश्क़ेगुलका दम भरती हुई।
छाओंमें तारोंकी गिन-गिनकर क़दम धरती हुई ॥
पहले आहिस्ता चली अठखेलियाँ करती हुई।
फिर वही बरती अदाएँ रोजकी बरती हुई ॥

गुलको छेड़ा तुर्रयेसम्बुल[1] परेशाँ कर दिया।
गुंचये नौखेजका[2] सदचाक दामाँ कर दिया ॥

छाओंमें तारोंकी वोह आना तेरा अन्दाजसे।
वोह जगाना नींदके मातोंको ख्वाबेनाजसे ॥
जैसे सरगोशी[3] करे कोई किसी दमसाजसे[4]।
या कहे देकर ठहोके यूँ दबी आवाजसे—

"ले चुके अँगड़ाइयाँ बस गेसुओंवालो उठो।
नूरका तड़का हुआ ऐ शबके मतवालो उठो" ॥

चौधरी जगत मोहन लाल 'रवाँ'के शब्दोंमें :—

"उक्त बन्द पढ़नेसे ऐसा मालूम होता है कि कोई डर-डरकर पाँव रखता चला आ रहा है और जैसे कोई आशिक़ अपने महबूबकी बारेगाहेनाज़ (प्रेमिकाके शयन-कक्ष)में जाते हुए ज़रा झिझकता है।

---

[1]सुगन्धित बनस्पतिका ताज; [2]नवजात कलीका; [3]छेड़छाड़; [4]झूँठमूँठ सोनेवालेसे।

इसीलिए चूँकि 'नसीमे सुबह' इश्क़ेगुलका दम भरती हुई आई है, बेबाक तरीक़ेसे जल्द-जल्द नहीं चली आती बल्कि आहिस्ता-आहिस्ता तारोंकी छाओंमें आती है। ज्यों-ज्यों सुबहके आसार ज्यादह नुमायाँ होते जाते हैं 'नसीमेसुबह' भी निस्बतन शोख़ होती जाती है।"

मिट्टी का चिराग़

हल्का-हल्का नूर बरसाता है मिट्टीका चिराग़।
इसकी ज़ूपाशीसे[1] मिट जाता है ज़ुल्मतका सुराग़॥
वोह चमक है इसमें तारे चर्ख़पर खाते हैं दाग़।
बादएनाबेतजल्लीका[2] है छोटा-सा अयाग़[3]॥
लैलियेशबका शरारेहुस्न बेपरवा है ये।
रूकशे महरेज़ियापरवर है वोह ज़र्रा है ये॥

*　　*　　*

ये वोह शै है रोशनीका बोलबाला इससे है।
गर्मियेबज़्मेतरब, घर-घर उजाला इससे है॥
लक्ष्मीपूजाकी ओनल दीप-माला इससे है।
मुँह शबेतारीकका दुनियामें काला इससे है॥
झोंपड़ी मुफ़लिसकी रोशन है इसीके नूरसे।
यह मुसाफ़िरको दिखा देता है मंज़िल दूरसे॥

*　　*　　*

जुगनू

आतिशेहुस्नकी उड़ती हुई चिनगारी है।
शबेतारीकमें जो महवेज़िया[illegible] जारी है॥

*　　*　　*

---

[1]रोशनीसे; [2]परिपूर्ण प्रकाशरूपी मदिराका; [3]प्याला।

किसी नाशादकी आहोंका शरारा तो नहीं ?
आस्मांसे कोई टूटा हुआ तारा तो नहीं ?

* * *

जल्वयेहुस्न तेरा परदेसे मानूस नहीं।
तू है वह शम्अ कि शर्मिन्दये फ़ानूस नहीं ।।

शफ़क़

(सूर्यास्तकी लाली)

रंग लाया है शफ़क़ बनकर शहीदोंका लहू।
लोहेगरदूंसे अयाँ हैं नक़्शेख़ूनेआरज़ू ।।

* * *

सुर्ख़ जोड़ा लैलियेशबने किया है जेबेतन।
रोज़ेरोशनसे है हमआग़ोश चौथीकी दुल्हन ।।

* * *

बादयेगुलरंगका तेरे मज़ा लेता हूँ मैं।
तिश्नगीये शौक़े नज़ारा बुझा लेता हूँ मैं ।।

* * *

महव हो जाते हैं दम भरमें तेरे नक़्शोनिगार।
है यूँही बक़्क़ेजिहाँ उम्रे दौरोज़की बहार ।।
जल्वयेगुल तू है मुश्ताक़ेतमाशाके लिए।
मंज़रेइबरतनुमा है चश्मेबीनाके लिए ।।

* * *

सुबहे उम्मीद

(आशाका प्रभात)

बिस्तरेमर्गपै हारस है यह बीमारोंकी ।
अश्कशोई[1] यही करती है अज़ादारोंकी[2] ।।
यह मददगार यतीमोंकी है नाचारोंकी ।
है हवाख़्वाह यही जानसे बेज़ारोंकी ।।
नक़्श इसके दिलेमुज़तरमें[3] जो जम जाते हैं ।
अश्क रुख़सारपै बहते हुए थम जाते हैं ।।

हर तरफ़ होता है जब ग़मकी घटाओंका हुजूम ।
दिलसे हो जाता है नक़्शेरुख़े राहत मादूम[4] ।।
ज़िन्दगी होती है जब मौतसे बदतर मालूम ।
यासअफ़ज़ा[5] नज़र आती है हयातेमोहूम[6] ।।
इसके जल्वेकी झलक राहतेजाँ होती है ।
रोशनीका शबेहिरमाँमें[7] निशाँ होती है ।।

*   *   *

टूट जाए दिलेनाशाद अगर आस न हो ।
ज़िन्दगीका किसी ज़ीरूहको[8] अहसास[9] न हो ।।

अहलेहिन्द

(भारतीय)

इनक़लाबेदहरसे सब शानवाले मिट गये ।
रूमवाले मिट गये, यूनानवाले मिट गये ।।

---

[1]आँसू पोंछना; [2]मातम करने वालोंकी; [3]विकल हृदयमें; [4]नष्ट; [5]निराशा-वर्द्धक; [6]कल्पित जीवन; [7]निराशारूपी रात्रिमें; [8]भले आदमीको; [9]आभास ।

सोरियावाले मिटे, तूरानवाले मिट गये।
कौन कहता है कि हिन्दुस्तानवाले मिट गये?
नक़्शेबातिल[1] हम नहीं जिनको मिटाये आस्माँ।
हम नहीं मिटनेके जबतक है बिनाए आस्माँ॥
हमने यह माना हमारे आनवाले मिट गये।
भोज-से, विक्रम-से आलीशानवाले मिट गये॥
भीष्म औ अर्जुनसे योद्धा बानवाले मिट गये।
अकबरो परतापसे मैदानवाले मिट गये॥
नामलेवा उनके हम ज़ेरेफ़लक बाक़ी तो हैं।
मिटते-मिटते भी जहाँमें आजतक बाक़ी तो हैं॥

. . . .

क्या थे अहलेहिन्द यह चर्ख़ेकुहनसे पूछ लो।
या हिमालयकी गुफाओंके दहनसे पूछ लो॥
अपना अफ़साना लबेगंगोजमनसे पूछ लो।
पूछ लो, हर ज़र्रये ख़ाकेवतनसे पूछ लो॥
अपने मुँहसे क्या बतायें हम कि क्या वे लोग थे।
नफ़्सकुश[2] नेकीके पुतले थे मुजस्सिमयोग[3] थे॥

* * *

तेग़े हिन्दी

(भारतीय तलवार)

साफ़ करती सफ़ेदुश्मन[4] तू जिधर चलती है।
हाथ बाँधे तेरे साये में ज़फ़र[5] चलती है॥

* * *

---

[1]व्यर्थचिह्न; [2]संयमी; [3]पूर्णरूपेण योगी।
[4]शत्रुओंका व्यूह; [5]विजय।

तुझमें वोह आब है शेरोंका जिगर पानी है।
दुश्मनोंके लिए जुम्बिश तेरी तूफ़ानी है॥

तू वोह है बहरेरवाँ[1] जिससे रवानी[2] माँगे।
तेरा मारा हुआ मैदाँमें न पानी माँगे॥

* * *

दिल लरज़ते हैं ज़रा तू जो लचक जाती है।
चश्मेग़द्दारमें[3] बिजली-सी चमक जाती है॥

अपने मरकज़से[4] ज़मीं रनकी सरक जाती है।
मौत भी सामने आये तो झिझक जाती है॥

* * *

जब कभी रनमें चमकती हुई तू निकली है।
ख़ौफ़से होके फ़ना जानेउदू निकली है॥

* * *

लोहा माने हुए बैठा है ज़माना तेरा।
कि लबेआलमपर अबतक है फ़िसाना तेरा॥

पयामे शौक़

(अमरीकासे एक भारतीयका सन्देश)

डूबनेवाले सितारे ! ऐ लबेबाम आफ़ताब !
सरज़मीने हिन्दमें होनेको है तू बारयाब॥

जब वहाँ चमके उफ़क़में ज़ेरेदामाने सहाब।
मेरी जानिबसे वतनको इस तरह करना ख़िताब॥

---

[1]प्रवाहित समन्दर; [2]बहाव; [3]देशद्रोहीके नेत्रोंमें; [4]केन्द्रसे।

इक मुसाफ़िरको जमींबोसीका तेरी शौक़ है।
दूर उफ़्तादा[1] तेरा चश्मेसरापा[2] शौक़ है॥

इसकी हसरत है कि जबतक आँखसे आँसू गिरें।
जज़्बेसादिक़के[3] असरसे सब दुरेशबनम[4] बनें।
तेरे साहिल[5] तक उन्हें मौजेंसबा[6] को ले उड़ें।
गौहरेनायाब तुझपर वारकर सदक़े करें॥

क़तराहाये अश्केहसरत मिलके तेरी ख़ाकमें।
बेलबूटे बनके निकलें सरज़मीने पाकमें॥

* * *

सब्ज़ये बेगाना

(घास-पात)

अत्याचारीको सम्बोधन करते हुए किस ख़ूबीसे चुटकी लेते हुए सावधान करते हैं :—

ओ मस्तेनाज़[7] रौंद ना ज़ेरेक़दम मुझे।
ज़ालिम ! बना न तख़्तये मश्क़े सितम मुझे॥
ठंडी हवामें लेने दे बेदर्द दम मुझे।
इतना न कर असीरे अज़ाबे अलम मुझे॥

ठुकरा न इस तरह कि गयाहेहज़ीं[8] हूँ मैं।
ख़ुदफ़र्त[9] इंकेसारसे[10] फ़र्शेज़मीं हूँ मैं॥

---

[1] दूर पड़ा हुआ; [2] देखनेको लालायित; [3] सत्यनिष्ठ भावनाके; [4] मोती जैसे; [5] किनारे; [6] हवाकी लहरें; [7] मदमस्त; [8] दुखिया घास; [9-10] स्वयं अपनी नम्रतासे।

महवेख़िरामेनाज़[1]! क़दम रख सम्हालकर।
उफ़्तादगाने[2] ख़ाकका भी कुछ ख़याल कर॥
नाचीज़ काह[3] हूँ मैं ज़रा देखभाल कर।
सदक़ा शबाबका न मुझे पायमाल कर॥
मेरे लिये हैं आफ़तेजाँ शोख़ियाँ तेरी।
ढाती हैं मुझपै क़हर ये अठखेलियाँ तेरी॥

इठलाके चल न ओ सितमईजाद[4]! ख़ैर है।
मुझ ख़ानुमाँख़राबसे[5] क्या तुझको बैर है॥
अच्छा यह शग़ल है तेरा अच्छी ये सैर है।
मेरा सरेनियाज़ है और तेरा पैर है॥
आया है बाग़में पए गुलगश्तेबाग़[6] तू।
पज़मुर्दगीका[7] दे न मेरे दिलपै दाग़ तू॥

* * *

हरगिज़ सितम न तोड़ किसी नातवान[8] पर।
बेफ़ायदा अज़ाब न ले अपनी जानपर॥
दारेफ़नामें[9] फूल ना इज़्ज़ोशानपर।
ओ मुश्तेख़ाक! उड़के ना चल आस्मानपर॥
हुश्यार है तो दहरमें दीवाना बनके रह।
बाग़ेजहाँमें सब्ज़ये बेगाना बनके रह॥

---

[1] मस्तचालमें लीन; [2] ख़ाक में पड़े हुओंका; [3] घास।
[4] अत्याचारोंके आविष्कारक; [5] बे घरबारवालेसे।
[6] बाग़की सैरको; [7] मुर्झानेका; [8] निर्बल।
[9] असार संसारमें।

दिले दर्द आश्ना

जिसे राहेतलबमें[1] खेल हो अपना मिटा देना।
हमेशा जिसकी ख़ू[2] हो जलके भी बूएवफ़ा देना॥
जिसे आता हो ज़ोरेनारवा[3] सहकर दुआ देना।
वदीयत[4] जिसकी फ़ितरतमें[5] हो रोतोंको हँसा देना॥
मेरे पहलूमें यारब ! वोह दिलेदर्द आश्ना देना।

कमरबस्ता रहे जो हर नफ़स इमदादे बेकसपर।
हमेशा गोशबरआवाज़[6] हो फ़रियादे बेकसपर॥
जो अश्केख़ूं बहाये ख़ातिरेनाशादेबेकसपर।
तड़प उट्ठे जो दर्दअंगेज़ियें[7] रूदादेबेकसपर[8]॥
मेरे पहलूमें यारब ! वोह दिलेदर्द आश्ना देना।

जिसे गर्मेतपिश रक्खे तड़पना बेक़रारोंका।
न देखा जाय जिससे हालेज़ार आफ़तके मारोंका॥
जिसे बेताब करदे शोरेमातम सोगवारोंका।
जो अंगारोंपै लोटे सुनके नाला दिलफ़िगारोंका॥
मेरे पहलूमें यारब ! वोह दिलेदर्द आश्ना देना।

ज़ेबुन्निसाकी क़ब्र

(औरंगज़ेबकी पुत्री की समाधि)

*　　*　　*

गुम्बद है, मक़बरा है, ना लोहेमज़ार है।
तावीज़ेक़ब्रका भी है मिटता हुआ निशां॥

---

[1] आवश्यकता पड़नेपर; [2] आदत; [3] अनुचित जुल्म; [4] धरोहर; [5] स्वभावमें; [6] चौकन्ना, सजग; [7] करुण पुकारपर; [8] निरीहकी आवाज़पर।

न शमअ़ है, न चादरेगुल है, न क़ब्रपोश।
मिट्टीका एक ढेर है इबरतकी दास्ताँ॥
वीरानियेलहद[1] है मजावर[2] सरेमजार।
जाइर[3] हुजूमेयास,[4] तबाही है पासबाँ[5]॥
है गर्दसे अटा हुआ अम्बार खाकका।
सब्ज़ा तो क्या कि शक्लेनमू[6] भी नहीं अयाँ॥
उड़ती है खाक और बरसती है तीरगी[7]।
छाया हुआ है हसरतोअन्दोहका[8] समाँ॥
रोती है बेकसी सरेबालीं खड़ी हुई।
तुरबतपै कसमपुरसीका आलम है नौहाख्वाँ॥
बादेसबा चढ़ाती है चादर गुबारकी।
हैं जर्राहाये रेगेबयाबाँ गुहर फ़िशाँ॥
है उसकी ख्वाबगह यह शबिस्तानेखाक अब।
जेबिन्दह जिसके दमसे थे क़िसरे फ़लकनिशाँ॥

* * *

उसको पसेफ़ना है ये मटियामहल नसीब।
दामनको जिसके गर्द सरेराह थी गिराँ॥

* * *

बच्चेकी गुलाबी मुस्कराहट

खन्दयेगुलमें यह रंगीनी कहाँ ?
यह लताफ़तबेज शीरीनी कहाँ ?

---

[1]क़ब्रकी वीरानी; [2]क़ब्रका रक्षक; [3]ज़ियारत करनेवाला, क़ब्र पर आनेवाला; [4]निराशाओंकी भीड़; [5]रक्षक; [6]तिनका तक; [7]अन्धेरा; [8]अभिलाषा और दुखका।

इस सबाहतपर यह नमकीनी कहाँ ?
इसमें हैं आएसखुशचीनी कहाँ ?

खत्म है तेरे लबोंपर वाह ! वाह !!
यह गुलाबी मुस्कराहटकी अदा ।।

* * *

कोई हसरतकश है या महजूर है ।
शादमानी जिससे कोसों दूर है ।।
लाख जोशेग़मसे दिल मामूर है ।
तुझसे मिलते ही नज़र मसरूर है ।।

खत्म है तेरे लबोंपर वाह ! वाह !!
यह गुलाबी मुस्कराहटकी अदा ।।

* * *

अब्रे करम बरस

* * *

हसरतसे देखते हैं सुए आस्माँ किसान ।
बादलके नामका नज़र आता नहीं निशान ।।
बारिश कहाँ है आह जो है खेतियोंकी जान ।
फिरते हैं जानवर भी निकाले हुए ज़बान ।।

प्यासी ज़मीन है तो शजर तिश्ना काम हैं ।
रिन्दानेबादहख्वार भी आतिश बजाम हैं ।।

ताख़ीर किसलिए है यह अब्रेकरम बरस ।
बारिश बग़ैर जलता है सबपै कम बरस ।।

अब ताबे इन्तज़ार नहीं बेशोकम बरस।
है रहमतेकरीमकी तुझको क़सम बरस॥
ऐसा बरस कि दूर ज़मानेसे काल हो।
जंगल हरे हों, सब्ज़ ये गुलशन निहाल हो॥

कारेख़ैर

(क्या किया तूने ?)

बता ऐ ख़ाकके पुतले कि दुनियामें किया क्या है ?
बता कै दाँत हैं मुँहमें तेरे, खाया पिया क्या है ?
बता ख़ैरात क्या की, राहे मौलामें दिया क्या है ?
यहाँसे आक़बतके[1] वास्ते तोशाह[2] लिया क्या है ?
दुआएँ लीं कभी ठंडा किया दिल तुफ़्तह[3] जानोंका ?
हुआ है तू कभी राहतरसाँ[4] तिश्नादहानोंका[5] ?
किसी गुमकरदहरहकी[6] ख़िज़्र[7] बनकर रहनुमाई[8] की ?
किसीकी नाख़ुनेतद्बीरसे[9] उक़्दाकुशाई[10] की ?
दमेमुश्किल[11] किसी मज़लूमकी[12] हाजतरवाई[13] की ?
किसीकी दस्तगीरी की, किसीकी कुछ भलाई की ?
कभी कुछ काम भी आया किसी आफ़तरसीदाके ?
कभी दामनसे पूँछे तूने आँसू आब्दीदाके ?
शरीके दर्देदिल होकर किसीका दुख बटाया है ?
मुसीबतमें किसी आफ़तज़दाके काम आया है ?

---

[1]परलोकके; [2]सामान; [3]दग्ध हृदयों; [4]चैन देनेवाला; [5]प्यासोंका; [6]भूले भटकेकी; [7]मार्ग प्रदर्शक; [8]मार्ग सुझाना; [9]अक्लसे; [10]मुश्किल हल करना; [11]आड़ेवक्त; [12]पीड़ितकी; [13]इच्छापूर्ति।

पराई आगमें पड़कर कभी दिल भी जलाया है ?
किसी बेकसकी ख़ातिर जानपर सदमा उठाया है ?

कभी आँसू बहाये हैं किसीकी बदनसीबीपर ?
कभी दिल तेरा भर आया है मुफ़लिसकी ग़रीबीपर ?

किसीका उक़्दयेमुश्किल[1] कभी आसाँ किया तूने ?
किसी दर्मांतलबके[2] दर्दका दर्मां किया तूने ?

किसी दिलगीरका[3] दिल गुंचयेख़न्दाँ[4] किया तूने ?
किसीको भी कभी शर्मिन्दयेअहसाँ किया तूने ?

किसी दरमान्दये[5] मंज़िलके सरसे बोझ उतारा है ?
बिसातेदर्दमन्दीपर किसीसे क़ौल हारा है ?

कभी तूने किसी बरगश्ता[6] क़िस्मतकी ख़बर ली है ?
किसी मातमज़दाकी तूने दिलजोई कभी की है ?

किसीके वास्ते आफ़तमें अपनी जान डाली है ?
किसी बेख़ानुमाँकी वक़्तेमुश्किल कुछ मदद की है ?

हुजूमेयासमें[7] हिम्मत बढ़ाई दिलशकिस्ताकी ?
कभी कुछ चाराफ़रमाई[8] भी की ज़ख़्मी ओ ख़स्ताकी ?

कभी इम्दाद दी तूने किसी बेकस बिचारेको ?
सख़ी बनकर दिया कुछ तूने मुफ़लिसके गुज़ारेको ?

तसल्ली दी कभी तूने किसी आफ़तके मारेको ?
कभी तूने सहारा भी दिया है बेसहारेको ?

---

[1]उलझन; [2]रोगीके; [3]उदासका।
[4]कलीकी तरह खिला हुआ; [5]थके हुए।
[6]फिरी हुई; [7]निराशाओंकी भीड़में; [8]इलाज।

कभी फ़रियादरस बनकर ख़बर ली बेनवाओंकी[1]
लगी है चोट भी दिलपर सदा सुनकर गदाओंकी[2] ?

किसी बरगश्ता[3] क़िस्मत बेनवाकी[4] दिलनवाज़ी[5] की ?
किसीके ख़न्दये ज़ख़्मे जिगरकी चारासाज़ी की ?
किसीके वास्ते ग़ममें घुला क्या जाँगुदाज़ी[6] की ?
अगर था साहिबेतौफ़ीक़[7] क्या बन्दानवाज़ी[8] की ?

सुना कब कान धरकर नालयेग़म बेनवाओंका ?
हमेशा वालओशैदा[9] रहा अपनी अदाओंका ।।

रहा तू रात-दिन मसरूफ़ शग़लेमयपरस्तीमें[10] ।
गँवाई रायगाँ[11] उम्रे दो रोज़ा कैफ़ेमस्तीमें[12] ।।
तुला फूलोंमें गुलछर्रे उड़ाए बादहस्तीमें ।
गिरा ग़र्क़ेनिशातो[13] ऐश होकर ग़ारेपस्तीमें[14] ।।

रचाये रंग तूने ख़ूब पी-पी कर मयेअहमर[15] ।
शबेमहताबमें जलसे रहे हैं माहताबीपर ।।

रहा महवे तमाशा हुस्नका अन्दाज़का शैदा ।
रहा सौ जानसे तू हर अदाएनाज़का शैदा ।।
रहा इशरतका ख़्वाहिशमन्द हिर्सोआज़का[16] शैदा ।
रहा दौलतका दिलदादा रहा एज़ाज़का[17] शैदा ।।

---

[1] निराश्रितोंकी, अनबोलोंकी; [2] फकीरों; [3] फिरी हुई; [4] बेसहारेकी; [5] दिल बहलाना; [6] मनघुलाना; [7] दान देनेमें समर्थ; [8] मनुष्योंकी भलाई; [9] अनुरक्त; [10] शराबमें व्यस्त; [11] व्यर्थ मस्तीकी हालत; [12] विलासितामें; [13] रंगरलियोंमें डूबकर; [14] पतनके कूपमें; [15] लाल शराब; [16] लालचका, तृष्णाका; [17] प्रतिष्ठाका ।

सदा मिटता रहा आराइशोंपर[1] जामाजेबीपर[2]।
बहुत नाजाँ रहा अपनी अदायेदिलफ़रेबीपर ।।

बहुत तूने बहारे जिन्दगानीके मजे लूटे।
बहुत जेरे क़दम तूने किये पामाल गुल बूटे ।।
बहुत जामेमयेगुल रंग तेरे हाथसे टूटे।
बहुत लाला रुख़ोंके लाले लब तूने किये झूठे ।।

रहा तू बेगुलोग़श महव शग़ले ऐशकोशीमें[3]।
कभी फ़िक्रे मआल आया न जौक़े ख़ुद फ़रोशीमें।

कुछ शेर

हमें राहेतलबमें ख़ाक हो जानेसे मतलब है।
क़दम पहुँचे न पहुँचे मंज़िलेमक़सूदपर अपना ।।
मुसाफ़िर हूँ अदमकी राहमें फ़िक्रे अक़ामत क्या ?
वही मंजिल है जिस जा ख़त्म हो जाये सफ़र अपना ।।

उन्हींको हम जहाँमें रहरवे कामिल समझते हैं।
जो हस्तीको सफ़र और क़ब्रको मंजिल समझते हैं ।।
जो हैं जाँबाज कब मुश्किलको वोह मुश्किल समझते हैं ?
शनावर[4] मौजें तूफ़ाँख़ेजको साहिल समझते हैं ।।

न मिज़गाँसे वक़ूरेज़ब्तने ढलने दिये आँसू।
यह दरिया ग़र्क़ होकर रह गया अपने किनारोंमें ।।

आलामसे बचनेकी जो सूझी कोई तदबीर।
नाकामियेतक़दीर भी शामिल हो नज़र आई ।।

२४ जुलाई १९४६

---

[1] सजावटोंपर; [2] वेश-भूषा, पोशाकपर; [3] भोगविलासमें; [4] तैराक।

सफल प्रयास

: ८ :

उर्दू-शायरी एक नए मोड़पर,
सरल भाषाके समर्थक

हिन्दुस्तानमें इस छोरसे उस छोर तक बसने वाले हिन्दू-मुसलमान जिस भाषामें परस्पर बोल सकें, उस हिन्दी या हिन्दुस्तानी ज़बानकी दाग़बेल अमीर ख़ुसरोने डाली। जायसी, रसखान, रहीम और कबीर वग़ैरह इसी दाग़बेल पर ऐसा हिन्दी-मन्दिर बनानेमें सराबोर रहे, जहाँ हर हिन्दुस्तानी, चाहे वह किसी भी मज़हब या प्रान्तका हो बिना किसी भेद-भावके अपना दिल खोल कर रख सके और दूसरेके मनको पढ़ सके। मगर वली वग़ैरहको यह गंगा-जमुनी देशी ढंग न भाया। उन्हें अरब, फ़ारस और तुर्कीकी कला अधिक पसन्द आई। भाव, भाषा, कल्पना, उपमा, अलंकार अनुप्रास, पिंगल, व्याकरण, जो भी वहाँसे ला सके लाये। हिन्दुस्तानसे केवल वही लिया जो दूसरी जगह न मिल सका। फिर भी इस विदेशी अरबी-फ़ारसी मिश्रित दुरूह उर्दू काव्य-कला-मन्दिरमें हिन्दी--शब्द पच्चीकारीमें मीनेकी तरह लगते ही रहे।

वली द्वारा प्रचलित इस क्लिष्ट उर्दू शायरीको सबसे पहले सरल भाषा और भारतीय भावोंका रूपरंग नज़ीर अकबराबादीने दिया। मिर्ज़ा दाग़, अमीर मीनाई और अकबर इलाहाबादी वग़ैरहने इसे बड़ी ख़ूबीसे सँवारा और अब तो इस बाग़ीचेमें तरह-तरहके रंग बिरंगे फूल खिलते नज़र आ रहे हैं। सैकड़ों बाकमाल कलाकार अपना-अपना कौशल दिखला रहे हैं। इस गंगा-जमुनी छटाको हम तीन तरहसे देखते हैं :—

१—भाषा उर्दू, मगर आसान—

अप्रचलित शब्दोंको छोड़कर आसान-से-आसान भाषामें लिखनेकी इस प्रणालीको नवाब साइल, आग़ा शायर, बेख़ुद, नूह, जिगर, रियाज़, जलील, बिस्मिल, बहज़ाद, दिल और आरज़ू वग़ैरहने बड़ी लगनके साथ आगे बढ़ाया। और अब तो एक आम धारणा बन चुकी है कि

लेखक, कवि और वक्ता वही अधिक सफल होते हैं जो अपने भावों को ज्यादासे ज्यादा लोगोंके मनमें आसानीसे बिठा सकें।

२—उर्दूमें हिन्दी शब्द—

जिस तरह आपसके मेलजोलके कारण हिन्दीमें हज़ारों शब्द अरबी, फ़ारसी, अंग्रेज़ी वग़ैरहके घुलमिल गये हैं और रोज़ानाके काम-काजमें इस्तेमाल होते हैं, उसी तरह उर्दूमें भी हज़ारों शब्द हिन्दीके समाये हुए हैं। यहाँ तक कि उर्दूकी नज़्मोंमें भी बड़ी ख़ूबीके साथ हिन्दी शब्द पिरोये जाने लगे हैं। अल्लामा इक़बाल और चकबस्त जैसे उर्दूके महान कलाकार भी इस लोभ को संवरण न कर सके। उन्होंने उर्दूकी बहर (छन्द) और उर्दूके ही शब्दोंमें हिन्दी शब्दोंकी कहीं-कहीं पुट दे कर एक अजीब मिठास भर दी है। हिन्दीकी क़लम लगाकर उर्दू शायरीके चमनको काफ़ी विकसित किया जा रहा है।

३—केवल हिन्दी—

वह युग लद गया जब कि हर भाषा-भाषी अपने भावोंको कठिनसे-कठिन शब्दोंमें प्रकट करना एक शान समझता था। अब ज़मानेने एक और करवट बदली है। उर्दू शायरीमें कुछ बहरें (छन्द) नियत थीं। उन्हीं बहरोंमें ग़ज़लें और नज़्में लिखते-गाते लोगोंका मन अब ऊब चुका था। संसारकी दूसरी भाषाओं—अंग्रेज़ी, हिन्दी, बंगला आदिमें नित नई तर्ज़ें निकल रही थीं। उर्दूमें ऐसे गीतोंका नितान्त अभाव था। ख़ुद उर्दू शायरोंके घरोंमें, पड़ोसमें, महफ़िलोंमें रोज़ाना ऐसे गीत गाये जाते और ये मन मारके रह जाते थे। गीतोंके आगे ग़ज़लें फ़ीकी पड़ने लगीं। यहाँ तक कि बेख़ुदीमें शायर लोग भी उन गीतोंको गुन-गुनाने लगते। इस कमीको महसूस तो सब करते थे मगर उपाय न सूझता था। इस ओर सबसे पहला क़दम जनाब हफ़ीज़ जालन्धरीने उठाया। उन्होंने ग़ज़लें और नज़्में लिखनी कम करके वोह मादक

गीत लिखे और गाये कि उर्दू दुनिया अश-अश कर उठी। फिर तो इन गीतोंकी ऐसी बाढ़-सी आई कि उर्दू पत्र-पत्रिकाओंमें, मुशायरोंमें, व्यक्तिगत सोहबतोंमें गीत ही गीतोंकी भरमार रहने लगी। साग़िर निज़ामी, अख़्तर शीरानी, अमरचन्द क़ैस, अज़मत अल्लाह ख़ाँ, डा० मुहम्मद दीन तासीर, मक़बूल हुसेन अहमदपुरी, विक़ार अम्बालवी, पं० इन्द्रजीतशर्मा, अहसान बिन दानिश, हफ़ीज़ होश्यारपुरी, मीराजी, हामिद अल्लाह अफ़सर, मौ० बशीर अहमद, मौ० हामिदअली ख़ाँ राजामहदीअलीख़ाँ, बहज़ाद लखनवी, सिराजुद्दीन ज़फ़र, अहमद नदीम कासिमी जैसे ख्याति-प्राप्त उर्दू शायरोंने प्रेम, भक्ति, विरह, प्रकृति-सौन्दर्य, रहस्यवाद, सावन, बसन्त, होली, झूला, लोरी आदि भिन्न-भिन्न पहलुओं पर इतना अधिक लिखा है कि कई बड़े-बड़े संग्रह तैयार हो सकते हैं।

प्रथम तो प्रस्तुत पुस्तकका उद्देश्य हिन्दी पाठकोंको केवल उर्दू कविताका रसास्वादन कराना है। दूसरे, हिन्दीमें नित नए एकसे एक बढ़ कर गीत देखनेमें आ रहे हैं। हिन्दी पाठकोंको शायद गीत अधिक न रुचें इसलिये हम इस युगके ख्याति प्राप्त—१ हफ़ीज़ जालन्धरी; २ साग़र निज़ामी; ३ अख़्तर शीरानी और ४ अर्श मलसियानीके नमूनेके तौर पर केवल एक-एक दो-दो गीत, कुछ नज़्में और चन्द ग़ज़लोंके अशआर दे कर सन्तोष करेंगे।

१२ अगस्त १६४६

१८

हफ़ीज़ जालन्धरी

यह कौन बेअदब है जो मिर्ज़ा ग़ालिब पर भी चोट करनेका साहस कर सकता है? बड़े-बड़े बाकमाल उस्ताद तो मिर्ज़ाके मिसरे पर गिरह लगाने में भी झिझकते हैं, और एक ये हैं कि बआवाज़ बुलन्द कह रहे हैं :—



> **"किया पाबन्दे नै नालेको मैंने**
> **यह तर्ज़ेख़ास है ईजाद मेरी ॥"**

क्या ख़ूब ! मिर्ज़ाने फ़र्माया है कि नाला लयके आधीन नहीं है[1] और आपका दावा है कि नालेको मैंने लयके आधीन कर लिया है।

यही परस्पर विरोधी बात देखनेको १२-१३ वर्ष पहले हफ़ीज़ जालन्धरीके 'नग़मयेज़ार' और 'सोज़ोसाज़' पढ़ने बैठा तो उर्दू साहित्यकी दुनिया ही बदली-सी दिखाई देने लगी। यह कृष्ण कन्हैया, बाँसुरी, प्रीतिकी रीति, बसन्त, रावी और चिनाव नदियाँ, हिमालय, लाहौर

---

[1] मिर्ज़ा ग़ालिब का वह शेर ये है :—

> **"फ़रियादकी कोई लै नहीं है।**
> **नाला पाबन्दे नै नहीं है ॥"**



यानी फ़रियाद—कष्टोंकी करुण पुकार—की कोई लय नहीं होती। यह पुकार तो चश्मेकी तरह हृदयसे अपने आप फूट पड़ती है। नाला—आह, व्यथा, वेदना, क्रन्दन—ताल-स्वरके आधीन नहीं है। तात्पर्य यह है कि जब सचमुच रोना आता है तब वह गाया नहीं जाता।

वग़ैरह उर्दू शायरीके मज़बूत गढ़में क्योंकर घस गये ? जो शायरी अभी तक अभारतीय रही, वही भारतीय-सी कैसे दीखने लगी ?

जो उर्दू शायर सदियोंसे भारतमें रहते-सहते हुए भी अधिकांश अपनेको हिरात, अफ़ग़ान, ग़जनी, दुर्रानी, तबस्तान, काबुल, बग़दाद वग़ैरहका मूल निवासी बतानेमें आत्मगौरव समझते हैं, तो कोई विदेशी विद्वान भारतको देखे बग़ैर केवल उनके कलामको पढ़ कर भारतको ईरानका सूबा या ज़िला समझनेकी भूल कर बैठे तो कोई आश्चर्य नहीं। यह माना कि बल, पौरुष, सभ्यता, सुन्दरता आदि में इन शायरोंके दृष्टिकोणसे भारतमें कुछ भी उल्लेख योग्य नहीं था। लेकिन मशहूर उर्दू अदीब पं० हरिश्चन्द्र 'अख़्तर'के कथनानुसार "क्या इस विशाल जनसंख्या वाले भारतमें—जहाँ दुनियाँकी जनसंख्याका पाँचवाँ हिस्सा बसता है—किसी कमबख़्तको आशिक़ हो जानेकी भी तौफ़ीक नहीं हुई ? और अगर हुई तो क्या उसका महबूब ऐसा गया-गुज़रा था कि हमारे शायरोंको उसका ज़िक्र तक गवारा नहीं हुआ ?"[1]

इसी त्रुटिको अनुभव करते हुए एक उर्दू-साहित्यिक लिखते हैं—"अगर हमारे अदीब[2] देशी ज़बानके होते हुए परदेशी ज़बानोंके अलफ़ाज़ इस्तेमाल न करें तो हमारी बहुत-सी मुश्किलें आसान हो सकती हैं। हमारे अदीब अभी तक पुरानी लकीरके फ़क़ीर बने हुए हैं। शायर बदस्तूर क़ुमरी और बुलबुलपर आशिक़ हैं। ग़ज़लमें मुक़ामी रंग मफ़क़ूद[3] है। गंगाके किनारे बैठकर दजलह[4] और फ़िरातके[5] ख़्वाब देखे जाते हैं। नतीजा यह है कि हमारी शायरी हक़ीक़तसे बहुत दूर हो गई है। सुहराब और रुस्तमका ज़िक्र सुनते-सुनते कान पक गये, अर्जुन और भीमका नाम कोई नहीं लेता।

---

[1] सोज़ोसाज़की भूमिका, पृष्ठ १३।

[2] साहित्यिक; [3] ग़ायब; [4] बग़दादकी एक नदी; [5] रूमकी एक नदी।

नर्गिस और सोसनसे ज्यादा खूबसूरत और खुशबूदार कँवल और चम्पा है। शीरीं-फरहाद, लैला-मजनूँकी दास्तानोंसे ज्यादा दिलचस्प और दिलको मोहने वाली नल-दमयन्ती, हीर-राँझेकी कहानियाँ हैं। महज़ बुलबुल और क़ुमरी ही खुशइल्हानियाँ[1] नहीं करतीं, कोयल और पपीहेकी आवाजमें भी रस है। बग़दादकी शामसे ज्यादा दिलफरेब सुबहे-बनारस है। गुलजारे रूम तो अहदे अतीक़ (पुराने वक्तों)की दास्तान है लेकिन गुलकदहे काश्मीर वाक़ई फ़िरदौसेबरींका नमूना है।"[2]

कीजे न 'जमील' उर्दूका सिंगार, अब ईरानी तलमीहोंसे।
पहनेंगी विदेशी गहने क्यों यह बेटी भारतमाताकी॥

हमारी गुलामी जहनियतका यह हाल है कि हम हिन्दी रज-वीर्यसे उत्पन्न हुए; हिन्दी आबोहवामें पले और हिन्दी खाकमें अपने बुजुर्गोंकी तरह एक रोज़ मिल जाएँगे। फिर भी हमारी हर बातमें अहिन्दी भूत घुसा हुआ है। कुछ लोग तो यहाँके हरे-भरे बाग़ीचे उजाड़ कर उसमें खजूरके पेड़ लगाना और रेत बिछाना ही सवाब समझते हैं। हाथीसे ऊँटको तरजीह देते हैं। उर्दूके मशहूर शायर 'सौदा'का बस चलता तो अपने हिन्दी माँ-बापसे यहाँ पैदा किये जानेकी कैफ़ियत भी तलब करते। आपको अपने बाप-दादाओंके वतन हिन्दुस्तानसे इस क़दर नफ़रत थी कि पेट भरनेका कहीं और ठिकाना होता तो एक लमहे भरको यहाँ न रहते।

गर हो कशिश शाहे खुरासान की 'सौदा'।
सिजदा न करूँ हिन्दकी नापाक जमींपर॥

ऐसे ही भले आदमियोंकी औलाद आज "हिन्दोस्तान मुर्दाबाद"के नारे लगाती हैं, और देशको रसातलमें पहुँचानके अधम प्रयत्न करती हैं तो आश्चर्यकी इसमें क्या बात है?

---

[1] मधुर गायन; [2] हिन्दीके मुसलमान शायर, पृष्ठ ४।

जिन मज़हबी अन्ध विश्वासोंको अरबने धता बता दी, खिलाफतको टर्कीने तलाक देदी, उन्हींको हिन्दुस्तानमें पनाह दी गई है। उर्दू-हिन्दी शब्दकोषके सम्पादक बा० रामचन्द्रजी वर्माने सत्य ही लिखा है :—

"तुर्कोंने अरबी शब्दोंका वहिष्कार किया था, ईराननने भी उसका अनुकरण किया। वहाँ की भाषामें आधेके लगभग जो अरबी शब्द घुस गये थे, वे सब सरकारी आज्ञासे वहिष्कृत होने लगे, और उनके स्थान पर ईरानी या फ़ारसी भाषाके शब्द चलने लगे। उन्होंने अरबीके अल्लाह और रसूल तक की जगह अपने यहाँ के 'खुदा' 'पैग़म्बर' शब्द चलाये। अब अफ़ग़ानिस्तान भला क्यों पीछे रहता ? उसने अरबी और फ़ारसी दोनों भाषाओंके शब्दोंका बहिष्कार आरम्भ किया है। यह सब तो स्वतन्त्र देशोंकी बातें हैं। हमारा देश तो परतंत्र है, यहाँ उलटी गंगा बहे तो कोई आश्चर्य नहीं।"[1]

एक ऐसे ही हिन्दी-द्वेषी 'नातिक़' गुलाठवीके ५ जून १९४४ के पत्रका उत्तर देते हुए जनाब "एजाज़" सद्दीक़ी साहब (सपादक "शाइर" आगरा; सुपुत्र अल्लामा 'सीमाब' अकबराबादी) लिखते हैं :—

"हिन्दी शायरी क्या है और किस क़िस्म का अदब[2] पेश कर रही है, इसका जवाब बहुत तफ़सील तलब है, लेकिन उर्दू को हिंदुस्तानकी वाहिद मुश्तरका मुल्की ज़बान समझते हुए और उसका सच्चा खिदमतगार व परिस्तार होते हुए मैं निहायत ईमानदारीके साथ यह अर्ज़ करनेकी जुरअत कर रहा हूँ, कि हिन्दी शायरी हमारी आपकी आम उर्दू शायरीसे कहीं मुफ़ीद और कारआमद है। यहाँ यह सवाल नहीं कि हिन्दी शायरीमें- संस्कृत अल्फ़ाज़की भरमार होती है, और आम तौर पर उसे समझा नहीं जा सकता। मेरे मुहतरिम ! बहुतसे उर्दू शायरोंका कलाम आम तौरसे कब समझा जाता है ? हिन्दी जाननेवालोंको जाने दीजिये;

---

[1] अच्छी हिन्दी, पृ० १६७; [2] साहित्य।

उर्दू पढ़े लिखे ऐसे कितने हैं जो 'ग़ालिब', 'इक़बाल', 'सीमाब', 'फ़ानी', 'असग़र' और बाज़ दूसरे बुलन्दगो शोअराके अल्फ़ाज़ व मुफ़ाहिमको[1] आसानीसे समझ लेते हैं।

"आजका हिन्दी शायर उर्दू शोअराकी तरह ज़ुल्फ़ो गेसू, गुलो-बुलबुल, आरिज़ो-रुख़सार, हिजरो-विसाल, जैसे सैकड़ों फरसूदा[2] खयालात-का शिकार नहीं। उसकी शायरीमें ज़िन्दा रहने वाली क़ौमोंके जज्बात[3] मौजज़न हैं। वह अमल व जहादका[4] पैग़ाम देता है, और ज़िन्दगीकी—दुखती हुई रगोंपर हाथ रखता है। आजकी हिन्दी शायरी रिवायती[5] अनासिरसे[6] क़तअन पाक है। यही वजह है, कि हिन्दी कवियोंको कवि-सम्मेलनों में दाद नहीं मिलती। जो शेर दर्स व पयाम और ठोस खया-लातका हामिल होगा उस पर कभी वाह-वाह नहीं होगी। वाह-वाह तो सिर्फ़ ऐसे अशआर पर होती है, जो मामला बन्दीकी मुकम्मिल तसवीर हों और जिन्सयाती[7] नज़रियातके[8] ऐन मुताबिक़। आज जिस तरह हिन्दू क़ौमी, मुल्की, सियासी,[9] मआशरती,[10] तालीम और मज़हबी अमूरमें[11] आगे निकल चुका है उसी तरह उसका अदब भी तरक़्क़ी[12] पज़ीर है। मैं सही उल अक़ीदा मुसलमान हूँ, और इसलामके नाम पर अपना सब कुछ क़ुरबान करनेके लिए तैयार, मगर हिन्दोस्तानी मुसलमानोंकी रविशे-कारसे बहुत मग़मूम[13]। हाँ मायूस नहीं हूँ। मुसलमान सिर्फ़ ऐतराज़ करना जानता है, लेकिन अपनी ग़लतियोंकी तरफ भूल कर भी उसकी निगाह नहीं जाती। मैं मज़हबी तास्सुबसे[14] खालिउलज़ेहन[15] होकर हर मामलेमें ग़ौर करनेका आदी हूँ। अगर हिन्दू अपनी क़दीम

---

[1] तात्पर्य्यको; [2] व्यर्थ; [3] भाव; [4] धार्मिक युद्धका; [5] नकलची; [6] तत्वोंसे; [7] इन्द्रिय वासना सम्बन्धी; [8] दृष्टिकोणके; [9] राजनैतिक; [10] आर्थिक; [11] क्षेत्रोंमें; [12] उन्नतशील; [13] दुखी; [14] ईर्ष्यासे; [15] रहित।

ज़बानकी बक़ाके[1] लिये जद्दोजहद[2] करता है, तो यह कोई गुनाह नहीं। रहा तरदीज[3] व उर्दूअशायतका[4] सवाल, तो जिस चीज़में जितना फैलनेकी सलाहियत[5] होगी वह फितरतन उतनी ही फैले और सिकुड़ेगी।

"जिस तरह मुसलमान संस्कृतकी शायरी पर एतराज़ करते हैं, क्या उसी तरह हिन्दुओंने भी कभी यह कहा कि मुसलमान फ़ारसीमें शायरी—क्यों करते हैं? हाफ़िज़, जामी, अनवरी, और सादी वग़ैरह को जाने—दीजिये, डाक्टर इक़बाल मरहूमका फ़ारसी कलाम सैकड़ों हिन्दुओंके ज़ेरेमताला[6] रहता है। सिर्फ़ इसलिये कि वह फ़ारसी भी जानते हैं। और फ़ारसी जानना—उनके यहाँ कोई गुनाह नहीं, क्या मुसलमानोंने भी कभी यह कोशिश की कि वह संस्कृत या आसान हिन्दी ज़बानका कभी मताला करें?

"मैंने तालिब इल्मीके ज़मानेमें कभी एक लफ्ज हिन्दीका याद करके पण्डितजीको नहीं सुनाया, और हमेशा उन्हें एक दो पान खिलाकर सालाना इम्तहानमें नम्बर हासिल कर लिए। चूँकि दिमाग़ की सही नश्वोनुमा[7] नहीं हुई थी, और तास्सुबकी[8] घटायें छाई हुई थीं, इसलिए आजतक उसका खमियाजा[9] भुगत रहा हूँ। अगर मसजिदमें जानेसे हिन्दू मुसलमान और मन्दिरमें जानेसे मुसलमान हिन्दू हो जाये, तो ज़बानोंके सीखनेसे भी यकीनन मजहबी अज़मत पर धब्बा आना चाहिये।

"मुहतरिमी! सिर्फ़ एक क़दीम हिन्दुस्तानी ज़बान न जानने की वजहसे हम उसके साथ अछूतोंका-सा बरताव कर रहे हैं। अगर हमें इसमें थोड़ा बहुत भी दर्क होता, तो हिन्दी या संस्कृतकी शायरी बारे समाअत[10] न होती। हज़ारों हिन्दुस्तानी जो अंगरेज़ी ज़बानसे अच्छी तरह

---

[1] अस्तित्व; [2] प्रयत्न; [3] उर्दूका अप्रसार; [4] उर्दू साहित्यका प्रसार; [5] मुलामियत, अच्छाई; [6] अध्ययनमें; [7] उन्नति; [8] ईर्ष्याकी; [9] हानि; [10] कर्ण-कटु।

वाक़िफ़ हैं, उन्हें उर्दू या संस्कृतकी शायरीमें वह लुत्फ़ नहीं आता, जो मग़रबी शायरीमें आता है। आख़िर क्यों? अंगरेज़ी ज़बानके ख़िलाफ़ मुसलमानोंमें जज़्बये नफ़रत क्यों नहीं पाया जाता और वह उठते-बैठते-सोते-जागते खाते-पीते बजाय उर्दू या व्रज भाषाके अंगरेज़ीमें गुफ़्तगू क्यों किया करते हैं? मैंने अक्सर देखा है कि दौराने गुफ़्तगूमें दो लफ़्ज़ अगर उर्दूके बोलते हैं तो चार अंगरेज़ीके। यह क्या है? हिन्दू अगर उर्दूमें संस्कृतकी आमेज़िश कर रहे हैं तो क्या बुरा कर रहे हैं, गो वह जानते हैं कि यह बेल मढ़े नहीं चढ़ेगी। मुसलमानोंके पास इस एत-राज़का क्या जवाब है, कि वह उर्दू ज़बानमें अस्सी फ़ीसदी अरबी और फ़ारसीके अल्फ़ाज़ इस्तेमाल करते हैं। दरअसल हिन्दुस्तानियोंकी —— जहनियतें इस क़दर पस्त हो गई हैं कि, वह क़दम-क़दम पर "हिन्दूपानी" और "मुसलमान पानीकी" आवाज़ें सुननेके आदी हो गये हैं। काश! कोई मुल्की और समाजी क़ानून ऐसा होता, जो दिमाग़ोंसे इस लग़वियतको छीलकर फेंक देता। मैं मानता हूँ कि मुसलमान हिन्दुओंके साथ बहुत ज़्यादा रवादार रहे, लेकिन उर्दू हिन्दीके मुआमिलेमें मुसलमानोंने रवादारीसे काम नहीं लिया। हक़ीक़तन यह मसला मुसलमानोंके लिए क़ाबिले तवज्जह होना ही नहीं चाहिए था। उर्दूके बग़ैर हिन्दुस्तानी ज़िन्दा नहीं रह सकता। अगर हिन्दुओंके प्रोपेगंडे और कोशिशसे उर्दूको किसी क़दर नुक़सान पहुँचा भी है——(जिसे मैं मानने के लिए तैयार नहीं)—— तो वह महज़ ज़िदकी बिना पर। क्या यह ज़ुल्म नहीं कि एक ऐसी मशरक़ी ज़बानको मिटा दिया जाये जिसमें क़दीम हिन्दुस्तानके तारीख़ी नक़ूश जगमगा रहे हैं। जिसमें हिन्दुस्तानके एक क़दीम मज़हबकी तालीम महफ़ूज़ है, और जो ज़रा आसान होकर अपने अन्दर इतना लोच, इतनी लचक, और इतना रस रखती है कि कोई दूसरी ज़बान मुश्किलसे उसका मुक़ा-बिला कर सकती है। क्या आम फ़हम हिन्दी गीत सुननेके बाद बे अख़्ति-याराना दिल पर हाथ रख लेनेको जी नहीं चाहता? और क्या हम एक

ग़ैर-मामूली लज्ज़त महसूस नहीं करते? .....रहा हिन्दू शायरीके उसूल व क़वायद और बहरोवज़नका सवाल, तो जहाँ तक मुझे इल्म है यह सब मुज्ज़बित है, और अबसे नहीं बल्कि ज़माने क़दीमसे। अलबत्ता इसमें अब कुछ तब्दीलियाँ की गई हैं। हिन्दी ज़बानमें ऐसी कितनी किताबें मिलती हैं और शायद किसी एक किताबका उर्दू में तरजुमा भी हो चुका है। हिन्दीके तमाम मशहूर कवि उसूल व क़वायदके मातहत ही शेर कहते हैं। इनके यहाँ असनाद भी मिल सकती हैं। हिन्दी और संस्कृतके लुग़ात भी मौजूद हैं, यही नहीं बल्कि अलफ़ाज़के माख़िज़ और उनके मुतरादिफ़ात भी कसीर तादादमें हैं। हम किसी तरह संस्कृतको नामुकम्मिल ज़बान नहीं कह सकते। बल्कि यह एक जामा और बुलन्दतरीन ज़बान है।

"हज़रत मौलाना! क्या मैं दरियाफ़्त कर सकता हूँ कि आपने अपने गिरामी नामोंमें हिन्दी या संस्कृतके मुश्किल तरीन अल्फ़ाज़ क्यों इस्तेमाल फरमाये? इसे रवादारी पर महमूल करूँ या ज़िद पर? इसी तरह हिन्दू भी मुसलमानोंको चिढ़ाते हैं।"[1]

हफ़ीज़ जालन्धरीके कलाममें मुझे भारतीय रंग और रूपकी छटा खिलखिलाती नज़र आई है। यद्यपि बक़ौल जनाब 'पितरस' हफ़ीज़ कभी-कभी कनखियोंसे तुर्के शीराज़को देख लेता है, फिर भी उनका यह भारतीय प्रेम सराहने योग्य है। उनकी विरह ग़ज़लोंको पढ़नेसे मालूम होता है कि पतिके परदेश चले जाने पर कोई गौनावाली दुल्हन काली साड़ी पहन कर विरहा गा रही है। हफ़ीज़ की नज़्में देखो तो आभास होता है विवाह योग्य क्वारी छोकरियाँ झूला झूल रही हैं। उनके गीत किसीको गुनगुनाते सुनो तो प्रतीत होता है कि साक्षात कामदेव दुन्दुभि बजाते हुए आ रहा है।

---

[1] "शायर" जुलाई—अगस्त १९४४, पृ० ६६—६७।

मिसरी-जैसी भाषा, कन्या-सी अछूती कल्पना और कृष्णकन्हाईकी बाँसुरीसे निकले हुए-से मादक गीत आनन्द-विभोर कर देनेके लिए काफ़ी हैं।

जनाब हफ़ीज़ शायरीकी बदौलत आज बड़े आदमी हैं। लाहौर रेडियोविभागमें उच्च पद पर प्रतिष्ठित हैं। "शाहनामाए इस्लाम" जैसी कृति लिख कर हफ़ीज़ उर्दू शायरोंकी उच्च श्रेणीमें बैठ गये हैं। अब वे ख्याति-प्राप्तउर्दूके प्रतिष्ठित शायरोंमें से हैं। किन्तु आम जनताकी दृष्टिमें हफ़ीज़ वही १५-२० वर्ष पूर्व संगीतमय नज़्म और मादक गीतोंके आविष्कारककी हैसियतसे आसीन हैं। आज उनके कलामके लिए-उर्दू-पत्र पत्रिकाएँ बाट जोहा करती हैं। बज़्मेअदब के संचालक रास्ता तका करते हैं। हालाँ कि प्रारम्भमें जब उन्होंने गीत लिखने शुरू किये तो उनके साहित्यिक मित्रोंने भी अपने पत्रोंमें उन्हें स्थान देना उचित नहीं समझा। मुशायरोंमें उनके गीत और नज़्म गलेबाज़ी समझे गये। फिर धीरे-धीरे उनके गीतों और नज़्मोंकी लोकप्रियता बढ़ने लगी। काफ़ी नौजवान शायरोंने उनकी इस नवीन प्रणालीको अपनाया, और अब तो गीत भी उर्दू-शायरीका एक अंग समझा जाने लगा है। प्रत्येक पत्र-पत्रिकामें रोज़मर्रा अच्छे-अच्छे गीत देखनेमें आते हैं।

२० अगस्त १९४६ ई०

नज़्म

१ जल्वये सह्र :—(१४ बन्दोंमेंसे १ बन्दका नमूना देखिये)

उठे हसीन ख्वाबसे, कि धोये मुंह गुलाबसे।
यह इशवह[1] साजियोंमें हैं।
अदातराजियोंमें हैं॥
इधरसे इश्क़ भी उठा, मगर है अपनी ह्ाँकमें।
इधर गया, उधर फिरा, फ़िजूल ताक-झाँकमें॥
शबाब जिसकी रात भी।
निशातोऐशमें[2] कटी॥
वह नींद ही का होगया, उठा, फिर उठके सो गया।
उठे हसीन ख्वाबसे, कि धोये मुंह गुलाबसे॥

[नग़मये ज़ारसे]

२ तूफ़ानी कश्ती :—(६ बन्दमेंसे केवल ३ बन्द)

नाव तूफ़ानमें घिरी हुई हो, उसमें पानी भरा चला जा रहा हो, तब मुसाफ़िरोंकी दयनीय स्थिति देखिये)—

नग़्मोंका[3] जोश ख़ामोश, सब नावनोश[4] ख़ामोश।
हैं यह बरात किसकी
नोशाह[5] और बराती
लौटे हैं लेके डोली

---

[1]नाज़-नखरा; [2]सुख-भोगमें; [3]मधुर-स्वरोंका गीतोंका; [4]पीना-पीलाना; [5]दूल्हा।

मायूस[1] हैं निगाहें, रक्साँ[2] लबोंपै आहें।
डोलीमें हूर[3]पैकर
क्या कांपती है थर-थर
लेकिन है मुहर लबपर

दूल्हाके सरपै सेहरा, लेकिन उदास चेहरा।
इशरतकी[4] आरज़ू थी
उल्फ़तकी जुस्तजू थी
उम्मीद रोबरू थी

यह इन्क़लाब क्या है, आग़ोशेमर्गवा[5] है।
अफ़सोस है इलाही!
क्या आ गई तबाही!
क़िस्मतकी कमनिगाही[6]!!

बैठी है एक बेवा, है सब्र जिसका शैवा[7]।
दिल हाथसे दबाए
बच्चा गले लगाए
तारे उम्मीद खाए

यह बापकी निशानी, सरमायए[8] जवानी।
इक दिन जवान होगा
अम्माका मान होगा
हक़ महर्बान होगा

—नामयेज़ारसे

---

[1] निराश; [2] थिरकती हुई; [3] अप्सरा, लावण्यवती; [4] आनन्दकी; [5] मृत्यु गोदमें लेनेको खड़ी है; [6] भाग्यकी कुदृष्टि; [7] स्वभाव; [8] धन।

३ ईद्का चान्द :—

जीती रहो, मगर मुझे आता नहीं नज़र।
बेटी ! कहाँ है चान्द ? मुझे भी बता किधर ?

अफ़सोस, अब निगाह भी कमज़ोर हो गई।
नेमत ख़ुदाने दी थी बुढ़ापेमें खो गई॥

मीनारेख़ानक़ाहके ऊपर ? कहाँ-कहाँ ?
कुछ भी नहीं, कोई भी नहीं है वहाँ कहाँ ?

हाँ, डालियोंके बीचमें होगा वहीं कहीं।
वोह है जहाँ पै अब्रकी[1] सुर्ख़ी कहीं-कहीं॥

अब हो चुकी है उम्र भी नौ और साठ साल।
गुज़रे तेरे ख़ुसुरको[2] भी गुज़रे हैं आठ साल॥

तेरी तरहसे मैं भी कभी हाँ, जवान थी।
वोह दिन भले थे और भली उनकी शान थी॥

हर इकसे पहले देखती थी मैं हिलालेईद[3]।
दस-बीस दिनसे रहता था हरदम ख़याले ईद॥

अब दिन तुम्हारे, वक़्त तुम्हारा, तुम्हारी ईद।
बेटी ! तुम्हारी ईदसे है अब हमारी ईद॥

चान्द देख लेने पर दुआ माँगते हुए :—

यारब ! तेरे हुज़ूरमें हाज़िर खड़ी हूँ मैं।
आसी[4] गुनहगार[5] तो बेशक बड़ी हूँ मैं॥

---

[1] बादलकी; [2] ससुर; [3] ईदका चान्द; [4] अपराधिन; [5] मुजरिम।

लेकिन मेरे गुनाहोख़तापर निगह न कर।
यारब ! तू अपनी शानेकरीमी[1]पै रख नज़र॥

अल्लाह ! मेरे चाँद-से नूरेनज़रकी ख़ैर।
मेरे कमाऊ, मेरे मुसाफ़िर पिसरकी ख़ैर॥

अल्लाह ! मुझको घरका उजाला नसीब हो।
बेटा बहूको, और मुझे पोता नसीब हो॥

—नग़मयेज़ारसे

४ शामेरंगीं :—

(संध्याका दृश्य खींचते हुए आगे फ़रमाते हैं।)—

. . . .

खेतोंमें काम करके लौटे हैं कामवाले।
चादर सरोंपै डाले कन्धोंपै हल सम्हाले॥

अब शाम आगई है, जागे हैं भाग उनके।
हरसिम्त[2] गूँजते हैं रस्तोंमें रंग उनके॥

ले-लेके ढोर-डंगर चरवाहे[3] आ रहे हैं।
सीटी बजा रहे हैं और गीत गा रहे हैं॥

कमसिन सहेलियोंका पनघटपै जमघटा है।
जाने अकेलियोंका दिन किस तरह कटा है?

यह बार-बार बातें, यह बार-बार हँसना।
यह बेशुमार बातें, ये बेशुमार हँसना॥

---

[1] क्षमा कर देनेवाला व्यक्तित्व; [2] हर तरफ़; [3] चौपाये चरानेवाले।

वह गुनगुना रही है, वह खिलखिला रही है।
यह भर चुकी है पानी, ऊपर उठा रही है॥

शरमा के उसने खींचे मुँहपै हँसीके मारे।
रंगीन ओढ़नीके भीगे हुए किनारे॥

शर्मोहयाकी सुर्ख़ी चेहरेपै छा रही है।
शाम उसको देखती है और मुस्करा रही है॥

—सोज़ोसाज़से

५ खैबरका दर्रह :—

न इसमें घास उगती है, न इसमें फूल खिलते हैं।
मगर इस सरज़मींसे आस्माँ भी झुकके मिलते हैं॥

कड़कती बिजलियोंकी इस जगह छाती दहलती है।
घटा बचकर निकलती है, हवा थर्राके चलती है॥

इन्हीं दुश्वारियोंसे आर्योंका कारवाँ[1] गुज़रा।
ज़मीने हिन्दपै जाता हुआ एक आस्माँ गुज़रा॥

इसे तैमूरने रौंदा, इसे बाबरने ठुकराया।
मगर इस ख़ाकको आलीविकारीमें[2] न फ़र्क़ आया॥

—सोज़ोसाज़से

६ तसवीरे काश्मीर :—

५८ बन्दोंमें बहुत आकर्षक कश्मीरका वर्णन किया है। एक बन्द बतौर नमूना दर्ज किया जाता है :—

[1] यात्रीदल; [2] उच्च प्रतिष्ठा, शानमें।

आमियोंने[1] कह दिया कश्मीरको जन्नतनिशाँ[2]।
वर्ना जन्नतमें यह हुस्नो रंगो शादाबी[3] कहाँ?
क्या है जन्नत? चन्द हूरें, इक चमन, दो नद्दियाँ।
खैर, ज़ाहिदकी रिआयतसे यह कहता हूँ कि हाँ॥
आलिमेबालापै[4] है परतौ[5] इसी कश्मीरका।
एक पहलू यह भी है कश्मीरकी तसवीरका॥

७ प्रीतका गीत :—

हफ़ीज़के बहुतसे हिन्दी गीतोंमें से केवल एक गीतका पाँचवाँ अंश नीचे दिया जाता है :—

अपने मनमें प्रीत
बसाले
अपने मनमें प्रीत
मनमन्दिरमें प्रीत बसाले, ओ मूरख! ओ भोलेभाले!
दिलकी दुनिया करले रोशन, अपने घरमें जोत जगाले।
प्रीत है तेरी रीत पुरानी, भूल गया ओ भारतवाले॥
भूलगया ओ भारतवाले
प्रीत है ऐसी रीत
बसाले
अपने मनमें प्रीत॥

नफ़रत इक आज़ार है प्यारे, दुखका दारू प्यार है प्यारे।
आजा असली रूपमें आजा, प्रेम का तू अवतार है प्यारे॥
यह हारा तो सब कुछ हारा, मनके हारे हार है प्यारे॥

---

[1] मूर्खोंने; [2] स्वर्ग-बहिश्तके समान; [3] हरियाली; [4] आस्मान पर; [5] प्रतिच्छाया।

मनके हारे हार है प्यारे
मनके जीते जीत
बसाले
अपने मनमें प्रीत

सोज़ोसाज़से

हफ़ीज़की ग़ज़लोंके नमूने :—

होगया जब इश्क़ हमआग़ोशे तूफ़ानेशबाब।
अक़्ल बैठी रह गई साहिलपै शरमाई हुई॥

ओ बेनसीब! हुश्नके वादोंका हश्र देख।
वोह रफ़्ता-रफ़्ता वादा फ़रामोश होगये॥

मुझे डर है गुलोंके बोझसे मरक़द न दब जाए।
उन्हें आदत है जब आना ज़रूर अहसान धर जाना॥

अब इब्तदाये इश्क़का आलम कहाँ 'हफ़ीज़'!
किश्ती मेरी डबोके वोह दरिया उतर गया॥

काबेको जा रहा हूँ निगह सूएदैर है।
फिर-फिरके देखता हूँ कोई देखता न हो॥*

यह हुस्न कहीं इश्क़को बेज़ार न करदे।
दुनियाकी हक़ीक़तसे ख़बरदार न करदे॥

---

* इस क़ाफ़ियेमें 'निज़ाम'' रामपुरीका शेर याद आया :—

अन्दाज़ अपना देखते हैं आईनेमें वोह।
और यह भी देखते हैं कोई देखता न हो॥

सकूनेज़िन्दगी हासिल हुआ तर्के अमल करके।
न खुश होता हूँ आसाँसे न घबराता हूँ मुश्किलसे॥

बनानेवाले शायद तेरा कोई खास मक़सद था।
मेरी फूटी हुई तक़दीरसे, टूटे हुए दिलसे॥

सरे मक़तल 'हफ़ीज़' अपना कोई हमदम न था लेकिन।
निगह कुछ देर तक लड़ती रही शमशीरे क़ातिलसे॥

रूहको खाकके दामनमें लिए बैठा हूँ।
मेरा क़ालिब ही हक़ीक़तमें है मदफ़न मेरा॥

यह खूब क्या है, यह ज़ीस्त[1] क्या है, जहाँको असली सरिश्त[2] क्या है?
बड़ा मज़ा हो तमाम चेहरे अगर कोई बेनक़ाब करदे॥

तेरे करमके मुआमिलेको तेरे करम ही पै छोड़ता हूँ।
मेरी खताएँ शुमार करले मेरी सज़ाका हिसाब करदे॥

न दर्दे मुहब्बत न जोशेजवानी।
यह जन्नत है, तो हाय! दुनियाएफ़ानी॥
तू फिर आगई गर्दिशे आस्मानी।
बड़ी महर्बानी, बड़ी महर्बानी॥
सुनाता है क्या हैरत अंगेज़ क़िस्से।
हसीनोंमें खोई हो जिसने जवानी॥

हुस्न बेचारा तो हो जाता है अक्सर महर्बां।
फिर उसे आमादये बेदाद कर लेता हूँ मैं॥

---

[1] ज़िन्दगी; [2] स्वभाव।

आई है बेहया मेरा ईमाँ ख़रीदने।
दुनिया खड़ी है दौलतेदुनिया लिये हुए॥

ओ नंगेऐतबार! दुआपर न रख मदार।
ओ बेवक़ूफ़! हिम्मतेमर्दाना चाहिये॥

रहने दे जामेजम मुझे अंजामेजम पिला।
खुल जाय जिससे आँख वोह अफ़साना चाहिये॥

तुमने दुनिया ही बदल डाली मेरी।
अब तो रहने दो यह दुनियादारियाँ॥

मेरी ज़िन्दगीपर ताज्जुब नहीं था।
मेरी मौतपर उनको हैरानियाँ हैं॥

नदामत हुई हश्रमें जिनके बदले।
जवानीकी दो-चार नादानियाँ हैं॥

मेरा तजरुबा है कि इस ज़िन्दगी में।
परेशानियाँ ही परेशानियाँ हैं॥

ना आश्ना हैं रुत्बयेदीवानगीसे दोस्त!
कम्बख़्त जानते नहीं क्या होगया हूँ मैं॥

हाँ कैफ़े बेख़ुदीकी वोह साइत भी याद है।
महसूस हो रहा था ख़ुदा होगया हूँ मैं॥

समझा हुआ हूँ सूमिये बस्ते दुआको मैं।
कुछ रोज़ और देख रहा हूँ ख़ुदाको मैं॥

साबित क़दम रहूँ कि तलातुमका साथ दूँ।
साहिलके रुख़ तो ला न सकूँगा हवाको मैं॥

किश्ती खुदापै छोड़के बैठा हूँ मुतमईन।
दरियामें फेंक दूँ न कहीं नाखुदाको मैं॥

इन्सान हूँ खताएवफ़ा बख़्श दीजिए।
बस कीजिए, पहुँच तो चुका हूँ सज़ाको मैं॥

मतलबपरस्त दोस्त ना आये फ़रेबमें।
बैठा रहा लिये हुए दामेवफ़ाको मैं॥

है अज़लकी इस ग़लत बख़्शीपै हैरानी मुझे।
इश्क़ लाफ़ानी मिला है ज़िन्दगी फ़ानी मुझे॥

कहीं ज़ेरदस्तोंको राहत नहीं है।
न ज़ेरे फ़लक है न ज़ेरेज़मीं है॥

तनज़्ज़ुलकी हद देखना चाहता हूँ।
कि शायद वहीं हो तरक़्क़ीका ज़ीना॥

मेरे डूब जानेका बाइस तो पूछो।
किनारेसे टकरा गया था सफ़ीना॥

असीरोंसे रिहाई पानेवालो!
तुम्हें पहुँचे मुबारिकबाद मेरी॥
सहारा क्यों लिया था नाखुदाका।
ख़ुदा भी क्यों करे इमदाद मेरी?

ख़िरदमन्दो! ख़िरदसे दूर हूँ मैं।
बहुत ख़ुश हूँ बहुत मसरूर हूँ मैं॥
किसीने भी न पहचाना वतनमें।
मैं समझा था बहुत मशहूर हूँ मैं॥

यानी मैं नामुराद भी हूँ बेवक़ूफ़ भी।
कुछ इस तरह वोह दाबेवफ़ा दे गये मुझे॥
जिनसे कोई उम्मीद न थी उनसे क्या उम्मीद?
जिनसे उम्मीद थी वोह दग़ा दे गये मुझे॥
फ़रमा गये बुज़ुर्ग कि "उम्रतदराज़ बाद"[1]।
मेरी शरारतोंकी सज़ा दे गये मुझे॥

जबसे देखा है जल मरना नन्हीं-नन्हीं जानोंका।
शमग्राका परवाना न सही, परवाना हूँ परवानोंका॥
ले चल, हाँ, मझधारमें ले चल, साहिल-साहिल क्या चलना?
मेरी इतनी फ़िक्र न कर मैं खूगर हूँ तूफ़ानोंका॥

---

[1] तेरी आयु अधिक हो।

१६

साग़र निज़ामी

साग़र एक रूपवान सजीला शायर है। वह अपनी इश्क़िया और रोमानी शायरीकी बदौलत समूचे हिन्दुस्तानमें ख्याति पा चुका है। उसके कलाममें प्यार, बिरह, और वेदना है। कंठमें उसके जादू है। सुननेवालोंको वह मंत्र-मुग्ध-सा कर देता है। जब वह पढ़ने बैठता है तो मालूम होता है सारी राग-रागिनियाँ एकाकार होकर बैठ गई हैं। भारतके हर रेडियो-स्टेशनसे उसके नग़मे गूँजते रहते हैं। बड़े-बड़े मुशायरोंमें उसकी उपस्थिति अनिवार्य समझी जाती है। उसके उठनेमें, बैठनेमें एक सलीक़ा है—अन्दाज़ है। बोलता है तो फूल-से झड़ते हैं। वह जितना मधुर लिखता और बोलता है उतनी ही मधुरता अपने व्यक्तिगत जीवनमें भी रखता है। उसकी आँखोंमें मादकता और संकल्पकी दृढ़ता घुल-मिल कर खेलती है। वह लजीला और विनयशील है, मगर स्वाभिमानको नहीं बिछुड़ने देता। मुख पर हँसी, मगर हृदयमें क्रान्तिकी आग। जन्मसे मुसलमान, मगर मज़हब उसका मनुष्यप्रेम। जीवनकी कितनी ही अन्धेरी कन्दराओंसे निकल कर बेदाग़ हीरेकी तरह स्वच्छ और दृढ़।

साग़र देशभक्त, सुधारक, परिवर्त्तनवादी और प्रगतिशील शायर है। प्यार भरे स्वरमें पुजारन, भिखारन, पनिहारीको टेरता है तो संसारकी भलाईके लिए वह नये ईश्वर बनानेकी भी बात सोचता है। देशप्रेमके आगे वह सब कुछ हेच समझता है। एक ख़तकी तरदीद करते हुए लिखता है:—

"जहाँ तक हिन्दोस्तानकी आज़ादी, हिन्दू-मुस्लिम इत्तहाद (ऐक्य)

और एक मुत्तहद (अखण्ड) आज़ाद मुल्कका सवाल है मैं इनके मुक़ाबिलेमें दुनियाकी बादशाहतको ठुकरा दूँगा। मुझे हिन्दोस्तान और उसकी आज़ादी अपने माँ-बाप, अपने भाई, अपनी बीबी और अपनी जानसे भी ज्यादा अज़ीज़ है। मैं मर जाना पसन्द करूँगा, लेकिन उन तबकों (पार्टियों)का साथ न दूँगा जो हिन्दुस्तानकी आज़ादीके दुश्मन हैं। यह मेरा महफ़ूज़ (सुरक्षित) और मज़बूत ईमान है जो कभी मुतज़लज़ल (डगमगानेवाला) नहीं हुआ और कभी नहीं होगा।..........

"मेरे और उनके दरमियान लाखों खलीजें हैं। वे बरतानवी साम्राज्यकी मशीनके एक-पुर्ज़े, अंग्रेज़ोंके तनख्वाहदार मुलाज़िम यानी रजिस्टर्ड सरकारी आदमी—मैं हिन्दुस्तान और उसकी क़ौमोंका खादिम, मुझसे उनका क्या वास्ता ? वह नौकर, मैं आज़ाद ! वह ग़ुलामी पर नाज़ाँ, मैं ग़ुलामीसे नाफ़िर। इसलिये हर अक़्लमन्द बाआसानी फैसला कर सकता है कि मेरा उनका क्या इत्तहाद हो सकता है।"[1]

साग़िर आजकल बम्बईमें रौनक़ अफ़रोज़ हैं। वहाँ किसी फ़िल्म कम्पनीमें कहानी और गीत लेखक हैं। और वहींसे उर्दू में एशिया मासिक पत्र निकालते हैं। साग़िरने ऊँचे पाये की ग़ज़ल और गीत लिखे है। उर्दूके पत्र-पत्रिकाओंमें उनका कलाम प्रकाशित होता रहता है। उनके सरल कलामका संक्षिप्त नमूना आगे देखिये।

---

[1] एशिया (उर्दू) सितम्बर १९४३, पृष्ठ ८।

चन्द ग़ज़लोंके नमूने :—

दिल हुस्नके हाथोंसे दामनको छुड़ाये है।
लेकिन कोई दामनको खींचे लिये जाये है॥

क्या शै है मुहब्बत भी, कोहसारको[1] ढाये है।
तिरतोंको डुबोये है, डूबोंको तिराये है॥

जब प्रेमकी नद्दीमें तूफ़ान-सा आये है।
नैया ही नहीं, नद्दी हिचकोले-से खाये है॥

यह तेरा तसव्वुर है या मेरी तमन्नाएँ।
दिलमें कोई रह-रहके दीपक-से जलाये है॥

जिस सिम्त न दुनिया है, ऐ दोस्त! न उक़बा[2] है।
उस सिम्त मुझे कोई खींचे लिये जाये है॥

सीना हो दाग़दार क्यों, आँख हो अश्कबार क्यों?
ग़म कोई ताजरी नहीं, ग़मका हो इश्तहार क्यों?

ख़ाम है ज़ौक़े इन्तज़ार जीस्त[3] अगर हुई है बार।
उनका जब इन्तज़ार है, मौतका इन्तज़ार क्यों?

सब्र नहीं है ज़िन्दगी, जब्र नहीं है आशिक़ी।
दिलपै नहीं है अख़्तियार, उनपै हो अख़्तियार क्यों?

अपना हो बुतकदा सजा, अपने ही बुतपै लोट जा।
तेरे दिमाग़ोदिलपै हो, दैरोहरमका बार क्यों?

---

[1] पर्वतको; [2] परलोक।

[3] ज़िन्दगी।

उभरूँगा फिर लिबासे ख़िज़ांमें बतर्जे नौ।
मुझको कुचल दिया जो ख़िरामेबहारने॥

जो इक नग़मा भी दिलसे अन्दलीबेज़ार हो जाये।
चमन कैसा, चमनकी ख़ाक भी बेदार हो जाये॥
तेरे सरकी क़सम गर तू न हो मेरे तसव्वुरमें।
मेरी नाज़ुक तबीयतपै यह दुनिया बार हो जाये॥
इसी लमहेको शायद यासकी तकमील कहते हैं।
मुहब्बत जब मिज़ाजे आशिक़ीपर बार हो जाये॥

न गुल हैं न कलियाँ, न कलियाँ न काँटे।
तही दामनी-सी तही दामनी है॥

न मौजें न तूफ़ाँ, न माँझी न साहिल।
मगर मनकी नैया बही जा रही है॥
चला जा रहा हूँ वफ़ाका मुसाफ़िर।
जिधर भी तमन्ना लिये जा रही है॥
है साजिदसे मसजूद, सजदोंसे काबा।
मेरी बन्दगीसे तेरी दावरी है॥
मेरी ख़ाकपर साज़ेथकतार लेकर।
उमीद अब भी इक गीत-सा गा रही है॥

वोह दामनको अपने झटकते रहेंगे।
जो मैं ख़ाक हूँ, उड़के छाता रहूँगा॥

× × ×

तेरे नामपर नौजवानी लुटा दी।
जवानी नहीं, ज़िन्दगानी लुटा दी॥

यहाँ इशरते ज़िन्दगानी लुटा दी।
वहाँ दौलते जावदानी लुटा दी॥

यह इकरोज़ मिटती, यह इकरोज़ लुटती।
यह इक चीज़ थी आनी-जानी लुटा दी॥

जवानीके लुटनेका ग़म हो तो क्यों हो?
जवानी थी फ़ानी, जवानी लुटा दी॥

ख़िरदको यह ज़िद थी न लुटती यह दौलत।
इसी ज़िदपै हमने जवानी लुटा दी॥

वोह गलियाँ अभी तक हसीनो जवाँ हैं।
जहाँ हमने अपनी जवानी लुटा दी॥

मुहब्बतमें हम और क्या कुछ लुटाते?
मताए ग़रूरे जवानी लुटा दी॥

× × ×

कैफ़े ख़ुदीने मौजको किश्ती बना दिया।
फ़िक्रे ख़ुदा है अब न ग़मे नाख़ुदा मुझे॥

यह सहनेमस्जिद, यह दौरे साग़िर।
बहके नमाज़ी, डूबे नमाज़ी॥

बग़ावत जवानीका मज़हब है 'साग़िर'!
ग़ुलामी है पीरी, बग़ावत जवानी॥

समझना तेरा कोई आसाँ है ज़ालिम।
यह क्या कम है ख़ुद आश्ना हो गये हम॥

भटककर पड़े रहज़नोंके जो हाथों।
लुटे इस क़दर रहनुमा हो गये हम॥

जुनूने ख़ुदीका यह ऐजाज़ देखो।
कि जब मौज आई ख़ुदा हो गये हम॥

मुहब्बतने उम्रे अबद हमको बख़्शी।
मगर सब यह समझे फ़ना हो गये हम॥

यह दोज़ख़, यह जन्नत, यह अमरोनवाही।
फ़सूने रवायात है, और क्या है?

—'रंगमहल'से

रोकती ही रह गई मासूम दूरन्देशियाँ।
उनके लबपर मेरा ज़िक्रे नातमाम आ ही गया॥

हैं जहाँ इश्क़ो हविसको एतराफ़े बेकसी।
तलख़िया हस्तीके क़ुर्बां वोह मुक़ाम आही गया॥

जैसे साग़रसे छलक जाये मचलती मौजेमय।
काँपते होठोंपै उनके मेरा नाम आ ही गया॥

—उर्दू 'आजकल'से

नज़्म

संग-तराशका गीत

नया आदम तराशूँगा, नई हव्वा बनाऊँगा।
नया माबूद[1] ढालूँगा, नया बन्दा बनाऊँगा॥
इसी मिट्टीसे इक हँसती हुई दुनिया बनाऊँगा।

हर इक ज़र्रेके दिलमें इक जहन्नुम-सा दहकता है।
न जाने ख़ाकको कबसे ख़ुदा बननेका जज़्बा है॥
नई दुनियामें हर बन्देको मैं देवता बनाऊँगा।
नया आदम बनाऊँगा, नई हव्वा बनाऊँगा॥

तराने ज़िन्दगीके इन बुतोंसे फूट निकलेंगे।
फ़िसाने ज़िन्दगीके इन बुतोंसे फूट निकलेंगे॥
मैं इस गूँगे जहाँको बोलती दुनिया बनाऊँगा।
नया आदम बनाऊँगा, नई हव्वा बनाऊँगा॥

नयी धरती, नया आकाश होगा और नये तारे।
नये जंगल, नये गुलशन, नई नदियाँ, नये धारे॥
इसी दुनियाकी बुनियादोंपे इक दुनिया बनाऊँगा।
नया आदम बनाऊँगा, नई हव्वा बनाऊँगा॥

हर इक तूफ़ानकी फेंकी हुई हलकान लहरोंमें।
पुरानी कश्तियोंकी ख़ाक और बेजान लहरोंमें॥
नई कश्ती बनाऊँगा, नये दरिया बनाऊँगा;
नया आदम बनाऊँगा, नई हव्वा बनाऊँगा॥

---

[1] उपासनाके योग्य देवता।

कहां तक ज़िन्दगी उकटी रहे क़ुदरतके खांचेमें।
कहां तक में ढलूं दुनियाके इस महदूद सांचेमें ॥
यह दुनिया जिसमें ढल जाये में वह साँचा बनाऊँगा।
नया आदम बनाऊँगा, नई हव्वा बनाऊँगा ॥
जो आंसू दिलके पर्देमें छिपे हैं दिलका ग़म बनकर।
जो आंसू मेरे दामनपर गिरे हैं दिलका ग़म बनकर ॥
में उनसे ज़िन्दगीको एक नई दुनिया बनाऊँगा।
नया आदम बनाऊँगा, नई हव्वा बनाऊँगा ॥

'एशिया' मार्च १९४४

अहद (प्रतिज्ञा)

जब तिलाई[1] रंग सिक्कोंको नचाया जायगा।
जब मेरी ग़ैरतको[2] दौलतसे लड़ाया जायगा॥
जब रगेइफ़लासको[3] मेरी दबाया जायगा।
ऐ वतन! उस वक़्त भी मैं तेरे नग़मे गाऊँगा॥
और अपने पाँवसे अम्बारेज़र[4] ठुकराऊँगा॥

जब मुझे पेड़ोंसे उरियाँ[5] करके बाँधा जायगा।
गर्म आहनसे[6] मेरे होठोंको दाग़ा जायगा॥
जब दहकती आगपर मुझको लिटाया जायगा।
ऐ वतन! उस वक़्त भी मैं तेरे नग़मे गाऊँगा॥
तेरे नग़मे गाऊँगा और आगपर सो जाऊँगा॥

ऐ वतन! जब तुझपै दुश्मन गोलियाँ बरसायेंगे।
सुर्ख़ बादल जब फ़सीलोंपर[7] तेरी छा जायेंगे॥
जब समन्दर आगके बुर्जोंसे टक्कर खायेंगे।
ऐ वतन! उस वक़्त भी मैं तेरे नग़मे गाऊँगा॥
तेग़की झंकार बनकर मिस्लेतूफ़ाँ[8] आऊँगा॥

गोलियाँ चारों तरफ़से घेर लेंगी जब मुझे।
और तनहा छोड़ देगा जब मेरा मरकब[9] मुझे॥

---

[1] सुनहरी; [2] स्वाभिमानको; [3] दरिद्रताकी नसको; [4] दौलतका ढेर; [5] नग्न; [6] लोहेसे; [7] चहारदीवारीपर; [8] तूफ़ानकी तरह; [9] घोड़ा।

और संगीनोंपै चाहेंगे उठाना सब मुझे।
ऐ वतन ! उस वक़्त भी मैं तेरे नग़मे गाऊँगा ।।
मरते-मरते इक तमाशायेवफ़ा[1] बन जाऊँगा ।।

ख़ूनसे रंगीन हो जायेंगी जब तेरी बहार।
सामने होंगी मेरे जब सर्द लाशें बेशुमार ।।
जब मिरे बाज़ूपै सर आकर गिरेंगे बार बार।
ऐ वतन ! उस वक़्त भी मैं तेरे नग़मे गाऊँगा ।।
और दुश्मनकी सफ़ोंपर[2] बिजलियाँ बरसाऊँगा ।।

जब दरेज़िन्दाँ[3] खुलेगा बरमला[4] मेरे लिए।
इन्तहाई[5] जब सजा होगी रवा[6] मेरे लिए ।।
हर नफ़स[7] जब होगा पैग़ामेक़ज़ा[8] मेरे लिए।
ऐ वतन ! उस वक़्त भी मैं तेरे नग़मे गाऊँगा ।।
बादाकश[9] हूँ, जहरकी तल्ख़ी[10] से क्यों घबराऊँगा ?

हुक्म आख़िर क़त्लगहमें[11] जब सुनाया जायगा।
जब मुझे फाँसीके तख़्तेपर चढ़ाया जायगा ।।
जब यकायक तख़्तयेख़ूनी हटाया जायगा।
ऐ वतन ! उस वक़्त भी मैं तेरे नग़मे गाऊँगा ।।
अहद करता हूँ कि मैं तुझपर फ़िदा हो जाऊँगा ।।

---

[1] प्रेम निर्वाहका तमाशा; [2] श्रेणी-क़तारपर; [3] कारागृह-द्वार; [4] तत्काल; [5] अधिकसेअधिक; [6] जायज; [7] स्वास; [8] मृत्युका सन्देश; [9] शराबी; [10] कड़ुआहट; [11] बध-स्थान।

क़ौमी तराना

अय वतन, अय वतन, अय वतन !
जानेमन,[1] जानेमन, जानेमन !!

–१–

ज़र्रे ज़र्रेमें महफ़िल सजा देंगे हम,
तेरे दीवारोदर जगमगा देंगे हम ॥
तुझको हस्तीका[2] गुलशन बना देंगे हम,
आसमानोंपै तुझको बिठा देंगे हम ॥
बनके दुश्मन तेरा जो उठेगा यहाँ,
उसको तहतुस्सरामें[3] गिरा देंगे हम।
और तहतुस्सराको फ़नाके[4] समन्दरमें,
अर्थी बनाके बहा देंगे हम।
अय वतन, अय वतन !!
सुन लें यह इन्सो[5] जानो[6] ज़मीनोज़मन[7] ॥
अय वतन, अय वतन, अय वतन।
जानेमन, जानेमन, जानेमन !

–२–

सोनेवालोंको इक दिन जगा देंगे हम,
रस्मो राहे गुलामी मिटा देंगे हम।

---

[1] मेरे प्राण; [2] जीवनका; [3] पातालमें; [4] मृत्युके; [5] आदमी; [6] जान; [7] जिन-परी।

तेरे बैरीके टुकड़े उड़ा देंगे हम,
आसमानो ज़मींको हिला देंगे हम।
कौन कहता है कमज़ोर निर्बल है तू,
हर तरफ़ ख़ूंके दरिया बहा देंगे हम।
जिस तरफ़से पुकारेगा हिन्दोस्तां,
उस तरफ़ ही वफ़ाकी सदा देंगे हम।
अय वतन, अय वतन,
सरसे बाँधे हुए हैं तिरंगा कफ़न।
अय वतन, अय वतन, अय वतन।
जानेमन, जानेमन, जानेमन!

— २ —

तेरी हस्ती हिमालयकी चोटी बनी,
माहोख़ुरशीदकी[1] उसपै बिन्दी लगी।
रोशनी शर्क़से[2] ग़र्ब[3] तक हो गई,
सजदेमें झुक गई अज़मतेज़िन्दगी[4]।
अज़मते ज़िन्दगीकी क़सम है हमें,
तेरी इज़्ज़तपै सर तक कटा देंगे हम।
वक़्त आने दे, ऐ माँ तेरे नामपर,
अपनी हस्ती व मस्ती मिटा देंगे हम।
अय वतन, अय वतन, अय वतन!
ख़ूनसे अपने भर देंगे गंगोजमन,

---

[1] चाँद-सूरजकी; [2] पूरबसे; [3] पश्चिम; [4] ज़िन्दगीकी शान।

अय वतन, अय वतन,
जानेमन, जानेमन, जानेमन !

— ४ —

मस्तोख़ुशबू हवाओंसे शीतल है तू,
माधुरी है मनोहर है कोमल है तू।
प्रेम मदिराकी लबरेज़[1] छागल है तू,
सरपै आलमकी रहमतका[2] बादल है तू।
आँख उठाके जो देखा किसीने तुझे,
छावनी अपनी लाशोंसे छा देंगे हम।
तेरे पाकीज़ापैकरको[3] रूहोंकी बारीक
चादरके नीचे छिपा देंगे हम।
अय वतन, अय वतन !
तुझपै क़ुरबाँ ज़रोमाल और जानो तन,
अय वतन, अय वतन, अय वतन !
जानेमन, जानेमन, जानेमन !

— ५ —

तेरी नदियाँ रसीली मधुर नग़माख़्वाँ[4],
तेरे परबत तेरी अज़मतोंके निशाँ।
तेरे जंगल भी हँसते हुए गुलसिताँ,
तेरे गुलशन भी रश्केबहारेजिनाँ[5]।

---

[1] भरा हुआ; [2] महरबानी; [3] पवित्र शरीरको; [4] गानेवाली; [5] बैकुण्ठकी शोभा को शर्मानेवाला।

ज़िन्दाबाद, ऐ ग़रीबोंके हिन्दोस्ताँ !
तेरा सिक्का दिलोंपर बिठा देंगे हम ।
जो भी पूछेगा जन्नतका हमसे पता,
राहेकश्मीर उसको दिखा देंगे हम ।
अय वतन, अय वतन !
तू चमन दर चमन[1] है अदन दर अदन[2],
अय वतन, अय वतन, अय वतन !
जानेमन, जानेमन, जानेमन !!

— ६ —

गुलशने ऐशोआरामोराहत है तू,
बेकसीमें कनारेमुहब्बत[3] है तू ।
बेबसों और ग़ुलामोंकी दौलत है तू,
ज़िन्दगीके जहन्नुममें जन्नत है तू ।
सींचकर ख़ूनेदिलसे तेरी क्यारियाँ,
और भी तुझको जन्नत बना देंगे हम ।
हो वह गुलचीं कि सैयाद दोनोंके सर,
तेरे क़दमोंपै इक दिन झुका देंगे हम ।
अय वतन, अय वतन !
हम तेरे फूल हैं तू हमारा चमन,
अय वतन, अय वतन, अय वतन !
जानेमन, जानेमन, जानेमन !!

---

[1] बाग़ोंसे भरा हुआ; [2] जन्नतमें जन्नत; [3] प्रेमकी गोद ।

— ७ —

जिसका पानी है अमृत, वो मख़ज़न[1] है तू ,
जिसके दाने हैं बिजली, वो ख़िरमन[2] है तू ।
जिसके कंकर हैं हीरे वो मादन[3] है तू ,
जिससे जन्नत है दुनिया वो गुलशन है तू ।
देवियों देवताओंका मस्कन[4] है तू ,
तुझको सिजदोंसे काबा बना देंगे हम ।
सिर्फ़ उल्फ़त नहीं सारे संसारमें ,
तेरी अज़मतका डंका बजा देंगे हम ।
अय वतन, अय वतन !
यह फबन, ये विक़ार,[5] और यह बाँकपन ,
अय वतन, अय वतन, अय वतन ।
जानेमन, जानेमन, जानेमन !!

— ८ —

यह सितारे यह निखरा हुआ आसमाँ ,
आसमाँसे हिमालयकी सरगोशियाँ ।
यह तिरी अज़मतोंका अटल राज़दाँ ,
मुस्तक़िल मौतबिर मुहतशिम जाविदाँ ।
इसकी चोटीसे ख़ूँख़्वार दुनियाको फिर ,
हम पयामे हयातोवफ़ा देंगे हम ।
फिर मुहब्बतका नग़मा सुना देंगे हम ,
फिर ज़मानेको जीना सिखा देंगे हम ।

---

[1] भण्डार; [2] खलिहान ; [3] खान; [4] घर; [5] शान ।

अय वतन, अय वतन।
ज़िन्दगी फिर भी लेगी हमारी शरन,
अय वतन, अय वतन, अय वतन!
जानेमन, जानेमन, जानेमन!

पनघटकी रानी—

आई वो पनघटकी देवी, वोह् पनघटकी रानी।
दुनिया है मतवाली जिसकी, और फ़ितरत दीवानी॥
माथेपर सिन्दूरी टीका, रंगीं और नूरानी।
सूरज है आकाशमें जिसकी जौ[1]से पानी-पानी॥
छम-छम उसके बिछुवे बोलें जैसे गाये पानी।
आई वो पनघटकी देवी, वो पनघटकी रानी॥

× × ×

रग-रग जिसकी है इक बाजा और नस-नस जंजीर।
कृष्णमुरारीकी बंसी है या अर्जुनका तीर॥
सरसे पा तक शोख़ीकी वो इक रंगीं तस्वीर।
पनघट बेकल जिसकी ख़ातिर चंचल जमना नीर॥
जिसका रस्ता टक-टक देखे सूरज-सा रहगीर।
आई वह पनघटकी देवी, वह पनघटकी रानी॥

सरपर इक पीतलकी गागर जोहराको शरमाय।
शौक़के पाबोसीमें जिससे पानी छलका जाय॥
प्रेमका सागर बूँदे बनकर झूमा उमड़ा आय।
सर से बरसे और सोनेके दरपनको चमकाय॥
उस दरपनको जिससे जवानी झाँके और शरमाय।
आई वह पनघटकी देवी, वह पनघटकी रानी॥

—रस-सागरसे

---

[1] प्रकाश।

हुस्ने गुज़रान—

आये वो मेरे पास तो शरमाके चल दिये।
आँचलको कुछ सम्हालके कतराके चल दिये॥
ईमानोदीनोहोशको तड़पाके चल दिये।
बहके हुओंको और भी बहकाके चल दिये॥

× × ×

आँखें वो मस्त, मस्त तबस्सुम[1] वो मौज-मौज।
हर चीज़ पै शराब-सी बरसाके चल दिये॥
वो जज़बये तरन्नुमोमस्ती न पूछिये।
हस्तीपै एक शबाब-सा बरसाके चल दिये॥

× × ×

जो आग रूहोदिलमें जहन्नुम फ़रोज़ थी।
उस आगको वोह और भी भड़काके चल दिये॥

औरत—

मैंने यह माना कि तू है मादरे नौए बशर।
एक-एक ज़र्रेमें सौ आलम बसा सकती है तू॥
फ़ितरते ख़ल्लाक़के जौहर दिखा सकती है तू।
गौतम और ईसाको फिर दुनियामें ला सकती है तू॥
रंगो नस्लो क़ौमके क़िलओंको ढा सकती है तू।
मशरिक़ो मग़रिबको इक कुनबा बना सकती है तू॥
'आमिना' और देवकीने जो पिलाया था कभी।
फिर वही साग़र ज़मानेको पिला सकती है तू॥

---

[1] मुस्कान।

मरियमो सीताकी शीरीं मुस्कराहटकी क़सम।
आज भी संसारको जन्नत बना सकती है तू॥

× × ×

लोग जिन्दोंको लिए फिरते हैं ऐ रूहे हयात!
मैं तो यह कहता हूँ मुर्दोंको जिला सकती है तू॥

× × ×

दहरमें जिस अक़्लकी बेदारियोंकी धूम है।
उसको तो सिर्फ़ एक लोरीमें सुला सकती है तू॥

—'रंगमहल'से

बुझा हुआ दीपक—

जीवनकी कुटियामें हूँ मैं बुझा हुआ-सा दीपक।
आशाके मन्दिरमें हूँ मैं बुझा हुआ-सा दीपक॥
बुझा हुआ-सा दीपक हूँ मैं बुझा हुआ-सा दीपक।

× × ×

कजराये दीवटपै धरा हूँ यूँ कुटियामें हाय!
जैसे कोयल सीस नवाकर अम्बुआपर सो जाय॥
जैसे श्यामा गाते-गाते कुहरेमें खो जाय।
जैसे दीपक आगमें अपनी आप भस्म हो जाय॥
विरहमें जैसे आँख किसी क्वारीकी पथरा जाय।
बुझा हुआ-सा दीपक हूँ मैं, बुझा हुआ-सा दीपक॥

× × ×

आतम, हिरदय, जीवन, मृत्यु, सतयुग, कलियुग, माया।
हर रिश्तेपर मैंने अपने नूरका जाल बिछाया॥

चारों ओर चमककर अपनी किरनोंको दौड़ाया।
जितना ढूँढ़ा उतना खोया, खोकर खाक न पाया।।
बीत गये जुग लेकिन 'साग़र' मुझतक कोई न आया।
बुझा हुआ-सा दीपक हूँ मैं बुझा हुआ-सा दीपक।।

× × ×

आख़िर बिल्कुल बुझ जानेकी हो ली जब तैयारी।
आकर मेरे कानमें बोली इक शब यूँ अँधियारी।।
जगमें जिसको कोई न पूछे वह क़िस्मतकी मारी।।
मन-मन्दिरमें मुझे बिठालो ऐ ज्योतीके रसिया!
बुझे हुए-से दीपक तुम, मैं थकी हुई अँधियारी।
बुझा हुआ-सा दीपक हूँ मैं बुझा हुआ-सा दीपक।।

अँधियारीकी बातें सुनकर मन बोला—उठ जाग।
यही तिरी मंज़िल है दीपक! यही हैं तेरे भाग।।
भड़क उठी सीनेमें विरहकी दबी हुई-सी आग।
आशाके मंदिरमें गूँजा इक तूफ़ानी राग।।
आँखोंमें जलते आँसू थे होठोंपर थी आहें।
डाल दी अँधियारीके गलेमें रोकर मैंने बाहें।।
बुझा हुआ-सा दीपक हूँ, मैं बुझा हुआ-सा दीपक।।

—रस-सागरसे

नाग—

× × ×

मस्तीका लहराता पैकर[1] सिरसे पा तक काले।
मौतकी वादीके[2] रखवाले, ऐ क़हरोंके[3] पाले।।

---

[1] चित्र; [2] घाटीके; [3] आफ़तके।

अब्रे-सियाह[1] उतरा है जमींपर ताजा शबनम[2] पीने ।
हब्शी कोई लूट रहा है या मोतीके खजीने ।।
मैं भी इक मोतीको उठा लूँ ?
ऐ बाम्बीके बासी !
आओ मैं तन-मनमें बसा लूँ ऐ बाम्बीके बासी ।।

अपनी ही मस्तीकी धुनमें झूम रहे हो ऐसे ।
जैसे कोई दखिनी क्वारी मदिरा पीकर झूमे ।।
अँधियारी बर्न है तुम्हारा नूर तुम्हारा हाला ।
रातकी देवी क्या जंगलमें भूल गई है माला ?
अपने गलेमें तुमको डालूँ ?
ऐ बाम्बीके बासी !
आओ मैं तन-मनमें बसा लूँ ऐ बाम्बीके बासी ।।

कुसुमकी टहनीपर भौंरोंने या डाला है डेरा ।
बिन पत्तोंकी शाखपै है या कोयल रैन बसेरा ।।
बिजलीसे मामूर घटायें उमड़ रही हों जैसे ।
या सावनकी काली रातें सिमट गई हों जैसे ।।
आओ तुमको बीन बना लूँ ?
ऐ बाम्बीके बासी !
आओ मैं तन-मनमें बसा लूँ ऐ बाम्बीके बासी ।।

या कोई मग़रूर जवानी झूम रही हो पीकर ।
या तूफ़ानोंमें लहराए जैसे काला सागर ।।
पापकी मीठी अँधियारी हो या मस्तीका सवेरा ।
मौतकी रोशन तारीकी हो या जीवनका अँधेरा ।।

---

[1] काला बादल; [2] ओस ।

उम्मीदोंका दीप जला लूँ ?
ऐ बाम्बीके बासी !
आओ मैं तन-मनमें बसा लूँ ऐ बाम्बीके बासी ॥

× × ×

ऐ बाम्बीके बसनेवाले तुम क्या हो ज़हरीले ।
लाखों नाग हैं इनसानोंमें गोरे, काले, पीले ॥
मुल्ला, नेता, पीर और पंडित, राजे पांडे, लाले ।
बसते हैं दुनियामें तुमसे बढ़कर डसनेवाले ॥
तुमसे मैं क्या मनको डसा लूँ ?
ऐ बाम्बीके बासी !
आओ मैं तन-मनमें बसा लूँ ऐ बाम्बीके बासी ॥

विष है तुम्हारा बूँद बराबर, इनका ज़हर समन्दर ।
डङ्क तुम्हारा वीरानों तक, इनका डसना घर-घर ॥
तेरा काटा एक दिन जीवे, इनका काटा पलभर ।
सहर[1] तुम्हारा सरपर बोले, इनका जादू मनपर ॥
मनसे इनका ज़हर हटा लूँ ।
ऐ बाम्बीके बासी !
आओ मैं तन-मनमें बसा लूँ ऐ बाम्बीके बासी ॥

× × ×

इनसानी नागोंके बयाँ हों क्या ज़हरी अफ़साने ।
तेरा डसना छुप-छुपकर है, इनका खुले ख़ज़ाने ॥

---

[1] जादू ।

डसते हैं और फिर कहते हैं मौत न आने पाए।
तेरा विष तो रखता है हर ज़ख्मी दिल पर फाए॥

दाफ़ये आलाम[1] चुरा लूँ?
ऐ बाम्बीके बासी।

आओ मैं तन-मनमें बसा लूँ ऐ बाम्बीके बासी॥

—रंगमहलसे

[1] विपत्तिके दूर करनेका उपाय।

गीत

महात्मा गांधी

दुनिया थी गो उसकी बैरी दुश्मन था जग सारा।
आखिरमें जब देखा साधू वह जीता जग हारा॥
कैसा सन्त हमारा,
कैसा सन्त हमारा गान्धी, कैसा सन्त हमारा।

सच्चाईके नूरसे इसके मनमें है उजियारा।
बातिनमें[1] शक्ती ही शक्ती जाहिरमें बेचारा॥
कैसा सन्त हमारा,
कैसा सन्त हमारा गान्धी, कैसा सन्त हमारा।

गौतम है या नए जन्ममें बंसीका मतवारा।
मोहन नाम सही पर 'सागिर' रूप वही है सारा॥
कैसा सन्त हमारा,
कैसा सन्त हमारा गान्धी, कैसा सन्त हमारा।

भारतके आकाशपै है वह एक चमकता तारा।
सचमुच ज्ञानी सचमुच मोहन सचमुच प्यारा-प्यारा॥
कैसा सन्त हमारा,
कैसा सन्त हमारा गान्धी, कैसा सन्त हमारा।

—रस-सागरसे

---

[1] अन्तरंगमें।

पुजारिन

ऐ मंदिरका राज़ पुजारिन, ऐ फ़ितरतका साज़ पुजारिन !
प्रेमनगरकी रहनेवाली, हरकी बतिया कहनेवाली,
सीधी-साधी भोली-भाली, बात निराली गात निराली,
गर्दनमें तुलसीकी माला, दिलमें इक ख़ामोश शिवाला,
होठोंपर पैमाने रक्सां[1], आँखोंमें मयख़ाने रक्सां।

ऐ देवीका रूप पुजारिन !
तेरा रूप अनूप पुजारिन !

भीनी-भीनी बू सारीमें, सारी मदमें तू सारीमें,
आँखोंमें जमुनाकी मौजें, बालोंमें गंगाकी लहरें,
नूर तेरे रुख़सारे हसींपर, रंगीं टीका पाक जबींपर,
जैसे फ़लकपर सुबहका तारा, रौशन-रौशन प्यारा-प्यारा,
शर्मीली मासूम निगाहें, गोरी-गोरी नाज़ुक बाहें।

ऐ देवीका रूप पुजारिन !
तेरा रूप अनूप पुजारिन !

फूलोंकी इक हाथमें थाली, मोहन, मदमाती, मतवाली,
नीची नज़रें तिरछी चितवन, मस्त पुजारन हरिकी जोगन,
चाल है मस्तानी मतवाली, और कमर फूलोंकी डाली,
दिल तेरा नेकोंकी मंज़िल, लाखों बुतख़ानोंका हासिल,
हस्ती तुझमें झूम रही है, मस्ती आँखें चूम रही है।

ऐ देवीका रूप पुजारिन !
तेरा रूप अनूप पुजारिन !

---

[1] नाचते हुए।

नूरके तड़के घाटपै जाकर, गंगाका सम्मान बढ़ाकर,
फिर लेकर खुशबूएँ सारी, चंदन, जल औ' दूब सुपारी,
सुबहके जल्वोंको तड़पाकर, नज़्ज़ारोंसे आँख बचाकर,
ऐ मन्दिरमें आनेवाली, प्रेमके फूल चढ़ानेवाली,
हस्ती भी है गुल्शन तुझसे, सूरज भी है रौशन तुझसे।

ऐ देवीका रूप पुजारिन !
तेरा रूप अनूप पुजारिन !

लौट चली तू करके पूजा, देख लिया ईश्वरका जल्वा,
ठहर-ठहर ऐ प्रेम-पुजारिन, मैं भी कर लूँ तेरे दर्शन,
देख इधर घूँघटको हटा कर, अपने पुजारीपर किरपा कर,
सबकी पूजा जोहदो[1]-ताअत,[2] मेरी पूजा तेरी उलफ़त,
हरिका घर है तेरा पैकर,[3] तू खुद है इक सुन्दर मंदिर।

ऐ देवीका रूप पुजारिन !
तेरा रूप अनूप पुजारिन !

आँखमें मेरी है इक आँसू, जैसे हो नद्दीपर जुगनू,
मालामें इसको शामिल कर, यह मोती है तेरे क़ाबिल,
ध्यानसे अपने प्राण बचाकर, पाँवसे तेरे आँख मिलाकर,
प्रेमका अपने नीर बहा दूँ, सबकुछ तुझपै भेंट चढ़ा दूँ,
पापी दिल मेरा सुख पाए, मेरी पूजा क्यों रह जाए ?

ऐ देवीका रूप पुजारिन !
तेरा रूप अनूप पुजारिन !

आ तेरी सूरतको पूजूँ, मैं जीवित मूरतको पूजूँ,
तू देवी मैं तेरा पुजारी, नाम तेरा हर साँससे जारी,

---

[1] पवित्रता; [2] वन्दन; [3] वस्त्र।

लागकी आगने तनको भूना, फिर मन्दिर है दिलका सूना,
मनमें तेरा रूप बसा लूँ, तुझको मनका चैन बना लूँ,
छिप जा मेरे दिलके अन्दर, हो जाये आबाद यह मंदिर।

ऐ देवीका रूप पुजारिन!
तेरा रूप अनूप पुजारिन!

तुझको दिलके गीत सुनाऊँ, फिर चरनोंमें सीस नवाऊँ,
तीन लोक आकाश झुका दूँ, धरतीकी शक्ती लचका दूँ,
तारे, चाँद और भूरे बादल, बाग़, नदी, दरिया, औ' जंगल,
पर्बत, रूख औ मसजिद, मंदिर, साक़ी, पैमाना औ साग़र,
दुनिया हो तेरे क़दमोंपर, क़दमोंके नीचे मेरा सर।

ऐ देवीका रूप पुजारिन!
तेरा रूप अनूप पुजारिन!

एक पुजारिन, एक पुजारी, प्रीतकी रीतें कर दें जारी,
देशमें प्रीत और प्यारको भर दें, प्रेमसे कुल संसारको भर दें,
लोभ मोहके बुतको तोड़ें, पाप, क्रोधका नाम न छोड़ें,
प्रेमका रस दौड़े रग-रगमें, हो इक प्रेमकी पूजा जगमें,
दोनों इस धुनमें मर जाएँ, तीरथ एक अजीब बनाएँ।

ऐ देवीका रूप पुजारिन!
तेरा रूप अनूप पुजारिन!

—रस-सागरसे

२४ अगस्त १९४६

२०

अख़्तर शीरानी

अख़्तर शीरानी आसमाने शायरीमें सचमुच अख़्तरकी तरह चमक रहे हैं। उनकी नज़्म और गीत पंजाबमें बच्चे-बच्चेकी ज़बान पर थिरकते हैं। प्रेमका वह मधुर स्वर छेड़ते हैं कि सुप्त हृद्तंत्री भी झंकृत हो उठती है। कभी वह गाँवोंके खेतों और कुओं पर देहाती छोकरियोंमें कान्हा बने दिखाई देते हैं, तो कभी स्वार्थी संसारसे विरक्त होकर किसी अज्ञात स्थानको जानेके लिए उद्यत दिखाई देते हैं। कभी वतन और क़ौमकी दयनीय स्थिति उन्हें चौंका देती है

अख़्तर शीरानीकी अपनी लय है, अपने बोल हैं और अपनी एक दुनिया है, जिसमें वह योगीकी तरह मस्त घूमते हैं।

१—मुझे बद्दुआ न दे

इक़रार है मुझे कि गुनहगार हूँ तेरा।
मुजरिम हूँ, बेवफ़ा हूँ, खतावार हूँ तेरा॥
लेकिन तू रहमकर मुझे ऐसी सजा न दे।
ओ नाजनी ! खुदाके लिये बददुआ न दे॥

यह क्या कहा "खुदा करे तेरा भी आये दिल।
मेरी ही तरह कोई तेरा भी दुखाये दिल॥
और दिल भी यूं दुखाये कि क़ुदरत शफ़ा न दे"
ओ नाजनी ! खुदाके लिए बददुआ न दे॥

माना कि तेरे इश्क़को दिलसे भुला दिया।
नक़्शेवफ़ाको सीनेसे अपने मिटा दिया॥
लेकिन तू मेरी पिछली वफ़ाएँ भुला न दे।
ओ नाजनी ! खुदाके लिए बददुआ न दे॥

अपने कियेपै आप ही पछता रहा हूँ मैं।
तेरी निगाहेदर्दसे शरमा रहा हूँ मैं॥
दिलसे भुला दे, अपनी नजरसे गिरा न दे।
ओ नाजनी ! खुदाके लिए बददुआ न दे॥

२—नग़मये सेहर

एक देहाती युवती चक्की पीसते हुए गा रही है :—

यह बरखा रितु भी बीती जा रही है !
हवा जो गाँवको महका रही है, मेरे मैकेसे शायद आ रही है !
घटाकी ऊदी-ऊदी चुनरियोंसे, मेरी सखियोंकी बू-बास आ रही है।

मुझे लेने न आए अच्छे बावल, तुम्हारी याद आफ़त ढा रही है।
मेरी अम्माको हो इसकी ख़बर क्या? कि चंपा इस जगह घबरा रही है।

न ली भैयाने भी सुध-बुध हमारी, जहाँसे चाह उठती जा रही है।
भला क्योंकर थमें आँसू कि जोपर, उदासीकी बदरिया छा रही है।

नए फूलोंसे जंगल बस चले हैं, मेरे मनकी कली कुम्हला रही है।
कोई इस बावली बदलीसे पूछे, पराये देशमें क्यों छा रही है?

नहीं खेतोंमें ये सावनकी गुड़ियाँ, हमारी आँख लहू बरसा रही है।
घटा है या कोई बिछड़ी सहेली, मेरे घरसे संदेशा ला रही है।

गया पींगे बढ़ानेका ज़माना, वह अमरय्योंपै कोयल गा रही है।
यों ही वह अपनी ग़मगीं रागनीसे, दरो-दीवारको तड़पा रही है।

३—ऐ इश्क़!

ऐ इश्क़ कहीं ले चल इस पापकी बस्तीसे,
नफ़रतगहे आलमसे, लानतगहे हस्तीसे,
इन नफ़्स-परस्तोंसे, इस नफ़्स-परस्तीसे,
दूर और कहीं ले चल, ऐ इश्क़! कहीं ले चल॥

हम प्रेम-पुजारी हैं, तू प्रेम-कन्हैया है,
तू प्रेम-कन्हैया है, यह प्रेमकी नैया है,
यह प्रेमकी नैया है, तू इसका खेवैया है,
कुछ फ़िक्र नहीं, ले चल, ऐ इश्क़! कहीं ले चल॥

बेरहम ज़मानेको अब छोड़ रहे हैं हम,
बेदर्द अज़ीज़ोंसे मुँह मोड़ रहे हैं हम,
जो आस की थी वह भी अब तोड़ रहे हैं हम,
बस, ताब नहीं, ले चल, ऐ इश्क़! कहीं ले चल॥

आपसमें छल और धोके संसारकी रीतें हैं,
इस पापकी नगरीमें उजड़ी हुई प्रीतें हैं,
यां न्यायकी हारें हैं, अन्यायकी जीतें हैं,
सुख-चैन नहीं, ले चल, ऐ इश्क़ कहीं ले चल ॥

ये दर्द भरी दुनिया बस्ती है गुनाहोंकी,
दिलचाक उम्मीदोंकी, सफ़्फ़ाक निगाहोंकी,
ज़ुल्मोंकी, जफ़ाओंकी, आहोंकी, कराहोंकी,
हैं ग़मसे हज़ीं, ले चल, ऐ इश्क़ ! कहीं ले चल ॥

एक ऐसी जगह जिसमें इन्सान न बसते हों,
ये मकरोजफ़ा पेशा हैवान न बसते हों,
इन्साँकी क़बामें ये शैतान न बसते हों,
तो ख़ौफ़ नहीं, ले चल, ऐ इश्क़ ! कहीं ले चल ॥

इन चाँद-सितारोंके बिखरे हुए शहरोंमें,
इन नूरकी किरनोंकी ठहरी हुई नहरोंमें,
ठहरी हुई नहरोंमें, सोई हुई लहरोंमें,
ऐ ख़िज़्रेहसीं ! ले चल, ऐ इश्क़ ! कहीं ले चल ॥

संसारके उस पार इक इस तरहकी बस्ती हो,
जो सदियोंसे इन्साँकी सूरतको तरसती हो,
औ' जिसके नज़ारोंपर तनहाई बरसती हो,
यूँ हो तो वहीं ले चल, ऐ इश्क़ ! कहीं ले चल ॥

४—सलमा

कहती हैं सब "यह किसकी तड़पा गई है सूरत ?
'सलमा'की शायद इसके मन भा गई है सूरत !
और उसके ग़ममें इतनी मुरझा गई है सूरत।
मुरझा गई है सूरत, कुम्हला गई है सूरत ॥

सँवला गई है सूरत सलमासे दिल लगाकर।"
बस्तीकी लड़कियोंमें बदनाम हो रहा हूँ॥

पनघटपै जब कि सारी होती हैं जमा आकर।
गागरको अपनी रखकर घूँघट उठा-उठाकर॥
यह क़िस्सा छेड़ती हैं मुझको बता-बताकर।
"सलमासे बातें करते देखा है इसको जाकर॥
हमने नज़र बचाकर" सलमासे दिल लगाकर।
बस्तीकी लड़कियोंमें बदनाम हो रहा हूँ॥

रातोंको गीत गाने जब मिलकर आती हैं सब।
तालाबके किनारे धूमें मचाती हैं सब॥
जंगलकी चाँदनीमें मंगल मनाती हैं सब।
तो मेरे और सलमाके गीत गाती हैं सब॥
और हँसती जाती हैं सब, सलमासे दिल लगाकर।
बस्तीकी लड़कियोंमें बदनाम हो रहा हूँ॥

खेतोंसे लौटती हैं जब दिन छिपे मकाँको।
तब रास्तेमें बाहम वोह मेरी दास्ताँको॥
दुहराके छेड़ती हैं, सलमाको, मेरी जाँको।
और वह हयाकी मारी सी लेती है ज़बाँको॥
क्या छेड़े उस बयाँको सलमासे दिल लगाकर।
बस्तीकी लड़कियोंमें बदनाम हो रहा हूँ॥

एक शोख़ छेड़ती है इस तरह पास आकर—
"देखो वोह जा रही है सलमा नज़र बचाकर॥
शरमाके मुस्कराकर, आँचलसे मुँह छिपाकर।
जाओ न पीछे-पीछे दो बात कर लो जाकर।

खेतोंमें छिप छिपाकर" सलमासे दिल लगाकर।
बस्तीकी लड़कियोंमें बदनाम हो रहा हूँ॥
—सुबहे बहार

४—आख़िरी उम्मीद

मेरा नन्हा जवाँ होगा !

ख़ुदा रक्खे जवाँ होगा, तो ऐसा नौजवाँ होगा।
हसीनो कारवाँ होगा, दिलेरो तेग़राँ होगा॥
बहुत शीरींज़बाँ होगा, बहुत शीरीं बयाँ होगा।
यह महबूबेजहाँ होगा, मेरा नन्हा जवाँ होगा॥

वतन और क़ौमकी सौ जानसे ख़िदमत करेगा यह।
ख़ुदाकी और ख़ुदाके हुक्मकी इज़्ज़त करेगा यह॥
हर अपने और परायेसे सदा उल्फ़त करेगा यह।
हर इकपर महर्बां होगा, मेरा नन्हा जवाँ होगा॥

मेरा नन्हा बहादुर एक दिन हथियार उठायेगा।
सिपाही बनके सूए अर्सगाहे रज़्म जायेगा॥
वतनके दुश्मनोंके ख़ूनकी नहरें बहायेगा।
और आख़िर कामराँ होगा, मेरा नन्हा जवाँ होगा॥

वतनकी जंगेआज़ादीमें जिसने सर कटाया है।
यह उस शैदायेमिल्लत बापका पुरजोश बेटा है॥
अभीसे आलमेतिफ़लीका हर अन्दाज़ कहता है।
वतनका पासबाँ होगा, मेरा नन्हा जवाँ होगा॥

वतनके नामपर इक रोज़ यह तलवार उठायेगा।
वतनके दुश्मनोंको कुंजेतुरबतमें सुलायेगा।

और अपने मुल्कको ग़ैरोंके पंजेसे छुड़ायेगा।
ग़रूरेख़ानदाँ होगा, मेरा नन्हा जवाँ होगा॥

सफ़ेदुश्मनमें तलवार इसकी जब शोले गिरायेगी।
शुजाअत बाज़ुओंमें बनके बिजली लहलहायेगी॥
जवोंकी हर शिकनमें मर्गेदुश्मन थरथराएगी।
यह ऐसा तेग़राँ होगा, मेरा नन्हा जवाँ होगा॥

सरे मैदान जिस दम दुश्मन इसको घेरते होंगे।
बजाए खूँ रगोंमें इसकी शोले तैरते होंगे॥
सब इसके हमलए शेरानासे मुँह फेरते होंगे।
तहोबाला जहाँ होगा, मेरा नन्हा जवाँ होगा॥

५—मदर्सेकी लड़कियोंकी दुआ

यारब ! यही दुआ है तुझसे सदा हमारी।
हिम्मत बढ़ा हमारी, क़िस्मत बना हमारी॥
तालीममें कुछ ऐसी हम सब करें तरक़्क़ी।
ग़ैरोंकी इन्तहाँ भी हो इब्तदा हमारी॥
नफ़रत बुराईसे हो, उल्फ़त भलाईसे हो।
रग़बत सफ़ाईसे हो, यह है दुआ हमारी॥
पढ़ लिखके नाम पाएँ, कुछ काम कर दिखाएँ।
तेरे हुज़ूरमें है यह इल्तजा हमारी॥

६—औरत

हयातो हुरमतो महरो वफ़ाकी शान है औरत।
शबाबोहुस्नो अन्दाज़ो अदाकी जान है औरत॥
हिजाबो अस्मतो, शर्मोहयाकी कान है औरत।
जो देखो ग़ौरसे हर मर्दका ईमान है औरत॥

अगर औरत न आती कुल जहाँ मातमकदा होता।
अगर औरत न होती हर मकाँ इक ग़मकदा होता॥

× × ×

जहाँमें करती है शाही मगर लश्कर नहीं रखती।
दिलोंको करती है ज़ख्मी मगर खंजर नहीं रखती॥

कहीं मासूमतिफ़्ली इसके नग़मोंसे बहलती है।
कहीं बेख़ुद जवानी इसके नोशेलबसे फलती है॥
कहीं मजबूर पीरी इसकी बातोंसे सम्भलती है।
कहीं आरामसे जान इसके क़दमोंपर निकलती है॥

नहीं है किब्रिया लेकिन वोह शानेकिब्रियाई है।
हमारी सारी प्यारी उम्रपर इसकी ख़ुदाई है॥

वोह रोती है तो सारी कायनात आँसू बहाती है।
वोह हँसती है तो फ़ितरत बेख़ुदीसे मुस्कराती है॥
वोह सोती है तो सातों आस्माँको नींद आती है।
वो उठती है तो कुल ख़्वाबीदा दुनियाको उठाती है॥

वही अरमानेहस्ती है, वही ईमानेहस्ती है।
बदन कहिये अगर हस्तीको तो वोह जानेहस्ती है॥

वोह चाहे तो उलट दे परदये दुनियाये फ़ानीको।
वोह चाहे तो मिटा दे जोशेबहरे ज़िन्दगानीको॥
वोह चाहे तो जला दे नख़्लेज़ारे हुक्मरानीको।
वोह चाहे तो बदल दे रंगेबज़्मे आस्मानीको॥

वह कह दे तो बहारेजल्वा मिट जाये नज़ारोंसे।
वोह कह दे तो लिबासे नूर छिन जाये सितारोंसे॥

दुनिया

अख्तर शेरानी अंग्रेजी-छन्द सानीट (१४ लाइनका लघु छन्द) को उर्दूमें सम्भवतया सबसे पहले लाये हैं। इस लघुछन्दमें अब काफ़ी लोग लिखने लगे हैं।

इस छन्दका आधा अंश नीचे दिया जा रहा है :—

तेरी दुनियामें गर मक्कार ही मक्कार बसते हैं।
तो मेरा सीना क्यों अख़लाससे मामूर है यारब ?
मेरा ही दिल मयेउल्फ़तसे क्यों मख़मूर है यारब ?
तेरे मयख़ानये हस्तीमें गर सैय्यार बसते हैं।
तेरी दुनिया अगर बेदर्द इनसानोंका मसकन है।
तो मुझको क्यों किया है दर्देदिलसे आश्ना तूने।
मुझीको क्यों बनाया पैकरे रहमो वफ़ा तूने॥
तेरी दुनिया अगर ख़ूँख़्वार हैवानोंका मसकन है।
'शेरस्तानसे'

२६ अगस्त १९४६

२१

पं० बालमुकन्द 'अर्श' मलसियानी

अर्श साहबके पिता पं० लभ्भूराम 'जोश' मलसियानी उर्दू ग़ज़लके माने हुए उस्तादोंमेंसे एक हैं। हम उनका परिचय अपनी 'उर्दूके हिन्दू शायर' पुस्तकमें दे रहे हैं।

अर्श साहबकी ख्याति और प्रतिभाको देखते हुए निस्संकोच कहा जा सकता है कि यह उदीयमान तरुण कवि एक रोज़ आस्माने शायरीपर अवश्य चमकेंगे। आप ग़ज़ल, नज़्म और गीत बड़े आकर्षक ढंगसे कहते हैं। स्थानाभावके कारण केवल १ ग़ज़ल और २ गीत बतौर नमूना पेश किये जा रहे हैं—

क्या मानी ?

जिस ग़मसे दिलको राहत हो उस ग़मका मदावा[1] क्या मानी ?
जब फ़ितरत तूफ़ानी ठहरी साहिलकी[2] तमन्ना क्या मानी ?
राहतमें[3] रंजकी आमेज़िश,[4] इशरत[5]में अलम[6]की आलाइश[7],
जब दुनिया ऐसी दुनिया है, फिर दुनिया-दुनिया क्या मानी ?
खुद शेख़ोबिरहमन मुजरिम हैं एक जामसे दोनों पी न सके,
साक़ीको बुख़लपसन्दी[8]पर साक़ीका शिकवा[9] क्या मानी ?

---

[1] इलाज; [2] किनारा-घाटकी; [3] सुख-चैन।
[4] मिलावट; [5] ऐश्वर्य; [6] दुख।
[7] मिलावट; [8] मितव्ययता, कंजूसी; [9] शिकायत।

अख़लासो[1]वफ़ाके सजदोंकी जिस दरपर दाद नहीं मिलती,
ऐ ग़ैरते दिल ऐ अज़्मेखुदी[2] उस दरपर सजदा क्या मानी?
ऐ साहिबे नक़्दोनज़र माना, इन्सांका निज़ाम नहीं अच्छा,
इसकी इस्लाहके पर्देमें अल्लाहसे झगड़ा क्या मानी?
जलवोंका तो यह दस्तूर नहीं, परदोंसे कभी बाहर आए,
ऐ दीदये बेतौफ़ीक[3] तेरा यह जौक़े तमाशा क्या मानी?
मयख़ानेमें तो ऐ वाइज़! तलक़ीनके[4] कुछ असलूब[5] बदल,
अल्लाहका बन्दा बननेको जन्नतका सहारा क्या मानी?
हर लहज़ा फ़ज़ूँ हो जोशे अमल, तस्लीमोरज़ाकी राहपै चल,
तक़दीरका रोना क्या मतलब, तदबीरका शिकवा क्या मानी?
इज़हारेवफ़ा लाज़िम ही सही ऐ 'अर्श' मगर फ़रियादें क्यों?
वो बात जो सबपर ज़ाहिर है उस बातका चर्चा क्या मानी?

आजकल १५ नवम्बर १९४६

जागा सब संसार

शबनमने मोती रोले,
कलियोंने घूँघट खोले,
सब सोये पंछी बोले,
हुआ गीत गुंजार 'उठो अब भोर भई'।
जागा सब संसार उठो अब भोर भई॥

जागा हर प्रीतम प्यारा,
दर्शन-मदका मतवारा,
हर मनमें हुआ उजयारा,

---

[1] नेकचलनी; [2] स्वाभिमानका इरादा; [3] देखने अयोग्य; [4] उपदेश; [5] ढंग।

खुले प्रेमके द्वार उठो अब भोर भई।
जागा सब संसार उठो अब भोर भई॥

मन्दिरको चले नर-नारी,
मतवाले प्रेम-पुजारी,
पूजनकी आशा धारी,
ले पूजन उपहार, उठो अब भोर भई।
जागा सब संसार उठो अब भोर भई॥

पूजन है एक बहाना,
दर्शन भी एक फ़साना,
कहता है तुम्हें जमाना,
करो प्रेम संचार उठो अब भोर भई।
जागा सब संसार उठो अब भोर भई॥

आजकल १५ दि० १९४४

मेरे मनकी आशा जाग

मनका मनोरथ मिल जाएगा मनका कँवल भी खिल जाएगा।
मनको मुण्डेरपै बोल रहा है कल्पन रूपो काग॥
मेरे मनकी आशा जाग

निद्राका सुख मौतका सुख है, निद्रामें तो दुख ही दुःख है।
रैन नहीं अब हुआ सवेरा, उठ निद्राको त्याग॥
मेरे मनकी आशा जाग

क़िस्मतके हेटे भी जागे, निद्राके बेटे भी जागे।
तू जागे तो फिर क्या कहना, जाग उठेंगे भाग॥
मेरे मनकी आशा जाग

मनमें ऐसी लय बस जावे, नागन बनके जो डस जावे।
लयका ज़हर चढ़े नस-नसमें, छेड़ दे दीपक राग॥
मेरे मनकी आशा जाग

आजकल १५ अक्तूबर १९४६

१५ मार्च १९४८

प्रगतिशील युग



: ६ :

प्राचीन इश्क़िया शायरी नवीन प्रेम-मार्ग पर

वर्त्तमान युगके उदोयमान कवि

अतीत और वर्त्तमान युगमें पृथ्वी-आकाशका अन्तर है। सभ्यता और संस्कृतिने परिधान बदल लिये हैं। शिक्षा और दीक्षाके रूप-रंग कुछ-से कुछ हो गये। रथ-मझोलीकी आवश्यकताएँ वायुयान पूरी करने लगे हैं। तीर-तलवारके आसन पर एटम बम बैठ गया है। क़ासिद-का नाज़ुक काम तार और वायरलेसने ले लिया है। महफ़िलोंकी रौनक़ रेडियोने उजाड़ दी है। परवानोंसे कहीं ज़्यादा अब मनुष्य छटपटा कर मरते नज़र आते हैं। दूधकी नदियाँ तो दरकिनार, मिट्टीके तेलके दर्शन नहीं होते। अन्नके पर्वत पर खड़ा होनेवाला किसान कीड़ोंसे बिलबिलाते मुट्ठी भर आटेके लिए दिन भर लाइनमें खड़े होनेको मजबूर है। सीता-सावित्रीकी दुलारियाँ लुच्चे-लफ़ङ्गोंकी भीड़में पाँच गज कपड़ेके लिए खड़ी होनेको विवश हैं। देशका नक़्शा ही नहीं बदला, समूची दुनिया ही बदल गई है। फिर उर्दू शायरीका भी काया-कल्प क्यों न होता ?

वह युग हवा हुआ जब ज़मीन पर रहते हुए भी लोग कल्पनाके उड़नखटोले पर आकाशकी सैर किया करते थे। पुलाव खाते हुए और शर्बते अंगूर पीते हुए भी कहा करते थे :—

'ख़ूनेदिल पीते हैं और लख़्तेजिगर खाते हैं।'

× × ×

'ऐ इश्क़ ! देख हम भी हैं किस दिलके आदमी।
महमाँ बनाके ग़मको कलेजा खिला दिया॥'

चादरेगुल पर सोते हुए, एक सुशीला स्त्रीके होते हुए भी कल्पित माशूक़के लिए जंगलोंकी खाक़ छाननेका स्वप्न देखा करते थे, और कलेजे पर हाथ धर कर फर्माते थे :—

'इश्क़का मनसब[1] लिखा जिस दिन मेरी तक़दीरमें।
आहकी नक़दी मिली, सहरा[2] मिला जागीरमें ॥'

बादशाहों और नवाबोंकी खुशामदमें क़सीदे लिखते थे, मगर स्वाभिमानकी शेखी बघारनेसे नहीं चूकते थे :—

'आशिक़का बाँकपन न गया बादेमर्ग[3] भी।
तख़्तेपै ग़ुसलको[4] जो लिटाया, अकड़ गया ॥'

खुद हज़ारों बुलबुलें मार कर खा जाते, मगर उसको पिंजरेमें पालने वालेको जी भर कोसते थे :—

'चमन सैयादने सींचा यहाँ तक ख़ूने बुलबुलसे।
कि आखिर रंग बनकर फूट निकला आरिज़ेगुलसे[5] ॥"

आजका शायर हवामें सचमुच उड़ता हुआ भी ज़मीनकी सोचता है। क्योंकि उसे वहीं जीना और मरना है। वह ऐसा हवाई क़िला नहीं बनाता जिसमें ज़िन्दगी झाँक भी नहीं सके। उसने आज ऐसे शिवालयकी कल्पना की है जहाँ हर इन्सान प्रीतिके मीठे मंत्र जप सके।

आजका प्रगतिशील शायर आखिर एक मनुष्य ही है। उसके पहलूमें भी दिल और दिलमें प्रेमका दरिया मौजें मार रहा है। वह भी प्रेम करता है, परन्तु मजनूं और फ़रहाद नहीं बनता, अपने कुटुम्ब और व्यक्तित्वको डुबो नहीं देता; वह प्रेम-सागरमें डूब कर गुम नहीं हो जाता, अपनेको जागरूक रखता है। देश पर शत्रुका आक्रमण, मनुष्योंकी सिसकियाँ, पूँजीपतियोंके खूनी पंजे, डायनकी तरह चीखती और मुंह फैलाये मिल-मशीन, जोंककी तरह आफ़िसोंकी यह नीली स्याही उसे महबूब छोड़नेके लिए मजबूर करते हैं। ज़िन्दगीके जंगमें जब कभी वह महबूब को

[1] वसीयत, पट्टा; [2] जंगल; [3] मृत्युके बाद; [4] स्नान; [5] फूलोंके कपोलोंसे।

बिसार देता है या आजीविका अथवा इन्सानी फ़राइज़ उसे आनेसे मजबूर करते हैं तब वह बेवस होकर कहता है :—

'मुझसे पहली-सी मुहब्बत मेरी महबूब न माँग।'

या—

'तू बता अपने फ़राइज़को भुला दूँ कैसे।
मैंने परचम[1] जो उठाया है गिरा दूँ कैसे॥
शमएअहसासे[2]वतन खुद ही बुझा दूँ कैसे।
तेरे फ़िरदौसमें[3] आया हूँ बहुत रोज़के बाद॥

मेरे हमराह अगर चलनेका अरमाँ है तुझे।
यह दिलेराना इरादा तेरा मंजूर मुझे॥
तू भी चल एक नये साज़पे गानेके लिए।
तेरे फ़िरदौसमें आया हूँ बहुत रोज़के बाद॥

अपनी हस्तीका सफ़ीना[4] सूयेतूफ़ाँ[5] कर लें।
हम मुहब्बतको शरीकेग़मे-इन्साँ[6] कर लें॥

—'मौज' साहबकी 'बाज़पुर्स' नज़्मके दो बन्द 'आजकल'से

आजका शायर प्रेयसीके लिये यह नहीं सोचता :—

'उम्मीद बावफ़ाईकी उस बुतसे क्या करें?
क़ासिदकी नाश भेजी है ख़तके जवाबमें॥'

वह तो इस निश्चयके साथ उसके पास जाता है :—

'महफ़िले ख़ुरशीदमें मुझको बिठा सकती हो तुम।
नाज़के क़ाबिल मेरी क़िस्मत बना सकती हो तुम॥

---

[1] झण्डा; [2] देशकी भावनाका दीपक; [3] जन्नतमें (प्रेयसीके स्थानको स्वर्गकी उपमा दी है)।
[4] कश्ती; [5] तूफ़ानोंकी ओर; [6] मनुष्यके दुःखका साथी।

मुझको दे सकती हो दर्से[1] होशो[2] तमकीनो[3] वक़ार[4]।
और अगर चाहो तो दीवाना बना सकती हो तुम ॥
शिकवये[5] ऐय्यामसे आज़ाद हो सकता हूँ मैं।
गर्दिशेऐय्यामको[6] नीचा दिखा सकती हो तुम ॥

× × ×

[7] सरमर्गी इसरार[8] छोड़ो इक ज़रा हिम्मत करो।
कुछ नहीं हूँ मैं, मगर सब कुछ बना सकती हो तुम ॥
है तुम्हारी हर नज़रमें दावते[9] सद[10] इन्क़लाब[11]।
हादसाते[12] दहरसे[13] आँखें लड़ा सकती हो तुम ॥
सबसे पहले तोड़ डालो ये समाजी बन्दिशें।
फिर ज़रा देखो कि क्या हैं ज़िन्दगीकी राहतें ॥

—'नूर' बिजनौरी

('शायर' जून १९४४)

आजके शायर की महबूब शराबखानेका छोकरा या हज़ारों मर्दोंमें आँखें लड़ानेवाली नारीजाति का अभिशाप नहीं होता। वह सौन्दर्यमें चाँदसे अधिक सुन्दर और सुकुमारतामें फूलसे अधिक कोमल नहीं होता। वह परी न होकर एक भोली-भाली सुशीला लड़की होती है, जो नारी जाति के परम्परागत लाज और शील-धनको बड़ी सावधानी से सम्हाले रखती है। उसके हृदय में भी प्रेम-ज्वाला जलती है, पर उसकी लौसे वह अपने वंशकी मानमर्यादाको जला नहीं डालती। लोक-लिहाज और

---

[1] पाठ, नसीहत; [2] चेतना, बुद्धि; [3] इज़्ज़त, शान; [4] वैभव, स्थिर चित्तता; [5] दुनियाके झंझटोंकी शिकायतोंसे; [6] संसार चक्र; [7] हठ; [8] आग्रह; [9]-[10]-[11] सैकड़ों क्रान्तियोंका निमंत्रण; [12]-[13] संसारकी दुर्घटनाओंसे।

वंशकी प्रतिष्ठाका ध्यान रखते हुए प्रेमका इज़हार करती है। वह अपने प्रेमी पर एक सतीकी भाँति न्यौछावर होना चाहती है।

पहले युग का महबूब दिल नहीं रखता था। वह पत्थर और बुत होता था:—

बुत बनके वोह सुना किये बेदादका गिला।
सूझा न कुछ जवाब तो पत्थरके हो गये॥
—'अज्ञात'

वह गोया कसाइयों और छिनालों का शिरमौर होता था :—

हमने उनके सामने पहले तो ख़ंजर रख दिया।
फिर कलेजा रख दिया, दिल रख दिया, सर रख दिया॥
—'दाग़'

सरसे पहले वोह ज़बाँ काट लिया करते हैं।
कि ख़ुदासे न करे कोई शिकायत मेरी॥
—'दाग़'

उदूसे तुम मिला करते हो यह तो मैं नहीं कहता।
मेरी जाँ देखनेवाले तुम्हारा नाम लेते हैं॥
—'अज्ञात'

माल जब उसने बहुत रद्दोबदलमें मारा।
हमने दिल अपना उठा अपनी बग़लमें मारा॥
—'ज़ौक़'

आजकी महबूबा (प्रेयसी) ऐसी अछूती और शर्मीली लड़की है, जो नहीं जानती प्रेम क्या है ? और अनजाने प्रेम-भँवरमें फँस जाती है, और फिर उस भँवरसे निकलनेका नाम नहीं लेती—उसीमें डूब जाती है। अथवा अपने मन-मन्दिरमें प्रेमीको बिठाकर प्रेम-किवड़िया बन्द करके

आँसुओंसे उसके पग पखारती है। छातीकी प्रेम-ज्योतिसे आरती उतारती है, और श्रद्धाके फूल चढ़ाती है। और अन्तमें एकाकार होकर उसीमें लीन हो जाती है।

प्राचीन उर्दू शायरीने महबूबका बड़ा अश्लील, भयावह और अस्वाभाविक चित्रण किया है। संस्कृत और हिन्दीके कवि नारी जाति-का प्रेम, विरह, गुण, स्वभाव, शील आदिका वर्णन करनेमें अत्यन्त सफल और अनुपम रहे हैं। उनके शतांश भागका भी कोई अन्य साहित्य मुका-बिला नहीं कर सकता। जिस साहित्यमें रामायण, महाभारत, साकेत, मेघनाद-वध, सिद्धराज, मेघदूत जैसे काव्य-ग्रन्थ मौजूद हैं उसे गद्‌गद् होकर प्रणाम करनेको जी चाहता है। शरत्‌बाबूने नारी जातिके गौरव को जिस स्याहीसे अमर किया है, काश! वह उर्दू शायरोंको भी मिल पाती! वे कितने महान थे जिन्होंने नारी जाति में सरस्वती, लक्ष्मी दुर्गा और भारत माँ की स्थापना करके उन्हें मातृत्व-दृष्टि से सम्मानित करनेकी मनुष्यको बुद्धि दी।

हिन्दी शायरीमें प्रेम और विरहकी यातना में स्त्री छटपटाती है, उर्दू शायरी में पुरुष। स्त्री भी प्रेम-ज्वाला में झुलस सकती है और कह सकती है :—

नाड़ी छूअत बैद्यके पड़े फफोले हाथ।

या

छातीसे छुआय दीवा बाती क्यों न बार लेय।

× × ×

सोना लेने पिउ गये, सूना कर गये देस।
सोना मिला न पिउ फिरे, रूपा हो गये केस॥

यह शायद उर्दू शायरों को पता न था। स्त्रियों के अहसास व जज्बात

ज़ाहिर करने में उर्दू शायरी गूँगी है। काश, स्त्रियोंके मनोभावोंका भी उसमें दिग्दर्शन होता! हर्ष है कि अब बड़ी तेज़ी से मुस्लिम महिलाएँ इस ओर प्रयत्नशील हैं। वे कहानियाँ तो बड़ी सफलता पूर्वक लिखने ही लगी हैं, शायरी में भी दिलचस्पी ले रही हैं।

मुहोतरिमा इक़बाल सलमाँ चश्ती का एकगीत:—

यादमें तेरी जाने तमन्ना जानपै जब बन आती है।
भोली भाली तेरी सूरत दिलपर तीर चलाती है॥
कली-कलीको छेड़के जब यह मस्त हवा इठलाती है।
कू-कू की आवाज़से बनमें कोयल शोर मचाती है॥
यादमें तेरी जाने तमन्ना! रूह मेरी घबराती है॥

सावनकी घनघोर घटा जब मनमें आग लगाती है।
क़ौस क़ज़ाकी मस्त दुलहन आकाशपै जब छा जाती है॥
डाल-डालपै बैठके बुलबुल प्रीतके नग़्में गाती है।
विरह अगनमें फूँकके तन मन बरखा ऋतु तड़पाती है॥
यादमें तेरी जाने तमन्ना! रूह मेरी घबराती है॥

पनघटपर जब मिलकर सखियाँ गीत ख़ुशीके गाती हैं।
हल्की-हल्की मस्त हवामें ऐशका मुज़दह लाती हैं॥
मस्त निगाहें, शोख़ अदाएँ सबका जी भरमाती हैं।
राग मल्हार जगतके गाकर बिरहनको तड़पाती हैं॥
यादमें तेरी जाने तमन्ना! रूह मेरी घबराती है॥

('आजकल' १५–३–१६४५)

'सुरैया' नज़र फैज़ाबादी 'पसेमंज़र' में रुपयेके कारनामोंका बड़ी ख़ूबीसे बयान करती हैं:—

इस चाँदीके इक टुकड़ेपर जाँ जाती है सर कटता है।
बेवाकी जवानी लुटती है, मुफ़लिसका नशेमन जलता है॥

हाँ, इसके खेल निराले हैं।
समझी कि नहीं ? यह सिक्का है ।।

हाँ, तेरी ही भोली बहनोंके दिल इससे लुभाये जाते हैं।
चाँदीके ख़ुदाओंके दरपर मन भेंट चढ़ाये जाते हैं ।।
जज़्बातके हैवानी हमले होते हैं अँधेरी रातोंमें।
ज़ाहिदके भी लब छू लेते हैं साग़िरको भरी बरसातोंमें ।।
चाँदीके शजरकी छाओंमें जिस्मोंकी लहक देखी होगी।
मासूम मचलते सीनोंपर पंजोंकी झलक देखी होगी ।।
हर रोज़ भयानक गोशोंमें फ़ितरतके पुजारी हँसते हैं।
तन, मन, धन, पर क़ब्ज़ा पाकर ये जीते जुआरी हँसते हैं ।।
तू इन खेलोंको क्या जाने ?
समझी कि नहीं ?—यह सिक्का है।
('मुन्तख़िब नज़्में' १६४४से)

श्रीमती कनीज़फातमा 'हया' की 'दावते ख़ुदी' का एक बन्द:–

ज़ुल्मको मिटाके देख, धज्जियाँ उड़ाके देख।
सीनयेग़ारूरपर बिजलियाँ गिराके देख ।।
खा न मुस्कराके तीर ख़ंजर आज़माके देख ।।
वक्तकी सदा तो सुन ज़िन्दगीमें रूह फूँक।
('आजकल' १-४-१६४५से)

× × ×

श्रीइक़बाल मारूफ़का 'डूबती नैया' गीत:–

कौन खेवनहार तुम बिन नैया डूबन लागी—जीवन नैया डूबन लागी।
गहरी नदिया, दूर किनारा, बीच भँवरमें मोरी नाव, साजन ! बीच भँवर मोरी नाव ।।

लहरें उठ-उठ अम्बर चूमें डगमग डोले नाव, मोरी डगमग डोले नाव।
राह तकत हूँ तुमरी साजन बिन खेवैया, आव, प्रीतम! बिन खेवैया आव॥
कौन लगावे पार तुम बिन नैया डूबन लागी—मोरी नैया डूबन लागी॥

× × ×

चन्दरमापर बादल छाये, आसका दीपक बुझता जाए।
मुझ बिरहनको कौन बचाये, आस निरासमें बवली जाए॥
बादरवा घनघोर छाये, नैया अब हिचकोले खाये।
कौन लगावे पार यह नैया डूबन लागी, मोरी नैया डूबन लागी॥
('आजकल' १ मई १९४५)

एक लड़की कनखियोंसे घूरने वाले सज्जनोंके संबन्ध में अपनी डायरी में नोट करती है:—

नौजवाँ अहबाब अक्सर मेरे भाई जानके।
रातको होते हैं मवऊ चाय पीनेके लिये॥
भाई जान अबतक समझते हैं कि यह अहबाब सब।
सिर्फ़ उनके पास आते हैं बउम्मीदे तरब॥
मैं समझती हूँ कि वोह आते हैं मेरे वास्ते।
दूरसे तकलीफ़ फ़रमाते हैं मेरे वास्ते॥
मैं समझती हूँ कि वे ख़ामोश होकर सर बसर।
गोश बर आवाज़ हैं मेरी सदाये साज़पर॥
फिर मैं दानिस्ता ज़रा उभरी हुई आवाज़से।
अपनी मामाको सदा देती हूँ एक अन्दाज़से॥
लफ़्ज़ भी उतने हसीं उस वक़्त करती हूँ अदा।
वोह अगर सुनलें तो तड़पा ही करें सुबहोमसा॥'
('शायर' जनवरी १९४५)

उक्त ४-५ नज़्मोंमें किस ख़ूबीसे स्त्रियोंके मनोभावोंको व्यक्त किया गया है। पुरुष कितना ही सिद्धहस्त कलाकार हो, उसके काव्य में वह बात नहीं आसकती।

घायलकी गति घायल जाने और न जाने कोय।

पुरुष द्वारा व्यक्त किये हुये भावोंमें अनुभवहीनता, अस्वाभाविकता और कृत्रिमताकी गन्ध आये और फिर आये। संस्कृत-हिन्दी काव्यों-में नारी जातिकी अनुभूतिका बड़ा सुन्दर और कोमल चित्रण मिलता है,किन्तु वह सब पुरुषों द्वारा लिखा हुआ है। यदि वह स्त्रियों द्वारा लिखा हुआ होता तो उसका सौन्दर्य कितना अधिक बढ़ गया होता, कल्पना नहीं की जा सकती। आशा है स्त्रियोंका यह प्रयास उर्दू शायरीमें इस अभाव-की पूर्ति करेगा। अभी उन्हें इस कूचेमें आये दिन ही कितने हुए हैं, नया-नया प्रयास है। तिसपर भी घरेलू अड़चनें, सामाजिक बन्धन, पर्दा और कौटुम्बिक बाधाएँ उनके विकासमें काफ़ी बाधक हैं। फिर भी वह दिन दूर नहीं जब इनमें मीर, गालिब, इक़बाल जैसी लब्धप्रतिष्ठ शायरा उत्पन्न होंगी। प्रसंगवश हमने ३-४ शायराओं के कलाम का नमूना दिया है। उर्दूशायराओं का विस्तृत परिचय हम अपनी दूसरी पुस्तकमें देंगे।

इस युगके अधिकांश उदीयमान शायर पिछले महा समर (१९१४) के आस-पास उत्पन्न हुए। लोरियोंकी जगह युद्धके भयानक हौलनाक समा-चार कानोंमें पड़े। तोतली बोली छूटते और दूधके दाँत टूटते-टूटते कांग्रेस और ख़िलाफ़तके पुरजोश जुलूस देख लिए। ख़ुद भी बाँसकी खपच्चीमें रंगीन कपड़ा बाँधकर भारत और गान्धीकी जय बोली। निहत्थी भीड़पर लाठियों और गोलियोंकी बौछार देखी। स्कूलोंमें जाते-जाते (१९२४में) हिन्दू-मुस्लिम फ़िसादके घिनौने दृश्य भी देखनेको मिले। तभी दरियाओं-की प्रलयंकारी बाढ़ोंमें एक ही छप्पर पर साँप, बिल्ली, कुत्ता, और मनुष्य भयसे काँपते बहते हुए भी देखे। तनिक होश सम्हाला तो अमर शहीद रामप्रसाद बिस्मिल, अशफ़ाकुल्ला, भगतसिंह, जतीन्द्रनाथ, चन्द्रशेखर

आज़ाद, ज़िन्दाबाद, इनक़लाब-ज़िन्दाबादके नारे सुनाई पड़ने लगे। अख़बारोंमें, घरोंमें, उनके रोमांचकारी बलिदानोंकी चर्चाएँ सुनीं। हड़ताल, किसान, मज़दूर, पूँजीपति, साम्राज्यवाद, स्वराज्य, जैसे शब्द अनजाने गलेके नीचे उतर गये। पढ़ना आया तो 'जोश' मलीहाबादीकी इन्क़लाबी, 'अहसान' दानिशकी 'बाग़ीका ख़्वाब', 'साग़िर'की 'ऐ वतन' जैसी नज़्में आँखोंके सामने ख़ूनी मंज़र दिखलाने लगीं। नौजवानोंके सरों पर ख़ून सवार हो गया।

'सरफ़रोशीकी तमन्ना अब हमारे दिलमें है'—जैसी ग़ज़लें बच्चोंके दिलोंमें भी उतर गईं। फिर जवानी आई तो अपने साथ दूसरा महासमर घसीट लाई। हिटलर, मुसोलनी, रुज़वेल्ट, ब्लैक आउट, कन्ट्रोल, टैंक, और एटम बमके करिश्मे जी भरके देखे। बक़ौल इक़बाल 'तेग़ोंके सायेमें जो पल कर बड़े हुए हैं' वे नौजवान आग उगलें, अत्याचारोंकी जड़ोंको खोखली करनेकी तदबीरें बतायें तो आश्चर्य ही क्या है?

'सबा' मथरावी फ़र्माते हैं :—

× × ×

ज़िन्दगीकी मजलिसोंपर हर तरफ़ छायेगी मौत।
ज़िन्दगी क्या मौतको भी एक दिन आयेगी मौत॥
जब यह बरबादी मुसल्लिम है तो क्यों रोकर मिटें?
जब है मिटना ही मुक़द्दर, क्यों न ख़ुश होकर मिटें?

× × ×

क्यों गरजते गूँजते जाएँ न धारोंकी तरह।
क्यों न बरसें मुस्कुराकर अब्रपारोंकी तरह॥
क्यों चटानोंकी तरह रासिख़ न हों अपने क़दम।
क्यों पहाड़ोंकी तरह क़ायम न हों जबतक है दम।

× × ×

यह भी कोई ज़िन्दगी है ग़मकी मारी ज़िन्दगी।
चीख़ती, रोती, बिलखती, बिलबिलाती ज़िन्दगी॥

× × ×

यह भी कोई ज़िन्दगी है हर घड़ी सौ आफ़तें।
दुश्मनी, ग़ीबत, गिले शिकवे, शिकायत, तुहमतें॥

× × ×

यह भी कोई ज़िन्दगी है जान हम खोते रहें।
लोग हमपर मुस्कुराएँ और हम रोते रहें॥

× × ×

ऐ ग़ुलामे ज़िन्दगी ! इस ज़िन्दगीसे फ़ायदा ?
यह तो है बेचारगी, बेचारगीसे फ़ायदा ?

× × ×

ज़ख़्म खाकर मुस्कुरायें तीर खाकर हँस पड़ें।
आफ़तोंकी गोदमें खेला करें और ख़ुश रहें॥
दिलमें टीसें हों मगर रक़्सां हो होठोंपर हँसी।
मौतसे लड़कर बनाए मौतको भी ज़िन्दगी॥

('शायर' जनवरी १९४५)

ये उदीयमान शायर हृदयके भावोंको छिपाते नहीं। हृदयकी ज्वाला और सौन्दर्यकी प्यास किसीकी आड़में होकर नहीं बुझाते, अपितु जो मनमें होता है वही व्यक्त कर देते हैं। कभी मनकी वासनाको तृप्त करनेके लिये भौंरेकी तरह लोलुप नज़र आते हैं। कभी आवारगीमें ताड़ीखानेमें घुसते हुए दिखाई देते हैं। कभी सांसारिक मुसीबतोंसे खीझकर ईश्वर तकसे विद्रोह कर बैठते हैं। कभी धर्मके ठेकेदार मुल्लाओं-पण्डितोंको आड़े हाथ लेते हैं। कभी मज़दूर और किसानकी बेबसी देख पूँजीपतियों पर बरस पड़ते हैं। कभी मज़हबी, सामाजिक, रस्मोरिवाज़के ख़िलाफ़

बग़ावतपर आमादा हो जाते हैं। तो कभी दरिया के किनारे बैठकर प्रेयसी-की यादमें मादक गीत गाते हैं, और वहीं किसी अव्यक्त वेदनासे तड़पकर सामाजिक बन्धनोंको तोड़नेके लिये अधीर हो उठते हैं। ग़रज़ हर मज़-मून पर उनकी क़लम चलती है। जो पाठक इनकी ग़ज़लोंमें मीर जैसी व्यथा, ग़ालिब जैसी कल्पना, नज़्मोंमें इक़बाल जैसी गहराई, चकबस्त जैसी सुघराई, जोश जैसी आग और अहसान जैसी तड़प ढूँढ़ना चाहेंगे उन्हें निराश होना होगा। इनका अपना जुदा और नया रंग है। अभी इनकी उम्र ही क्या है? होश सम्भाले दिन ही कितने हुए? सन् ३५से तो इस युगका प्रारम्भ ही होता है। फिर भी अपनी हल्की-हल्की, और भीनी-भीनी ख़ुशबूसे उर्दू दुनियाँ को महका दिया है। इनमें नून्-मीम राशिद, अहमद-नदीम क़ासिमी, डा० तासीर, सलाम मछलीशहरी, मीराजी, जगन्नाथ आज़ाद, परवेज़, मख़मूर जालन्धरी, मक़बूलहुसेन अहमदपुरी, रविशसिद्दीक़ी, मुख़तार सिद्दीक़ी, अज़ीम, कुरेंसी, फ़ैज़, मजाज़, जज़्बी, साहिर वग़ैरह जैसे शायर भिन्न-भिन्न पहलुओंपर अनेक तरहसे (ग़ज़लों, नज़्मों, गीतों, लघुछन्दों और मुक्तिछन्दोंमें) लिख रहे हैं। यहाँ हम अन्तिम केवल चार कवियोंका परिचय दे रहे हैं।

२८ अगस्त १९४६ ई०

२२

फ़ैज़ अहमद 'फ़ैज़' एम० ए०

(जन्म १९११ सियालकोट)

'फैज' साहब अभी ७-८ वर्षसे ही साहित्यिक क्षेत्रमें आये हैं। आपकी कविताओंका संग्रह 'नक्शे फ़रियादी' सन् १९४२में प्रकाशित हुआ है। आप आलोचनात्मक लेख भी सामयिक पत्रोंमें लिखते रहते हैं। पहिले सरकारी सर्विसमें फ़ौजमें कर्नल थे, आजकल लाहौरके अंग्रेज़ीके दैनिक पाकिस्तान टाइम्सके सम्पादक हैं।

'फैज' साहबने भी शायरीकी बिस्मिल्लाह ग़ज़लसे ही की है। प्रारम्भकी ग़ज़लें बड़ी रंगीन और लुभावनी रही हैं।

रात यूँ दिलमें तेरी खोई हुई याद आई।
जैसे वीरानेमें चुपकेसे बहार आजाये॥
जैसे सहराओंमें[1] हौले-से चले बादेनसीम[2]।
जैसे बीमारको बेवजह क़रार आजाये॥

× × ×

दिल रहीनेग़मेजहाँ[3] है आज,
हर नफ़स तिश्नयेफ़ुग़ाँ है आज।
सख़्त वीराँ है महफ़िले हस्ती,
ऐ ग़मेदोस्त! तू कहाँ है आज?

× × ×

---

[1] जंगलोंमें; [2] पवन; [3] संसारके दुखोंका केन्द्र।

फूल लाखों बरस नहीं रहते।
दो घड़ी और है बहारेशबाब॥

× × ×

सो रही है घने दरख्तों पर, चाँदनीकी थकी हुई आवाज़।

× × ×

वक़्फ़े हिरमानोयास रहता है।
दिल है अक्सर उदास रहता है॥
तुम तो ग़म देके भूल जाते हो।
मुझको अहसाँका पास रहता है॥

× × ×

परन्तु बहुत शीघ्र फ़ैज़में अभूतपूर्व परिवर्त्तन हो जाता है। हसीनोंके साथ-साथ उन्हें भूखे भी दीखने लगते हैं।

मौज़ूए सख़ुन

गुल हुई जाती है अफ़सुर्दा सुलगती हुई शाम।
धुलके निकलेगी अभी चश्मये मेहताबसे रात॥

× × ×

यह हसीं खेत, फटा पड़ता है जोबन जिनका।
किसलिये उनमें फ़क़त भूख उगा करती है?

× × ×

यह हरइक सिम्त पुरइसरार कड़ी दीवारें।
जलबुझे जिनमें हज़ारोंकी जवानीके चिराग़॥

× × ×

'फ़ैज़' प्रेम करते हैं, परन्तु उसमें अन्धे नहीं होते। अन्तर्चक्षु खुले रखते हैं। और प्रेम-पाठ पढ़ते हुए भी अपने आस-पास कराहती दुनियाको

कनखियोंसे देख लेते हैं। 'फैज़' मार्क्सवादी नहीं, वह एक मनुष्य हैं—शायर हैं और जब उन्हें मनुष्य-रक्तके पिपासु नज़र आते हैं तो मनुष्यता और शायरीके नाते बेचैन हो उठते हैं—

रक़ीबसे

× × ×

आश्ना हैं तेरे क़दमोंसे वोह राहें जिनपर।
उसको मदहोश जवानीने इनायत की है॥

× × ×

तूने देखी है वोह पेशानी, वोह रुख़सार, वोह होंट।
ज़िन्दगी जिनके तसव्वुरमें लुटा दी हमने॥
तुझपे उठती हैं वोह खोई हुई साहिर आँखें।
तुझको मालूम है, क्यों उम्र गँवा दी हमने?
हमपै मुश्तरका हैं अहसान ग़मेउल्फ़तके।
इतने अहसान कि गिनवाऊँ तो गिनवा न सकूँ॥
हमने इस इश्क़में क्या खोया है क्या सीखा है।
जुज़ तेरे औरको समझाऊँ तो समझा न सकूँ॥
आजज़ी सीखी, ग़रीबोंकी हिमायत सीखी।
यासो हिरमानके दुख-दर्दके मानी सीखे॥
ज़ेरदस्तोंके मसाइबको समझना सीखा।
सर्द आहोंके रुख़े ज़र्दके मानी सीखे॥
जब कहीं बैठके रोते हैं वोह बेकस जिनके।
अश्क आँखोंमें बिलखते हुए सो जाते हैं॥
नातवानोंके निवालेपै झपटते हैं उक़ाब।
बाज़ू तोले हुए मँडलाते हुए आते हैं॥

जब कभी बिकता है बाजारमें मजदूरका गोश्त।
शाहराहोंपै ग़रीबोंका लहू बहता है॥
या कोई तोंदका बढ़ता हुआ सैलाब लिये।
फ़ाक़ामस्तोंको डुबोनेके लिए कहता है॥
आग-सी सीनेमें रह-रहके उबलती है न पूछ।
अपने दिलपर मुझे क़ाबू ही नहीं रहता है॥

पहली-सी मुहब्बत

मुझसे पहली-सी मुहब्बत मेरी महबूब न माँग।

× × ×

और भी दुख हैं जमानेमें मुहब्बतके सिवा।
राहतें और भी हैं वस्लकी राहतके सिवा।

× × ×

जा-बजा बिकते हुए कूचओबाज़ारमें जिस्म।
ख़ाकमें लिथड़े हुए ख़ूनमें नहलाये हुए॥

× × ×

लौट जाती है इधरको भी नजर क्या कीजे ?
मुझसे पहली-सी मुहब्बत मेरी महबूब न माँग॥

'फ़ैज़' भावावेशमें बह नहीं जाते, स्थिर और अटल रहते हैं। उनका क्रोध दीपककी वह अन्तिम लौ नहीं जो एकबारगी भड़क कर बुझ जाय। वह उपलेकी आगकी तरह छुपी-छुपी अपना काम करती रहती है :—

चन्द रोज़ और

चन्दरोज़ और मेरी जान! फ़क़त चन्द ही रोज़।
ज़ुल्मकी छाओंमें दम लेनेको मजबूर हैं हम॥

ग्रौर कुछ देर सितम सह लें, तड़प लें, रो लें।
अपने अजदादकी मीरास है माज़ूर हैं हम ॥
जिस्मपर क़ैद है, जज़बात पै ज़ंजीरें हैं।
फ़िक्र महबूस है, गुफ़्तारपै ताज़ीरें हैं ॥
अपनी हिम्मत है कि हम फिर भी जिये जाते हैं ॥

ज़िन्दगी क्या किसी मुफ़लिसकी क़बा है जिसमें।
हर घड़ी दर्दके पैवन्द लगे जाते हैं ॥
लेकिन अब ज़ुल्मकी मीयादके दिन थोड़े हैं।
इक ज़रा सब्र, कि फ़रियादके दिन थोड़े हैं ॥

× × ×

'फ़ैज़' अत्याचार-पीड़ितोंके अहसास किस ख़ूबीसे उभारते हैं :—

कुत्ते

यह गलियोंके आवारा बेकार कुत्ते।
कि बख़्शा गया जिनको ज़ौक़े गदाई ॥
ज़मानेकी फटकार सरमाया उनका।
जहाँ भरकी धितकार उनकी कमाई ॥

न आराम शबको न राहत सवेरे।
ग़िलाज़तमें घर, नालियोंमें बसेरे ॥
जो बिगड़ें तो इक दूसरेसे लड़ा दो।
ज़रा एक रोटीका टुकड़ा दिखा दो ॥
यह हर एकको ठोकरें खानेवाले।
यह फ़ाक़ोंसे उकताके मर जानेवाले ॥

यह मज़लूम मख़लूक़ गर सर उठाये।
तो इनसान सब सरकशी भूल जाये ॥

यह चहें तो दुनियाको अपना बना लें।
यस आक़ाओंको हड्डियाँ तक चबा लें॥

कोई उनको अहसासे ज़िल्लत दिला दे।
कोई उनको सोई हुई दुम हिला दे॥

शायरके हृदयमें आग है। पर उसे आजीविकोपार्जन अथवा अन्य आवश्यक कार्योंसे विदेश जानेकी सम्भावना दीख रही है। विरहकी ज्वालामें वह जलेगा, परन्तु अपनी प्रियाके कष्टोंकी आशंकासे सिहर उठता है।

ख़ुदा वोह वक़्त न लाये

ख़ुदा वोह वक़्त न लाये कि सोगवार हो तू।
सकूँकी नींद तुझे भी हराम हो जाये।
तेरी मसर्रतें पैहम तमाम हो जाये।
तेरी हयात तुझे तल्ख़जाम हो जाये।
ग़मोंसे आईनये दिलगुदाज़ हो तेरा॥

हुजूमेयाससे बेताब होके रह जाये।
वफ़ूरे दर्दसे सीमाब होके रह जाये।
तेरा शबाब फ़क़त ख़्वाब बनके रह जाये।
ग़रूरेहुस्न सरापा नियाज़ हो तेरा॥

'फ़ैज़' युवक हैं। उनसे उर्दू-साहित्यको बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं। उनकी दो नज़्मोंके अंश, चन्द अशआर नीचे और दिये जाते हैं :—

हुस्न और मौत

जो फूल सारे गुलिस्ताँमें सबसे अच्छा हो।
फ़रोग़ेनूर हो जिससे फ़िज़ाए रंगीमें॥

ख़िज़ाँके जोरोसितमको न जिसने देखा हो।
बहारने जिसे ख़ूने जिगरसे पाला हो ।।
वोह एक फूल समाता है चश्मे गुलचींमें ।।

हज़ार फूलोंसे आबाद बाग़ेहस्ती है,
अजलकी आँख फ़क़त एकको तरसती है।
कई दिलोंकी उमीदोंका जो सहारा हो,
फ़िज़ाएदहरकी आलूदगीसे बाला हो,
जहाँमें आके अभी जिसने कुछ न देखा हो,
न क़हते ऐशो मसर्रत न ग़मकी अरज़ानी,
किनारेरहमते हक़में उसे सुलाती है।

× × ×

तनहाई

फिर कोई आया दिलेज़ार ! नहीं, कोई नहीं।
राहरव होगा, कहीं और चला जायेगा।।

× × ×

अपने बेख़्वाब किवाड़ोंको मुक़फ़्फ़ल कर लो।
अब यहाँ कोई नहीं, कोई नहीं आयेगा।।

× × ×

मेरी क़िस्मतसे खेलनेवाले।
मुझको क़िस्मतसे बेख़बर कर दे।।

× × ×

यह मुल्क तेरा है ना मेरा।
हम सबकी जागीर है प्यारे !

× × ×

क्यों न जहाँका ग़म अपना लें।
बादमें सब तदबीरें सोचें॥
बादमें सुखके सुपने देखें।
सुपनोंकी ताबीरें सोचें॥

× × ×

न जाने किसलिए उम्मीदवार बैठा हूँ।
इक ऐसी राहपै जो तेरी रहगुज़ार भी नहीं॥

× × ×

शबेमहताबकी सहर आफ़रीं मदहोश मौसीक़ी।
तुम्हारी दिलनशीं आवाज़में आराम करती है॥

× × ×

फ़रेबेआरज़ूकी सहलअंगारी नहीं जाती।
हम अपने दिलकी धड़कनको तेरी आवाज़े पा समझे॥

× × ×

दोनों जहान तेरी मुहब्बतमें हारके।
वो कौन जा रहा है शबेग़म गुज़ारके?

३० अगस्त १९४६

२३

इसरारुलहक़ 'मजाज़' बी० ए०

(जन्म १९१३ ई०)

'मजाज़'की कविताओंका १९४३में प्रकाशित 'आहंग' संकलन हमारे सामने है। 'मजाज़' अपना परिचय इस तरह कराते हैं :—

× × ×

जिन्दगी क्या है गुनाहेआदम।
जिन्दगी है तो गुनहगार हूँ मैं॥

× × ×

कुफ़्रोइलहादसे नफ़रत है मुझे।
और मजहबसे भी बेजार हूँ मैं॥

× × ×

इक लपकता हुआ शोला हूँ मैं।
एक चलती हुई तलवार हूँ मैं॥

उक्त परिचयमें सब कुछ आ गया। 'मजाज़' मनुष्य हैं, और मनुष्यसे भूल होना स्वाभाविक है। वे न नास्तिक हैं, न कठमुल्ले। वे अल्लामा इक़बालके इस शेरके क़ायल हैं :—

ख़ुदाके बन्दे तो हैं हजारों, बनोंमें फिरते हैं मारे-मारे।
मैं उनका बन्दा बनूँगा जिनको ख़ुदाके बन्दोंसे प्यार होगा॥

यानी 'मजाज़' साहब मनुष्य-सेवक हैं। रूढ़ियोंको जलानेके लिये चिनगारी और ग़ुलामीकी जंजीर काटनेके लिये तलवार हैं।

'मजाज़' भी किसीको प्यार करते हैं, परन्तु लोक-लाजकी मर्यादा नहीं तोड़ते। प्रेमी और प्रेयसीको लैला-मजनूंकी तरह गली-कूचोंमें ख़ाक नहीं छनवाते। 'मजबूरियाँ' शीर्षकमें लिखते हैं :—

न तूफ़ाँ रोक सकते हैं, न आँधी रोक सकती है।
मगर फिर भी में उस क़िसरेहसीं तक जा नहीं सकता॥
वह मुझको चाहते हैं और मुझतक आ नहीं सकते।
मैं उसको पूजता हूँ और उसको पा नहीं सकता॥
यह मजबूरी-सी मजबूरी, यह लाचारी-सी लाचारी।
कि उसके गीत भी जी खोलकर मैं गा नहीं सकता॥
ज़बाँपर बेख़ुदीमें नाम उसका आ ही जाता है।
अगर पूछे कोई, यह कौन है? बतला नहीं सकता॥
कहाँ तक क़िस्सये आलामें फ़ुरक़त? मुख़्तसिर ये है।
यहाँ वो आ नहीं सकते, वहाँ मैं जा नहीं सकता॥
हदें वोह खींच रक्खी हैं हरमके पासबानोंने।
कि बिन मुजरिम बने पैग़ाम भी पहुँचा नहीं सकता॥

'मजाज़'की प्रेयसी पुराने शायरोंकी हरजाई—असती नारी नहीं। बल्कि शील-स्वभाव वाली एक लड़की है :—

सरापा रंगोबू है पैकरे हुस्नो लताफ़त है।

×　　×　　×

मेरा ईमाँ है, मेरी ज़िन्दगी है, मेरी जन्नत है।

×　　×　　×

वफ़ा ख़ुद की है और मेरी वफ़ाको आज़माया है।
मुझे चाहा है मुझको अपनी आँखोंपै बिठाया है॥

मेरे चेहरे पै जब भी फ़िक्रके आसार पाये हैं।
मुझे तस्कीन वो है मेरे अन्देशे मिटाये हैं॥

× × ×

कोई मेरे सिवा उसका निशाँ पा ही नहीं सकता।
कोई उस बारगाहे नाज़ तक जा ही नहीं सकता॥

'मजाज़' नारीको केवल भोगकी वस्तु नहीं समझता। उसका दिल वोह लोटन कबूतर नहीं कि चूड़ियोंकी खनखनाहट और पायजेबकी आवाज़ पर लोट-पोट हो जाय। वह नारीको भी देशकी उन्नतिमें आवश्यक अंग समझता है। उसे पर्देमें सिमटी गुड़ियाकी तरह सजी देखकर किस ख़ूबीसे कर्त्तव्यकी ओर संकेत करता है :—

नौजवाँ ख़ातून से :—

हिजाबे फ़ित्ना परवर अब उठा लेती तो अच्छा था।
ख़ुद अपने हुस्नको परदा बना लेती तो अच्छा था॥

तेरी नीची नज़र ख़ुद तेरी अस्मतकी मुहाफ़िज़ है।
तू इस नश्तरकी तेज़ी आज़मा लेती तो अच्छा था॥

दिले मजरूहको मजरूहतर करनेसे क्या हासिल?
तू आँसू पोंछकर अब मुस्करा लेती तो अच्छा था॥

अगर ख़िलवतमें तूने सर उठाया भी तो क्या हासिल?
भरी महफ़िलमें आकर सर झुका लेती तो अच्छा था॥

तेरे माथेका टीका मर्दकी क़िस्मतका तारा है।
अगर तू साज़ेबेदारी उठा लेती तो अच्छा था॥

सनाएँ खींचली हैं सरफिरे बाग़ी जवानोंने।
तू सामाने जराहत अब उठा लेती तो अच्छा था॥

तेरे माथेपै यह आँचल बहुत ही ख़ूब है लेकिन।
तू इस आँचलसे इक परचम बना लेती तो अच्छा था ॥

'मजाज़' जहाँ नारीको कार्य-क्षेत्रमें लाना चाहते हैं वहाँ युवकोंको भी आदेश देते हैं। वे नहीं चाहते कि आजका एक भी युवक नाकारा बैठा हुआ हुस्नोइश्क़की दास्तान दोहराया करे और सीने पर हाथ रखकर ठंढी साँस भरके कहा करे :—

सम्हाला होश तो मरने लगे हसीनोंपर।
हमें तो मौत ही आई शबाबके बदले॥
जवानीको दुआ बचपनमें नाहक़ लोग देते हैं।
यही लड़के मिटाते हैं जवानीको जवाँ होकर॥

'मजाज़' फ़र्माते हैं :—

नौजवाँ से :—

तेरा शबाब अमानत है सारी दुनियाकी।
तू ख़ारजारे जहाँमें गुलाब पैदा कर॥
शराब खींची है सबने ग़रीबके ख़ूँसे।
तू अब अमीरके ख़ूँसे शराब पैदा कर॥
बहे जमींपे जो तेरा लहू तो ग़म मत कर।
इसी जमींसे महकते गुलाब पैदा कर॥
तू इन्क़लाबकी आमदका इन्तज़ार न देख।
जो हो सके तो अभी इनक़लाब पैदा कर॥

फिर उन्हीं नौजवानोंको सावधान करते हुए फ़र्माते हैं :—

सरमायादारी

कलेजा फुँक रहा है और ज़बाँ कहनेसे आरी है।
बताऊँ क्या तुम्हें क्या चीज़ यह सरमायेदारी है॥

ये वोह आँधी है जिसकी रौमें मुफ़लिसका नशेमन है।
यह वोह बिजली है जिसकी ज़ौमें हर दहक़ाँका ख़िरमन है ।।

यह अपने हाथमें तहज़ीबका फ़ानूस लेती है।
मगर मज़दूरके तनसे लहूतक चूस लेती है ।।

यह इन्सानी बला ख़ुद ख़ूने इन्सानीकी गाहक है।
वबासे बढ़के मुहलक, मौतसे बढ़कर भयानक है ।।

न देखे हैं बुरे इसने न परखे हैं भले इसने।
शिकंजोंमें जकड़कर घोंट डाले हैं गले इसने ।।

क़यामत इसके ग़मज़े जानलेवा हैं सितम इसके।
हमेशा सीनयेमुफ़लिसपै पड़ते हैं क़दम इसके ।।

ग़रीबोंका मुक़द्दस ख़ून पी-पीकर बहकती है।
महलमें नाचती है रक़्सगाहोंमें थिरकती है ।।

जिधर चलती है बरबादीके सामाँ साथ चलते हैं।
नहूसत हमसफ़र होती है शैताँ साथ चलते हैं ।।

यह अक्सर लूटकर मासूम इन्सानोंको राहोंमें।
ख़ुदाके ज़मज़मे गाती है छिपकर ख़ानक़ाहोंमें ।।

जवाँ मर्दोंके हाथोंसे यह नेज़े छीन लेती है।
यह डाइन है भरी गोदोंसे बच्चे छीन लेती है ।।

यह ग़ैरत छीन लेती है, हमैयत छीन लेती है।
यह इन्सानोंसे इन्सानोंको फ़ितरत छीन लेती है ।।

हमेशा ख़ून पीकर हड्डियोंके रथमें चलती है।
ज़माना चीख़ उठता है यह जब पहलू बदलती है ।।

मुबारिक दोस्तो ! लबरेज़ है अब इसका पैमाना।
उठाओ आँधियाँ ! कमज़ोर है बुनियादेकाशाना ।।

विदेशी महमानसे

'मजाज़' साहब अंग्रेजको किस ख़ूबीसे बोरिया-बधना बाँधनेकी सलाह दे रहे हैं :—

मुसाफ़िर भाग वक़्ते बेकसी है।
तेरे सरपर अजल मँडला रही है॥
तेरी जेबोंमें हैं सोनेके तोड़े।
यहाँ हर जेब ख़ाली हो चुकी है॥
यह आलम हो गया है मुफ़लिसीका।
कि रस्मे मेज़बानी उठ गई है॥
न दे ज़ालिम फ़रेबे चारासाज़ी।
यह बस्ती तुझसे अब तंग आ चुकी है॥
मुनासिब है कि अपना रास्ता ले।
वोह कश्ती देख साहिलसे लगी है॥

रात और रेल

'मजाज़'के दृश्य-वर्णनकी ख़ूबी भी लगे हाथ देखलें :—

फिर चली है रेल इस्टेशनसे लहराती हुई।
नीमशबकी ख़ामुशीको ज़ेरे लब गाती हुई॥
डगमगाती, झूमती, सीटी बजाती, खेलती।
वादिओ कोहसारकी ठंडी हवा खाती हुई॥

× × ×

नाज़से हर मोड़पर खाती हुई सौ पेचोख़म।
इक दुलहन अपनी अदासे आप शरमाती हुई॥
जैसे आधीरातको निकली हो इक शाही बरात।
शादियानोंकी सदासे वज्दमें आती हुई॥

मुन्तशिर करके फ़िज़ामें जाबजा चिनगारियाँ।
दामन मौजे हवामें फूल बरसाती हुई॥

सीनये कोहसारपर चढ़ती हुई बेअख़्तियार।
एक नागन जिस तरह मस्तीमें लहराती हुई॥

जुस्तजूमें मंज़िलेमक़सूदकी दीवानावार।
अपना सर धुनती फ़िज़ामें बाल बिखराती हुई॥

रेंगती, मुड़ती, मचलती, तिलमिलाती, हाँफती।
अपने दिलकी आतिशेपिनहाँको भड़काती हुई॥

पुलपै दरियाके दमादम कौन्दती ललकारती।
अपनी इस तूफ़ानअंगेज़ीपर इतराती हुई॥

पेश करती बीच नद्दीमें चिराग़ोंका समाँ।
साहिलोंपर रेतके ज़र्रोंको चमकाती हुई॥

मुँहमें घुसती है सुरंगोंके यकायक दौड़कर।
दनदनाती, चीख़ती, चिंघाड़ती, गाती हुई॥

आगे-आगे जुस्तजू आमेज़ नज़रें डालतीं।
शबके हैबतनाक नज़्ज़ारोंसे घबराती हुई॥

एक मुजरिमकी तरह सहमी हुई सिमटी हुई।
एक मुफ़लिसकी तरह सर्दीमें थर्राती हुई॥

× × ×

नन्हीं पुजारन

शायरीमें भी लोगोंने कैसी-कैसी गन्द बखेरी है कि मारे शर्मके गर्दन नीची हो जाती है। एक सुकुमार अबोध कन्या जिसे हिन्दी-कवि सरस्वतीका अवतार समझते हैं, उसीको देखकर एक साहब फर्माते हैं :—

'जवानी आयेगी जब देखना क़हरे खुदा होगा ।'

× × ×

'अभी कमसिन हो, नादाँ हो, कहीं खो दोगे दिल मेरा ।
तुम्हारे ही लिए रक्खा है ले लेना जवाँ होकर ।।'

'मजाज़' ऐसी लड़कियोंमें सीताका रूप-शील देखते हैं :—

कैसी सुन्दर है क्या कहिये ।
नन्हीं-सी एक सीता कहिये ।।

धूप-चढ़े तारा चमका है ।
पत्थरपर इक फूल खिला है ।।

चाँदका टुकड़ा, फूलकी डाली ।
कमसिन, सीधी, भोली-भाली ।।

हाथमें पीतलकी थाली है ।
कानमें चाँदीकी बाली है ।।

दिलमें लेकिन ध्यान नहीं है ।
पूजाका कुछ ज्ञान नहीं है ।।

× × ×

हँसना-रोना इसका मज़हब ।
इसको पूजासे क्या मतलब ?

खुद तो आई है मन्दरमें ।
मन उसका है गुड़ियाघरमें ।।

नूरा; नर्स

हुस्न आखिर हुस्न है । यह किसी वर्ग विशेषकी मीरास नहीं । बक़ौल 'जोश' :—

महतरानी हो कि रानी गुनगुनायेगी जरूर।
कोई आलम हो जवानी गुनगुनायेगी जरूर॥

और दिल आखिर दिल है। किसी पर भी आ जाय बसकी बात नहीं। और मनकी बात छिपाना आजका शायर पाप समझता है। 'जोश' महतरानीको देखकर उसके सौन्दर्यकी जी खोलकर सराहना करते हैं। 'साग़िर' पुजारनकी महिमा गाते हैं तो 'अहसान' तेलनको लेडीसे तरजीह देते हैं। 'सलाम' मछलीशहरी मजदूर औरत पर फ़िसल जाते हैं, 'मखमूर' जालन्धरी एक मैली कुचैली मँगतनके लिये सोचते हैं। 'बूम'का चमारी नामा मशहूर ही है। 'मजाज़' साहब हास्पिटल की नूरा नर्सके सम्बन्धमें लिखते हैं :—

वह एक नर्स थी चारागर जिसको कहिये।
मदावाये दर्देजिगर जिसको कहिये॥

जवानीसे तिफ़्ली गले मिल रही थी।
हवा चल रही थी कली खिल रही थी॥

वोह पुररौब तेवर, वोह शादाब चेहरा।
मताये जवानीपै फ़ितरतका पहरा॥

मेरी हुक्मरानी है अहले जमींपर।
यह तहरीर था साफ़ उसकी जबींपर॥

सफ़ेद और शफ़्फ़ाफ़ कपड़े पहनकर।
मेरे पास आती थी एक हूर बनकर॥

× × ×

कभी उसकी शोख़ीमें संजीदगी थी।
कभी उसकी संजीदगीमें भी शोख़ी॥

घड़ी चुप, घड़ी करने लगती थी बातें।
सिरहाने मेरे काट देती थी रातें॥

× × ×

सिरहाने मेरे एक दिन सर झुकाये।
वोह् बैठी थी तकियेपै कोहनी टिकाये॥
ख़यालाते पैहममें खोई हुई-सी।
न जागी हुई-सी, न सोई हुई-सी॥
झपकती हुई बार-बार उसकी पलकें।
जबींपर शिकन बेक़रार उसकी पलकें॥

× × ×

मुझे लेटे-लेटे शरारतकी सूझी।
जो सूझी भी तो किस क़यामतकी सूझी॥
ज़रा बढ़के कुछ और गर्दन झुका ली।
लबे लाल अफ़शांसे इक शै चुरा ली॥
वोह् शै जिसको अब क्या कहूँ क्या समझिये।
बहिश्ते जवानीका तोहफ़ा समझिये॥
मैं समझा था शायद बिगड़ जायगी वोह्।
हवाओंसे लड़ती है लड़ जायगी वोह्॥
मैं देखूँगा उसके बिफ़रनेका आलम।
जवानीका ग़ुस्सा बिखरनेका आलम॥
इधर दिलमें इक शोरे महशर बपा था।
मगर उस तरफ़ रंग ही दूसरा था॥
हँसी और हँसी इस तरह खिलखिलाकर।
कि शमये़हया रह गई झिलमिलाकर॥

नहीं जानती है मेरा नाम तक वोह।
मगर भेज देती है पैग़ाम तक वोह ॥

यह पैग़ाम आते ही रहते हैं अक्सर।
कि किस रोज़ आओगे बीमार होकर ॥

फुटकर—

दिलको महवेग़में दिलदार किये बैठे हैं।
रिन्द बनते हैं मगर ज़हर पिये बैठे हैं ॥

चाहते हैं कि हर इक ज़र्रा शगूफ़ा बन जाय।
और ख़ुद दिल ही में एक ख़ार लिये बैठे हैं ॥

× × ×

इश्क़का ज़ौक़े नज़ारा मुफ़्तमें बदनाम है।
हुस्न ख़ुद बेताब है जल्वे दिखानेके लिये ॥

× × ×

छुप गये वे साज़े हस्ती छोड़कर।
अब तो बस आवाज़ ही आवाज़ है ॥

२ सितम्बर १९४६

२४

मईन हुसेन 'जज़्बी' एम० ए०

(जन्म १९१२ के लगभग)

कॉलिजमें अध्ययन करते हुए 'जज़्बी' साहब 'फ़ानी' जैसे माहिरेफ़नसे इस्लाह लेते रहे। अतः उनके प्रारम्भके कलाममें 'फ़ानी'की कला स्पष्ट झलकती है। आगे जाकर उस्ताद की व्यक्तिगत वेदना 'जज़्बी'के यहाँ इन्सानी वेदनामें बदल जाती है; यानी 'जज़्बी' फिर अपने कष्टोंकी ओर तो ध्यान नहीं देते, मगर मनुष्योंके दुखोंकी ओर उनका ध्यान बरबस खिंच जाता है। ईदके चाँदको देखकर सुबक उठते हैं:—

तेरी ज़ौपाशी है कब हम ग़मके मारोंके लिये।
आह! तू निकला है इन सरमायेदारोंके लिये॥

'ऐ काश' शीर्षक नज़्म में फर्माते हैं:—

काश कहती न ये मज़दूरकी गुलरंग नज़र।
हसरते ख़्वाब अभी दीदये बेख़्वाबमें है॥

काश मुफ़लिसके तबस्सुमसे न चलता यह पता।
कितने फ़ाक़ोंको सकत ग़ैरते बेताबमें है॥

काश तोपोंकी गरजमें न सुनाई देता।
जज़्बये ग़ैरते मज़लूम अभी ख़्वाब में है॥

और यह शोर गरजते हुए तूफ़ानोंका।
एक सैलाब सिसकते हुए इन्सानोंका॥

देशकी भुखमरीके होते हुए 'जज़्बी'का मन प्राकृतिक दृश्योंमें नहीं उलझता है। वे खीझकर कहते हैं :—

फ़ितरतके पुजारी कुछ तो बता, क्या हुस्न है इन गुलज़ारोंमें ?
है कौन-सी रानाई आख़िर इन फूलोंमें इन ख़ारोंमें ??

× × ×

कोयलके रसीले गीत सुने, लेकिन यह कभी सोचा तूने ?
हैं उलझे हुए नग्मे कितने इक साज़के टूटे तारोंमें ??
बादलकी गरज, बिजलीकी चमक, बारिश वोह तेज़ी तीरोंकी।
मैं ठिठुरा, सिमटा सड़कोंपर, तू जाम-बलब मयख़्वारोंमें ॥

× × ×

जब जेबमें पैसे बजते हैं, जब पेटमें रोटी होती है।
उस वक़्त यह ज़र्रा हीरा है उस वक़्त यह शबनम मोती है।

'जज़्बी' अधिकतया ग़ज़लें लिखते हैं। उनकी नज़्मोंमें भी ग़ज़लकी सी मिठास मिलती है। उनके क़लामका संग्रह 'फ़िरोज़ाँ' प्रकाशित हो चुका है। उसमेंसे कुछ बानगी देखिये :—

ग़मकी तस्वीर बन गया हूँ मैं।
ख़ातिरेदर्द आश्ना हूँ मैं॥

हुस्न हूँ मैं कि इश्क़की तस्वीर ?
बेख़ुदी ! तुझसे पूछता हूँ मैं॥

दिलको होना था जुस्तजूमें ख़राब।
पास थी वर्ना मंज़िले मक़सूद॥

दिले नाकाम थकके बैठ गया।
जब नज़र आई मंज़िले मक़सूद॥

तेरे जल्वोंकी हद मिली तो कब।
हो गई जब नज़र भी लामहदूद ।।

सम्हलने दे ज़रा बेताबिये दिल।
नज़र आते हैं कुछ आसारे मंज़िल ।।
मज़े नाकामियोंके उससे पूछो।
जिसे कहते हैं सब गुमकरदह मंज़िल।
गिरा पड़ता हूँ क्यों हर-हर क़दमपर ?
इलाही ! आ गई क्या पास मंज़िल ??

दास्ताने शबेग़म क़िस्सये तूलानी है।
मुख़्तसिर ये है कि तूने मुझे बरबाद किया ।।
हो न हो दिलको तेरे हुस्नसे कुछ निस्बत है।
जब उठा दर्द तो क्यों मैंने तुझे याद किया ?
सकूँ नहीं न सही, दर्दे इन्तज़ार तो है।
हज़ार शुक्र कोई दिलका ग़मगुसार तो है ।।
तुम्हारे जल्वोंकी रंगीनियोंका क्या कहना !
हमारे उजड़े हुए दिलमें इक बहार तो है ।।

फ़िज़ूल राज़ मुहब्बतका सब छुपाते हैं।
बुझाये जो न बुझे आग वोह बुझाते हैं ।।
सम्हल ओ जज्बये ख़ुद्दारिये दिले महजूँ।
किसीके सामने फिर अश्क आये जाते हैं ।।
शकिस्ता दिल ही के नग़मे तो हैं वोह ऐ 'जज़्बी' !
जिन्हें वोह सुनते हैं और झूम-झूम जाते हैं ।।

रूठनेवालोंसे इतना कोई जाकर पूछे।
ख़ुद ही रूठे रहे या हमसे मनाया न गया।।
फूल चुनना भी अबस, सैरे बहाराँ भी फ़िज़ूल।
दिलका दामन ही जो काँटोंसे बचाया न गया।।

यह कैसा शिकवा तग़ाफ़ुलका हुस्नसे 'जज़्बी'!
तुम्हें तो भूलनेवालोंको भूल जाना था।।

जहाँतक आख़िरी नज़रें तेरी मुश्किलसे पहुँची हैं।
वही मंज़िलकी हद है ख़्वाबे मंज़िल देखनेवाले।।
मेरी दिक़्क़तपसन्दी देख, मेरा मुस्कराना देख।
निगाहेयाससे ओ मेरी मुश्किल देखनेवाले।।

शिकवा क्या करता कि उस महफ़िलमें कुछ ऐसे भी थे।
उम्र भर जो अपने ज़ख़्मोंपर नमक छिड़का किये।।

सवाले शौक़पै कुछ उनको इज़्तराब-सा है।
जवाब यह तो नहीं है मगर जवाब-सा है।।
मुस्कराकर डाल दी रुख़पर नक़ाब।
मिल गया जो कुछ कि मिलना था जवाब।।

मेरी ख़ाकेदिल भी आख़िर उनके काम आ ही गई।
कुछ नहीं तो उनको दामन ही बचाना आ गया।।

ऐशसे क्यों ख़ुश हुए क्यों ग़मसे घबराया किये?
ज़िन्दगी क्या जाने क्या थी, और क्या समझा किये।
नाख़ुदा बेख़ुद, फ़िज़ा ख़ामोश, साकित मौजेआब।
और हम साहिलसे थोड़ी दूरपर डूबा किये।।

मुख्तसिर ये है हमारी दास्ताने ज़िन्दगी।
इक सकूने दिलकी ख़ातिर उम्र भर तड़पा किये॥
काट दी यूँ हमने 'जज़्बी' राहे मंज़िल काट दी।
गिर पड़े हर गामपर, हर गामपर सम्हला किये॥

ऐ हुस्न ! हमको हिज्रकी रातोंका ख़ौफ़ क्या ?
तेरा ख़याल जागेगा सोया करेंगे हम॥
यह दिलसे कहके आहोंके झोंके निकल गये।
उनको थपक-थपक के सुलाया करेंगे हम॥

मरनेकी दुआएँ क्यों माँगूँ, जीनेकी तमन्ना कौन करे ?
यह दुनिया हो या वोह दुनिया, अब ख्वाहिशेदुनिया कौन करे ?
जब किश्ती साबुत-औ-सालिम थी, साहिलकी तमन्ना किसको थी।
अब ऐसी शकिस्ता किश्तीपर साहिलकी तमन्ना कौन करे ?
जो आग लगाई थी तुमने, उसको तो बुझाया अश्कोंने।
जो अश्कोंने भड़काई है, उस आगको ठंढा कौन करे ?
दुनियाने हमें छोड़ा 'जज़्बी' हम छोड़ न दें क्यों दुनियाको ?
दुनियाको समझकर बैठे हैं, अब दुनिया-दुनिया कौन करे ?

न आये मौत ख़ुदाया तबाहहालीमें।
यह नाम होगा ग़मे रोज़गार सह न सका॥
यह सोचकर मेरी पलकोंपै रुक गया आँसू।
कि रायगाँ तेरी महफ़िलमें क्यों गुहर जाये॥

तेरी झूठी ख़फ़गीका था इल्म मुझको।
मगर तुझको सचमुच मनाया है मैंने॥

यही ज़िन्दगी मुसीबत, यही ज़िन्दगी मसर्रत।
यही ज़िन्दगी हक़ीक़त, यही ज़िन्दगी फ़िसाना॥

जिसको कहते हैं मुहब्बत, जिसको कहते हैं ख़लूस।
झोंपड़ोंमें हो तो हो पुख़्ता मकानोंमें नहीं॥
अब कहाँ मैं ढूँढ़ने जाऊँ सकूँको ऐ ख़ुदा!
इन ज़मीनोंमें नहीं, इन आसमानोंमें नहीं॥
वोह ग़ुलामीका लहू जो था रगे इसलाफ़में।
शुक्र है 'जज़्बी' कि अब हम नौजवानोंमें नहीं॥

तेरी ख़ामोश वफ़ाओंका सिला क्या होगा?
मेरे नाकरदह गुनाहोंकी सज़ा क्या होगी??

हम दहरके इस वीरानेमें जो कुछ भी नज़ारा करते हैं।
अश्कोंकी ज़बाँमें कहते हैं, आहोंमें इशारा करते हैं॥
ऐ मौजेबला! उनको भी ज़रा दो-चार थपेड़े हल्के-से।
कुछ लोग अभी तक साहिलसे तूफ़ाँका नज़ारा करते हैं॥
क्या जानिये कब यह पाप कटे, क्या जानिये वह दिन कब आए।
जिस दिनके लिये हम ऐ 'जज़्बी' क्या कुछ न गवारा करते हैं॥

ऐ जोशेवफ़ा! उन क़दमोंकी इज़्ज़त तो बढ़ा दी सर रखकर।
अब हम कैसे इस ज़िल्लतके अहसाससे छुटकारा पाएँ?

४ सितम्बर १९४६

२५

साहिर लुधियानवी

साहिरकी शायरी आजकी शायरी है। प्रगतिशील शायरोंमें साहिर अपना एक विशेष स्थान रखते हैं। वे कल्पनाके घोड़े न दौड़ाकर अपने कड़ुवे-मीठे अनुभवोंको मधुर और दर्द भरे ढंगसे पेश करते हैं:—

दुनियाने तजरुबातो हवादसकी शक्लमें।
जो कुछ मुझे दिया है, वह लौटा रहा हूँ मैं॥

साहिरके भी पहलूमें दिल है, वह भी जवानीकी चौखटपर पाँव रखते हुए अपनी प्रेयसीको प्रतीक्षामें खड़ी देखनेका अभिलाषी है, किन्तु उसका प्रेम सामाजिक असमानताओंकी विषम दीवारोंसे टकराकर चूर होजाता है और वह सहसा कराह उठता है:—

मायूसियोंने छीन लिये दिलके वलवले।
× × ×
मेरे बेचैन ख़यालोंको सकूं मिल न सका।

साहिरको केवल प्रेम-मार्गमें ही नहीं, जीवन-यात्रामें भी अनेक असफलताओं और असुविधाओंका मुँह देखना पड़ता है। तब वह ऐसे निकृष्ट जीवनसे मृत्युको श्रेष्ठ समझता है:—

जो सच कहूँ तो मुझे मौत नागवार नहीं।
× × ×
यह ग़म बहुत है मेरी जिन्दगी मिटानेको।

किन्तु सहसा उसे प्रकाश मिलता है। प्रेम और जीवन-सम्बन्धी

आवश्यकताएँ ही जीवनका ध्येय नहीं, उसका कर्त्तव्य कुछ और भी है। आपदाओं और असफलताओंके आगे रोने-बिसूरनेसे क्या लाभ? मर्दको तो मर्दानावार इन सबका सामना करना चाहिए। प्रकाश मिलनेसे पूर्व जहाँ वह पहले जीवन-आपदाओंसे घिरे रहनेपर बाध्य होकर कहता था :—

अभी न छेड़ मुहब्बतके गीत ऐ मुतरिब!
अभी हयातका माहौल ख़ुशगवार नहीं॥

× × ×

मेरी महबूब! यह हंगामये तजदीदे वफ़ा।
मेरी अफ़सुर्दा जवानीके लिए रास नहीं॥

× × ×

प्रकाश मिलते ही जाग उठता है :—

सोचता हूँ कि मुहब्बत है जुनूने रुसवा।
चन्द बेकारसे बेहूदा ख़यालोंका हुजूम॥

× × ×

'साहिर' प्रेम-मार्गकी असफलताओं और जीवन सम्बन्धी विघ्न बाधाओंके प्रति विद्रोही हो उठता है। सामाजिक रीत-रिवाजों, धार्मिक धारणाओं और आर्थिक झमेलोंके प्रति घृणासे भर उठता है। ऊँच-नीच, अमीर-ग़रीबका भेद भी उसे असह्य हो उठता है। यहाँ तक कि वह ताजमहलमें अपनी प्रेयसीसे मिलनेमें भी संकोच करता है क्योंकि यह बादशाहका बनवाया हुआ है और साहिरका विश्वास है कि शाहजहाँने यह प्रेम-स्मारक बनवाकर ग़रीबोंकी मुहब्बतका मज़ाक़ उड़ाया है। इसीलिए वह कहता है :—

मेरी महबूब कहीं और मिलाकर मुझसे।

ताजमहल

ताज तेरे लिए एक मज़हरेउल्फ़त[1] ही सही।
तुझको इस वादियेरंगींसे[2] अक़ीदत[3] ही सही।
मेरी महबूब[4] कहीं और मिलाकर मुझसे।

बज़्मेशाहीमें[5] ग़रीबोंका गुज़र क्या मानी ?
सब्त[6] जिस राहपै हों सतवतेशाही[7]के निशाँ।
उसपै उलफ़त भरी रूहोंका सफ़र क्या मानी ?

मेरी महबूब पसेपरदए[8] तशहीरेवफ़ा[9],
तूने सतवतके[10] निशानोंको तो देखा होता ?
मुर्दाशाहोंके मक़ाबिर[11]से बहलनेवाली,
अपने तारीक[12] मकानोंको तो देखा होता ?

अनगिनत लोगोंने दुनियामें मुहब्बत की है।
कौन कहता है कि सादिक़[13] न थे जज़्बे[14] उनके ?
लेकिन उनके लिए तशरीहका सामान नहीं,
क्योंकि वे लोग भी अपनी ही तरह मुफ़लिस थे।।

यह इमारत, यह मक़ाबिर, यह फ़सीलें,[15] ये हिसार[16],
मुतलक़ुलहुक्म[17] शहन्शाहोंकी अज़मत[18]केसतूँ।

---

[1] प्रेमका द्योतक; [2] रमणीय स्थानसे; [3] भक्ति; [4] प्रेयसी; [5] बादशाही दरबारमें; [6] अंकित; [7] बादशाही वैभव; [8] परदेके पीछे; [9] वफ़ाका विज्ञापन; [10] वैभव; [11] मक़बरों; [12] अँधेरे; [13] सच्चे; [14] भाव; [15] परिकोटा; [16] क़िला; [17] हुक्म देनेमें स्वतंत्र, मनमानी करनेवाले; [18] वैभवके खम्भ।

सीनयेदहरके[1] नासूर हैं, कुहना[2] नासूर,
जज्ब[3] है उनमें तेरे और मेरे अजदाद[4]का खूं।
मेरी महबूब इन्हें भी तो मुहब्बत होगी ?
जिनकी सन्नाईने[5] बख़्शी है उसे शक्ले[6]जमील
उनके प्यारोंके मक़ाबिर रहे बेनामोनमूद[7],
आज तक उनपै जलाई न किसीने न क़न्दील।
यह चमनज़ार,[8] यह जमनाका किनारा, यह महल,
यह मुनक़्क़श[9] दरोदीवार, यह महराब, यह ताक़;
एक शहन्शाहने दौलतका सहारा लेकर,
हम ग़रीबोंकी मुहब्बतका उड़ाया है मज़ाक़।
मेरी महबूब कहीं और मिलाकर मुझसे।

कभी-कभी

कभी-कभी मेरे दिलमें ख़याल आता है।
कि ज़िन्दगी तेरी ज़ुल्फ़ोंकी नर्म छाओंमें,
गुज़रने पाती तो शादाब[10] हो भी सकती थी।
यह तीरगी जो मेरे ज़ीस्त[11]का मुक़द्दर[12] है,
तेरी नज़रकी शुआओंमें खो भी सकती थी।
अजब न था कि मैं बेगानएअलम[13] रहकर,
तेरे जमालकी[14] रानाइयों[15]में खो रहता।

---

[1] संसारके वक्षस्थलके; [2] पुराने; [3] रमे हुए, समाये हुए; [4] पूर्वजों; [5] कारीगरीने; [6] सुन्दर रूप; [7] बेनामोनिशाँ; [8] उद्यान; [9] नक़्शनिगारी की हुई; [10] प्रफुल्ल; [11] जीवनका; [12] लेखा, भाग्य; [13] संसारसे बेख़बर; [14] सौन्दर्यकी; [15] रंगीनियों।

तेरा गुदाज़[1] बदन तेरी नीमबाज़[2] आँखें,
इन्हीं हसीन फ़िसानोंमें महव[3] हो रहता।
पुकारतीं मुझे जब तल्ख़ियाँ[4] ज़मानेकी
तेरे लबोंसे हलावत[5]के घूंट पी लेता।
हयात[6] चीख़ती फिरती बिरहनासर[7] और मैं,
घनेरी ज़ुल्फ़ोंके साएमें छुपके जी लेता।
मगर यह हो न सका और अब ये आलम है,
कि तू नहीं, तेरा ग़म, तेरी जुस्तजू[8] भी नहीं।
गुज़र रही है कुछ इस तरह ज़िन्दगी जैसे,
उसे किसीके सहारेकी आरज़ू भी नहीं।
ज़माने भरके दुखोंको लगा चुका हूँ गले,
गुज़र रहा हूँ कुछ अनजानी रहगुज़ारोंसे[9]।
महीब[10] साए मेरी सिम्त बढ़ते आते हैं
हयातोमौतके पुरहौल[11] ख़ारज़ारोंसे[12]।
न कोई जादह,[13] न मंज़िल, न रोशनीका सुराग़,
भटक रही है ख़लाओंमें[14] ज़िन्दगी मेरी।
इन्हीं ख़लाओंमें रह जाऊँगा कभी खोकर,
मैं जानता हूँ मेरी हमनफ़स! मगर यूँही।
कभी-कभी मेरे दिलमें ख़याल आता है।

---

[1] गुदगुदा; [2] अर्द्धखुलीं; [3] तन्मय; [4] कड़वाहट; [5] मधुरता; [6] ज़िन्दगी; [7] नंगे सिर; [8] पानेकी इच्छा; [9] अनजाने मार्गोंसे; [10] डरावने; [11] हृदय दहलानेवाले; [12] कंटकाकीर्ण मार्गोंसे; [13] सामान; [14] शून्यमें, बियाबानमें।

फरार

(१)

अपने माज़ीके[१] तसव्वुर[२]से हिरासाँ हूँ मैं,
अपने गुज़रे हुए ऐय्यामसे नफ़रत है मुझे।
अपनी बेकार तमन्नाओंपै शरमिन्दा हूँ,
अपनी बेसूद उमीदोंपै नदामत है मुझे।

(२)

मेरे माज़ीको अँधेरेमें दबा रहने दो,
मेरा माज़ी मेरी ज़िल्लतके सिवा कुछ भी नहीं।
मेरी उम्मीदोंका हासिल, मेरी काविशका[३] सिला,
एक बेनाम अज़ीयतके सिवा कुछ भी नहीं।

(३)

कितनी बेकार उम्मीदोंका सहारा लेकर,
मैंने ईवान[४] सजाए थे किसीकी ख़ातिर।
कितनी बेरब्त तमन्नाओंके मुबहम[५] ख़ाके,
अपने ख्वाबोंमें बसाये थे किसीकी ख़ातिर।

(४)

मुझसे अब मेरी मुहब्बतके फ़िसाने न कहो,
मुझको कहने दो कि मैंने उन्हें चाहा ही नहीं।
और वे मस्त निगाहें जो मुझे भूल गईं,
मैंने उन मस्त निगाहोंको सराहा ही नहीं।

---

[१] भूतकालीन; [२] कल्पनासे; [३] तलाशका; [४] महल; [५] अस्पष्ट।

(५)

मुझको कहने दो कि मैं आज भी जी सकता हूँ,
इश्क़ नाकाम सही, ज़िन्दगी नाकाम नहीं।
उन्हें अपनानेकी ख़्वाहिश, उन्हें पानेकी तलब,
शौक़े बेकार सही, सईएग़म[1] अंजाम नहीं।

(६)

वही गेसू, वही नज़रें, वही आरिज़, वही जिस्म,
मैं जो चाहूँ तो मुझे और भी मिल सकते हैं।
वे कँवल जिनको कभी उनके लिए खिलना था,
उनकी नज़रोंसे बहुत दूर भी खिल सकते हैं॥

हिरास

तेरे होंटोंपै तबस्सुमकी[2] वोह हलकी-सी लकीर
मेरी तख़यीलमें[3] रह-रहके झलक उठती है।
यूँ अचानक तेरे आरिज़का[4] ख़याल आता है,
जैसे ज़ुल्मतमें[5] कोई शमअ़ भड़क उठती है॥

तेरे पैराहनेरंगींकी[6] जुनूँख़ेज़[7] महक
ख़्वाब बन-बनके मेरे ज़हनमें लहराती है।
रातकी सर्द ख़मोशीमें हर इक झोंकेसे
तेरे इनफ़ास[8] तेरे जिस्मकी आँच आती है।

---

[1] दुखांत चेष्टा; [2] मुस्कराहटकी; [3] कल्पनामें; [4] कपोलका; [5] अँधेरेमें; [6] रंगीन लिबासकी; [7] उन्माद भरी; [8] स्वासों।

मैं सुलगते हुए राज़ोंको[1] अयाँ[2] तो कर दूँ,
लेकिन इन राज़ोंकी तशहीरसे[3] जी डरता है।
रातके ख़्वाब उजालेमें बयाँ तो कर दूँ,
इन हसीं ख़्वाबोंकी ताबीरसे[4] जी डरता है॥

तेरी साँसोंकी थकन तेरी निगाहोंका सकूत[5],
दरहक़ीक़त कोई रंगीन शरारत ही न हो।
मैं जिसे प्यारका अन्दाज़ समझ बैठा हूँ,
वो तबस्सुम वोह तकल्लुम[6] तेरी आदत ही न हो॥

सोचता हूँ कि तुझे मिलके मैं जिस सोचमें हूँ
पहले उस सोचका मक़सूम समझ लूँ तो कहूँ।
मैं तेरे शहरमें अनजान हूँ परदेशी हूँ
तेरे इल्ताफ़का[7] मफ़हूम[8] समझ लूँ तो कहूँ।

कहीं ऐसा न हो पाँव मेरे थर्रा जाएँ,
और तेरी मरमरीं[9] बाहोंका सहारा न मिले।
अश्क बहते रहें ख़ामोश सियह रातोंमें
और तेरे रेशमी आँचलका किनारा न मिले॥

शाकिस्त

अपने सीनेसे लगाए हुए उम्मीदकी लाश।
मुद्दतों ज़ीस्तको[10] नाशाद[11] किया है मैंने॥

---

[1] भेदोंको; [2] प्रकट; [3] विज्ञापनसे, डोंडी पीटनेसे, पब्लिसिटीसे; [4] परिणामसे; [5] ख़ामोशी; [6] बातचीत करना; [7] भाग्य, परिणाम; [8] कृपाओंका; [9] तात्पर्य; [9] धवल-गोरी; [10] ज़िन्दगीको; [11] अप्रसन्न।

तूने तो एक ही सदमेसे किया था दो-चार।
दिलको हर तरहसे बरबाद किया है मैंने।
जब भी राहोंमें नज़र आए हरीरी[1] मलबूस[2]।
सर्द आहोंमें तुझे याद किया है मैंने॥
और अब जब कि मेरी रूहकी पहनाईमें[3]।
एक सुनसान-सी मग़मूम घटा छाई है॥
तू दमकते हुए आरिज़की[4] शुआएँ[5] लेकर।
गुलशुदाशमअ[6] जलानेको चली आई है।
मेरी महबूब! यह हंगामियेतजदीदे[7] वफ़ा।
मेरी अफ़सुर्दा[8] जवानीके लिए रास नहीं॥
मैंने जो फूल चुने थे तेरे क़दमोंके लिए।
उनका धुँधला-सा तसव्वुर भी मेरे पास नहीं॥
एक यख़बस्ता[9] उदासी है दिलोजाँपै मुहीत[10]।
अब मेरी रूहमें बाक़ी है न उम्मीद न जोश॥
रह गया दबके गिराँबार[11] सलासिल[12]के तले।
मेरी दरमान्दह[13]जवानीकी उमंगोंका ख़रोश[14]॥
रहगुज़ारोंमें बगोलोंके सिवा कुछ भी नहीं।
सायए अब्रे गुरेज़ाँसे मुझे क्या लेना?
बुझ चुके हैं मेरे सीनेमें मुहब्बतके कँवल।
अब तेरे हुस्ने पशेमाँसे मुझे क्या लेना?

---

[1] रंगबिरंगे; [2] लिबास; [3] हृदयकी विशालता; [4] कपोलोंकी; [5] किरणें; [6] बुझा दीपक; [7] फिर नये ढंगसे प्रेम करना; [8] मुर्झाई; [9] जमी हुई; [10] घिरी हुई; [11] बोझीली; [12] शृंखला; [13] साधनहीन, थकी हुई; [14] उत्साह, उमंग।

तेरे आरिज़पै ये ढलके हुए सीमीं आँसू ।
मेरी अफ़सुर्दगिये ग़मका मदावा तो नहीं ?
तेरी महजूब निगाहोंका पयामेतजदीद ।
इक तलाफ़ी ही सही, मेरी तमन्ना तो नहीं ।।

एक तसवीरे रंग

मैंने जिस वक़्त तुझे पहले पहल देखा था ।
तू जवानीका कोई ख़्वाब नज़र आई थी ।।
हुस्नका नग़मयेजावेद[1] हुई थी मालूम ।
इश्क़का जज़्बए बेताब नज़र आई थी ।।
ऐ तरबज़ारे[2] जवानीकी परेशाँ तितली ।
तू भी एक बूए गिरफ़्तार है मालूम न था ।।
तेरे जलवोंमें बहारें नज़र आई थीं मुझे ।
तू सितमख़ुर्दहेअदबार[3] है मालूम न था ।।
तेरे नाज़ुकसे परोंपर यह ज़रोसीमका[4] बोझ ।
तेरी परवाज़को आज़ाद न होने देगा ।।
तूने राहतकी तमन्नामें जो ग़म पाला है ।
वोह तेरी रूहको आबाद न होने देगा ।।
तूने सरमायेकी छाओंमें पनपनेके लिए ।
अपने दिल अपनी मुहब्बतका लहू बेचा है ।।
इससे क्या फ़ायदा रंगीन लबादोंके तले ।
रूह जलती रहे गलती रहे पज़मुर्दा[5] रहे ।।

---

[1] जीवनसंगीत; [2] जवानीके लहलहाते उद्यानकी; [3] दुर्भाग्यसे पीड़ित; [4] सोनेचाँदीका; [5] मुर्झाई हुई ।

होंट हँसते हों दिखावेके तबस्सुमके लिए।
दिल ग़मेज़ीस्तसे[1] बोझल रहे आज़ुर्दा[2] रहे।

दिलकी तस्कीं[3] भी है आसाइशे[4] हस्तीकी दलील।
ज़िन्दगी सिर्फ़ ज़रोसीमका पैमाना नहीं॥
ज़ीस्त[5] एहसास[6] भी है शौक़ भी है, दर्द भी है।
सिर्फ़ अनफ़ासकी[7] तरतीबका अफ़साना नहीं॥

अभी न छेड़ मुहब्बतका राग ऐ मुतरिब[8]!
अभी हयातका[9] माहोल[10] साज़गार नहीं॥

मादाम

आप बेवजह परीशान-सी क्यों है मादाम[11]!
लोग कहते हैं तो फिर ठीक ही कहते होंगे॥
मेरे अहबाबने[12] तहज़ीब न सीखी होगी।
मेरे माहोलमें[13] इन्सान न रहते होंगे॥
नूरेज़रमायेसे[14] है रूएतमद्दुनकी[15] जिला[16]।
हम जहाँ हैं वहाँ तहज़ीब नहीं पल सकती॥
मुफ़लिसी हिस्से[17] लताफ़तको मिटा देती है।
भूख आदाबके साँचोंमें नहीं ढल सकती॥

---

[1] ज़िन्दगीके; [2] ग़मसे, चिन्तित; [3] शान्ति; [4] जीवन-सुखकी; [5] ज़िन्दगी; [6] अनुभव करना; [7] इन्द्रिय-भोगकी; [8] मधुर गानेवाली प्रेयसी; [9] जीवनका; [10] वातावरण; [11] मैडमका उर्दू रूपान्तर; [12] इष्ट मित्रोंने; [13] वातावरणमें; [14] धनके प्रकाशसे; [15] सभ्यताके चहरेकी; [16] चमक; [17] कोमलताकी गति।

लोग कहते हैं तो लोगोंपै ताज्जुब कैसा ?
सच तो कहते हैं कि नादारोंकी इज्ज़त कैसी ?
लोग कहते हैं मगर आप अभी तक चुप हैं।
आप भी कहिए, ग़रीबोंमें शराफ़त कैसी ?
नेक मादाम ! बहुत जल्द वोह वक़्त आयेगा।
जब हमें ज़ीस्तके[1] अदवार परखने होंगे।
अपनी ज़िल्लतकी क़सम आपकी अज़मतकी क़सम।
हमको ताज़ीमके मेयार परखने होंगे।
हमने हर दौरमें तज़लील[2] सही है लेकिन।
हमने हर दौरके चेहरेको ज़िया बख़्शी है॥
हमने हर दौरमें महनतके सितम झेले हैं।
हमने हर दौरके हाथोंको हिना बख़्शी है॥
लेकिन इन तल्ख़ मबाहसमे भला क्या हासिल ?
लोग कहते हैं तो फिर ठीक ही कहते होंगे॥
मेरे अहबाबने तहज़ीब न सीखी होगी।
मैं जहाँ हूँ वहाँ इन्सान न रहते होंगे॥

२८ अप्रैल १६४८

---

[1] ज़िन्दगीके; [2] अपमान।

मधुर प्रवाह



: १० :

[अतीत युगकी ग़ज़लके वर्त्तमान समर्थ शायर]

पिछले पृष्ठोंमें प्राचीन शायरी (ग़ज़लगोई) और नवीन शायरी (नज़्मगोई) का प्रसंगानुसार उल्लेख हुआ है। उर्दू-शायरीका उद्गम ग़ज़लगोईसे हुआ। किसी भी देश और जातिके उत्थान और पतनका दिग्दर्शन उसके साहित्यसे किया जा सकता है। ग़ज़लका अर्थ ही हुस्नो-इश्क़का वर्णन, स्त्रियोंका उल्लेख है। ग़ज़लका जन्म भी नवाबों और बादशाहोंके दरबारोंमें हुआ। इसलिये ग़ज़लमें विलासिता, मादकता, दरबारी रीति-रिवाज वग़ैरहका वर्णन पाया जाता है। १८५७के बाद ज़मानेने करवट ली और यह पुराना रंग लोगोंको नहीं जँचा। यह नहीं कि ये नये ज़मानेके शायर उन पुराने शायरोंके आलोचक थे। अपितु 'आज़ाद' ज़ौक़के, 'हाली' ग़ालिबके, और 'इक़बाल' दाग़के शिष्य थे। उनकी शायराना विद्वताकी इनपर गहरी छाप थी। आज़ादने 'आबेहयात'—हालीने 'यादगारे ग़ालिब', और इक़बालने दाग़का नौहा, लिखकर अपनी श्रद्धाका परिचय दिया है। इन नये ज़मानेके शायरोंको उनकी विद्वता और शायरीके जादूने ही उनके खिलाफ़ नज़्म-आन्दोलन करनेका अवसर दिया। क्योंकि ये जानते थे कि इन उस्तादोंका कलाम हमारे समाजको मदहोश बना डालेगा और वह हमें इस योग्य न रक्खेगा कि हम आनेवाली मुसीबतोंका मुक़ाबिला कर सकें। मनुष्यका यह स्वभाव है कि वह प्रेम, शृंगार, काम सम्बन्धी कविताओंकी ओर आकर्षित होता है। वह सबसे अधिक ऐसी ही गोपनीय कृतियोंको पढ़ना चाहता है। यहाँ तक कि बड़े-बड़े ऋषि और आचार्य भी जब अपने हृदयमें दुबकी हुई आगको अधिक नहीं दबा सकते हैं तो वह काव्य और उपदेशके रूपमें प्रस्फुटित हो जाती है। स्त्रियों का नख–शिख वर्णन, कामका नग्न-रूप, रतिका वीभत्स वर्णन उपदेशके बहाने करते हैं। यह मनुष्यका स्वभाव है। इश्क़िया शायरी कभी मर नहीं सकती, लेकिन

उनके सामने तो प्रश्न यह था कि दुश्मन जब दरवाज़े पर मारू बाजा बजाता हुआ आ धमका हो, तब भी हुस्नोइश्क़की दास्ताँ कहते रहना क्या मुनासिब होगा? मादक संगीत, प्रेम-विभोर कविताएँ दार्शनिक तत्व-चर्चाएँ ये सब सुखी और निराकुल संसारके लिये शोभनीय हैं। न कि परतन्त्रता और आपदाओंसे जकड़े हुए मनुष्योंके लिये। वक़्त-वक़्तकी रागनी और वक़्त-वक़्तके गीत ही सुहावने लगते हैं। जैसा कि 'सलाम' मछलीशहरी फ़र्माते हैं :—

मुझे नफ़रत नहीं है इश्क़िया अशआरसे लेकिन।
अभी उनको ग़ुलामाबादमें मैं गा नहीं सकता॥

मुझे नफ़रत नहीं है हुस्ने जन्नत ज़ारसे लेकिन।
अभी दोज़ख़में इस जन्नतसे दिल बहला नहीं सकता॥

मुझे नफ़रत नहीं पाज़ेबकी झनकारसे लेकिन।
अभी ताबे निशाते रक़्सेमहफ़िल ला नहीं सकता॥

अभी हिन्दोस्ताँको आतशीं नग़मे सुनाने दो।
अभी चिनगारियोंसे इक गुलेरंगीं बनाने दो॥

श्रीमती गायत्री देवी इसी तरहके भावोंको यूँ व्यक्त करती हैं :—

यह हुस्नोइश्क़की रंगीनियाँ नहीं दरकार।
शबेफ़िराक़की बेचैनियाँ नहीं दरकार॥

शराबे इश्क़की मस्तीका अहतियाज नहीं।
किसीका क़ुर्ब मेरे शौक़का इलाज नहीं॥

लताफ़तें मेरे हक़में अभी हैं दारोरसन।
मुझे पुकार रहा है मेरा अज़ीज़ वतन॥

अभी तो सोई हुई क़ौमको जगाना है।
वतनको जन्नते अरज़ी अभी बनाना है॥

इसलिये हिन्दुस्तानकी उस वक़्तकी आवश्यकताको देखकर पुरानी शायरीके विरोधमें उन्होंने एक आन्दोलन उठाया। इतिहास हमें बताता है कि कोई आन्दोलन कितना ही प्रबल क्यों न हो, उसके विपक्षी अंकुर कभी नष्ट नहीं होते। कांग्रेसका आन्दोलन जब प्रबल होता है तब भी हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक मनोवृत्तियाँ छिपी-छिपी पनपती रहती हैं। गांधीका अहिंसावाद देखने-सुननेको सारे भारत पर कोहरेकी तरह छाया रहता है, मगर यदा-कदा उन्हींके साथियोंमें हिंसात्मक आन्दोलनके रूपमें भी फूटता रहता है। इसी तरह ग़ज़लोंके ख़िलाफ़ काफ़ी आन्दोलन होने पर भी पुरानी शायरीके दिलदादा बने ही रहे और आजतक वही मुशायरोंकी धूम, वही ग़ज़लोंका रंग मौजूद है। यहाँ तक कि जो मशहूर नज़्मगो शायर हैं, उनका श्रीगणेश ग़ज़लगोईसे ही हुआ, और अब भी मुशायरोंके लिये ग़ज़लें लिखते रहते हैं। ग़ज़लोंके लिये सबसे बड़ा एतराज़ ये है, कि ग़ज़लगो अपनी धुनमें मस्त रहते हैं। इनक़लाबकी आँधियाँ इनके ऊपरसे गुज़र जायँ, इनको मालूम नहीं होती। घरके बाहर क़त्लेआम होता रहे, ये ज़ुल्फ़ेपेंचोंमें फँसे नज़र आते हैं। मगर ईमानकी बात यह है कि सामयिक साहित्य तो ज़मानेकी रुचिके अनुसार बनता है और नष्ट हो जाता है। अमर साहित्य वही है जो सामयिक न हो। ज़मानेके मुताबिक़ उसमें ख़ूबियाँ पैदा होती जायँ। नज़्म लिखनेवाले बातको बढ़ाकर और स्पष्ट रूपमें कहते हैं। ग़ज़लगो शायर एक शेरमें ही सब कुछ कह जाते हैं। मगर सीधा और साफ़ नहीं। चोट तो वह भी करते हैं, मगर दुशालेमें लपेट कर।

अलाउद्दीन चितौड़ पर हमला करता है। राजपूत सब युद्धमें जूझ मरते हैं। राजपूतानियाँ पद्मिनीके साथ चितामें भस्म हो जाती हैं।

अलाउद्दीन वहाँ जाता है तो पद्मिनीके बजाय राखका ढेर देखता है। तब एक शायरके मुँहसे निकल पड़ता है :—

तासहर वोह भी न छोड़ी तूने ऐ बादेसबा !
यादगारे रौनक़ेमहफ़िल थी परवानेकी ख़ाक ॥

सुभाषको अपने ही देशवासी ग़द्दार पंचमार्गी कहते हैं, उधर हिटलर अपनेसे भी बड़ा मानकर उनका सत्कार करता है। तब मुँहसे बरबस निकल पड़ता है :—

पढ़ी नमाज़ेजनाज़ा तो अपनी ग़ैरोंने।
मरे थे जिनके लिये वे रहे वज़ू करते ॥

वो क़ौम जो पुरानी लकीरको पीटती चली आ रही है, उसको यह कहकर ग़ज़लगो शायर ग़ैरत दिलाता है :—

वस्लसे इनकार करना यह पुरानी बात थी।
अब नये अन्दाज़ सीखो दिल जलानेके लिये ॥

उर्दू ग़ज़लोंमें गुलो बुलबुलकी आड़में, राजनैतिक दाव-पेंच, स्वतंत्रताका सन्देश, अत्याचारियोंके प्रति बग़ावत, प्रेम, विरहका वर्णन बड़ी ख़ूबीसे किया गया है। शराब, साक़ी, ज़ाहिदकी आड़में बड़ी-बड़ी आध्यात्मिक बातें कही गई हैं। यह सब हम पुस्तकके प्रारम्भमें ही दिखला चुके हैं। उस प्राचीन शायरीके समर्थक वर्त्तमान युग में भी बड़े-बड़े लब्ध-प्रतिष्ठ शायर मौजूद हैं। रियाज़ ख़ैराबादी, सफ़ी लखनवी, अज़ीज़ लखनवी, आरज़ू लखनवी, ज़रीफ़ लखनवी, दिल शाहजहाँपुरी, यगाना चंगेज़ी, वहशत कलकतवी नूह नारवी, बिस्मिल इलाहाबादी, जलील मानक-पुरी, साइल, बेखुद, आग़ाशायर, कैफ़ी, साहिर देहलवी, एहसन माहरहरवी, अलम मुज़फ़्फ़र नगरी, साक़िब लखनवी, हसरत मोहानी, फ़ानी, असगर, जिगर,

फ़िराक जैसे बाकमाल उस्ताद इस रंगमें नई-नई गुलकारियाँ कर रहे हैं।[1]

हम इनमेंसे यहाँ केवल छहका परिचय दे रहे हैं। यद्यपि अपने-अपने रंगमें उक्त कवियोंको कमाल हासिल है, मगर निश्चित संख्याकी क़ैदके कारण हम मजबूर हैं। अगर पाठकोंको हमारा यह परिश्रम रुचिकर हुआ तो और बाक़ी अदीबोंका परिचय और कलाम भी पाठकोंके सम्मुख किसी दूसरी पुस्तकमें देनेका प्रयास करेंगे।

१३ अक्तूबर १९४६ ई०

---

[1] यद्यपि उक्त शायरोंमेंसे कई महानुभाव इस दुनियाए फ़ानीसे नजात पा चुके हैं, फिर भी ये सब इसी बीसवीं सदीमें हुए हैं और वर्त्तमानयुगके शायर कहलाते हैं, इसीलिये हमने उनका उल्लेख वर्त्तमानयुगमें किया है।

२६

ज़ाकिर हुसेन 'साक़िब'

(जन्म आगरा २ जनवरी १८६९ ई०)

साक़िब साहबकी ज़बान 'मीर'की-सी और तख़ैयुल (विचार-कल्पना, उड़ान) ग़ालिब जैसा है। इसीलिये लोग आपको जाँनशीन मीर-ओ-ग़ालिब कहते हैं। मगर आप नम्रता पूर्वक अपनी लघुता प्रकट करते हुए लिखते हैं :--

जाँनशीनी मीरोग़ालिबकी कहाँ, और मैं कहाँ ?
वोह ख़ुदाएफ़न थे, उनसे मुझको निस्बत कुछ नहीं ॥

साक़िब साहबको किशोरावस्थासे ही शेरो शायरीकी ओर रुचि थी, किन्तु पिताजीके भयसे खुलते न थे। अपने सहपाठियोंमें ग़ज़लें कह-कहकर शायर बने हुए थे। दिसम्बर १८८४ ई०की एक घटनाने आपको यकायक सबके सामने ला दिया।

उन दिनों आप अपने पिताके साथ इलाहाबादमें रहते थे। उनके पास कई उच्च कोटिके शायर बैठे हुए थे। ग़ज़लोंसे महफ़िल गर्म थी कि आपने भी एक ग़ज़ल हिम्मत करके सुना दी। सुना तो लोगोंने समझा कि किसीसे लिखा ली होगी। परीक्षाके तौरपर उसी वक़्त मिसरा दिया गया :—

"पर मारते हैं चर्ख़के सीनेपै फटाफट"

आपने लमहे भरमें गिरह-लगाकर सुनाया :—

ऐसे हैं मेरे नालओफ़ुग़ाँके कबूतर।
पर मारते हैं चर्ख़के सीनेपै फटाफट ॥

मिसरे पर इतनी सुन्दर गिरह चस्पाँ होते देख लोगोंका कौतूहल बढ़ा। आजमाइशके लिये निम्न मिसरे पर ग़ज़ल कहनेकी फिर फ़र्माइश की गई :—

न वह आस्माँकी हैं गर्दिशें न वह सुबह है न वह शाम है ॥

आपने थोड़ी देरके परिश्रममें पूरी ग़ज़ल लिखकर दे दी, जिसके दो शेर नीचे दिये जा रहे हैं :—

कहूँ हसरतोंका हुजूम क्या, दरेदिल तक आके वोह बेवफ़ा।
मुझे यह सुनाके पलट गया, कि "यहाँ तो मजमये आम है" ॥
न वोह महरो-माहकी ताबिशें, न वोह अख़्तरोंकी नुमाइशें।
न वोह आस्माँकी हैं गर्दिशें न वोह सुबह है, न वोह शाम है ॥

ग़ज़ल सुनी तो लोग सकतेमें आ गये। सुकुमार साक़िबको लोग हैरत-से देखने लगे। शम्सउलउलेमा[1] मौलवी ज़काउल्लाह साहबने तो यहाँ तक कह दिया कि :—

"मियाँ साहबज़ादे अगर ज़िन्दा रहे तो अपने वक़्तके मीर होंगे।"[2]

उत्साह बढ़ा, तो विकसित होनेके अवसर मिलने लगे। मुशायरों और पत्र-पत्रिकाओंमें इनके कलामकी धूम-सी मच गई। १९१८में अली-गढ़ यूनीवर्सिटीकी सिलवर जुबली पर मुशायरेका भी वृहद आयोजन किया गया था। भारतके ख्याति-प्राप्त शायर कोने-कोनेसे आये थे। साक़िब साहबकी ग़ज़लकी ख़ूब तारीफ़ हुई। सदरके अलावा एक साहब-ने वज्दकी हालतमें फ़र्माया—"हमारी दिली तमन्ना थी कि मिर्ज़ा ग़ालिब मरहूमको देख लेते। ख़ुदाका शुक्र है कि वह तमन्ना आज पूरी हो गई।"

साक़िब साहब १८८७से १८९१ तक आगरा कालेजमें शिक्षा पाते रहे, स्थायी रूपसे लखनऊ रहते हैं।

---

[1] महामहोपाध्याय जितनी कोटिकी सरकारी उपाधि।

[2] दीवानेसाक़िब, पृ० ३६।

(१)

जो सरपै बला आई, वोह ग़फ़लतसे ही आई।
बे सोये हुए ख्वाबेपरीशाँ[1] नहीं देखा॥

(२)

कुछ न पूछो हाल अपना कुश्तयेतक़दीर[2] हैं।
मौतने खींचा है जिसको हम वही तसवीर हैं॥

(३)

मेरी दास्तानेग़मको वोह ग़लत समझ रहे हैं।
कुछ उन्हींकी बात बनती अगर एतबार होता॥

(४)

वही रात मेरी वही रात उनकी।
कहीं बढ़ गई है कहीं घट गई है*॥

---

[1] चिन्ताओंका स्वप्न; [2] अभागे।

*जब मैं चलूँ तो साया भी अपना न साथ दे।
जब तुम चलो ज़मीन चले, आस्माँ चले॥

—जलील

तेरी गलीमें मैं न चलूँ और सबा चले।
जब चाहे ये ख़ुदा ही तो बन्देकी क्या चले॥

—अज्ञात्

(५)

ख़ाली है जामेज़ीस्त[1] मगर कह रही है मौत।
'लबरेज़ तेरी उम्रका पैमाना हो गया'।।

(६)

जो अच्छा कर नहीं सकते तो क्यों तड़पूँ मैं बिस्तरपर।
दुआ देना नहीं आता तो सीखो बद्दुआ देना।।

(७)

मेरे पहलूसे अगर निकला तो मेरा क्या गया?
गुमशुदा दिल आप ही का एक मख़फ़ी[2] राज़ था।।

(८)

रोशनी डालके दुनियाका दिखाता था मआल[3]।
यह चिराग़े सरेतुरबत[4] मेरा बेकार न था।।

(९)

पूछा न ज़िन्दगीमें यूँ तो किसीने आकर।
मरनेके बाद जो था, वह मुझको पूछता था।।

(१०)

मैं तो च्यूँटीके कुचलनेसे हज़र[5] रखता था।
फिर मुझे किसने तहेज़ानुएजल्लाद[6] किया?

---

[1] जीवन-प्याला; [2] गुप्त, छिपा हुआ; [3] अन्त; [4] क़ब्रपर; [5] परहेज़; [6] बधिकके घुटनेके नीचे।

(११)

दिल जलाकर मैंने दुनिया भरकी आँखें खोल दीं।
इस तरहका सुरमए अहले नजर पहले न था॥

(१२)

हवास तो हैं मुन्तशिर[1] ख़याल मुन्तशिर नहीं।
जो देखता मैं जागकर वह देखता हूँ ख़्वाबमें॥

(१३)

यह न समझो कि फ़लक बरसरेबेदाद[2] नहीं।
बात ये है कि मुझे आदते फ़रियाद नहीं॥

(१४)

थी वफ़ादारोंके दमतक पुरसिशो,[3] क़दरेजफ़ा[4]।
फेंक दो अब क्या लिए बैठे हो ख़ंजर हाथमें॥

(१५)

बाँट लें दुनियाको हम तुम मिलके ऐशोरंजमें।
एक जानिब क़हक़हे हों, एक तरफ़ फ़रियाद हो॥

(१६)

कौन ले मुफ़्तका झगड़ा कोई दीवाना है?
उनके सर कौन चढ़े दिलसे उतरनेके लिये॥

---

[1] बिखरे हुए; [2] अत्याचारी; [3] पूछ-ताछ; [4] अत्याचार-की क़दर।

(१७)

लूटनेवाले हमारी नींदके।
रात भर किस चैनसे सोते रहे!

(१८)

जान हाज़िर है लिये आओ अमानत अपनी।
फिर ख़ुदा जाने, रहे या न रहे होश मुझे॥

(१९)

सदाएँ देके हमने एक दुनिया आज़मा देखी।
यही सुनते चले आये, 'बढ़ो आगे यहाँ क्या है'?

(२०,२१,२२)

हिज्रकी[1] शब[2] नालयेदिल[3] वोह सदा[4] देने लगे।
सुननेवाले रात कटनेकी दुआ देने लगे॥
सुननेवाले रो दिये सुनकर मरीज़ेग़मका हाल।
देखनेवाले तरस खाकर दुआ देने लगे॥
मुट्ठियोंमें ख़ाक लेकर दोस्त आये वक़्ते दफ़्न।
ज़िन्दगी भरकी मुहब्बतका सिला देने लगे॥

(२३)

जल्वेकी सैर देख तो लेती शुआएहुस्न[5]।
यह क्या कि दिलमें आग लगाकर निकल गई॥

---

[1]विरहकी; [2]रात्रि; [3]हृदयकी पुकार; [4]आवाज़;
[5]रूपकी किरण।

(२४)

किसीका रंज देखूँ यह नहीं होगा मेरे दिलसे।
नज़र सैयादकी[1] झपके तो कुछ कह दूँ अनादिलसे[2] ।।

(२५)

चमन न देख नशेमनको[3] देख ऐ बुलबुल !
बहार ही में कभी आग भी बरसती है ।।

(२६)

हम उनसे मिलके भी फ़ुरक़तका हाल कह न सके।
मज़ा विसालका[4] खोते अगर गिला[5] करते ।।

(२७)

इन्कार कीजिये क्यों सब राज़[6] खुल चुके हैं।
कुछ मेरे हालेग़मसे, कुछ आपके बयाँसे[7] ।।

(२८-२९)

सुलझ सकीं न मेरी मुश्किलें, मगर देखा,
उलझ गये थे जो गेसू[8] उन्हें सँवार आये ।।
बहुतसे याद हैं महफ़िलमें बैठनेवाले।
कभी तो भूलके कोई सरेमज़ार आये ।।

---

[1] शिकारीकी; [2] बुलबुलोंसे।
[3] घोंसले; [4] मिलनका।
[5] शिकायत; [6] भेद; [7] कथनसे।
[8] ज़ुल्फ़।

(३०)

कभी उठा कभी बैठा उमीदोयासके[1] हाथों।
बड़ी मुश्किलसे नामेइश्क़को[2] ऊँचा किया मैंने॥

(३१)

दिल ही पाबन्देअलम[3] था वर्ना बज्मेऐशमें।
हम तेरी ख़ातिरसे ता-इमकान[4] हँसते-बोलते॥

(३२)

शौक़ेपाबोसियेमहबूब[5] था वर्ना 'साक़िब'!
संगेदरपै[6] कोई मौक़ा था जबींसाईका[7]?

(३३)

बरगिश्ता[8] हुई दुनिया रस्मोरहे उल्फ़तसे।
एक मेरी तबीयत है जो बाज़ नहीं आती॥

(३४)

ज़माना बड़े शौक़से सुन रहा था।
हमीं सो गये दास्ताँ कहते-कहते॥

(३५)

जफ़ा उठानेकी आदत पड़ी तो क्योंकर जाय।
सितम सहे मगर इतने कहाँ कि जी भर जाय॥

---

[1] आशा-निराशाके; [2] प्रेमके नामको; [3] दुखी; [4] जहाँ तक सम्भव होता; [5] प्रेयसीके पाँव पड़नेका चाव; [6] पत्थरके दरवाज़े पर; [7] मस्तक रगड़नेका; [8] विरुद्ध।

(३६)

वह उलटकर जो आस्तीं निकले।
जुल्म जामेसे अपने बाहर था ।।

(३७)

दिलने रग-रगसे छिपा रक्खा है राजे इश्क़े दोस्त ।
जिसको कहदे नब्ज ऐसी मेरी बीमारी नहीं ।।

(३८)

विसालोहिज्रमें छिपता है दिलका हाल कहीं ?
बुझे तो प्यास सिवा हो, जले तो बू आये ।।

(३९)

इत्तहादे बाहमीका है नतीजा जिन्दगी।
जर्रे क्या शै थे मगर मिलनेसे इन्सां हो गया ।।

(४०)

उनकी बज्मेनाजमें तो साँस भी दिलने न ली।
नालाकश बरसोंका एक तसवीर बनके रह गया ।।

(४१)

दिलने अपने हसरतोंके क़ाफ़िले ठहरा दिये।
इस क़दर आबाद पहले कूचयेक़ातिल न था ।।

(४२)

शिकायत जुल्मेखंजरकी नहीं, ग़म है तो इतना है।
ज़बानेग़ैरसे क्यों मौतका पैग़ाम आता है ।।

(४३)

दिलमें दो बूंदें लहूकी हैं मगर ऐ तेग़ज़न[1] !
एक दामनपर रहेगी और एक शमशीरपर ।।

(४४)

न आँख बन्द करूँ गर तो क्या करूँ या रब !
वोह आ रहे हैं तमाशायेजाँकनीके[2] लिये ।।

(४५)

तीरगी[3] नाम है दिलवालोंके उठ जानेका ।
जिसको शब कहते हैं, मक़तल[4] है वह परवानेका ।।

(४६)

बला है, अहदेजवानीसे ख़ुश न हो ऐ दिल !
सम्हल कि उम्रकी दुनियामें इनक़लाब आया ।।

(४७)

यह किसने 'ग़मकदा'[5] दुनियाका नाम रक्खा है ।
हमें तो कोई यहाँ दर्द-आश्ना[6] न मिला ।।

(४८)

नाज़ोअदाकी चोटें सहना तो और शै है ।
ज़ख़्मोंको देख लेता कोई, तो देखता मैं ।।

---

[1] तलवार मारनेवाले, अर्थात् प्रेमपात्र; [2] मृत्युका तमाशा देखनेके; [3] अन्धेरा; [4] बध-स्थान; [5] विपत्ति-स्थान; [6] सहानुभूति वाला ।

(४६)

ऊरूसे[१]दहरको दिल देके आजमाऊँ क्या ?
सँवारनेमें जो बिगड़े उसे बनाऊँ क्या ?

(५०)

अपने ही दिलकी आगमें आखिर पिघल गई।
शमएहयात[२] मौतके साँचेमें ढल गई॥

(५१)

शादीमें भी कुछ ग़मके पहलू निकल आते हैं।
बेसाख्ता हँसनेमें आँसू निकल आते हैं॥

४ नवम्बर १९४६ ई०

[१] संसार-रूपी दुल्हन; [२] जीवन रूपी मोमबत्ती।

२७

मौलाना फ़ज़लुलहसन 'हसरत' मोहानी

(जन्म—मोहाना १८७५ ई०)

हसरतकी शायरी इश्क़की शायरी है और वह सांसारिक प्रेम (मजाज़ी इश्क़)से प्रारम्भ होकर ईश्वरीय प्रेम (हक़ीक़ी इश्क़) और देश-प्रेम पर समाप्त होती है। आपने उर्दू-साहित्यकी प्रशंसनीय सेवाएँ की हैं।

हसरत सन् १८७५में मोहाना (ज़िला उन्नाव)में उत्पन्न हुए। एण्ट्रेन्स पास करनेसे पहले ही शेर कहने लगे थे। १९०३ में अलीगढ़से बी० ए० पास किया और १९०४से कांग्रेसमें शामिल हो गये। १९०८में दो वर्षकी सख्त क़ैद और फिर १९१६में दो वर्षकी सादा क़ैद देश-भक्तिके पुरस्कार-स्वरूप मिली। नज़रबन्द भी रहे और १९२०के बाद असहयोग आन्दोलनमें आगे आये और कई बार जेल गये। आपने राज-नैतिक क्षेत्रोंमें अपने उग्र विचारों और त्यागके कारण काफ़ी ख्याति प्राप्त की। १९३२के बाद आप साम्प्रदायिक आन्दोलनोंमें भाग लेने लगे हैं। हसरतने देश, उर्दू-साहित्य और मुस्लिम क़ौमकी जितनी भी सेवाएँ की हैं वे अनुपम हैं। आप बहुत दिनोंसे कानपुरमें रहते हैं। और इस युगके 'मीर' समझे जाते हैं।

(१)

हालाँ कि इब्तदा भी नहीं है शबाबकी।
उनको कमालेहुस्नका दावा अभीसे है।।

(२)

खुलके हमसे कभी वोह मिल न सके।
बावजूदे कमाले दिलसोज़ी[१]।।

(३)

ग़ैरकी जद्दोजहदपर तकिया न कर कि है गुनाह।
कोशिशे ज़ाते ख़ासपर नाज़कर, ऐतमाद कर।।

(४)

वह जुर्मेआरज़ूपर जिस क़दर चाहें सज़ा दे लें।
मुझे ख़ुद ख़ाहिशेताज़ीर है मुलज़िम हूँ इक़बाली।।

(५-६)

वोह शर्माए बैठे हैं गर्दन झुकाए।
ग़ज़ब हो गया इक नज़र देख लेना।।
न भूलेगा वह वक़्तेरुख़सत किसीका।
मुझे मुड़के फिर इक नज़र देख लेना।।*

---

[१] प्रेमाग्निमें झुलसते हुए भी।

*क़यामत बनके पलटी है निगाहेनाज़ क़ातिलकी।
यह मौजेवापिसीं किश्ती डुबो देगी मेरे दिलकी।।
—शेरी भोपाली

(७)

मैं क्या कहूँ कि शर्मसे कैसे झुकाके सिर।
पूछा उन्होंने हसरतेबीमारका मिज़ाज॥

(८)

नाकामियोंपै अपनी हँसी आ गई थी आज।
सो, कितने शर्मसार हुए बेकसीसे हम॥

(९)

वोह दर्दमन्द हूँ 'हसरत' कि अब बजाये सितम।
करे जो लुत्फ़ भी कोई तो अश्कबार हूँ मैं॥

(१०)

मिलते हैं इस अदासे कि गोया ख़फ़ा नहीं।
क्या आपकी निगाहसे मैं आश्ना नहीं?

(११)

अदा न हमसे हुआ हक़ तेरी ग़ुलामी का।
नसीबे शौक़ रहा दाग़ नातमामीका॥

(१२)

तुम जो अफ़सुर्दा[1] हुए सुनके मेरा हाल सो क्यों?
सरसरी तौरसे बातोंमें उड़ा देना था॥

---

[1] मुर्झाना, बुझना।

(१३)

वोह बिगड़े बहुत बदगुमानीके बाइस ।
न तड़पे जो हम नातवानीके[1] बाइस[2] ।।

(१४)

रानाइये ख़यालको ठहरा दिया गुनाह ।
ज़ाहिद भी किस क़दर है मज़ाक़ेसख़ुनसे दूर ।।

(१५)

यह क्या मुन्सिफ़ी है कि महफ़िलमें तेरी ।
किसीका भी हो जुर्म पाएँ सज़ा हम ।।

(१६)

ख़न्दये[3] अहले जहाँकी मुझे परवाह क्या थी ।
तुम भी हँसते हो मेरे हालपै रोना है यही ।।

(१७-१८)

छिपे जो मुझसे तो क्या यह भी इक अदा न हुई ।
वोह चाहते थे न देखे कोई अदा मेरी ।।
कहीं वह आके मिटा दें न इन्तज़ारका लुत्फ़ ।
कहीं क़बूल न हो जाय इल्तिजा मेरी ।।

(१९-२०)

आईनेमें वोह देख रहे थे बहारेहुस्न ।
आया मेरा ख़याल तो शर्माके रह गए ।।

---

[1] निर्बलताके; [2] कारण; [3] मुस्कान ।

दावाए आशिक़ी है तो 'हसरत' करो निबाह।
यह क्या कि इब्तदा होमें घबराके रह गये॥

(२१)

देखा जो कहीं गर्मेनज़र बज़्मेउदूमें।
वोह डाट गये मुझको बराबरसे निकलकर॥

(२२-२३)

क्या करें ख़ूसे[1] हैं मजबूर कि पीना है ज़रूर।
वर्ना 'हसरत' रमज़ाँका यह महीना है ज़रूर॥
उम्र हो क्या है, वोह कमसिन हैं अभी नामेख़ुदा।
उनपै मरना हो तो कुछ दिन हमें जीना है ज़रूर॥

(२४-२६)

मालूम सब है पूछते हो फिर भी मुद्दआ।
अब तुमसे दिलकी बात कहें क्या ज़बाँसे हम?
ऐ जुहदेख़ुश्क तेरी हिदायतके वास्ते।
सौग़ाते इश्क़ लाये हैं कूए बुताँसे हम॥
'हसरत' फिर और जाके करें किसकी बन्दगी।
अच्छा जो सर उठाएँ भी, उस आस्ताँसे हम॥

(२७)

सुनके क़ासिदसे मेरा हाल, कहा तो यह कहा।
है वह बदनाम, कहीं हमको भी रुसवा न करे॥

---

[1] अभ्यासते।

(२८)

फिर भी है तुमको मसीहाईका दावा देखो।
मुझको देखो, मेरे मरनेकी तमन्ना देखो॥

(२९-३०)

हमें वक़्फ़ेग़म सरब सर देख लेते।
वोह तुम कुछ न करते मगर देख लेते॥
तमन्नाको फिर कुछ शिकायत न रहती।
जो तुम भूलकर भी इधर देख लेते॥

(३१)

क्या कहते हो कि और लगालो किसीसे दिल।
तुम-सा नज़र भी आए कोई दूसरा मुझे॥

(३२)

रायगाँ[1] 'हसरत' न जायेगा मेरा मुश्तेग़ुबार[2]।
कुछ ज़मीं ले जायेगी, कुछ आस्माँ ले जायेगा॥

(३३)

वोह कहना तेरा याद है वक़्तेरुख़सत।
"कभी ख़त भी हमको लिखा कीजिएगा"॥

(३४)

जब उनसे अदबने न कुछ मुँहसे माँगा।
तो इक पैकरेइल्तिजा हो गये हम॥

---

[1] व्यर्थ; [2] मुट्ठी भर ख़ाक।

(३५)

वोह जब यह कहते हैं 'तुझसे ख़ता ज़रूर हुई।'
मैं बेक़ुसूर भी कह दूँ कि 'हाँ ज़रूर हुई'॥

(३६)

वोह बेपरवह सोते हैं ज़ाहिरमें लेकिन।
दुपट्टा यूँ ही मुँहपै डाले हुए हैं॥

(३७)

खुल सके जबतलक न राहेमुराद।
मंज़िलेसब्रमें क़याम करो॥

(३८)

मालूम है दुनियाको यह 'हसरत'की हक़ीक़त।
ख़िलवतमें[1] वोह मयख़्वार है जिल्वतमें[2] नमाज़ी॥

(३९)

वोह चुप हो गए मुझसे 'क्या' कहते-कहते।
कि दिल रह गया मुद्दआ कहते-कहते॥

(४०)

लिक्खा था अपने हाथसे तुमने जो एक बार।
अबतक हमारे पास है वोह यादगार ख़त॥

---

[1] एकान्तमें; [2] ज़ाहिरामें।

(४१)

उसने कहीं न हर्फ़ेतसल्ली भी हो लिखा।
पढ़ते हैं इस उम्मीदपर हम बार-बार ख़त ॥

(४२)

हमको यही क्या कम है कि बन्दे हैं तुम्हारे।
दावाए मुहब्बतके सज़ावार कहाँ हैं ॥

(४३)

पढ़िये इसके सिवा न कोई सबक़।
"ख़िदमतेख़ल्क़ औ इश्क़ हज़रते हक़" ॥

(४४)

बनकर गदायेइश्क़ गये थे, मगर फिरे।
सुलतान होके यारकी दौलत सरासे हम ॥

(४५)

हम हाल उन्हें यूँ दिलका सुनानेमें लगे हैं।
कुछ कहते नहीं, पाँव दबानेमें लगे हैं ॥

(४६)

न सूरत कहीं शादमानीकी देखी।
बहुत सैर दुनियाएफ़ानीकी देखी ॥

(४७)

ग़मे आरज़ूका 'हसरत'! सबब और क्या बताऊँ?
मेरी हिम्मतोंकी पस्ती, मेरे शौक़की बलन्दी ॥

(४८-४६)

मेरी खतापै आपको लाज़िम नहीं नज़र।
यह देखिये मुनासिबे शानेअता है क्या॥
हम क्या करें न तेरी अगर आरज़ू करें।
दुनियामें और भी कोई तेरे सिवा है क्या?

(५०)

शिकवयेग़म तेरे हुजूर किया।
हमने बेशक बड़ा क़ुसूर किया॥

(५१)

रियायत जो उस शोख़की थी ज़रूरी।
खता बन गई खुद मेरी बेक़ुसूरी॥

१५ नवम्बर १६४६

२८

शौकत अलीख़ाँ 'फ़ानी'

(जन्म ज़िला बदायूं १८७९ मृत्यु १९४१ ई०)

सन् १८७९में ज़िला बदायूँके इस्लामनगरमें उत्पन्न हुए। १९०१में बी० ए० और १९०८में एल०-एल० बी०की डिग्री प्राप्त की। ११ वर्षकी आयुसे ही शेर कहने लगे और २० सालकी उम्रमें पहला दीवान पूर्ण कर लिया। किन्तु खेद है कि न जाने कैसे नष्ट हो गया। १९०६में दूसरा दीवान तैयार किया तो वह भी गुम हो गया। इससे फ़ानीके हृदयको बड़ी ठेस पहुँची और उन्होंने फिर १९१७ तक शेरोशायरीकी ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया। इसके बाद जो कुछ लिखा वह 'नक़ीब' बदायूँके दफ़्तरसे पहले दीवानकी सूरतमें और दूसरा दीवान 'वाक़याते फ़ानी' १९२६में और एक 'बजदानियाते फ़ानी' नामसे प्रकाशित हुए। हमने अन्तिम दो पुस्तकोंसे फ़ानीके कलामका संकलन किया है।

फ़ानीका जीवन असुविधाओं, चिन्ताओं और वेदनाओंसे परिपूर्ण रहा है। ऐसी स्थितिमें उनका कलाम भी व्यथा-पूर्ण होना निश्चित था। फ़ानीने 'ग़ालिब'का मस्तिष्क और 'मीर'का हृदय पाया था। १६ अगस्त १९४१को हैदराबादमें आपका अन्तकाल हो गया।

(१)

वो है मुख़्तार सज़ा दे कि जज़ा दे 'फ़ानी' !
दो घड़ी होशमें आनेके गुनहगार हैं हम ।।

(२)

दुनियामें हाले आमदोरफ़्ते बशर न पूछ ।
बेअख़्तियार आके रहा, बेख़बर गया ।।

(३)

देख 'फ़ानी' ! वोह तेरी तदबीरकी मैयत[1] न हो ।
इक जनाज़ा जा रहा है, दोशपर[2] तक़दीरके ।।

(४)

क़िस्मतके हर्फ़ सिजदये दरसे मिटा तो दूँ ।
दिल काँपता है शोख़ियेतदबीर देखकर ।।

(५)

हमको मरना भी मयस्सर नहीं जीनेके बग़ैर ।
मौतने उम्रेदोरोज़ाका बहाना चाहा ।।

(६)

मेरी हविसको ऐशे दो आलम भी था क़ुबूल ।
तेरा करम कि तूने दिया दिल दुखा हुआ ।।

---

[1] अर्थी; [2] कन्धा ।

(७)

'फ़ानी' हम तो जीते जी वोह् मैयत हैं बेगोरोकफ़न।
ग़ुरबत[1] जिसको रास न आई, और वतन भी छूट गया॥

(८)

जिन्दगी जब्र है और जब्रके आसार नहीं।
हाय इस क़ैदको जंजीर भी दरकार नहीं॥

(९)

जिये जानेकी तोह्मत किससे उठती, किस तरह् उठती?
तेरे ग़मने बचाई जिन्दगीकी आबरू बरसों॥

(१०)

ख़फ़ा न हो तो यह पुछूँ कि तेरी जानसे दूर।
जो तेरे हिज्रमें जीता है, मर भी सकता है?

(११)

इसीको तुम मगर ऐ अह्लेदुनिया! जान कहते हो।
वोह् काँटा जो मेरी रग-रगमें रह-रहकर खटकता है॥

(१२)

जिक्र जब छिड़ गया क़यामतका।
बात पहुँची तेरी जवानी तक॥

---

[1] परदेश।

(१३-१४)

'फ़ानी' को या जुनूँ है, या तेरी आरज़ू है।
कल नाम लेके तेरा दीवानावार रोया॥

आया है बादे मुद्दत बिछुड़े हुए मिले हैं।
दिलसे लिपट-लिपटकर ग़म बार-बार रोया॥

(१५)

अहदेजवानी ख़त्म हुआ अब मरते हैं ना जीते हैं।
हम भी जीते थे जबतक, मर जानेका ज़माना था॥

(१६)

नामुरादी हदसे गुज़री हालेफ़ानी कुछ न पूछ।
हर नफ़स है इक जनाज़ा आह बेतासीरका॥

(१७)

नहीं ज़रूर कि मर जाएँ जाँनिसार तेरे।
यही है मौत कि जीना हराम हो जाये॥

(१८)

अब लबपै वोह हंगामये फ़रियाद नहीं है।
अल्लाह रे तेरी याद कि कुछ याद नहीं है॥

(१९-२०)

बर्क़को[1] अब क्या ग़रज़, क्या रह गया, क्या जल गया?
जल गया ख़िरमनमें[2] जो कुछ था मेरी तक़दीरका॥

---

[1] बिजलीको; [2] खलिहानमें।

फ़िक्रेराहत छोड़ बैठे हम तो राहत मिल गई।
हमने क़िस्मतसे लिया जो काम था तद्बीरका ॥

(२१)

ग़मके ठहोके कुछ हों बलासे, आके जगा तो जाते हैं।
हम हैं मगर वह नींदके माते, जागते ही सो जाते हैं ॥

(२२)

भड़कके शोलयेगुल तू ही अब लगा दे आग।
कि बिजलियोंको मेरा आशियाँ नहीं मालूम ॥

(२३)

जब तेरा ज़िक्र आगया हम दफ़अ़तन चुप हो गये।
वोह छिपाया राज़ेदिल हमने कि अफ़शाँ[1] कर दिया ॥

(२४)

ग़म मिटा दिया, ग़मको लज्जतआश्ना[2] करके।
क्या किया सितमगरने ख़ूगरेजफ़ा[3] करके ॥

(२५)

कलतक यही गुलशन था, सैयाद भी, बिजली भी।
दुनिया ही बदल दी है तामीरेनशेमनने[4] ॥

---

[1] प्रकट; [2] स्वादको जानने वाला।
[3] अत्याचार-सहनका अभ्यस्त।
[4] घोंसलोंके निर्माणने।

(२६)

माना हिजाबेदीद[1] मेरी बेख़ुदी[2] हुई।
तुम वजहे बेख़ुदी नहीं, यह एक ही हुई!

(२७)

मेरे शौक़ने सिखाया उसे शेवयेतग़ाफ़ुल[3]।
न मुझे नियाज़[4] होता, न वोह बेनियाज़[5] होता।।

(२८)

हमें तेरी मुहब्बतमें फ़क़त दो काम आते हैं।
जो रोनेसे कभी फ़ुर्सत मिली ख़ामोश हो जाना।।

(२९)

इक फ़िसाना सुन गये इक कह गये।
मैं जो रोया मुस्कराकर रह गये।।

(३०)

दिल उनके न आनेतक लबरेज़े शिकायत था।
वोह आए तो अपनी ही तक़सीर नज़र आई।।

(३१-३२)

सुनके तेरा नाम आँखें खोल देता था कोई।
आज तेरा नाम लेकर कोई ग़ाफ़िल हो गया।।

---

[1] सम्मुख देखनेमें बाधक पर्दा; [2] आत्मविस्मृति।
[3] उपेक्षाका अभ्यास; [4] कामना, प्रेम-प्रदर्शन; [5] लापरवाह।

मौत आनेतक न आये अब जो आये हो, तो हाय !
जिन्दगी मुश्किल ही थी, मरना भी मुश्किल हो गया ॥

(३३)

आप मेरी लाशपर हुजूर, मौतको कोसते तो हैं ।
आपको यह भी होश है किसने किसे मिटा दिया ?

(३४)

खुद मसीहा, खुद ही क़ातिल हैं तो वे भी क्या करें ?
ज़ख्मेदिल पैदा करें या ज़ख्मेदिल अच्छा करें ॥

(३५)

छुटे जब क़ैदेहस्तीसे तो आये कुंजेतुरबतमें[1] ।
रिहा होते हैं हम, यानी बदल देते हैं जिन्दाँको[2] ॥

(३६-३८)

दिल है वो ताक़[3] ग़मकदएउम्रेदोशका[4] ।
रक्खी है जिसपै शमएतमन्ना बुझी हुई ॥

मैं मंज़िलेफ़नाका निशानेशकिस्ता हूँ ।
तसवीरेगर्द बादेवफ़ा हूँ मिटी हुई ॥

कीजे दुआ कि उफ़ तो करे दर्दमन्देइश्क़ ।
अव्वल तो दिलकी चोट, फिर इतनी दुखी हुई ॥

---

[1] क़ब्ररूपी उद्यानमें; [2] कारागृहको ।
[3] आला; [4] जीवनकी विपत्तियोंका ।

लाज़िम है अहतियात, नदामत नहीं ज़रूर।
ले अब छुरी तो फेंक लहूसे भरी हुई ॥

(४०)

तुरबतके फूल शामसे मुर्झाके रह गये।
रो-रोके सुबह की मेरी शमयेमज़ारने ॥

(४१)

मेरी मैयतपै उनका तर्ज़ेमातम किस बलाका है !
दिले बेमुद्दआसे पूछते हैं 'मुद्दआ क्या है' ?

(४२)

नाउमीदी मौतसे कहती है अपना काम कर।
आस कहती है ठहर, ख़तका जवाब आनेको है ॥

(४३)

बिजलियोंसे ग़ुरबतमें कुछ भरम तो बाक़ी है।
जल गया मकाँ यानी था कोई मकाँ अपना ॥

(४४)

वादेके ये तेवर हैं कह दूँ कि यक़ीं आया।
अब उनसे कोई क्योंकर कह दे कि नहीं आया ॥

(४५)

अपने कमालेशौक़पर हश्रका दिन है मुनहसिर।
वादयेदीद चाहिये, ज़हमतेइंतज़ार क्या ?

(४६)

किसीकी कश्ती तहे गरदाबे फ़ना जा पहुँची ।
शोर-लब्बएक जो 'फ़ानी' लबेसाहिलसे उठा ॥

(४७)

हूँ असीरे फ़रेबे आज़ादी ।
पर हैं, और मश्क़ें हौलयेपरवाज़ ॥

(४८)

दुनिया मेरी बला जाने मँहगी है या सस्ती है ।
मौत मिले तो मुफ़्त न लूँ, हस्तीकी क्या हस्ती है ?

(४९)

जीने भी नहीं देते मरने भी नहीं देते ।
क्या तुमने मुहब्बतकी हर रस्म उठा डाली ?

(५०)

मुस्कराये वोह हालेदिल सुनकर ।
और गोया जवाब था ही नहीं ॥

(५१)

कुछ कटी हिम्मतेसवालमें उम्र ।
कुछ उम्मीदेजवाबमें गुज़री* ॥

२२ नवम्बर १९४६

---

* इसी मज़मूनका किसीका शेर याद आया :—
उम्रेदराज़ माँगकर लाया था चार रोज़ ।
दो आरज़ूमें कट गए, दो इन्तज़ारमें ॥

२६

असग़रहुसैन 'असग़र' गोण्डवी

(जन्म ज़िला गोन्डा १८८४ मृ० १९३६)

असग़रकी शायरी बहुत उच्च कोटिकी है। मौलाना अब्दुल कलाम आज़ाद और डा० सर तेज बहादुर सप्रू जैसे ख्याति-प्राप्त विद्वानोंने उनके कलामकी मुक्त कंठसे प्रशंसा की है। उन्होंने उर्दू ग़ज़लमें नवीन चमत्कार पैदा कर दिया है।

असग़र एक प्रभावशाली व्यक्ति थे। जिगर मुरादाबादी जैसे रिन्द जो मुशायरोंमें भी बैठे हुए पीते रहते हैं आपके यहाँ जानेपर शराबकी ओर देखते भी नहीं थे। जिगरने अपने 'शोलयेतूर, में' स्थान-स्थान पर असग़रके प्रति श्रद्धा-भक्ति प्रकट की है।

असग़र १ मार्च १८८४को गोण्डेमें उत्पन्न हुए और १९३६ ई०में समाधि पाई। अंगरेज़ी, अरबी, फ़ारसीकी अच्छी योग्यता रखते थे। चश्मेका कारख़ाना था। जीवनके अन्तिम दिनोंमें हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबादके त्रयमासिक पत्र 'हिन्दुस्तानी'के सम्पादक थे।

(१)

सुनता हूँ बड़े ग़ौरसे अफ़सानएहस्ती।
कुछ ख़्वाब है, कुछ अस्ल है, कुछ तर्जेअदा है॥

(२)

रूदादेचमन[1] सुनता हूँ इस तरह क़फ़समें।
जैसे कभी आँखोंसे गुलिस्ताँ नहीं देखा॥

(३)

नियाज़ेइश्क़को[2] समझा है क्या ऐ वाइज़ेनादाँ!
हज़ारों बन गये काबे जबीं मैंने जहाँ रख दी॥

(४)

असीरानेबलाकी[3] हसरतोंको[4] आह क्या कहिये।
तड़पके साथ ऊँची हो गई दीवार ज़िन्दाँकी[5]॥

(५)

बारेअलम[6] उठाया, रंगेनिशात[7] देखा।
आये नहीं हैं यूँही अन्दाज़ बेहिसीके[8]॥

---

[1] उद्यानका वृत्तान्त; [2] प्रेम पद्धतिको।
[3] विपत्तियोंके शिकारियोंकी, क़ैदियोंकी।
[4] अभिलाषाओंको, प्रयत्नों; [5] कारावास; [6] दुखका बोझ।
[7] भोगविलास के अनुभव; [8] बेहोशी, आत्मरत।

(६)

न मैं दीवाना हूँ 'असग़र' न मुझको शौक़े उरियानी[1]।
कोई खींचे लिये जाता है ख़ुद जेबोगिरेबाँको ॥

(७)

जीना भी आ गया मुझे मरना भी आ गया।
पहिचानने लगा हूँ तुम्हारी नज़रको मैं ॥

(८)

आलमकी फ़िज़ा पूछो महरूमेतमन्नासे।
बैठा हुआ दुनियामें, उठ जाय जो दुनियासे ॥

(९)

होश किसीका भी न रख जल्वागहे[2]नियाज़में[3]।
बल्कि ख़ुदाको भूल जा, सज्दयेबेनियाज़में[4] ॥

(१०)

यह दीन है, वोह दुनिया, यह काबा वोह बुतख़ाना।
इक और क़दम बढ़कर ऐ हिम्मते मर्दाना ॥

(११)

तेरा जमाल है, तेरा ख़याल है, तू है।
मुझे यह फ़ुरसतेकाविश कहाँ कि क्या हूँ मैं ?

---

[1] नग्न रहनेका चाव; [2-3] ईश्वरके प्रासाद, प्रेममन्दिरमें;
[4] भक्तिकी तल्लीनतामें।

(१२)

वे शोरशें, निज़ामे जहाँ जिनके दमसे हैं।
जब मुख़्तसिर किया, उन्हें इन्साँ बना दिया॥

(१३)

क़फ़स क्या, हल्क़ाहाये दाम क्या, रंजेअसीरी क्या?
चमनपर मिट गया जो हर तरह आज़ाद होता है॥

(१४)

क्या दर्देहिज्र और क्या यह लज़्ज़तेविसाल!
इससे भी कुछ बुलन्द मिली है नज़र मुझे॥

(१५)

जिसपै मेरी जुस्तजू ने डाल रक्खे थे हिजाब।
बेख़ुदीने अब उसे महसूसोउरियाँ कर दिया॥

(१६)

ख़स्तगीने[1] कर दिया उसको रगेजाँसे क़रीब।
जुस्तजू ज़ालिम कहे जाती थी मंज़िल दूर है॥

(१७)

बच, हुस्नेतअय्युनसे ज़ाहिर हो कि बातिन हो।
यह क़ैद नज़रकी है, वोह फ़िक्रका ज़िन्दाँ है॥

---

[1] थकान, ग़रीबी।

(१८)

लौ शमअ़ हक़ीक़तकी अपनी ही जगहपर है।
फ़ानूसकी गर्दिशसे, क्या-क्या नज़र आता है॥

(१९)

बहुत लतीफ़ इशारे थे चश्मेसाक़ीके।
न मैं हुआ कभी बेख़ुद न होशियार हुआ॥

(२०)

आग़ोशमें साहिलके क्या लुत्फ़ेसकूँ उसको।
यह जान अज़ल ही से परवरदए तूफ़ाँ है॥

(२१)

सारा हुसूल इश्क़की नाकामियोंमें है।
जो उम्र रायगाँ है वही रायगाँ नहीं॥

(२२)

सौ बार तेरा दामन हाथोंमें मेरे आया।
जब आँख खुली देखा अपना ही गिरेबाँ है॥

(२३)

रख दिये दैरोहरम सर मारनेके वास्ते।
बन्दगीको बेनियाज़े कुफ़्र-ओ-ईमाँ कर दिया॥

(२४)

तू बर्क़ेहुस्न और तजल्लीसे यह गुरेज़।
मैं ख़ाक और ज़ौक़े तमाशा लिए हुए॥

(२५)

बुलबुलेज़ारसे गो सहनेचमन छूट गया।
उसके सीनेमें है इक शोलयेगुलफ़ाम अभी ॥

(२६)

यहाँ तो उम्र गुजरी है इसी मौजेतलातुममें।
वे कोई और होंगे, सैरेसाहिल देखनेवाले ॥

(२७)

जो नक़्श है हस्तीका धोका नज़र आता है।
पर्देपै मुसव्वर ही तनहा नज़र आता है ॥

(२८)

दास्ताँ उनकी अदाओंकी है रंगीं, लेकिन।
उसमें कुछ ख़ूनेतमन्ना भी है शामिल मेरा ॥

(२९)

दैरोहरम भी मंज़िले जानाँमें आये थे।
पर शुक्र है कि बढ़ गये दामन बचाके हम ॥

(३०)

चमक दमकपर मिटा हुआ है, यह बाग़बाँ तुझको क्या हुआ है ?
फ़रेबे शबनममें मुब्तिला है, चमनकी अबतक ख़बर नहीं है ॥

(३१)

सहने हरम नहीं है, ये कूएबुताँ नहीं।
अब कुछ न पूछिए कि कहाँ हूँ कहाँ नहीं ॥

(३२)

क़हर है थोड़ी-सी भी ग़फ़लत तरीक़े इश्क़में ।
आँख झपकी क़ैसकी और सामने महमिल न था ।।

(३३)

तड़पना है, न जलना है, न जलकर ख़ाक होना है ।
यह क्यों सोई हुई है, फ़ितरते परवाना बरसोंसे ।।

(३४)

यह आस्ताने यार है सहनेहरम नहीं ।
जब रख दिया है सर तो उठाना न चाहिये ।।

(३५,३६,३७)

एक ऐसी भी तजल्ली आज मयख़ानेमें है ।
लुत्फ़ पीनेमें नहीं है, बल्कि खो जानेमें है ।।

जल्वये हुस्ने परिस्तिश, गर्मिये हुस्नेनियाज़ ।
वर्ना कुछ काबेमें रक्खा है न बुतख़ानेमें है ।।

मैं यह कहता हूँ फ़नाको भी अता कर ज़िन्दगी ।
तू कमालेज़िन्दगी कहता है मर जानेमें है ।।

(३८)

पहली नज़र भी आपकी, उफ़ ! किस बलाकी थी ।
हम आजतक वोह चोट हैं दिलपर लिए हुए ।।

(३९)

रिन्द जो ज़र्फ़ उठालें वही साग़िर बन जाय ।
जिस जगह बैठके पी लें वही मयख़ाना बने ।।

(४०)

वे इश्क़की अज़मतसे शायद नहीं वाक़िफ़ हैं।
सौ हुस्न करूँ पैदा, एक-एक तमन्नासे ।।

(४१)

तूने यह एजाज़ क्या ऐ सोज़ेपिन्हा कर दिया ?
इस तरह फूँका कि आख़िर जिस्मको जाँ कर दिया ।।

(४२)

कीजिये आज किस तरह दौड़के सजदये नियाज़।
यह भी तो होश अब नहीं, पाँव कहाँ है, सर कहाँ ।।

(४३)

सौ बार जला है तो यह सौ बार बना है।
हम सोख़्ता जानोंका नशेमन भी बला है ।।

(४४)

यह भी फ़रेब-से हैं कुछ दर्देआशिक़ीके।
हम मरके क्या करेंगे, क्या कर लिया है जीके ?

(४५)

अगर ख़ामोश रहूँ मैं तो तू ही सब कुछ है।
जो कुछ कहा तो तेरा हुस्न हो गया महदूद ।।

(४६)

मजनूँकी नज़रमें भी शायद कोई लैली है।
एक-एक बगोलेको दीवाना बना आई ।।

(४७-४८)

इक जह्दे कशाकश है, हस्ती जिसे कहते हैं।
कफ़्फ़ारका मिट जाना, ख़ुद मर्गेमुसलमाँ है ॥

एक-एक नफ़समें है सदमर्ग बला मुज़मिर।
जीना है बहुत मुश्किल, मरना बहुत आसाँ है ॥

(४९)

आदमी नहीं सुनता आदमीकी बातोंको।
पैकरे अमल बनकर ग़ैबकी सदा हो जा ॥

(५०)

ऐ काश ! मैं हक़ीक़ते हस्ती न जानता।
अब लुत्फ़ेख़्वाब भी नहीं अहसासेख़्वाबमें ॥

(५१)

उभरना हो जहाँ, जी चाहता है डूब मरनेको।
जहाँ उठती हों मौजें हम वहाँ साहिल समझते हैं ॥

२६ नवम्बर १९४६

३०

सिकन्दरअली 'जिगर' मुरादाबादी

(जन्म १८९० ई०)

मालूम होता है अल्लाहमियाँ जब अपने बन्दोंको हुस्न तक़सीम कर रहे थे, तब हज़रते जिगर कौसर पर बैठे पी रहे थे। उन्हें जिगरकी यह मस्ती और बेपरवाही शायद पसन्द न आई और कुढ़कर हुस्नके एवज़ इश्क़ अता फ़र्माया ताकि जिगर उम्रभर जलते और बुझते रहें।

रंग आबनूसी, मुँहपर चेचकके दाग़, बूटा-सा क़द, सरके बाल घने, रूखे और बेतरतीब। मशहूर रिन्द ऐसे कि मुशायरोंमें भी पीकर आयें और मुनासिब समझें तो वहाँ बैठकर भी पियें और झूम-झूम कर ग़ज़ल पढ़ें। चाल-ढालमें मस्ती और रिन्दी। शक्लोशबाहतसे शायर होनेका क़तई यक़ीन न आये। मगर बड़े-बड़े मुशायरों और रेडियोके अच्छे मुशायरेके प्रोग्रामोंमें आपका होना लाज़मी। हज़रते जिगर मुशायरोंके रूहेरवाँ हैं। आप न हों तो सब फीका-फीका मालूम होता है।

हज़रते जिगरके कलामकी अपनी विशेषता है। वे इश्क़िया ग़ज़ल लिखते हैं। हुस्नो इश्क़ और शराबो रिन्दीकी आसान लफ्ज़ोंमें ऐसी दिलकश तसवीर खींचते हैं कि सुननेवाले कलेजा थाम कर रह जाते हैं। और फिर कहनेका ढंग भी उनका अपना है। मालूम होता है कोई जादूगर मोहनी-सी डाल रहा है।

लोगोंका ख़याल था कि जिगर पीना छोड़ दें तो फिर उनसे ऐसा

चुटीला कलाम नहीं लिखा जायगा। मगर उनकी रिन्दी उनके कलेजेको खुरच-खुरच कर खाये जा रही थी——उनके लिये वबाले जान हो रही थी। आख़िर उन्हें तौबा करनी पड़ी। और शुक्र है कि इस तौबासे उनकी सेहत और कलाम पहलेसे ज्यादा निखरे हैं।

ग़ज़लकी दुनियाँमें वे अपना एक ख़ास मर्तबा रखते हैं।

(१)

तेरी आँखोंका कुछ क़ुसूर नहीं।
हाँ, मुझीको ख़राब होना था।।

(२)

जो पड़ी दिलपै सह गये लेकिन।
एक नाज़ुक-सी बातने मारा।।

(३)

अर्ज़े नियाज़े ग़मको लब आशना न करना।
यह भी इक इल्तिजा है, कुछ इल्तिजा न करना।।

(४)

कोई समझ सके तो कम्बख़्त दिलसे समझे।
दिलमें भी उसके रहना, फिर दिलमें जा न करना।।

(५)

मेरा जो हाल हो सो हो बर्क़ेनज़र गिराये जा।
मैं यूँही नालाकश रहूँ, तू यूँही मुस्कराये जा।।

(६-६)

जो अब भी न तकलीफ़ फ़र्माइयेगा।
तो बस हाथ मलते ही रह जाइयेगा।।

मिटाकर हमें आप पछ्ताइयेगा।
कमी कोई महसूस फ़र्माइयेगा।।

सितम, इश्क़में आप आसाँ न समझें।
तड़प जाइयेगा, जो तड़पाइयेगा॥
हमीं जब न होंगे तो क्या रंगेमहफ़िल।
किसे देखकर आप शर्माइयेगा॥

(१०)

महव तसबीह तो सब हैं मगर इदराक कहाँ ?
जिन्दगी ख़ुद ही इबादत है, मगर होश नहीं॥

(११)

हिजवेमयने तेरा ऐ शेख़ ! भरम खोल दिया।
तू तो मस्जिदमें है, नीयत तेरी मयख़ानेमें॥

(१२)

बताओ, क्या तुम्हारे दिलपै गुज़रे।
अगर कोई तुम्हीं सा बेवफ़ा हो॥

(१३-१४)

शौक़का मर्सिया न पढ़, इश्क़की बेबसी न देख।
उसको ख़ुशी ख़ुशी समझ, अपनी ख़ुशी ख़ुशी न देख॥
यह भी तेरी तरह कभी रुख़से नक़ाब उलट न दे।
हुस्नपै अपने रहमकर, इश्क़की सादगी न देख॥

(१५-१७)

सुनता हूँ कि हर हालमें वह दिलके क़रीं है।
जिस हालमें हूँ अब मुझे अफ़सोस नहीं है॥

वे आये हैं, ऐ दिल ! तेरे कहनेका यक़ीं है।
लेकिन मैं करूँ क्या ? मुझे फ़ुर्सत ही नहीं है ।।
क्या शौक़ है, क्या ज़ौक़ है, क्या रब्त है क्या ज़ब्त ?
सजदा है जबींमें, कभी सज्देमें जबीं है ।।

(१८)

अज़ल ही से चमनबन्दे मुहब्बत।
यही नैरंगियाँ दिखला रहा है ।।
कली कोई जहाँपर खिल रही है।
वहीं एक फूल भी मुर्झा रहा है ।।

(१९)

मेरे ग़मख़ानये मुसीबतकी।
चाँदनी भी स्याह होती है ।।

(२०)

हम इश्क़के मारोंका इतना ही फ़िसाना है।
रोनेको नहीं कोई, हँसनेको ज़माना है ।।

(२१-२४)

मेरा क़िस्सये इश्क़ फ़ानी नहीं है।
यह मुर्दा दिलोंकी कहानी नहीं है ।।
मुहब्बत है अपनी भी लेकिन न अंधी।
जवानी है लेकिन दिवानी नहीं है ।।
ख़िजल जिससे होना पड़े दिल ही दिलमें।
वोह कुछ और है महर्बानी नहीं है ।।

न सुनिये, न सुनिये ग़मोदर्द मेरा।
ये है आप-बीती, कहानी नहीं है॥

(२५)

मैं तो जब मानूँ मेरी तौबाके बाद।
करके मजबूर पिला दे साक़ी॥

(२६)

तक़दीरसे शिकायत कोई न आस्माँसे।
शिकवा है सिर्फ़ अपने एक ख़ास मह्‌बाँसे॥

(२७-२८)

अल्लाह अल्लाह हस्तिये शाइर।
क़ल्ब ग़ुंचेका, आँख शबनमकी॥

इस जमानेका इनक़लाब न पूछ।
रूह शैतानकी शक्ल आदमकी॥

(२९)

एक जगह बैठके पीलूँ मेरा दस्तूर नहीं।
मैकदा तंग बना दूँ मुझे मंजूर नहीं॥

(३०)

यह नशा भी क्या नशा है, कहते हैं जिसे हुस्न।
जब देखिये कुछ नींद-सी आँखोंमें भरी है॥

(३१)

मुझको ख़ुदायेइश्क़ने जो भी दिया बजा दिया।
उतनी ही ताबेजब्त दी, जितना कि ग़म सिवा दिया॥

(३२)

फ़ितरतने मुहब्बतकी इस तरह बिना डाली।
जो क़ैद नज़र आई, इक बार उठा डाली॥

(३३)

उनको अपनी शानेरहमतपर ग़रूर।
मुझको अपनी बेबसीपर नाज़ है॥

(३४)

वोह मेरी तरफ़ बढ़ा दे गुलचीं।
जिन फूलोंमें रंग है न बू है॥

(३५)

इधर दामन किसीका झाड़कर महफ़िलसे उठ जाना।
उधर नज़रोंमें हर-हर चीज़का बेकार हो जाना॥

(३६)

उदासी तबियतपै छा जायगी।
उन्हें जब मेरी याद आ जायगी॥

(३७)

सदमोंकी जान, दर्दका क़ालिब दिया मुझे।
जो कुछ दिया किसीने मुनासिब दिया मुझे॥

(३८)

पाँव लटकाये हुए क़ब्रमें बैठे हैं 'जिगर'!
देर चलनेमें नहीं, सुबह चले, शाम चले॥

(३९)

इन्हें आँसू समझकर यूँ न मिट्टीमें मिला ज़ालिम !
पयामे दर्देदिल है और आँखोंकी ज़बानी है ।।

(४०)

मौतोहयातमें है सिर्फ़ एक क़दमका फ़ासिला ।
अपनेको ज़िन्दगी बना, जल्वयेज़िन्दगी न देख ।।

(४१-४२)

सबपै तू महर्बान है प्यारे !
कुछ हमारा भी ध्यान है प्यारे ?
हमसे जो हो सका सो कर गुज़रे ।
अब तेरा इम्तहान है प्यारे ।।

(४३)

सोज़े तमाम चाहिये, रंगे दवाम चाहिये ।
शमअ़ तहेमज़ार हो, शमअ़ सरेमज़ार क्या ?

(४४-४५)

हँसी फिर उड़ने लगी इश्क़के फ़िसानेकी ।
नक़ाब उठाओ, बदल दो फ़िज़ा ज़मानेकी ।।
चलो कुछ ऐसी मुख़ालिफ़ हवा ज़मानेकी ।
पनाह बर्क़ने ली मेरे आशियानेकी ।।

(४६)

दिलमें बाक़ी नहीं, वोह जोशेजुनूँ ही, वर्ना ।
दामनोंकी न कमी है न गिरेबानोंकी ।।

(४७)

पहले कहाँ ये नाज़ थे, ये उश्वयेवादा।
दिलको दुआएँ दो, तुम्हें क़ातिल बना दिया॥

(४८)

आँखोंमें नूर, जिस्ममें बनकर वोह जाँ रहे।
यानी हमींसे रहके वोह हमसे निहाँ रहे॥

(४९)

ज़ाहिद ! यह मेरी शोख़ियेरिन्दाना देखना।
रहमतको बातों-बातोंमें बहलाके पी गया॥

(५०)

बुतख़ानेमें आ निकले, तो काबेकी बिना डाल।
काबेमें पहुँच जाये तो बुतख़ाना बना दे॥

(५१)

दरियाकी ज़िन्दगीपर सदक़े हज़ार जानें।
मुझको नहीं गवारा, साहिलकी मौत मरना॥

५ दिसम्बर १९४६

३१

प्रोफ़ेसर रघुपतिसहाय 'फ़िराक़' गोरखपुरी

फ़िराक़ साहब गोरखपुरके रहनेवाले हैं। आपके पिता मुंशी गोरखप्रसाद 'इबरत' उपनामसे शायरी करते थे। फ़िराक़ साहब कांग्रेस आन्दोलनमें जेलयात्रा और कांग्रेसके अण्डर सेक्रेटरीका कार्य भी कर चुके हैं। १९३०से आप इलाहाबाद यूनिवर्सिटीमें अंग्रेज़ीके लेक्चरार हैं। आपकी शायरीका प्रारम्भ ग़ज़लगोईसे हुआ है और मोमिनके रंगमें इश्क़िया ग़ज़ल कहते हैं। प्रसिद्ध आलोचक 'नियाज़' फहतपुरीने फ़िराक़ साहबके क़लामकी आलोचना करते हुए फ़र्माया है—

"दौरेहाज़र (वर्त्तमान युग) इसमें शक नहीं तरक़्क़ीये सख़ुन का दौर (शायरीकी उन्नतिका युग) है। और मग़रिबी तालीम (पश्चिमी शिक्षा)ने ज़हनियते इन्सानी (मनुष्य-स्वभाव)को इतना बुलन्द और वसीह कर दिया है कि हमको हर जगह अच्छे-अच्छे सख़ुनगो नज़र आ रहे हैं। लेकिन मुझसे यह सवाल किया जाय कि इनमें कितने ऐसे हैं कि जिनके शानदार मुस्तक़बिलका पता उनके हालसे चलता है तो यह फ़हरिस्त बहुत मुख़्तसिर हो जायगी। इतनी मुख़्तसिर कि अगर मुझसे कहा जाय कि मैं बिना ताम्मुल उनमेंसे किसी एकका इन्तख़ाब करदूँ तो मेरी ज़बानसे फ़ौरन 'फ़िराक़' गोरखपुरीका नाम निकल जायगा।

"......शायरीके लिये अलफ़ाज़का इन्तख़ाब और तर्ज़ेअदा दो निहायत ज़रूरी चीज़ें हैं; लेकिन अगर इसीके साथ ख़याल भी पाकीज़ा हों तो क्या कहना? इसको दो आतिशा सह आतिशा (दुगना

तिगुना दहकता हुआ जाज्वल्यमान कथन) जो कुछ कहिये कम है। फिर चूँकि 'फ़िराक़के' क़लाममें इन तीनोंका इज्तमा (मिश्रण) है; इस लिये कोई वजह नहीं कि उसे 'क़दरे अव्वल' का मर्तबा (प्रथम-श्रेणीका सन्मान) न दिया जाय।"[१]

[१] इन्तक़ादयात हिस्सा अव्वल, पृ० ३४२।

गज़लोंके कुछ अशआर

(१–३)

सरमें सौदा भी नहीं, दिलमें तमन्ना भी नहीं।
लेकिन इस तर्कमुहब्बतका भरोसा भी नहीं॥

मुद्दतें गुज़रीं तेरी याद भी आई न हमें।
और हम भूल गये हों, तुझे ऐसा भी नहीं*

महर्बानीको मुहब्बत नहीं कहते ऐ दोस्त!
आह! अब मुझसे तुझे रंजिशेबेजा भी नहीं॥

(४)

न समझनेकी हैं बातें न यह समझानेकी।
ज़िन्दगी उचटी हुई नींद है दीवानेकी॥

(५)

क़ैद क्या, रिहाई क्या, है हमीमें हर आलम।
चल पड़े तो सहरा है, रुक गये तो ज़िन्दाँ है॥

(६)

कहाँका वस्ल तनहाईने शायद भेस बदला है।
तेरे दमभरके आजानेको हम भी क्या समझते हैं॥

---

*नहीं आती तो याद उनकी महीनोंतक नहीं आती।
मगर जब याद आते हैं तो अक्सर याद आते हैं॥
—हसरत मोहानी

(७)

तू न चाहे तो तुझे पाके भी नाकाम रहूँ।
तू जो चाहे तो ग़मेहिज्र[1] भी आसाँ हो जाए॥

(८)

पर्दयेयासमें[2] उम्मीदने करवट बदली।
ख़्वाबेग़म तुझमें कमी थी इसी अफ़सानेकी॥

(९)

फ़रेबेसब्र खाकर मौतको हस्ती समझ बैठे।
न आया बेक़रारीको हयातेजाविदाँ[3] होना॥

(१०)

न कोई वादा, न कोई यक़ीन, न कोई उमीद।
मगर हमें तो तेरा इन्तज़ार करना था॥

(११)

ग़रज़ कि काट दिये जिन्दगीके दिन ऐ दोस्त!
वोह तेरी यादमें हों या तुझे भुलानेमें॥

(१२)

जिनकी सदाएदर्दसे नींदें हराम थीं।
नाले अब उनके बन्द हैं तूने सुना नहीं?

---

[1] विरह-दुख; [2] निराशाके पर्देमें।
[3] अमर जीवन।

(१३)

नैरंगिये उमीदेकरम उनसे पूछिये।
जिनको जफ़ायेयारका भी आसरा नहीं॥

(१४)

था हासिलेपयाम तेरा ऐ निगाहेनाज़!
वोह राज़ेआशिक़ी जिसे तूने कहा नहीं॥

(१५)

हर गर्दिशेहयात है, दौरेहयाते नौ।
दुनियाको जो बदल न दे वोह मैकदा नहीं॥

(१६)

उस रहगुज़ारपर है रवाँ कारवाने इश्क़।
कोसों जहाँ किसीको ख़ुद अपना पता नहीं॥

(१७)

मैं हूँ, दिल है, तनहाई है।
तुम भी जो होते अच्छा होता॥

(१८)

वादियेइश्क़से कौन यह निकला।
आँसू रोके, दिलको सम्हाले॥

(१९)

थरथरी-सी है आस्मानोंमें।
ज़ोर कितना है नातवानोंमें॥

(२०-२१)

चुपके-चुपके उठ रहे हैं मदभरे सीनोंमें दर्द ।
धीमे-धीमे चल रही हैं इश्क़की पुरवाइयाँ ॥

पूछ मत कैफ़ीयतें उनकी, न पूछ उनका शुमार ।
चलती-फिरती हैं मेरे सीनेमें जो परछाइयाँ ॥

(२२)

यूँही 'फ़िराक़'ने उम्र बसर की ।
कुछ ग़मेजानाँ, कुछ ग़मेदौराँ ॥

(२३)

थी यूँ तो शामेहिज्र, मगर पिछली रातको ।
वह दर्द उठा 'फ़िराक़' कि मैं मुस्करा दिया ॥

(२४)

अभी तो ऐ ग़मे पिन्हाँ जहान बदला है ।
अभी कुछ और ज़मानेके काम आयेगा ॥

(२५)

जिनकी तामीर इश्क़ करता है ।
कौन रहता है इन मकानोंमें ॥

(२६)

दिल भी था कुछ उदास-उदास, शाम भी थी धुआँ-धुआँ ।
दिलको कई कहानियाँ याद-सी आके रह गईं ॥

(२७)

तू याद आए मगर जोरोसितम तेरे न याद आएँ।
तसव्वुरमें यह मायूसी बड़ी मुश्किलसे आती है ॥

(२८)

तेरे ख़यालमें तेरी जफ़ा शरीक नहीं।
बहुत भुलाके तुझे कर सका हूँ याद तुझे ॥

(२९)

जो ज़हर हलाहल है, अमृत भी वही लेकिन।
मालूम नहीं तुझको अन्दाज ही पीनेके ॥

(३०)

एक फ़सूँ सामाँ निगाहेआइनाकी देर थी।
इस भरी दुनियामें हम तनहा नज़र आने लगे ॥

(३१)

रफ़्ता-रफ़्ता इश्क़ मानूसेजहाँ होने लगा।
ख़ुदको तेरे हिज्रमें तनहा समझ बैठे थे हम ॥

फ़िराक़ साहब सिर्फ़ लिखनेके लिये ही नहीं लिखते, बल्कि जब वे हृदयगत भावोंको दबा कर रखनेमें मजबूर हो जाते हैं, तभी कुछ लिखते हैं। नियाज़ साहबको एक पत्रमें लिखते हैं—"जिस तरह रोनेसे कुछ फ़ायदा नहीं होता, फिर भी आँसू निकल ही आते हैं, उसी तरह ग़ज़ल कहने से होता क्या है ? मगर मजबूरियाँ और मायूसियाँ झख मारनेको मजबूर कर देती हैं।" यही वजह है कि आप बड़े-बड़े उस्तादोंके होते हुए भी इस क्षेत्र में बहुत जल्द चमक उठे।

फ़िराक़ साहब अस्थिर स्वभाव और भावुक प्रकृतिके मनुष्य हैं। उनकी यह अस्थिरता और भावुकता उन्हें किसी एकरंगमें नहीं रहने देती। प्रारम्भ उन्होंने ग़ज़ल-गोई से की किन्तु सहसा वे 'आसी' गाज़ीपुरीकी रुबाइयोंसे प्रभावित होकर रुबाइयाँ कहने लगे। 'जोश' मलीहाबादीके रंगमें भी लिखनेका प्रयत्न किया। और धीरे-धीरे अपना जुदागाना रंग अख़्तियार कर लिया। नमूना देखिये :—

रूप

यह रुबाइयाँ उनकी 'रूप' पुस्तक से ३५१ रुबाइयोंमेंसे ५ बतौर नमूना दी जा रही हैं। इनमें जिस तरहके भाव, भाषा और उपमाएँ व्यक्त की गई हैं, आजकल यह रंग फ़िराक़ साहबके अधिकांश कलाममें पाया जाता है।

(३२)

अब्र घुलते हैं या लचकती है कटार,
यह रूप कि रहमतोंकी जैसे चुमकार।
यह लोच, यह धज, यह मुस्कराहट, यह निगाह,
यह मौजेनफ़स कि साँस लेती है बहार॥

(३३)

इन्सानके पैकरमें उतर आया है माह।
क़द या चढ़ती नदी है अमरितकी अथाह।
लहराते हुए बदनपर पड़ती है जब आँख,
रसके सागरमें डूब जाती है निगाह॥

(३४)

है रूपमें वह खटक, वोह रस, वोह झंकार,
कलियोंके चटखते वक़्त जैसे गुलज़ार।

या नूरकी उँगलियोंसे देवी कोई,
जैसे शबेमाहमें बजाती हो सितार ॥

(३५)

वोह पेंग है रूपमें कि बिजली लहराये,
वह रस आवाजमें कि अमरित ललचाए।
रफ़्तारमें वोह लचक पवन-रस बलखाये,
गेसुओंमें वोह लटक कि बादल मँडलाये ॥

(३६)

क़तरे अरक़ेजिस्मके मोतीकी लड़ी,
है पैकरे नाजनीं कि फूलोंकी छड़ी।
गर्दिशमें निगाह है कि बटती है हयात,
जन्नत भी है आज उम्मीदवारोंमें खड़ी ॥

३७ आज दुनिया पै रात भारी है

फ़िराक़ साहब वर्त्तमान युगकी प्रगतिशील शायरीसे प्रभावित होकर कभी सामाजिक, इन्क़लाबी और कभी इश्क़िया नज़्म लिखते हैं :—

. . . .

आपसे डर रही है यह दुनिया, यह भी किन आफ़तोंकी मारी है।

. . . .

नींद आती नहीं सितारोंको, आज दुनियापै रात भारी है।
गर्दिशें बन्द हैं जमानेकी, बेक़रारी-सी बेक़रारी है ॥

. . . .

हस्तिए नेस्तीनुमाँकी क़सम, जिन्दगी जिन्दगी से भारी है।
डर रहे हैं शकिस्ते दुश्मनसे, लड़नेवालोंकी वज़अदारी है ॥

. . . .

सुलहका हार बैठे, जीतके जंग, वाह क्या मुद्दआबरआरी है।

. . . .

हमसे लड़ता है मौतको आँखें, अपनी ऐसी ही से तो यारी है।

. . . .

मिट चला इम्तियाज़े रजोनिशात, वाह क्या शाने ग़मगुसारी है।

. . . .

मौतसे खेलते हैं हम उश्शाक़, जिन्दगी है तो बस हमारी है।

. . . .

३८ नई आवाज़

अफ़सुर्दा से क्यों ऐ दिल ! सब दाग़ हैं सीनेके।
तुझको तो सलीक़े हैं, मरनेके न जीनेके ॥
माज़ीके भँवरसे अब मासूमियत उभरेगी।
वोह पाल नज़र आए क़िस्मतके सफ़ीनेके ॥

. . . .

मज़हब कोई लौटाले और उसकी जगह दे दे।
तहज़ीब सलीक़ेकी, इन्सान क़रीनेके ॥

. . . .

३९ तक़दीरे आदम

नसीबेख़ुफ़्ताके शाने झिंझोड़ सकता हूँ,
तिलस्मे ग़फ़लते कौनैन तोड़ सकता हूँ।

न पूछ है मेरी मजबूरियोंमें क्या कसबल ?
मुसीबतोंकी कलाई मरोड़ सकता हूँ।
उबल पड़ें अभी आबेहयातके चश्मे,
शरारो संगको ऐसा निचोड़ सकता हूँ॥

. . . .

४० कुछ ग़मे जाना कुछ ग़मे दौराँ

तेरे आनेकी महफ़िलने कुछ आहट-सी जो पाई है।
हर इकने साफ़ देखा शमअकी लौ लड़बड़ाई है॥
तपाक और मुस्कराहटमें भी आँसू थरथराते हैं।
निशाते दीद भी चमका हुआ दर्देजुदाई है॥

. . . .

सकूते बहरोबरकी ख़िलवतोंमें खो गया हूँ जब,
उन्हीं मौक़ोंपै कानोंमें तेरी आवाज़ आई है॥
बहुत कुछ यूँतो था दिलमें मगर लब सी लिये मैंने।
अगर सुन लो तो आज इक बात मेरे दिलमें आई है॥

. . . .

तेरी दुनिया तेरे उक़बे तो कबके मिट चुके वाइज़ !
ज़मानेमें नई इन्सानियतकी अब ख़ुदाई है।

. . . .

४१ शामे अयादत

फ़िराक़ साहबने यह ४६० अशआरकी तूल नज़्म भिन्न-भिन्न अवसरोंपर अपनी प्रेयसी के लिये १९४२-४४में लिखी है। प्रेयसीके नख, शिख, स्वभाव, प्रेम आदिका बड़ा ही सजीव चित्रण किया है। स्थानाभावके कारण केवल ७ शेर पेश किये जाते हैं। सिविल अस्पताल इलाहाबादमें रुग्ण शैयापर पड़े हुए फ़िराक़ फ़र्माते हैं :—

यह कौन मुस्कराहटोंका कारवाँ लिये हुए,
शबाबो शेरो रंगो नूरका धुआँ लिये हुए।

धुआँ कि बर्क़ेहुस्नका महकता शोला है कोई,
चुटीली जिन्दगीकी शादमानियाँ लिये हुए।

लबोंसे पंखड़ी गुलाबकी हयात माँगे हैं,
कँवल-सी आँख सौ निगाह महबाँ लिये हुए।

क़दम-क़दमपै दे उठी है लौ जमीनेरहगुजर,
अदा-अदामें बेशुमार बिजलियाँ लिये हुए।

. . . .

जगानेवाले नग़मयेसहर लबोंपै मौजजन,
निगाहें नींद लानेवाली लोरियाँ लिये हुए।

. . . .

स्वस्थ होने पर—

हर अदा गोया पयामे जिन्दगी देती हुई,
सुबह तेरे हुस्नमें अँगड़ाइयाँ लेती हुई।

जिस्मकी ऐसी सजावट रंगका ऐसा निखार,
सरबसर साँचेमें गोया ढल गई रूहेबहार।

. . . .

४२ क्या कहना !

रसमें डूबा हुआ लहराता बदन क्या कहना !
करवटें लेती हुई सुबहेचमन क्या कहना !!

मदभरी आँखोंकी अलसाई नजर पिछली रात।
नींदमें डूबी हुई चन्द्रकिरन क्या कहना !!

दिलके आइनेमें इस तरह उतरती है निगाह ।
जैसे पानीमें लचक जाये किरन क्या कहना !!
तेरी आवाज़ सवेरा तेरी बातें तड़का ।
आँखें खुल जाती हैं एजाज़ेसख़ुन क्या कहना !!

. . . .

फ़िराक़ साहब किसीके अनुयायी नहीं । पहले आप मोमिनके रंगमें लिखते थे, परन्तु अब अपना जुदागाना रंग अख़्तियार किया है । ग़ज़लों, रुबाइयों और नज़्मोंमें आप नये-नये अनोखे शब्द, विचित्र-विचित्र उपमाएँ और कल्पनातीत कल्पनाएँ ऐसे ढंगसे समोते हैं कि आपके आलोचक और प्रशंसक आश्चर्यचकित रह जाते हैं । इस तरह के रंगमें लिखनेवाले फ़िराक़ साहब उर्दू-साहित्यमें अकेले और यकता हैं । फ़िराक़ साहबके इस तरहके कलामको कुछ लोग मोहमिल (अर्थहीन, दुरूह) कहकर मज़ाक़ उड़ाते हैं और कुछ लोग अछूती कल्पना समझकर प्यार करते हैं । नमूना देखिये :--

आधीरातको--

अब आप अपनी ही परछाईंमें हैं घने अशजार,
फ़लकपै तारोंको पहली जम्हाइयाँ आईं ।
तम्बोलियोंकी दुकानें कहीं-कहीं हैं खुलीं,
कुछ ऊँघती हुई बढ़ती हैं शाहराहोंपर ।
सवारियोंके बड़े घुंगरुओंकी झनकारें ।।
खड़े हैं सिमटे हुए ऐसे हारसिंगारके पेड़ ।
जवानी जैसे हयाकी सुगन्धसे बोझल ।।
यह मौजेनूर, यह ख़ामोश और खुली हुई रात,
कि जैसे खिलता चला जाए इक सफ़ेद कँवल ।

. . . .

कँवलकी मुट्ठियोंमें बन्द है नदीका सुहाग,
जहाँमें जाग उठा आधीरातका जादू ॥
न मुफ़लिसी हो तो कितनी हसीन है दुनिया,
यह भाँय-भाँय-सी रह-रहके एक झींगरकी।
हिनाकी टट्टियोंमें जैसे सरसराहट-सी,
यह सरनगूँ है सरेशाख़ फूल गुड़हलके,
कि जैसे बेबुझे अंगारे ठण्डे पड़ जाएँ।

. . . .

क़रीब चाँदके मँडला रही है इक चिड़या,
भँवरमें नूरके करवटसे जैसे नाव चले।

. . . .

मेरे ख़यालसे अब एक बज रहा होगा।

. . . .

कुछ आलोचकोंका मत है कि फ़िराक़ साहब चन्द सालसे प्रगतिशील शायरीके हमाममें नंगे कूद पड़े हैं।[१] और उनकी नग्न तथा अश्लील शायरीके प्रमाणमें उनके इस तरहके अशआर पेश करते हैं:—

यह भीगी मसें रूपकी जगमगाहट।
यह महकी हुई रसमसी मुस्कराहट॥
तुझे भींचते वक़्त नाज़ुक बदनपर।
वोह कुछ जामयेनर्मकी सरसराहट॥
पसेख़्वाब पहलूए आशिक़से उठना।
धुले सादा जोड़ेकी वह मलजगाहट॥

. . . .

[१] 'शायर' फ़रवरी-मार्च-१९४६, पृ० ५५।

यह वस्लका है करिश्मा कि हुस्न जाग उठा।
तेरे बदनको कोई अब खुद आगही देखे॥
ज़रा विसालके बाद आइना तो देख ऐ दोस्त !
तेरे जमालकी दोशीज़गी निखर आई॥

कुछ समालोचकोंका कथन है कि कलाको कलाकी दृष्टिसे देखना चाहिये। कला न चरित्रसे सम्बन्ध रखती है न दोषोंसे। वह केवल सौन्दर्यसे सम्बन्ध रखती है। जिसका अन्तरंग और वाह्य सुन्दर है वह कला है। चाहे वह नग्न ही क्यों न हो। असुन्दरता कला नहीं। अच्छे-अच्छे परिधानोंसे वेष्टित और मूल्यवान आभूषणोंसे अलंकृति भी आकर्षण हीन है, यदि उसमें कला नहीं है तो। फ़िराक़ साहबका भी यही सिद्धान्त मालूम होता है। वे इस बातकी चिन्ता नहीं करते कि नग्न चित्र हमारे सामाजिक जीवन पर क्या प्रभाव डालेगा और उसका क्या घातक प्रभाव हमारी पीढियों पर पड़ेगा। वह तो कला-उपासक हैं और कलाका सौन्दर्य निखारनेमें वह नग्न, अश्लील सब कुछ लिख सकते हैं। इसलिये हमने फ़िराक़ साहबको उन प्रगतिशील शायरोंके साथ नहीं रखा है जो कलाको जीवनके लिये उपयोगी मानते हैं। मनुष्यके हृदयगत भावोंके व्यक्त करनेका नाम शायरी है। वह चाहे गद्यमें प्रस्फुटित हो या पद्यमें। गद्य और पद्यमें अन्तर केवल इतना ही है कि गद्यका क्षेत्र विस्तृत है और पद्यका अत्यन्त सीमित।

फ़िराक़ साहब अपने मनोभावोंको बड़ी खूबीसे गद्य और पद्यमें प्रकट करते हैं। उनके जो अन्तस्थलमें होता है वह कलाकी साधनासे उभर आता है। इसीलिये वह कभी इश्क़िया ग़ज़ल कहते-कहते जब बाह्य सामाजिक जीवनसे प्रभावित होते हैं तो यकायक इन्क़लाबी नज़्म कहने लगते हैं, और फिर जब उन्हें अपना महबूब दिखाई देता है या याद आता है तो फिर मादक स्वर अलापने लगते हैं। क्या कहना चाहिये और क्या नहीं, प्रेमोन्मादमें उन्हें पता नहीं रहता।

फ़िराक़ साहबकी शायरी नये-नये मार्गोंको खोजती हुई बढ़ रही है। देखें कब वह अपने ठीक लक्ष्यको पहुँचती है। फ़िराक़ साहब यूँ तो नज़्म भी लिखते हैं मगर मुख्य अधिकार आपको ग़ज़लगोई पर है, और इस क्षेत्रमें आप अपना विशेष स्थान रखते हैं। इस परिच्छेदमें हमने अनुभवी वयोवृद्ध उस्तादोंके पास नौजवान ग़ज़लगो शायरोंमेंसे सिर्फ़ फ़िराक़ को बैठाया है। क्योंकि फ़िराक़ साहब नौजवान ग़ज़लगो शायरोंमें इम्तियाज़ी हैसियत रखते हैं।

१२ मार्च १९४८

सहायक ग्रंथ-सूची

प्रस्तुत पुस्तकमें ३१ शायरोंका कलाम उनकी निम्न-लिखित कृतियोंसे संकलित किया गया है :—

१ मीर

इन्तखाबे मीर—मौलवी नूरअलरहमान (मकतबेजामा, देहली, १९४१)

२ दर्द

दीवानेदर्द (मुज़फ्फ़र बुकडिपो, लाहौर)

३ नज़ीर

कुलयातेनज़ीर (नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, १९२२)

४ ज़ौक़

दीवानेज़ौक़—मुहम्मदहुसेन आज़ाद (आज़ाद बुकडिपो, लाहौर १९३२)

५ ग़ालिब

दीवानेग़ालिब—अलीहैदर तबातबाई (अनवर मतालिस प्रेस, लखनऊ)

६ मोमिन

दीवानेमोमिन—ज़ियाअहमद एम० ए० (शान्तिप्रेस, इलाहाबाद १९३८)

७ अमीर मीनाई

(खेद है कि इनका दीवान हमें नहीं मिल पाया। लाचार, कलामका संकलन 'मज़ामीने चकबस्त' वग़ैरहसे करना पड़ा।)

८ दाग़

मुन्तख़िबेदाग़—अहसन माहरहरवी

९ आज़ाद

नज़्मेआज़ाद—मौ० मुहम्मदहुसेन आज़ाद (लाहौर, १९४४)

१० हाली

मुसद्दसेहाली (ताजप्रेस, लाहौर)

दीवानेहाली (एम० फ़रमान अली बुकसेलर, लाहौर)

११ अकबर

कुलियातेअकबर (तीन भाग)

१२ इक़बाल

बांगेदरां—चौधरी मुहम्मद हुसेन एम० ए०
(जावेदइक़बाल, मेयोरोड, लाहौर, १९४२)

बालेजिबरील—चौधरी मुहम्मद हुसेन एम० ए०
(जावेदइक़बाल, मेयोरोड, लाहौर, १९४६)

१३ चकबस्त

सुबहेवतन (हिन्दी)—(इंडियन प्रेस, प्रयाग, १९४४)

१४ जोश

रूहेअदब— (मकतबेउर्दू, लाहौर, १९४०)
हर्फ़ो हिकायत— (" " " १९४३)
शोलओ शबनम—(" " " १९४३)
फ़िक्रो निशात— (" " तृतीय संस्करण)
आयातो नग़मात—(" " " १९४१)
मैफ़ोसुबू—
नक़्शो निगार—(कुतुबखाना रशीद, देहली, १९३९)
अर्शो फ़र्श

१५ सीमाब

सोज़ो आहंग—(दफ्तर शाइर, आगरा, १९४१)
कारेअमरोज़—(" " " १९३४)

१६ अहसान

आतिशेखामोश—(मकतबेदानिश, लाहौर)
नवाये कारगर—(" ")
दर्दे ज़िन्दगी— (" ")
जादेहनौ— (" ")

१७ बर्क़

मतलयेअनवार—(आर्य बुकडिपो, नई सड़क, देहली, १९२९)

हर्फ़ेनातमाम—शीशचन्द्र सकसेना (चावड़ी बाज़ार, देहली, १९४१)

१८ हफ़ीज़

नग़मयेज़ार—(कुतुबख़ाना शाहनामा, लाहौर, १९३२)

सोज़ो साज़—(" " " १९३३)

तस्वीरे काश्मीर—(उर्दू एकेडमी, लाहौर, ३ मई, १९३७)

१९ साग़र

रंगमहल—(इदारहे इशाअ़ते उर्दू, हैदराबाद, १९४३)

रस-सागर (हिन्दी)

२० अख़्तर शीरानी

सुबहे बहार—(हामिद एण्ड सन्स, अलीगंज टौंक स्टेट)

नग़मये बहार—(मकतबे उर्दू, लाहौर, १९३९)

शेरस्तान—(उर्दू एकेडमी, लाहौर, १९४१)

२१ अर्श मलसियानी

(उर्दू पत्र-पत्रिकाओंसे संकलित)

२२ फ़ैज़

नक़्शे फ़रियादी

२३ मजाज़

आहंग—(मकतबे उर्दू, लाहौर, जनवरी १९४३)

२४ जज़्बी

फ़िरोज़ाँ—(मकतबे उर्दू, लाहौर, १९४२ के क़रीब)

२५ साहिर लुधियानवी

तलख़ियाँ—(नया इदारा, लाहौर, तीसरी आवृत्ति)

२६ साक़िब

दीवाने साक़िब—(निज़ामी प्रेस, लखनऊ १९३६)

२७ हसरत

इन्तख़ाबे हसरत—(जामे देहली)

कुलियाते हसरत मोहानी—(हसरत मोहानी, कानपुर, १९४३)

२८ फ़ानी

वज्दानियत—(हैदराबाद, १९४०)
वाक़याते फ़ानी (जलील बुकडिपो, हैदराबाद)

२९ असग़र

सरूरे ज़िन्दगी—(ताज कम्पनी, लाहौर)
निशाते रूह—(सद्दीक़ बुकडिपो, लखनऊ)

३० जिगर

शोलयेतूर—(मकतबे जामा, देहली, १९४२)

३१ फ़िराक़

रूहे कायनात—(संगम पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद, १९४५)
शबनमिस्तान—(" " " १९४७)
रमज़ोकनायात—(" " " १९४७)
मशअ़ल—(नसरादे नौ, लखनऊ १९४६)
रूप—(संगम पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद १९४६)

शायरोंका जीवन-वृत्तान्त, उर्दू-शायरीकी प्रगतिका ऐतिहासिक और आलोचनात्मक परिचय मुझे उपर्युक्त पुस्तकोंकी भूमिकाओंके अतिरिक्त निम्न-पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओंके सैकड़ों लेखोंसे मिला है। इनके प्रकाशमें जो मैं देख सका हूँ, वही ज़बाने क़लमसे बयान किया है। आवश्यकतानुसार प्रमाण-स्वरूप जिन पुस्तकोंके उद्धरण आदि दिए गये हैं, उनका यथा-स्थान उल्लेख भी कर दिया है।

आबेहयात—मौ० मुहम्मदहुसेन आज़ाद
तारीख़े अदबे उर्दू—रामबाबू सक्सेना, डिप्टी कलेक्टर (नवल किशोर प्रेस, लखनऊ)
नये अदबी रुजाहनात—सैयद एजाज़ हुसेन एम० ए० (इसरार करीमी प्रेस, इलाहाबाद)
यादगारे ग़ालिब—हाली
मज़ामीने चकबस्त—पं० बृजनारायण 'चकबस्त'

हिन्दी, उर्दू, हिन्दुस्तानी (हिन्दी)--स्व० पं० पद्मसिंह शर्मा (हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद)

आजकल (उर्दू पाक्षिक)—सम्पा० सैयद वक़ार अज़ीम एम० ए० (देहली, जून, '४४ से अक्टूबर, '४७ तक)

निगार (मासिक)—नियाज़ फ़तेहपुरी (जुलाई, '४५ से मई, '४८ तक। अमीनाबाद पार्क लखनऊ)

शायर (मासिक)—एजाज़ सद्दीक़ी (जनवरी, '४४ से मई, '४८ तक। आगरा)

एशिया (मासिक)—साग़िर निज़ामी (बम्बई, सितम्बर १९४३ और जनवरी अप्रैल १९४४ के तीन अंक)

नक़्दोनज़र—हामिद हुसेन क़ादरी (शाह एण्ड कं०, आगरा १९४२)

इन्तक़ादयात—भाग दो—नियाज़ फ़तहपुरी (अब्दुल हक़ एकेडमी, हैदराबाद दकन १९४४)

अन्दाज़े—फ़िराक़ गोरखपुरी (हिन्दोस्तानी पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद)

नया अदब मेरी नज़रमें—आग़ा सरख़ुश कज़लबाश (हिन्दोस्तानी पब्लिशर्स, देहली, १९४४).

तनक़ीदी ज़ाविये—सैयद एहतमाम हुसेन (इदारहे इशाअत उर्दू, हैदराबाद)

हिन्दीके मुसलमान शायर—अब्दुल्ला बट (मकतबे उर्दू, लाहौर)

रहिमन-विलास (हिन्दी)—ब्रजरत्न दास बी० ए०, एल०-एल०बी० (रामनारायणलाल इलाहाबाद सं० १९८७)

रसखान (हिन्दी—चन्द्रशेखर पाण्डेय एम० ए० (हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग सं० १९९९)

अच्छी हिन्दी—रामचन्द्र वर्मा (साहित्य रत्न माला, बनारस, सं० २००१)

३१ शायरोंके अतिरिक्त और जिन शायरोंकी नज़्म या अशआर

पुस्तकमें दिए गए हैं, उनका संकलन ऊपर लिखी किताबोंके अलावा नीचे लिखी किताबोंसे भी किया गया है :—

ईरानके सूफ़ी कवि (हिन्दी)—बांके बिहारी, कन्हैयालाल (भारती भण्डार, इलाहाबाद)

चिराग़े तूर—बहज़ाद लखनवी

मयखानये रियाज़—तस्लीम मीनाई

तराना—यगाना चंगेज़ी

वादहे सरजोश—जोशमलसियानी

गुलकदा—अज़ीज़ लखनवी

गुफ्तारे बेख़ुद—बेख़ुद देहलवी

तीरोनश्तर—आग़ा शाइर देहलवी

इल्मे मजलिसी भाग ७

उर्दू-शब्दोंके अर्थ लिखनेमें विशेषकर इन दो कोषोंसे सहायता ली गई है :—

सईदी डिक्शनरी—मौ० मुहम्मदमुनीर (मतबये मजीदी, कानपुर १९४०)

उर्दू-हिन्दी कोष—रामचन्द्र वर्मा (हिन्दी-ग्रन्थ रत्नाकर का० बम्बई १९४०)

शेरो शायरीके निर्माण में ३००-४०० ग्रन्थोंका परिशीलन हुआ है। सैंकड़ों मुशायरों और उर्दू-साहित्यक मित्रोंकी अदबी चर्चाओंसे भी अनुभूति मिली है। जिन पुस्तकोंके उद्धहरण दिये गए हैं या जिनसे जीवन वृत्तांत मालूम हुआ है, और शेर संकलित हुए हैं, केवल उन्हीं पुस्तकोंका ऊपर उल्लेख किया गया है। हम उन सभी शायरों, लेखकों, सम्पादकों, और प्रकाशकोंके अत्यन्त कृतज्ञ हैं जिनकी रचनाओं, सम्पादित ग्रन्थों और प्रकाशनोंसे शेरोशायरीके निर्माणमें सहायता या अनुभूति मिलीहै।

डालमियानगर, बिहार
१२ अगस्त, १९४८

—गोयलीय

अनुक्रमणिका

शायर, लेखक, विशेष व्यक्ति

अ

आ

इ

उ

ए

त

द

न

ग्रन्थ

साहित्य सम्बन्धी

भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

लोकमत

पुस्तकें हर दृष्टिसे सुन्दर और उपादेय हैं।

—सम्पूर्णानन्द

ऐसे सुन्दर प्रकाशनके लिए बधाई है।

—मैथिलीशरण गुप्त

भारतीय ज्ञानपीठ बहुत अच्छा काम कर रही है, भगवान करे आपको खूब सफलता हो।

—सुन्दरलाल

प्राचीन जैन कहानियाँ और जैन-शासनको मैंने बहुत पसन्द किया।

—वासुदेवशरण अग्रवाल

ज्ञानपीठ द्वारा भारतीय प्रकाशनमें बहुत उपयुक्त वृद्धि होगी। हमारे देशकी ज्ञान-ज्योतिमें उससे मूल्यवान् वृद्धि होगी।

—आचार्य जिनविजय मुनि

भारतीय ज्ञानपीठ, काशीका संकल्प और जो कृतियाँ प्रकाशनार्थ तैयार हो रही हैं उन्हें देखकर बड़ा सन्तोष हुआ।

—राहुल सांकृत्यायन

आपकी आयोजनासे मुझे पूर्ण सहानुभूति है।

—बच्चन

प्रकाशन बड़ा सुन्दर हुआ है। सामग्री भी स्तुत्य है।

—डॉ० हीरालाल जैन

आप जिस दृष्टिकोणसे प्रकाशन क्षेत्रमें उतर रहे हैं, उसका हार्दिक स्वागत है।

—रामप्रताप त्रिपाठी

(सा० मंत्री हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग)

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि यह ज्ञानपीठ इन तीनों कार्यों (प्राचीन ग्रन्थ-सम्पादन, संकलन, लोकोदयकारी नूतन निर्माण)को समान श्रद्धाके साथ करना चाहता है।

—भदन्त आनन्द कौसल्यायन

इस संस्थाके उद्देश्य बहुत उदार हैं। मेरा सद्भाग्य है कि मैं अपने जीवनमें ही अपनी इच्छाके अनुरूप इस संस्थाका उदय देख सका।

—नाथूराम 'प्रेमी'

पुस्तकोंकी छपाई अतीव सुन्दर, स्वच्छ और शुद्ध है। अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग तन-मन-नयनके लिए आनन्दप्रद और शान्तिदायक है।

—शिवपूजन सहाय

सभी पुस्तकें महत्वपूर्ण हैं। ज्ञानपीठ साहित्यकी बड़ी सेवा कर रही है।

—अमरनाथ झा

इसमें कोई सन्देह नहीं कि पुस्तकें बहुत उपयोगी और ज्ञानवर्द्धक हैं।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी

पुस्तकोंके विषय और उनके लिये सिद्धहस्त अधिकारी लेखक दोनोंका समुचित चुनाव उत्कृष्ट उद्देश्यके अनुकूल ही हुआ है। साम्प्रदायिक संकुचित भावनाके स्थानमें पुस्तकोंका विशुद्ध सांस्कृतिक दृष्टिकोण उनकी उपयोगिता और महत्वके क्षेत्रको और भी बढ़ा देता है। आशा है हिन्दी संसार इसका समुचित आदर करेगा।

—डा० मंगलदेव शास्त्री

भारतीय ज्ञानपीठ, काशीके प्रकाशन

[हिन्दी ग्रन्थ]

१ **मुक्तिदूत**—अञ्जना-पवनञ्जय का पुण्य चरित्र (पौराणिक रोमांस) लेखक—वीरेन्द्रकुमार जैन, एम० ए०। मूल्य ४।।।)

२ **पथचिह्न**—(हिन्दी-साहित्यकी अनुपम पुस्तक) स्मृति-रेखाएँ और निबन्ध। लेखक-सुप्रसिद्ध साहित्यिक श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी। पृ०१२८। मू० २) "इसके लेखक द्विवेदीजी ने हिन्दी साहित्य को कई कृतियाँ प्रदान की हैं। इसमें लेखकने अपनी स्वर्गीया बहनके संस्मरण मर्मस्पर्शी ढंग पर प्रस्तुत किये हैं। उनकी कला में कोमलता है।"

—सम्मेलन पत्रिका

३ **दो हजार वर्ष पुरानी कहानियाँ**—(जैन कहानियाँ) लेखक—डा० जगदीशचन्द्र जैन, एम० ए०, पी-एच० डी०। पृ० २१२। व्याख्यान तथा प्रवचनों में उदाहरण देने योग्य। मूल्य ३)—"संकलन कार्य में काफ़ी श्रम करना पड़ा होगा। पुस्तक संग्रहणीय है।"—दैनिक सन्मार्ग काशी। "इन कहानियों में प्राचीन भारत के मनीषियों की सजीवता, सूझ एवं मनोरंजन कल्पना के दर्शन होते हैं।" —विश्व भारती "कदाचित ही किसी देश की कहानियाँ इतनी प्राचीन मिल सकेंगी। इन कहाँनियों के झरोखों से भारतीय सांस्कृति के शाश्वत-स्वरूप की झाँकी मिलती है, उसे देख कर

कौन भारतीय ऐसा होगा जो अपने अतीत की महानता से पुलकित न हो उठे।"

—सम्मेलन पत्रिका

४ **कुन्दकुन्दाचार्यके तीन रत्न**—लेखक श्री गोपालदासजी पटेल। अनुवादक—पं० शोभाचन्द्रजी भारिल्ल न्यायतीर्थ, ब्यावर। पृ० १६०। मूल्य २)।

५ **आधुनिक जैन कवि**—वर्त्तमान कवियोंका कलात्मक परिचय और सुन्दर रचनाएँ। सं० रमा जैन। पृ० २६६। मूल्य ३॥)। पुस्तक संग्रह योग्य है।—वीरवाणी

६ **जैनशासन**—जैनधर्मका परिचय तथा विवेचन करनेवाली सुन्दर रचना। हिन्दू विश्वविद्यालयके जैन रिलीजनके एफ़० ए०के पाठ्यक्रममें निर्धारित। कवरपर महावीर स्वामीका तिरंगा चित्र। लेखक—पं० सुमेरुचन्द्र दिवाकर शास्त्री। पृ० ४२०। मूल्य ४।-) "जैनधर्मके सम्बन्धमें बहुत-सी जानकारी इस पुस्तकसे मिल सकती है"।—संगम, "जैनधर्म, दर्शन और साहित्यका बड़ा सुन्दर अध्ययन पेश किया गया है"।—विश्वभारती

७ **हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास**—हिन्दी जैन साहित्यका इतिहास तथा परिचय। लेखक—कामताप्रसाद जैन। पृ० २८८। मूल्य २॥।=)। "लेखकने एक बड़े अभावकी पूर्ति की है। वृत्तिपूर्ण और पठनीय है"।—विश्वभारती पत्रिका

[संस्कृत प्राकृत ग्रन्थ]

८ **मदनपराजय**—कवि नागदेव विरचित (मूल संस्कृत) भाषानुवाद तथा विस्तृत प्रस्तावना सहित। जिनदेवके कामके पराजयका

सरस रूपक। स्वाध्यायके योग्य। सम्पादक और अनुवादक— पं० राजकुमारजी साहित्याचार्य। ग्रन्थ साइजके पृ० २३०। मूल्य ८) काशी विश्वविद्यालयके वाइस चान्सलर श्री० अमरनाथ झा लिखते हैं:—मदनपराजयकी भूमिका बड़ी योग्यतासे लिखी गई है और उससे कई नई बातोंका ज्ञान होता है। इस ग्रन्थकी तुलना प्रबोध चन्द्रोदयसे हो सकती है।

९ **कन्नड प्रान्तीय ताडपत्रीय ग्रन्थ सूची**—(हिन्दी) मूडबिद्रीके जैन-मठ, जैनभवन, सिद्धान्तवसदि तथा अन्य फुटकर ग्रन्थभण्डार, कारकल और अलियूरके अलभ्य ताडपत्रीय ग्रन्थोंका सविवरण परिचय। प्रत्येक मन्दिरमें तथा शास्त्रभण्डारमें विराजमान करने योग्य। सम्पादक—पं० के० भुजबली शास्त्री, मूडबिद्री। मूल्य १३)।

१० **महाबन्ध**—(महाधवल सिद्धान्त शास्त्र) प्रथम भाग। हिन्दी टीका सहित। पक्की जिल्द। कवरपर बाहुबलिका सुन्दर चित्र। द्वादशाङ्गसे साक्षात् सम्बन्ध रखनेवाली, भगवंत भूतबलिकी सैद्धान्तिक कृति, जिसकी समाज सदियोंसे प्रतीक्षा कर रहा था। सं०—पं० सुमेरुचन्द्र दिवाकर शास्त्री। ग्रन्थ साइज़के पृ० ४५०। मूल्य १२)। "ग्रन्थका कलेवर सर्वांग सुन्दर है"।
—स्वामी सत्यभक्त

११ **करलक्खण**—(सामुद्रिक शास्त्र) हिन्दी अनुवाद सहित। हस्त-रेखा विज्ञानका नवीन ग्रन्थ। सम्पादक—प्रो० प्रफुल्लचन्द्र मोदी एम० ए०, अमरावती। मूल्य १)

भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस।